निराला के काव्य की मूल प्रेरणा और उनका विद्रोही दृष्टिकोण

विभा गुप्ता

निर्देशक पं० उमाशंकर शुक्ल

[इलाहाबाद युनिवर्सिटी की पी एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध]

१९७०

प्राक्कथन

"निराला" के काव्य एवं व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता उनका विद्रोह-भाव है; जिसका परिचय उनके साहित्य के प्रेरणा-स्रोतों के अन्वेषण-अध्ययन में भी प्राप्त होता है। "निराला" के इस विद्रोह-भाव का उल्लेख समीक्षकों एवं संस्मरण-लेखकों ने एकाधिक बार किया है, परन्तु उनके काव्य के प्रेरणा-स्रोतों के साथ इसकी सम्बद्धता के विवेचन का अभाव रहा है। "निराला" के काव्य की मूल प्रेरणा अथवा प्रेरणा स्रोतों पर भी अभी तक कोई कार्य संकलित रूप में नहीं किया गया है, यद्यपि प्रेरणा के विविध-स्रोतों के निर्देश का सर्वथा अभाव भी नहीं रहा है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में "निराला" के प्रेरणा-स्रोतों का जो अध्ययन विषय-वस्तु को लेकर किया गया, उसमें दृष्टि का प्रसार संस्कृति से जीवन तक हुआ है और "निराला" के विद्रोही दृष्टिकोण का प्रेरणा-स्रोतों से क्या और कैसा सम्बन्ध है, इसकी भी स्पष्टीकरण का प्रयास है। "निराला" के विद्रोही दृष्टिकोण को उनके काव्य-व्यक्तित्व का केन्द्रीय तत्व स्वीकार करने की दृष्टि से, विद्रोह और मूल-प्रेरणा के परस्पर सामन्जस्य की दृष्टि से प्रस्तुत अध्ययन अपने प्रयास में नवीन है।

इस शोध प्रबन्ध की रचना में मुझे सर्वाधिक सहायता डा०रामविलास शर्मा से प्राप्त हुई है। शोध प्रबन्ध का यह रूप उनके ही निर्देशों का परिणाम है। मैं हृदय से सबसे अधिक उन्हीं की कृतज्ञ हूं। श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी जी ने अत्यन्त कृपापूर्वक "निराला" की अप्रकाशित 60 गीतों की पुस्तिका दिखाने का जो अनुग्रह मुझपर किया है, अथवा उनसे "निराला" के संस्मरण सुनाते हुए जिन नवीन तथ्यों की उपलब्धि उनके द्वारा हुई है, उनके लिए मैं उनके प्रति भी आभारी हूं। स्वर्गीय आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी एवं डा० रामरतन भटनागर के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं, जिन्होंने समय-समय पर मेरी जिज्ञासाओं का समाधान किया है। इन सब के साथ अपने निर्देशक पं०उमाशंकर शुक्ल का सबसे अधिक आभार मैं स्वीकार करती हूं, जिनके सहयोग के अभाव में शोध प्रबन्ध का प्रस्तुतीकरण असम्भव था।

अपने शोध प्रबन्ध के लिए सामग्री-संचयन की अवधि में काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, लीडर प्रेस एवं प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से जो अमूल्य सहायता मुझे प्राप्त हुई है, उसके लिए उनके अधिकारियों का अनुग्रह एवं आभार स्वीकार करना भी मेरा परम कर्तव्य है। सामग्री संचयन एवं टाइप की अशुद्धियों के संशोधन की अवधि में मुझे अपनी जुड़वाँ बहिन प्रभा से जो सहायता प्राप्त हुई है, उसे स्वीकार करने में मुझे गर्व है। शोध-प्रबन्ध के लिए काम करते हुए विभिन्न अवसरों पर परिवार के अन्य सदस्यों से प्राप्त सहायता का आभार भी कृतज्ञता के साथ में स्वीकार करती हूं।

विभा गुप्ता
(विभा गुप्ता)

विषय-सूची

अनुभूति की सम्प्रेषणीयता का अनिवार्य माध्यम रमणीय शब्दावली होने के कारण अभिव्यंजना का सौन्दर्य काव्य का अनिवार्य तत्व है, यद्यपि सापेक्षिक दृष्टि से अनुभूति का महत्व अधिक है, क्योंकि कविता का प्राण एवं अभिव्यक्ति के सौन्दर्य का आधार भी वही है[1]। काव्य-रचना के लिए कवि से ध्यान, दृष्टि, कल्पना और स्मृति आदि के कतिपय विशिष्ट गुणों की अपेक्षा रहती है। बिम्बों में मूर्तीकरण एवं भाषा पर पूर्ण अधिकार की आवश्यकता का प्रतिपादन भी अभिव्यंजना की दृष्टि से ही किया गया है[2]। सृजन-प्रक्रिया की आत्मगत एवं प्रेषण के माध्यम शब्द अपनी उत्कृष्टावस्था में इतने ज्ञान और शाश्वत तत्वों को प्रक्षिप्त करते हैं कि हमारा जीवन कहीं अधिक समृद्ध बन जाता है। स्वयं जीवन्त होने के कारण ही प्रेरणा-युक्त शब्द हमें जीवन प्रदान करते हैं। स्थिर और निश्चित होने के कारण ही उनकी जीवनी-शक्ति परिवर्तित हो जाती है, अतः हम उनसे ऐसी अजेय शक्ति प्राप्त करते हैं, जो समय के आघात से विनष्ट नहीं होती[3]। शब्दों को अर्थ और साहचर्य का प्रतीक और उनकी निश्चित विशिष्टता की दृष्टि से स्वीकार की गयी है[4]। भाषा की महत्ता की स्वतन्त्र स्वीकृति सी० डब्ल्यू० लुइस ने भी स्वीकार की है[5]।

स्पष्ट है कि काव्य-सर्जना के लिए प्रेरणा-शक्ति की अनिवार्यता तो असंदिग्ध है ही, अभिव्यक्ति की कामना भी उसके साथ संश्लिष्ट है। वास्तव में भाव और भाषा अन्योन्याश्रित और परस्पर समान्वित होते हैं[6]। सृजन के प्रेरणामय क्षणों में जब कवि की सर्जनात्मक अनुभूति अथवा कल्पना जागृत होती है, अपनी भावानुकूल एवं

१- डा० नगेन्द्र; आलोचक की आस्था, पृ०२२-२३

२- Stephen Spender, The Making of a Poem पृ०४५,४६,५५

३- M. Bowra साहित्य सिद्धान्त, डा०रामअवध द्विवेदी, पृ०११ पर उद्धृत

४- An Approach to Poetry, Phosphor Mallam, p. 42, "Words, then, are symbols of meaning and of association. They have, that is, a defined and undefined significance."

५- C.W.Lewis, The Poet's Way to Knowledge, p. 20.
"...Language is of supreme importance. Poets are compelled to break away from the language of their predecessors, a poet may be compelled to alter his own style radically because language is the instrument of poetic investigation and quickly grows blunt."

६- An Approach to Poetry, Phosphar Mallam, p. 52.

विचारावलि को वह शब्द-स्वर और छंद के माध्यम से रूपायित-चित्रित एवं प्राणान्वित करता है । प्रतिभा प्रसुप्त अथवा अन्तःकरण आविर्भूत वह प्रेरणा शक्ति है। भावुकता कवि की रचनात्मक शक्ति के साथ ही है, जिसमें कवि-साधना के दिव्य गुण अन्तर्निहित रहते हैं । प्रेरणा एवं प्रेषणा के युग्म को लेकर ही मुख्य कवि की यह समग्र संवेदना-अभिव्यंजना प्रसारित होती है । इसलिए शब्दों के माध्यम से भाव की कल्पनात्मक अभिव्यक्ति को कविता कहा गया है[१] ।

'मूल प्रेरणा का अभिप्राय', यशपाल जी के विचारानुसार 'शायद भावों की अनुभूति में उद्गार की इच्छा माना जा सकता है । जैसे कोई व्यक्ति नहाते-नहाते कुछ गुनगुनाने लगता है या पशु पक्षी वातावरण या परिस्थिति के प्रभाव से ध्वनियों के रूप में उद्गार प्रकट करने लगते हैं[२] ।' अनुभूति और अभिव्यक्ति की इसी सहज स्थिति को स्वीकार करते हुए ही 'भाषा-छंद और भाव को लेकर कुछ अप्रत्याशित करने की लालसा से कवि कर्म का जन्म' माना गया है[३] । सुमित्रानन्दन पन्त के मतानुसार भी 'सृजन प्रेरणा केवल मन में ऊपर आये हुए चेतन तत्त्वों या प्रभावों से ही परिचालित नहीं होती, वह अवचेतन की शक्तियों तथा अन्तश्चेतना की मौन गहराइयों से भी संचालित होती है[४] ।' उनका विचार है कि 'वैयक्तिक संस्कार तथा प्रतिभा रचना को विशेषता देते हैं पर उसके मूल व्यापक मानव-चेतना एवं सामाजिक चेतना में ही होते हैं । विशिष्टता कोई आत्म स्वतंत्र विच्छिन्न पदार्थ नहीं, वह साधारणता अथवा सामान्यता की ही उपज है-- जीवन की सामान्यता यदि वृक्ष है तो विशिष्टता मानो जिसमें मूलतः वृक्ष के ही सारभूत गुण हैं[५] ।' भावात्मक रूप से साहित्य अखण्ड अभिव्यक्ति या अखण्ड अनुभूति की अखण्ड अभिव्यक्ति का पर्याय है[६] ।

१- डा० नगेन्द्र, आलोचक की आस्था, पृ० १५
२- यशपाल, १२-७-६७ का पत्र
३- डा० रामरतन भटनागर, २७-१-६७ का पत्र
४- सुमित्रानन्दन पंत, पृ० २३ मुक्तधारा, २७ जनवरी १९६८
५- ,, पृ० २९ ,, ,, ,,
६- डा० नगेन्द्र, आलोचक की आस्था, पृ० २७

'जो चेतनाशक्ति आत्मविकास के लिए मनुष्य का जीवनेच्छा और उसके लिए,उसी से उत्पन्न कर्म-भावना को गति देता है, उसे मूल प्रेरणा-शक्ति कहते हैं'।[1] पन्त जी का व्यापक मानव-चेतना एवं सामाजिक चेतना में रचना का मूल स्रोत मानना इस दृष्टि से उचित है । रचना के मूल स्रोत जीवन एवं मन में अन्तर्हित होते हैं । जीवन के ही अंग राष्ट्र,इतिहास,दर्शन आदि भी हैं[2]। लेखक को घेरे रहने वाला, उसके चतुर्दिक व्याप्त,भौतिक,प्राकृतिक और सामाजिक परिस्थितियां,व्यवस्था,आचार-व्यवहार और अन्तर्विरोधों में ही उसकी प्रेरणा के स्रोत निहित रहते हैं। सामाजिक कल्याण का साधन होने के कारण ही साहित्य का प्रेरणा का आधार स्थिर अतः परम्परागत सत्य विचार या परम्परागत नैतिक मान्यताएं होनी चाहिए[3]। अपनी सचेतनता के कारण ही प्रेरणा परिस्थितियों संस्कारों एवं विचारों के प्रभाव से विलग एवं अप्रभावित नहीं रहती है ।

कविता को,और व्यापक अर्थ में साहित्य को आत्माभिव्यक्ति कहना रागात्मक जीवन के साथ उसके अनिवार्य और अन्तरंग सम्बन्ध को प्रमाणित करना है । आत्माभिव्यक्ति का अर्थ है सर्जनाकालीन कलाकार के व्यक्तित्व की पूर्ण अभिव्यक्ति-- और सर्जना के क्षणों में कलाकार का व्यक्तित्व संगठित हो जाता है, यह कला एवं सर्जना दोनों का अनिवार्य नियम ही प्रत्येक कृति का सम्बन्ध कृतिकार के व्यक्तित्व से होता है,क्योंकि कृतिकार का अपना रागात्मक जीवन एवं उसके आधार पर निर्मित जीवन दर्शन कृति में अनिवार्यतः प्रतिफलित होता है[4]। कोई भी व्यक्ति अपनी आत्मिक प्रेरणा के अनुरूप काव्य-सृष्टि तब तक नहीं कर सकता, जब तक अपने व्यक्तित्व को उसे जन-जीवन के प्रति समर्पित न कर दिया हो । कवि की स्वतन्त्र प्रवृत्ति ही उसके काव्य-निर्माण का प्रेरक बनती है, जो उसमें व्याप्त रहती है[5]।

१- अमृतलाल नागर

२- सुमित्रानन्दन पंत,पुस्तधारा,पृ०२२,२७ जनवरी १९६८

३- यशपाल, संकेत प्रेरणा के स्रोत,पृ० १०

४- डा० नगेन्द्र,आलोचक की आस्था,पृ०१-२ और २६-२७

६ पृ० ६१

५- आ० नन्ददुलारे वाजपेयी,, कवि निराला ,पृ०५८,६६

अतः घ काव्य के भीतर से प्रस्फुटित व्यक्तित्व के सहारे ही कवि के अन्तर्जीवन अन्तर्मन तक पहुंचना ठीक है।[1] डा० शर्मा ने भी काव्य को कवि का सही परिचय कहा है। कवि के अन्तर्व्यक्तित्व को समझने का प्रयत्न करने पर उसकी मूल चिन्तन-धारा की दिशा का सही ज्ञान हो सकता है, क्योंकि कवि के अन्तर्व्यक्तित्व का गठन ही हमें उसकी प्रेरणा के मूल स्रोत का यथार्थ बोध करा सकता है।[2]

यहां हमें प्रभाव और प्रेरणा शब्दों का विश्लेषण भी कर लेना चाहिए। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जब दूसरे कवियों के विचारों को प्रेरणा रूप में आत्मसात कर गये। आत कहने को अच्छे कवियों का कार्य कहते हैं,[3] तब वे प्रभाव और प्रेरणा शब्दों में किसी विशिष्ट अथवा मौलिक अन्तर को स्वीकार नहीं करते। प्रभाव साहित्य का केवल उपादान है। कथन अथवा परिभाषिक के सहयोग से वृत्ति को प्रभाव कहना भी इसी प्रकार है।[4] डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने भी प्रभाव और उधार लेना, दोनों के अन्तर की ओर ध्यान आकृष्ट कर प्रेरणा के लिए रवीन्द्र का और 'निराला' के लेने की जो बात लिखी है, वहाँ भी प्रभाव और प्रेरणा समानार्थी हो गये हैं।[5] 'Traditional and the individual talent' निबन्ध में व्यक्त T. S. Eliot की मान्यताएं भी इसी विचारधारा के अनुरूप हैं। डा० गुलाबराय ने भी अच्छे कवि के पूर्ववर्ती कवि की कृतियों में नया चमत्कार भरने अथवा छाया ग्रहण कर कृति में नया जीवन भरने तथा विचार के अनेक पहलुओं में से अपेक्षित करने वाले पहलू को ही विवेचन का विषय बनाने का उल्लेख किया है।[6] 'निराला' ने भी 'पंत और पल्लव' में प्रभाव और प्रेरणा को भिन्नार्थी स्वीकार नहीं किया है। दूसरों का भाव लेकर उसपर विजय प्राप्त करने अथवा अपना चमत्कार दिखाने तथा जो भाव कवि ग्रहण करता है उन भावों के कवि की हृदय-भूमि में बीज-रूप से स्वतः स्थित होने का उल्लेख इसका प्रमाण है।[7]

१- निराला, पृ०१७६
२- इलाचन्द जोशी
३- हिन्दी साहित्य, पृ०३९९
४- निराला काव्य पर बंगला प्रभाव, पृ०२, प्रमथनाथ बिशी और धूर्जटी प्रसाद गुप्त के कथन
५- निराला का साहित्य और साधना, प्रथम संस्करण की भूमिका, पृ०'क'।
६- सिद्धान्त और अध्ययन, पृ०६१
७- प्रबन्ध पद्म, पृ० ८९, १५९-१६०

श्री दुलारेनाथ राय ने अवश्य 'संस्कार और मर्यादा के प्रश्न कवि 'निराला'' लेख में प्रभाव, प्रेरणा और अनुकरण को अलग तथ्य स्वीकार किया है। उनका विचार है कि 'प्रेरणा' में देश, काल, पात्र तीनों को बराबर श्रेय मिलता है और 'प्रेरक' भी देश काल का उसी अर्थ में पुत्र है, जिस अर्थ में प्रेरित। परन्तु 'अनुकरण' सिर्फ पात्र या व्यक्ति का होता है तथा 'प्रभाव' इन दोनों के बीच की वस्तु है[१]।

स्पष्ट है कि कवि को काव्य-रचना के प्रति प्रवृत्त करने वाली प्रधान प्रवृत्ति, उसकी समस्त प्रवृत्तियाँ एवं अनुभूतियाँ का मूल परिचालिका शक्ति का ही उसकी मूल प्रेरणा है मानना चाहिए, जो कवि को एक विशिष्ट दृष्टि और निश्चित दिशा-बोध प्रदान करती है। कवि की काव्य-विषयक परिकल्पना अर्थात् उसके काव्य-सिद्धान्त, काव्य दृष्टि का परिचय इस दृष्टि से आवश्यक है। कवि के संकल्प को जानने की आवश्यकता का निर्देश कवि 'निराला' ने भी किया है[३]।

'निराला' की काव्य-विषयक परिकल्पना

कवि-कर्म के मूल में, कविता अथवा कवि की पुकार के भीतर, प्रतिभा की पुकार अथवा दैवी शक्ति का अभ्युत्थान ध्वनि को 'निराला' ने स्वीकार किया है, जिसका स्वाभाविक धर्म मानवीय बन्धनों का उच्छेद कर मुक्ति एवं प्रसार की कामना है[४]। 'समय का रुख जिस ओर होता है, उस ओर चलने के लिए कवि की अन्तरात्मा उसे संकेत करती है, कवि को सफलता की आशा होती है, उसी और उसकी काव्य-प्रतिभा विकसित होती है[५]।' और कवि का व्यक्तित्व इस

१- 'निराला' स्मृति ग्रन्थ', संपादक ओंकार शरद, पृ०१२४

२- इलाचन्द्र जोशी

३- 'वह क्या चाहता है, उसका उद्देश्य क्या है ? वह अपने जीवन का प्रवाह किस ओर बहा ले जाना चाहता है, उसकी भावनाओं में किसी भाव खास भाव की अधिकता क्यों हुई ? ये सब बातें हमें अच्छी तरह तभी मालूम हो सकती हैं, जब कवि स्वयं उनमें अपनी कवित्व कला की ज्योति भरे और उन्हें आइने से भी साफ इतिहास से भी सरल करके रखे।' -- रवीन्द्र कविता-कानन, पृ०७१

४- रवीन्द्र कविता-कानन, पृ०४३-४४

५- माधुरी १०, १८ अगस्त १९२३ 'तुलसीकृत रामायण का आदर्श', पृ०५०

व्याप्ति में सहायक होता है[१]। इसलिए क्षुद्र और महान, स्वराट और विराट दोनों में कवि की व्याप्ति 'निराला' मानते हैं[२]।

काव्य-सृजन के मूल में सामूहिक एवं स्वाधीन चेतना की स्थिति 'निराला' मानते हैं, जो सहज और स्वाभाविक होने के कारण आनन्दप्रद और कल्याणमय होती है। उनका निश्चित विचार है : "काव्य जब असली जगह से निकलता है, तब, केवल जातीय नहीं-- सामूहिक,-- भिन्न भाषा-भाषियों के कंठों से भी साफ अदा होता है, यानी उसका स्वर समस्त विश्व के स्वरों से मैत्री कर सकता है। कोई मनुष्य, वह कहीं का हो, उस स्वर को सुनकर यह न कहेगा कि इसमें कर्ण-कटुता है-- यह आत्मा में अस्वाभाविकता पैदा करता है। यही स्वर पढ़ते वक्त विकृत नहीं होता। 'श-ण-व-ल' स्कूल वाले यहीं अंतर्हित हैं। + + + सही बात यह है कि भाषा जब स्वाभाविक और-आनन्दप्रद-होकर रूप से निकलेगी, इसी रूप से निकलेगी,-- उसका पठन स्वाभाविक और आनन्दप्रद होगा। यह किसी व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं[३]।"

कवि 'निराला' के विचारानुसार अपनी कोमलता एवं सहानुभूति प्रवणता के कारण किसी भी चित्र की छाया को यथातथ्य रूप से ग्रहण करना कवि का सहज और स्वाभाविक धर्म है[४]। उनकी मान्यता है : "कवि की दृष्टि साफ शीशे की तरह है, जो चित्र उसके सामने आता है, उसी का उस पर बिम्ब पड़ जाता है। + + इनके (साधारण ग्राम्य जीवन के) चित्रण में सादगी ही कला है। + + इस तरह की कविता में केवल यथार्थ चित्रण, बिना अलंकारों के उपासना [illegible] खुलता है। + + इस तरह के चित्रण से साहित्य को बहुत कुछ मिलता है, और ग्राम्य जीवन साहित्य का मूल है। 'यथदृष्टं तल्लिखितं', यह एक बहुत बड़ी कला है।

१- चाबुक, पृ० ४५

२- रवीन्द्र कविता-कानन, पृ०५० , प्रबन्ध पद्म, पृ०१५२-१५३

३- माधुरी, फरवरी १९३८ 'नवीन कवि 'प्रदीप'', पृ०९७-९८

४- रवीन्द्र कविता-कानन, पृ०५२ अनामिका, पृ०७१

उनमें सब कुछ रहता है[1]।" 'कवि' में भी इसी सहज और अकृत्रिम स्थिति की कल्पना करने के कारण यथार्थ एवं निरलंकृत चित्रण को 'निराला' ने स्वीकृति दी है, और कवि-कर्म का उदय प्रकृति के क्रोड़ से माना है ।

'कवि' महान है, ~~क्योंकि निर्मम संसार के सहस्रों वार फेलकर भी वह दुःख मुक्ति का उपाय सोचता है~~, क्योंकि निर्मम संसार के सहस्रों वार फेलकर भी वह दुःख मुक्ति का उपाय सोचता है, और नव-जीवन की शक्ति प्रदान करता है, अपने ही अमृत के पावन-कर-सिंचन से वह तत्काल नश्वर को अविनश्वर कर देता है[2]। 'कवि-प्रिया' 'विजया की भेंट'[3] में भी कवि की विशाल हार्दिकता एवं 'उच्चाकांक्षाओं से भरे भावों' 'भरने की अविराम फड़ी-सी 'लगाते, 'आंसू बरसाते' 'कवितामय कवि नेत्र से कवियों की प्रिया कविता की उद्भावना 'निराला' मानते हैं । कवि के भाव भरे घट से छलक पड़ने वाले कविता के मधुर पदों में सर्वचराचर का जीवन प्रतिबिम्बित था और जिसने 'एक बिन्दु में ही उसे सुधा सिंधु दिखला दिया ।'

काव्य को मूलतः शब्दमय मानकर काव्य-प्रेरणा में भी शब्द की महत्ता 'निराला' मानते हैं । मुक्तछन्द के रहस्योद्घाटन में प्रसंगवश उल्लिखित कवि की उनकी उदार परिभाषा व्याकरणाचार्य एवं पिंगलाचार्य दोनों को अन्तर्हित कर, काव्य के शब्द-पक्ष की महिमा का ही आख्यान करती है । 'कवि' का अर्थ-संधान करते हुए कवि 'निराला' लिखते हैं : 'कवि का अर्थ नाचने वाला ठीक है । यह नर्तन ताल-तमाल पर पैरों का उठना और गिरना नहीं, किन्तु भावावेश में हृदय का नर्तन है । भावावेश में हृदय के नर्तन के साथ ही शब्द भी निकलते रहते हैं । यदि शब्दों का अस्तित्व लुप्त कर दिया जाये तो भाव का भी लोप हो जाता है, क्योंकि भाव और

१- 'सुधा' मई १९३५, 'निशा थिनी', पृ० ३६५

~~२- तुलसीदास, पृ० १०, ११, १२, १८~~ ।

२- परिमल 'कवि' पृ० १८३ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, निराला स्मृति अंक, ११ फरवरी १९६२ । 'सनेही' जी का लेख 'निराला' जी से मेरा परिचय' पृ० २३ । 'कवि' पत्रिका, वर्ष ३, अंक १० मार्गशीर्ष १९८१ में छपा निराला का गीत 'कवि कैप्रति'

३- मतवाला, वर्ष १, २० अक्टूबर १९२३, पृ० ८५ (पूरी ~~कविता के लिए देखिए परिशिष्ट~~)

शब्द परस्पर सम्बद्ध हैं। हृदय का नर्तन शब्दों की गति से ही होता है, अन्यथा वह जड़ और निष्प्राण सिद्ध होगा। इस तरह व्याकरणाचार्य के अनुसार कवि का अर्थ नाचनेवाला हम प्रमाणित कर देते हैं। पिंगलाचार्य के अनुसार शब्द की लड़ियों पर चलने वाला कवि है, यह भी सिद्ध हो जाता है। क्योंकि, भावात्मक शब्द, हृदय के स्पन्दन या नर्तन के साथ ही, जब एक परिमित वृत्त में घूमते रहते हैं तब वह वृत्त या छन्दावर्त छन्द कहलाता है-- फिर वह चाहे शार्दूल विक्रीडित हो या इन्द्रवज्रा, शिखरिणी हो या वीर। यहाँ, पिंगलाचार्य भी 'कवि' की उदार परिभाषा में आ जाते हैं --उनसे भी कोई विरोध नहीं रह जाता।[1]" अन्यत्र लेख में अपने इन्हीं विचारों की पुष्टि करते हुए 'निराला' ने लिखा है -- "कवि शब्दों को जोड़ते नहीं। उनके शब्द हृदय के स्वाभाविक उद्गार होते हैं। आदि और अद्वितीय कवि वाल्मीकि की प्रथम कविता इसका प्रमाण है। कवियों में बनावट का लेश भी नहीं रहता। कृत्रिमता हो तो वे अपने आसन से गिरा दिये जायं, लोगों पर उनके वाक्यों का कुछ भी प्रभाव न पड़े। कवियों के हृदय निर्गत कविता रूपी उद्गार में इतनी शक्ति होती है कि उसका प्रवाह जनता को अपनी गति की ओर खींच लेता है[2]।"

काव्य के शब्द-तत्व अथवा भाषा का सम्बन्ध 'निराला' जी आकाश से मानते हैं, जिसका आध्यात्मिक रूप प्राण है, जिसका प्रवाह पृथ्वी की ओर है और जो प्राणों का परिचय भी देता है[3]। आकाश ही शब्द तत्व है और शब्द ब्रह्म ही अर्थ है[4]।" अपनी इस मान्यता के अनुरूप ही उन्होंने काव्य को शब्दमय कहा है। --" काव्य शब्दमय है। शब्द का आकाश से सम्बन्ध है। यह सबसे सूक्ष्म तत्व है। शब्द का परिष्कार आकाश का साफ होना है -- यह आकाश मन का आकाश है। प्रकृति में भी वह सबसे सूक्ष्म है। शब्दों का ही समन्वय भिन्न-भिन्न अर्थों से काव्य में होता है। जब यह निर्दोष होता है, तब पढ़ा भी अच्छी तरह जा सकता है, और अपर हृदयों पर इसका प्रभाव भी यथेप्सित पड़ता है।

१-साप्ताहिक हिन्दुस्तान, निराला स्मृति-अंक, ११ फरवरी १९६२ 'गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' का लेख 'निराला जी से मेरा परिचय', पृ० ३३। 'कवि' पत्रिका, वर्ष ३ अंक ११-१२ में छपे 'निराला' के 'कवि और कविता' लेख से उद्धृत।
२-माधुरी, १८ अगस्त १९२३, वे 'तुलसीकृत रामायण का आदर्श, पृ० ४६
३-चयन, पृ० १६
४-संग्रह, पृ० १००

संसार की प्रकृति को आनन्द देने का यही और यही कुंजी है । 'इ-ण-न-ठ' वाले यहीं से च्युत हैं[१] ।'

तमाम शब्द चिन्ता का केन्द्रस्थल, 'निराला' शून्य को मानते हैं, भावनाओं को आप शब्द-रचना द्वारा, एक-एक विशिष्ट अर्थ तथा चित्र द्वारा परिस्फुट मानते हैं । अर्थ शब्दों द्वारा, शब्द वर्णों द्वारा । शाश्वत नाद-सृष्टि की महत्ता का आकलन करते हुए 'निराला' ने नाद सृष्टि को शाश्वत कहकर समस्त शब्दों का मूल कारण 'और समस्त वर्णों का सम्मिलित व दृश्य रूप भी ध्वनिमय ओंकार कहा है[२] । इसी अशब्द संगीत से स्वर सप्तकों की भी सृष्टि हुई है समस्त विश्व स्वर का ही पुंजीभूत रूप है, अलग-अलग व्यष्टि में स्वर-विशेष व्यक्ति या मौन । स्वर संगीत स्वयं आनन्द है । आनन्द ही उसकी उत्पत्ति, स्थिति और परिसमाप्ति है[३] । वर्णों का चमत्कार ही यही है कि 'एक एक शब्द बंधा ध्वनिमय साकार[४]'

काव्य प्रेरणा में भाषा अथवा काव्य की सत्ता मानने के कारण ही 'निराला' जी ने रचना-सौष्ठव एवं रचनात्मिका शक्ति के महत्त्व की अवहेलना नहीं माना है । उनका विचार है -- साहित्य का जीवन उसकी रचनात्मिका शक्ति है । नवीन रक्त-संचार की तरह नए-नए विचारों का निर्गमागम जब साहित्य तथा समाज में होता है, तभी समाज गतिशील और साहित्य जीवित रह सकता है । + + रचना-शक्ति का विकास जब होता है, तब सभी चरित्र-चित्रण में बराबर महत्त्व रखते हैं, प्रेम, ओज, शौर्य, दृश्य, स्थूल, सूक्ष्म, जड़, चेतन जो कुछ भी लेखनी के सामने वर्णित होने के लिए आता है, सम्पूर्णता प्राप्त करता है[५] । जीवन और मृत्यु के समान प्राकृतिक संघर्ष की स्थिति 'निराला' ने प्रत्येक चित्र में स्वीकार की है, जिसका परिणाम कला का उत्कर्ष साधन है । विस्तृत अध्ययन एवं गहन चिन्तन, विषय प्रवेश एवं मौलिक उत्पत्ति तथा रचना-शक्ति के विकास में सहायक होता है, जिसकी आवश्यकता वर्णन की कुशलता की दृष्टि से आप मानते हैं[६] । काव्य-रचना में कवि की शिक्षा और अध्यवसाय की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए वे लिखते हैं--'आकाश से गिरते समय बादल-रूप वर्षा के जल-बिन्दु सभी बराबर हैं, नीचे नालों और छोटी-बड़ी नदियों में स्वभावतः सिमटकर छोटी और बड़ी व्याख्या प्राप्त

१-माधुरी, फरवरी, १९३८, 'नवीन कवि' प्रलाप, पृ०९५-९८
२- प्रबन्ध पद्म, पृ० ९६
३- गीतिका, भूमिका, पृ०७, प्रबन्ध पद्म, पृ०११६(१५६)
४- ,, पृ०६२
५- सुधा, १६ दिसम्बर १९३३, 'रचना-रूप', पृ०३०६-३१०
६- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०८३

करते हैं। शिक्षा और अध्यवसाय का जितना प्रशस्त मार्ग निर्मित होगा, उतनी ही ग्राहिका शक्ति बढ़ेगी- उतने ही बिन्दु सिमट कर एक पथ से प्रवाहित होंगे --कवि उतना ही बड़ा कहा जायेगा[1]।"

अभ्युत्थान का मूल मंत्र "निराला" की ज्योति के संस्पर्श से अनुप्राणित ओजस्विता में उपलब्ध हुआ है। इसीलिए हृदय धर्म के साथ मस्तिष्क धर्म की अनिवार्यता तथा साहित्यिक पौरुष की आवश्यकता का विधान उन्होंने किया है[2]। उनका विचार है, "भाषा को उठाने के लिए ओजस्विता पहले आवश्यक है। कविता का वह रूप सबसे मनोहर कहलाता है, जिसमें वज्र की गर्जना और ज्योति दोनों मिली हुई होती है। छोटी-छोटी ध्वनियों के रूप मन पर स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ते।(मेरा मतलब काव्य-विचार वाली ध्वनि नहीं)[3]।"
सार्थक संघर्ष की महत्ता को व्याख्यायित करते हुए इसीलिए उन्होंने लिखा :
"जो संघर्ष मनुष्य जीवन की सार्थकता है, वह जीवन-जीवन को यहाँ सार्थक करेगा, मर्म समझाता हुआ, कर्म में प्रेरित करता हुआ, जड़ और चेतन के विज्ञान-धर्म में मिलाता हुआ, पतन से उठाता हुआ, सच्चाई विकसित रूप और भावों में मिलाकर असीम सत्ता में अवसित करता हुआ[4]।" वीर के लिए शृंगार और शृंगार के लिए वीर की आवश्यकता का इसी दृष्टि से "निराला" ने विधान किया है, कारण इनमें से एक न रहा तो दूसरा रह ही नहीं सकता। यही रहस्य है और यही सत्य है। वीर्य की आवश्यकता क्यों है? भोग के लिए -- चाहे राज्यभोग हो या अन्य भोग। इसी तरह भोग या भुंजन के बिना वीर्य भी नहीं बढ़ सकता[5]।"

काव्य की प्रेरणा में शक्तिगत प्रवेग को स्वीकार करने पर भी काव्य में भावों की उच्चता, सच्चे भावों की अभिव्यंजना "निराला" का अभीष्ट था। इसके लिए उन्होंने भाषा को भावानुगामिनी मानकर उसके भावगत प्रयोग का आदेश

१- सुधा, मई १९३५, "निशीथिनी", पृ० ३६४

२- परिमल, भूमिका, पृ० १०-१२

३- सुधा, जून १९३५, "शुक्लफल", पृ० ४५६

४- माधुरी, अगस्त १९३५, "स्वकीया" पृ० ११५

५- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० २३२

किया है[1]। उनका विचार है,-- " काव्य कला से कहीं बढ़कर उसके वे भाव हैं, जिनका जीवन के साथ, निम्नतम आदर्श से ऊपर सर्वोच्च सीमा तक घनिष्ठ सम्बन्ध है[2]।" काव्य को वे मानस-मन की श्रेष्ठ रचना कहते हैं, जो विचार की ऊँची दृष्टि से उसकी निष्कलुषता, तक पहुँचकर इन्द्र धनुष से संयुक्त हो ज्ञानी की स्थिति तक पहुँचाता है[3]। व्यापक साहित्य वही है, जहाँ मनुष्य मन का आदान प्रदान है[4]। लेखक जब भाव विशेष का पक्ष ग्रहण करता है, तब रचना दुर्बल हो जाती है[5]। इसीलिए साहित्य को जीवित रखने के लिए उसमें अनेक भावों एवं चित्रों का रहना "निराला" आवश्यक मानते हैं।

"निराला" लेखक का उद्देश्य सच्चे भावों की अभिव्यंजना द्वारा साहित्य में जीवन-संचार मानते हैं। उनकी दृष्टि में " लेखक वह विचारक है जिसकी दृष्टि में पाप और पुण्य का बराबर महत्व है। आवश्यक होने पर पुण्यात्मा के मस्तक पर भी लेखक वज्रपात करा सकता है। यह कोई नियम नहीं कि धर्मात्मा बच ही जायेगा। प्रकृति इतिहास द्वारा इन धर्मों का साक्ष्य देती है। जब रचना भाव की तह तक पहुँचती है, तभी उसका रूप स्पष्ट होता है, तभी वह आत्मा, प्राण तथा अवयवों से सजीव होकर साहित्य में जीवन-संचार करती है[6]।" अश्लील में शील कुरूप में सौन्दर्य एवं विकार में निर्विकार की व्यंजना भी सत्य और हृदयहारी वे इसीलिए मानते हैं --" अपना अभिप्राय स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है," मेरा मतलब यही कि असत् जरूरी है। मैं असत् पर जोर नहीं दे रहा। केवल उसका अस्तित्व बतला रहा हूँ कि सत् के नाम का अगर कुछ होगा तो उसके साथ असत् अवश्य होगा। जब तक मनुष्य, मनुष्य है, तब तक वह असत् से बच नहीं सकता, जब वह इस विचार में है तक वह ठीक-ठीक भाव-प्रदर्शन कर सकता है। इस विषय पर मैंने बहुत लिखा है। इसके

१- प्रबन्ध पद्म, पृ० २६
२- माधुरी, वर्ष १८ अगस्त, १९२३, वे तुलसीकृत रामायण का आदर्श, पृ०५१
३- चाबुक, पृ०४५
४- ,, पृ० ५४
५- "सुधा" १६ सितम्बर १९३३, "रचना रूप", पृ०३१०
६- ,, १६ सितम्बर १९३३ "रचना-रूप", पृ०३१०

मानी यह नहीं कि इससे साहित्य का पतन होता है। कहीं,यही वह भूमि है, जहाँ से व्यक्ति और समाज का उत्थान अपेक्षित है । जो लोग आदर्श-आदर्श चिल्लाते हैं; वे आदर्श का मतलब नहीं समझते । आइडिया(Idea) किसे कहते हैं,उन्हें नहीं मालूम रामायण और महाभारत को प्रमाण में पेश करने वाले नहीं जानते, उनमें आदर्शवाद नहीं (जैसा वे समझते हैं), वे आर्य-आइडिया-वेदान्त- के रूपक हैं । जहाँ चित्रण है,वहाँ मनुष्य-चित्रण ही है । राम में भी दोष दिखाया गया है और सीता में भी ।"[1]

उपदेश को 'निराला' कवि की कमजोरी मानते हैं और उपदेश करते हुए कवि की कविता की दृष्टि से उन्होंने पतित कहा है । उनके मतानुसार ठीक-ठीक चित्रण होने पर उपदेश स्वयं उसके भीतर छिपे रहते हैं और कला का विकसित रूप स्वयं उपदेश बन जाता है । उन्होंने स्वयं सूक्तियाँ--उपदेश बहुत कम प्रायः नहीं लिखे हैं, केवल चित्रण किया है[2] । विषय की स्पष्टता की दृष्टि से उनका ढंग सीधा है,उन्हें आवेश नहीं[3] । कवित्व,उपदेश और भारतीयता का आर्य-महर्षियों का आदर्श और वेद-शास्त्रों का पथ प्रदर्शन उनका अभीष्ट है[4] ।

सीमा के संकोच बन्धनों की स्वीकृति-अस्वीकृति मानवीय पक्षों के एकदेशीय एवं व्यापक पक्षों का विधान करती है[5], इसीलिए कवि में तटस्थता एवं तन्मयता की सह-स्थिति को 'निराला' ने स्वीकार किया है[6] । यद्यपि कवि के ससीम-असीम, एकदेशीय और व्यापक भावों को वे कल्याण की भावना से युक्त मानते हैं--कहीं उनकी विचित्रता,सौन्दर्य और अनूठापन भी है[7] । तथापि सीमा में रहकर ही अपने स्वर और प्रकाश को असीम सौन्दर्य से मिलाने की कला ही उन्हें प्रिय है[8] ।कुछ की दृष्टि अथवा दर्शन के सत्य की और विराट चित्रों की सहज स्थिति भी इसीलिए उन्होंने स्वीकार की है,जिसकी अनिवार्यता कला की पूर्णता की दृष्टि से सिद्ध है । रूप और अरूप के युग्म द्वारा मुक्तक की रीति का ध्यान करता हुआ कवि भाव की विभूति से सुशोभित होता है । रूप और अरूप का सम्मिलन ही काव्य और सृष्टि का भी मूलभूत कारण है[9] ।

१- माधुरी,अगस्त १९३५,'रवीन्द्र कविता' ,पृ०११०
२- संग्रह,पृ० १०८,प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०११०-१११
३- प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०२०५
४- रवीन्द्र-कविता-कानन,पृ०५३
५- चयन,पृ०६५
६- प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०२०६
७- रवीन्द्र-कविता-कानन,पृ०८३
८- ,, ,, पृ०१५२-१५३
९- गीतिका,पृ०७०, गीतिका,पृ० कौन तम के पार, रे कह।
अखिल पल के स्रोत,
जल जग
गगन-घन-घन-धार।।

अभाव में--शून्य रूप को उन्होंने ब्रह्म कहा है, जहाँ रूप की परिणति पूर्णता में होती है। दर्शन-शास्त्र के अनुसार[1] जो पूर्ण परिणति की ऊर्ध्वगति तथा साहित्य शास्त्र के अनुसार विकास कहा जाता है[2],और 'बदनामनुष्य की आस्था के भास्वर हैं'[3]। ब्रह्म ही हर सृष्टि के मूल में दृष्टिगोचर होता है ,अतः कवि मनीषी परिभूः स्वयम्भू के अनुरूप कवि को भी ब्रह्म कहते हैं[3]। मानवीय स्तर पर उसकी व्याख्या कर ब्रह्म का मतलब समझाते हुए वे कहते हैं- 'ब्रह्म का मतलब सिर्फ बड़ा है 'जिससे बड़ा और नहीं । किसी वस्तु को ब्रह्म देखने के अर्थ है, उसके भौतिक रूप में ही नहीं-- सूक्ष्मतम आध्यात्मिक,दार्शनिक,पृथुतर रूप में भी देखने वाले की दृष्टि प्रसरित है । + + यही दृष्टि जरूरी है । यही दृष्टि पतित का सार्वभौम सुधार कर सकती है । गुलाम की बेड़ियाँ काट सकती है ।हिन्दू-मुस्लिम को मिला सकती है-यह निगाह आज तक की तमाम रूढ़ियों से सुजुदा है । इस निगाह में भिन्न मतों का अंग नहीं --जो अंग इधर लगा है, जो मत इधर चले हैं,यह निगाह पूरब और पश्चिम को अच्छी तरह पहचानती है, यह निगाह ब्राह्मण और शूद्र नहीं मानती[4]।'

सौन्दर्य की प्रतिमा उर्वशी के भाव को ही काव्य में 'निराला' ने प्रमुखता प्रदान की है, परन्तु भाव की शुद्धता की दृष्टि से सारस्वत-भाव भी इसी में उन्होंने समाहित कर दिया है । कला ही कवि की प्रेयसी और आराध्य देवी है, उसके प्रति कवि की दृष्टि जैसी होगी, वही साहित्य में भी प्रतिफलित होगा,इसलिए कला के विकास मार्ग का ध्यान कवि को रखना पड़ता है[5]। विष्णु की शक्ति लक्ष्मी को वे दिव्य भाव एवं ऐश्वर्य समन्वित मानते हैं, जो नारी भाव की महिमा की व्यंजक है,और जिसका विकास उसकी पूर्णता अर्थात् मातृत्व में है[6]। क्योंकि दर्शनों से महर्षियों द्वारा विश्व को दिया सत्य अमर और अजेय है[7]। इसी दृष्टि से 'निराला' विचार को साहित्य का ज्ञान काण्ड कहते हैं,और ज्ञान कर्म की ही[8] परिणति है,जिसे छोड़ा नहीं जा सकता,क्योंकि वह सत्य है, सापेक्ष्य नहीं,अखण्ड सत्य । दिव्य भावों को ही वे अनन्त को धारण करने की शक्ति से परिपूर्ण मानते हैं,जिनमें जातीयता के विकास का यथार्थ मार्ग और आदर्श कला दोनों प्रदर्शित होते हैं । जातीय जीवन तथा अनन्त को धारण करने का मूल आधार ब्रह्म ज्ञान अथवा वेदान्त है,जिसका सृष्टि तत्व बतलाता है कि सृष्टि का विकास ज्ञान से ही हुआ है[9]।

कला की पूर्णता एवं उसकी आदर्श प्रतिष्ठा के लिए तथा सत्य की अखण्ड व्यंजना के लिए 'निराला' ने दर्शन और कल्पना के सत्य का एकान्वित का निर्देश[10] किया है और कुंठित भाव के साथ अनमेल शब्दों का संयोग आवश्यक माना है । काव्य में कला रूप से मानव-मन के जो चित्र रहते हैं,वही दर्शन रूप से[11] सनातन सत्य की पुष्टि करते हैं तथा शब्द रूप से प्राणों की प्रतिष्ठा करते हैं । यह

परिमल पृष्ठ ७४ (पिछले पृष्ठ की टिप्पणी सं०६ का अवशिष्ट भाग)

दृष्टि अरूप,रूप
लोचन युग,
बाँध,बाँध कवि,
बाँध पलक भुज,
शून्य साकार,
तेज भूरुज,
घन कर बने बंधन ।।'

"केन्द्र को वामिलै
एक ही तत्व के
सृष्टि के कारण वे
कविता के काम-बीज'। अनामिका पृष्ठ ७७.

१-प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०२२७। , २- माधुरी,अगस्त१६३५, 'एकाया' ,पृ०९९०।,३- प्रबन्ध पद्म, पृ०१६२,६६-६५।४प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०३१ ।,५- प्रबन्ध पद्म,पृ०९७२।, ६- चाबुक,पृ०६१-६७
७- प्रबन्ध पद्म,पृ०६४ । ८- प्रबन्ध प्रतिमा,भूमिका । , ६- प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०९०७ ।,
१०-रवीन्द्र-कविता-कानन,पृ०८०,६०,९४३ ।
११- ,, ,, पृ० ८२

'निराला' का विचार था । कला की पूर्णता के लिए रस, अलंकार और ध्वनि तीनों के समन्वित रूप की स्वीकृति उन्होंने दी है[1]। कला का परिणाम और काव्य का लक्ष्य अच्छा निष्कर्ष उनके विचारानुरूप यह है कि काव्य के भीतर से अपने जीवन के सुख दुःखमय चित्रों को प्रदर्शित कर पूर्णता में उसकी परिसमाप्ति हो[2]। उन्होंने लिखा : 'साहित्यिक के प्रधान साधन हैं सत् चित और आनन्द । उसका लक्ष्य है अमित, शान्ति और प्रिय पर । उसकी व्यक्तिगत उन्नति स्फूर्ति से व्यक्ति के साथ समष्टि के भीतर से आप निकलती है[3]।'

सुषुप्ति से जागरण के क्रम-परिणाम द्वारा परिणति की वे उत्कृष्ट कला का तथा काव्य में उतारी 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के तत्वार्थ का उदाहरण उसी दृष्टि से कहते हैं ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में 'निराला' के काव्य की मूल प्रेरणा एवं अन्य प्रेरणा स्रोतों के अध्ययन में ऊपर आलोचकों एवं मान्यताओं की अपेक्षा काव्य अथवा साहित्य के सम्बन्ध में स्वयं 'निराला' की विचारधारा के प्रकाश में उनके साहित्य को देखने एवं समझने का प्रयास प्रमुख है । विषय-वस्तु को लेकर किए गए 'निराला' साहित्य की प्रेरणाओं के इस अध्ययन में 'निराला' के जीवन और व्यक्तित्व के परिचय की उपादेयता इस दृष्टि से है कि व्यक्तित्व ही उनकी मूल आन्तरिक प्रेरणा है, जिसका सम्बन्ध उनकी पारिवारिक और सामाजिक स्थिति से है । यह 'निराला' ने स्वयं स्वीकार किया है कि अपनी कृतियों में उन्होंने अपना जीवन-सत्य लिख दिया है[4] । अतएव उनके काव्य का अध्ययन करने पर उनके जीवन एवं व्यक्तित्व की अन्य विशेषताओं के साथ उनकी विशिष्टता उनके विद्रोही दृष्टिकोण का परिचय भी हमें मिलता है । उनके जीवन में भी हम देखते हैं कि जो वस्तु उन्हें प्रेरणा देती है, उसका विरोधी तत्व भी समान रूप से उनके लिए प्रेरणाप्रद होता है ।

विषय-वस्तु को लेकर 'निराला' के प्रेरणा स्रोतों का अध्ययन करते समय अगले अध्यायों में, जीवन-परिचय के उपरान्त, उनके सांस्कृतिक

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०२०१-२, २२५, २२७
२- प्रबन्ध पद्म, पृ०८४-८५
३- ,, पृ० ७७
४- साहित्य परिक्रमा, १९५० : डा० रिमगोपाल मिश्र का संस्मरण ।

सामाजिक एवं राजनीतिक तथा जीवनपरक प्रेरणा के इन विविध स्रोतों पर विचार किया गया है, साथ ही यह देखने का प्रयास भी किया गया है कि इन सभी क्षेत्रों में 'निराला' का विद्रोही दृष्टिकोण मूल प्रेरणा के साथ कैसे जुड़ा हुआ है। सांस्कृतिक प्रेरणा स्रोतों के अन्तर्गत श्री रामकृष्ण विवेकानन्द की विचारधारा, रवीन्द्रनाथ और बंगला कविता तथा तुलसीदास हिन्दी और संस्कृत की काव्य-परम्परा पर विचार किया गया है। उसके उपरान्त राष्ट्रीय आन्दोलन, गांधीवाद और समाजवाद के अन्तर्गत समाज एवं राजनीति से सम्बद्ध प्रेरणाओं का अध्ययन है, जो 'निराला' के कथा-साहित्य और परवर्ती काव्य की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। विरोधी आलोचना का समावेश दूसरों द्वारा उत्पन्न की गयी प्रेरणा के अन्तर्गत होता है। इसकी गणना, जीवन से सम्बद्ध प्रेरणा-स्रोत में इस दृष्टि से की जा सकती है कि इसका सम्बन्ध उनके जीवन-संघर्ष से है। 'निराला' का व्यक्तित्व तो उनकी मूल आन्तरिक होने के कारण विशिष्ट अध्ययन की अपेक्षा रखता ही है। प्रेरणा का यह मौलिक स्रोत भी जीवन से प्राप्त प्रेरणाओं में ही गणीय है, क्योंकि व्यक्तित्व के निर्माण में उनकी पारिवारिक स्थिति का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। उनकी विद्रोही दृष्टि का भी इससे घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि विद्रोह की आंशिक प्रेरणा भी 'निराला' को परिवार से ही मिली थी।

विषय-वस्तु को लेकर प्रेरणा-स्रोतों का अध्ययन करने के कारण ही 'निराला' की कला पर यद्यपि एक अतिरिक्त अध्याय की संयोजना नहीं की गयी है, तथापि उनके मुक्त छंद पर विचार अन्तिम अध्याय में किया गया है, जहाँ 'निराला' के विद्रोही दृष्टिकोण का समाहार किया गया है। उर्दू साहित्य से प्राप्त प्रेरणाओं, जिनका स्पष्ट परिचय 'बेला' की रचनाओं में प्राप्त होता है, पर भी अलग से विचार न करने का यही कारण है। इसके अतिरिक्त प्रेरणा का यह स्रोत सीमित भी था।

प्रस्तुत अध्ययन के सन्दर्भ में दूसरा प्रमुख एवं उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यह अध्ययन में 'निराला' के विकास-क्रम को दृष्टि में रखकर किया गया है। यही कारण है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में 'निराला' के काव्य और कथा-साहित्य का अलग-अलग विवेचन न होकर उनके सृजन एवं प्रकाशन-काल

के अनुसार हुआ है । प्रस्तुत अध्ययन में `निराला` और उनके साहित्य पर प्रकाशित समस्त सामग्री के अवलोकन का प्रयास रहा है । डा० रामविलास शर्मा की `निराला` और `निराला की साहित्य-साधना`(जीवनी खण्ड), आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की `कवि निराला`, डा० रामरतन भटनागर की `निराला और नवजागरण` तथा श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय की `महाप्राण निराला` पुस्तकें प्रकाशित सामग्री में महत्वपूर्ण हैं । श्री धनन्जय वर्मा एवं श्री जयनाथ `नलिन` की पुस्तकें भी उल्लेखनीय हैं । श्री जानकी वल्लभ शास्त्री की सम्पादित `महाकवि निराला` एवं उनके द्वारा प्रकाशित निराला के पत्र भी विशेषतः उल्लेख योग्य हैं । जीवन-वृत्त की दृष्टि से डा० शर्मा की `निराला की साहित्य-साधना` के अतिरिक्त `निराला` पर प्रकाशित अनेकानेक संस्मरण विशेष प से सहायक सिद्ध हुए हैं ।

स्वयं `निराला` के साहित्य में प्रकाशित सामग्री के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं में जो उनकी अनेक रचनाएं बिखरी पड़ी हैं और जिनका संकलन अद्यावधि नहीं हुआ है, उनका भी उपयोग यथास्थान किया गया है । इसके लिए विविध पत्र-पत्रिकाओं की फाइलों का अध्ययन -अवलोकन नागरी प्रचारिणी सभा, साहित्य-सम्मेलन, लीडर प्रेस तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में किया गया है ।

अध्ययन अथवा सामग्री संचयन के क इस क्रम में `निराला` की प्रकाशित कुछ पुस्तकें अनुपलब्ध होने के कारण उनके लिए सहायक स्रोतों (Secondary Sources) का आश्रय लेना पड़ा है, यद्यपि ऐसी रचनाएं संख्या में बहुत अधिक नहीं हैं । पापुलर ट्रेडिंग कम्पनी से प्रकाशित महाराणा प्रताप, भीष्म, ध्रुव प्रह्लाद आदि जीवनियां एवं बंकिम के निरालाकृत अनुवाद इनमें आते हैं । जीवनियों सम्बन्धी सूचना के लिए श्री गंगाधर मिश्र की `युगाराध्य निराला` की सहायता ली गयी है । इसी प्रकार बंगाल के अकाल पर `निराला` की `दो दाने` कहानी, `मतवाला` में प्रकाशित `शकुन्तला` नाटक तथा `रस अलंकार` पुस्तक भी सर्वथा सुलभ नहीं रही है ।

प्रस्थमिक

उपर्युक्त उल्लिखित अनुपलब्ध सामग्री के अतिरिक्त अन्यत्र

प्राथमिक स्रोतों (Primary Sources) का भी आधार ग्रहण किया गया है और अध्ययन की अवधि में प्राप्त सभी प्रकार की सामग्री का उपयोग शोध-प्रबन्ध में यथास्थान किया गया है। इस प्रकार उपलब्ध समग्र सामग्री के उपयोग से अध्ययन को सर्वांगीण बनाने का प्रयास रहा है।

-0-

प्रथम अध्याय

-0-

'निराला' का जीवन-वृत्त एवं रचनाएं

प्रथम अध्याय

-o-

'निराला' का जीवन-वृत्त एवं रचनाएं

'साहित्यकार के जीवन का विश्लेषण उसके साहित्य के मूल्यांकन से कठिन है'[1] इसमें सन्देह नहीं, और यह भी सच है कि काव्य से अधिक कठिन कवि के व्यक्तित्व का विश्लेषण है, जिसका अध्ययन उसके[2] वातावरण, परिवार और सामाजिक परिवेश से ही आरम्भ हो सकता है। किसी भी साहित्यकार की कृति अथवा व्यक्तित्व का अध्ययन करते समय उसका जीवन-परिचय जानने की आवश्यकता इसीलिए अनिवार्य है। 'निराला' के जीवन को कथाकार अमृतलाल नागर महान औपन्यासिक 'हीरो' से कम नाटकीय नहीं मानते। डा० शिवगोपाल मिश्र ने जीवन-चरित लिखने के सम्बन्ध में जब 'निराला' से प्रश्न किया, उन्होंने कहा था कि अपनी कृतियों में वे जीवन सत्य लिख चुके हैं[3]। इस जीवन सत्य के साथ 'निराला' के जीवन की केवल कुछ ही घटनाओं का परिचय हमें उनकी कृतियों में प्राप्त होता है।

'निराला' का जन्म मेदिनीपुर के महिषादल राज्य में हुआ था, यह सर्वमान्य है। कलकत्ता से प्रकाशित 'निराला अभिनन्दन ग्रन्थ' के सम्पादकीय में श्री बरुआ ने इस बात का उल्लेख किया है कि 'निराला' का जन्म महिषादल

१-पथ के साथी , पृ० ६५ : महादेवी वर्मा

२- निराला : काव्य और व्यक्तित्व ,पृ० ३६ : धनन्जय वर्मा

३- साहित्य पत्रिका, १९५४, डा० शिवगोपाल मिश्र द्वारा लिखित संस्मरण ।

राजबाड़ी के एक कोने में उपस्थित एक कोठरीनुमा फोपड़ी में हुआ था।[1] "निराला" की जन्मतिथि के सम्बन्ध में अभी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। संवत् १६५३ और १६५५ तिथियाँ विभिन्न विद्वानों ने स्वीकार की हैं। बाबू श्यामसुन्दरदास ने "हिन्दी के निर्माता-२" पुस्तक में माघ शुक्ला ११ संवत् १६५३ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी "कवि निराला" में माघ शुक्ल एकादशी संवत् १६५३ तदनुसार जनवरी १८६७ तिथि स्वीकार की है। "नए भारत के नए नेता" में राहुल जी ने तथा साप्ताहिक हिन्दुस्तान के "निराला" अंक में डा० शिवगोपाल मिश्र ने १८६६ ई० की वसन्त पंचमी को "निराला" की जन्म तिथि माना है। डा० शिवगोपाल मिश्र ने यह भी स्वीकार किया है कि वसन्त पंचमी को जन्मतिथि मानने का आधार समझ में नहीं आता, यद्यपि "निराला" स्वयं इस तिथि की मान्यता प्रदान करते थे और यह भी कहा करते थे यह उनका नहीं, सरस्वती पूजन का दिन है। उन्होंने इस बात का भी उल्लेख किया है कि "निराला" अपनी स्मृति से जन्मतिथि १८६६ के आस पास ही बताते थे। आचार्य वाजपेयी ने इस तथ्य का संकेत किया है कि मानसिक स्थिति डाँवा डोल हो जाने पर कवि ने वसन्त पंचमी तिथि की मान्यता दी। जनवरी १८६७ तिथि स्वीकार करने का आधार उन्होंने नहीं बताया है।

"निराला" जी के पुत्र श्री रामकृष्ण त्रिपाठी ने भी उनका संक्षिप्त परिचय देते हुए १८६६ जन्मतिथि का उल्लेख किया है।[2] "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" के "निराला" अंक में(पृ०३६) पर उन्होंने १८६०ई० को सर्वविदित कहकर, रविवार के दिन उनके जन्म होने की बात लिखी है और इस बात का उल्लेख भी किया है कि

१- महाकवि श्री निराला अभिनन्दन ग्रंथ, संपादक, श्री बच्चन। संपादकीय पृष्ठ १०।। "जन्म के समय ही आपकी माता का देहान्त हो गया, तो उसी समय आपको राजबाड़ी के पिछवाड़े एक झोंपड़ी के पास रखा गया। और इस के बाद आपको मातृ-विहीन अवस्था में एक तीसरी झोंपड़ी में पालन-पोषण किया गया।"

२- अन्तर्वेद, वसंतपंचमी, १६६२,पृ० १२

प्रामाणिक तिथि महिषादल के हाईस्कूल से मिल सकती है । १८६० सम्भवत: टाइप की त्रुटि है, क्योंकि लेख में आगे जिन घटनाओं और तिथियों का उल्लेख है, उनसे १८९६ ई० तिथि ही की पुष्टि होती है । "कला की रूपरेखा" में सन् ३६ में अपनी आयु ४० वर्ष और सन् ३८ में लिखे "कुल्ली भाट" में आयु ४२ साल[1] लिखना भी १८९६ ई० तिथि का ही प्रमाण प्रस्तुत करता है ।

"कविता कौमुदी" में पं० रामनरेश त्रिपाठी ने "निराला" की जन्मतिथि[2] माघ सुदी ११ संवत् १९५५ दी है, जो स्वयं "निराला" ने उनको लिखकर भेजी थी । डा० रामविलास शर्मा ने भी "निराला की साहित्य साधना" के जीवनी खण्ड में इसी तिथि तदनुसार २१ फरवरी १८९९ मंगलवार को स्वीकार किया है । नवम्बर ६२ की "कादम्बिनी" पत्रिका (पृ०१०) में भी "निराला" के प्रकाशित चित्र के नीचे जन्मतिथि "माघ शुक्ल एकादशी संवत् १९५५ (२० फरवरी १८९९) ही दी गयी है। इस तिथि के प्रमाण में डा० रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक में १९ फरवरी २१ को २२ वर्ष की उम्र में "निराला" के आचार्य द्विवेदी को पत्र लिखने और सन् ३३ में मिश्रबन्धुओं का जन्म संवत् १९५५ बताने की घटनाओं का भी उल्लेख किया है[3] । श्री रामनरेश त्रिपाठी का आधार अधिक विश्वसनीय है, क्योंकि "निराला" ने संवत् १९५५ की तिथि स्वयं लिखकर उन्हें भेजी थी ।

"निराला" के पितामह डाकखाना पमियानी, मौजा गढ़ा कोला जिला उन्नाव[4] के थे । पं० शिवाधार त्रिपाठी (सुधारी) के चार पुत्र थे, श्री गयादीन, जोधाप्रसाद, रामसहाय और रामलाल । इन चारों भाइयों का यज्ञोपवीत और विवाह आदि उनके पिता ने ही किया था, जिनकी पारिवारिक स्थिति उस समय काफी सम्पन्न थी[5] । पं० गयादीन के दो कन्याएं थीं, जोधाप्रसाद के पुत्र बदलूप्रसाद थे और पं० रामसहाय के एकमात्र पुत्र सूर्यकुमार थे । पं० रामलाल के कोई सन्तान न थी ।

१- सुकुल की बीवी, पृ० ६५, कुल्ली भाट, पृ० ३५

२- त्रिलोचन जी की सूचना के आधार पर

३- निराला की साहित्य साधना, पृ० ४६५

४- चतुरी चमार, पृ०५, अन्तरवेद, बसन्त पंचमी, १९६२, पृ० १२, रामकृष्ण त्रिपाठी का लेख

५- कवि निराला, पृ० २१५, पितामह का नाम शिवधारी त्रिपाठी दिया है, वाजपेयी जी ने ।

पं०रामसहाय और रामलाल ने बंगाल के पुलिस विभाग में नौकरी की थी । महिषादल के दौरे पर गवर्नर के आने पर इन दोनों को भी वहाँ जाना पड़ा था, वहाँ महिषादल के राजा ने इन दोनों को स्टेट की सेवा के लिए छोड़ देने का अनुरोध गवर्नर से किया था । गवर्नर ने उनका स्थानान्तरण किया तो परन्तु उनको वे सुविधाएं देने को कहा जो अंग्रेजी राज्य की नौकरी करने पर मिलती थी । महिषादल से गढ़ाकोला आने पर भी इन दोनों भाइयों को इसीलिए पेन्शन मिलती रही । सेवा मुक्त होने पर पं०रामसहाय राज्य-कोष के संरक्षक थे और उनपर राजा साहब की विशेष कृपा थी[1]। दोनों बड़े भाई गयादीन और योधा का घर का काम देखा करते थे । इस प्रकार पं० शिवाधार की मृत्यु के बाद चारों भाइयों का परिवार सम्मिलित था और उनमें परस्पर सौहार्दभाव भी बना हुआ था ।

'निराला' के परिवार का सम्बन्ध कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की निम्न जातियों भी बताया जाता है । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी से प्राप्त सूचना के आधार पर श्री धनन्जय वर्मा ने कान्यकुब्जों के तीन स्तर --षट्कुल, पंचादर और धाकर का उल्लेख ~~किया है~~ कर लिखा है --' 'निराला' को लोग धाकर कहते थे और वे यही समझे जाते थे[2]। 'अन्तर्वेद' पत्रिका के सम्पादक ने 'आज' तथा धर्मयुग में प्रकाशित लेखों में निराला को धाकर कनौजिया कहने और 'साहित्य सन्देश' में तो धाकर का अर्थ भी स्पष्ट कर देने का उल्लेख कर इन प्रयासों के युक्तियुक्त न होने का उल्लेख किया है । श्री रामकृष्ण त्रिपाठी ने भी 'निराला' अकुलीन, धाकर आदि उपाधियों से विभूषित किए जाने का उल्लेख कर 'कान्य कुब्ज' पत्र में सन् ३५-३६ में लिखे निराला के लेख की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, जिसमें उन्होंने यह दिखाया था कि बिस्वा में कान्यकुब्ज मर्यादा कब से बंधी और बीस बिस्वा वाले कनौजिया निम्नस्तर से उच्च स्तर पर कैसे पहुँचे धक्कार शब्द कब से और किस अर्थ में प्रचलित हुआ । शासक यवनों के सम्पर्क से अकुलीन कुलीन और कुलीन धाकर हो गये थे, क्योंकि यवनों के सम्पर्क से मिले कुलीनता

१- सम्मेलन पत्रिका, 'श्रद्धांजलि' अंक, पृ०५१७, साप्ताहिक हिन्दुस्तान निराला अंक, पृ०३६ श्री रामकृष्ण त्रिपाठी का लेख ।

२- निराला : काव्य और व्यक्तित्व, पृ०४५: धनन्जय वर्मा

की उन्होंने मान्यता नहीं दी । उनके साथ खान-पान के लिए उन्होंने धनुकार बताई, इसी कारण से उन्हें धाकर की उपाधि मिली थी[1]।"

"निराला" अपने पिता की दूसरी पत्नी से उत्पन्न इकलौते पुत्र थे, यह उन्होंने स्वयं लिखा है[2]। राहुल जी ने लिखा है कि सहसौल रंजीत पुरवा, हड़हा(उन्नाव) के पास "निराला" की माँ का नैहर था । पं० रामसहाय की पहली स्त्री रुक्मिणी के मरने के बाद उन्होंने दो सौ ढाई सौ में लड़की खरीद कर फिर शादी की थी । उनके ससुराल वालों की उनसे कुछ पाने की आशा पूरी न होने के कारण जो हत्या मच्चा, उसके फलस्वरूप पं० रामसहाय ने ससुराल से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखा है[3]। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने "निराला" की माँ का ही नाम रुक्मिणी देवी कहा है, जो दुबे वंश की थी और उनका पितृगृह फतेहपुर जिले में कांटपुर देव नामक गाँव था । वंश और गाँवके सम्बन्ध में "निराला" के पुत्र श्री रामकृष्ण त्रिपाठी आचार्य वाजपेयी के मत से सहमत हैं, परन्तु "निराला" की माँ के नाम का कोई उल्लेख उन्होंने नहीं किया है । ननिहाल में बूढ़ों के मुख से सुने वचनों कि उनकी पितामही अद्वितीय सुन्दरी थीं और उनकी आयु मृत्यु के समय १८-१६ वर्ष की रही होगी, इसका भी उल्लेख उन्होंने किया है[5]।

"निराला" की माँ की मृत्यु किसी शोचनीय घटना से हुई थी । उस समय "निराला" की अवस्था तीन वर्ष की थी । "निराला" के पिता किसी मामले में फंसे थे, परन्तु राजा की कृपा से उपाध्याय से "त्रिपाठी" बनकर निर्लेप बच गए, यह राहुल जी ने लिखा है[6]। "चकल्लस" के भाभी अंक के लिए "वैर का इन्द्रजाल"

१- अन्तर्वेद, वसंत पंचमी, १६६२, पृ० १५

सम्पादक- शिवगोपाल मिश्र और ओमप्रकाश सिंह

२- कुल्ली भाट, पृ० ३४

३- नए भारत के नए नेता, पृ० १३-१४

४- कवि निराला, पृ० २१५

५- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ११ फरवरी ६२, पृ० ३६

६- नए भारत के नए नेता, पृ० १४

लिखते हुए स्वयं निराला ने माँ की मृत्यु के समय अपनी अवस्था ढाई साल लिखी है और यही ठीक भी है। कलकत्ता से प्रकाशित अभिनन्दन ग्रन्थ के संपादक की यह स्थापना कि -- "जन्म के समय ही आपकी माँ का देहान्त हो गया, तो उसी समय आपको राजबाड़ी के पिछवाड़े एक भोंपड़ी में रखा गया और उसके बाद आपकी मातृविहीन अवस्था में एक ताड़ी भोंपड़ी में पालन-पोषण किया गया।"[१] नितांत भ्रामक है। माता की मृत्यु के उपरान्त 'निराला' जी की चाची श्री गयादीन की धर्मपत्नी और मामी श्रीमती नन्दा देवी --बदलूप्रसाद की पत्नी ने उनका पालन-पोषण किया। चाचा तीनों भाइयों की पत्नियों का स्वर्गवास पहले ही हो चुका था और पं० रामलाल को छोड़कर चाचा तीनों भाइयों का स्वर्गवास भी महामारी के पहले ही हो चुका था[२]।

'निराला' का घर का नाम सूर्यकुमार था, यह श्री रामकृष्ण त्रिपाठी, डा० रामविलास शर्मा और आचार्य वाजपेयी तीनों ने स्वीकार किया है। मिशन के बंगाली सन्यासी भी 'निराला' को 'सुरजोकुमार' कहा करते थे। श्री रामकृष्ण त्रिपाठी ने हिन्दुस्तान के 'निराला अंक' में 'निराला' का 'कोचिया बाबू' नाम बंगाल में प्रचलित होने का उल्लेख किया है। डा० बच्चन सिंह ने अवश्य निराला का नाम 'सूर्यप्रसाद' स्वीकार किया है, परन्तु उसका कोई आधार नहीं बताया है। 'निराला' के सूर्यकुमार नाम के पीछे एक घटना का उल्लेख भी मिलता है कि उनका जन्म रविवार को हुआ था, जिस दिन उनकी माँ सूर्य का व्रत रखती थीं, इसलिए उनका नाम सूर्यकुमार पड़ा[३]। आचार्य वाजपेयी के अनुसार 'निराला' ने अपना नाम सूर्यकांत सन् १७-१८ के लगभग किया था, डा० शर्मा ने भी सन् २० के पहले इसी समय नाम बदलने का उल्लेख किया है। श्री विश्वम्भर मानव ने मतवाला के नाम पर 'निराला' उपनाम आने और 'संभवत: ' यहीं उनके सूर्यकुमार से सूर्यकांत होने का जो उल्लेख किया है[४], वह ठीक नहीं है। १ जून २० की प्रभा में 'निराला' की प्रकाशित पहली कविता 'जन्मभूमि (डी०एल०राय का स्वर)' है, इसके 'लेखक श्रीयुत सूर्यकांत त्रिपाठी' हैं। इसी प्रकार अगस्त सन् २० में व लिखा और अक्टूबर सन् २० की

१- सम्पादकीय, पृ० १०

२- कोष निराला, पृ० ४, [illegible] सुधा, कंकण श्रद्धांजलि अंक, पृ० ५२५, ५१८

३- १३-७-६७ का पत्र। ३- (अगले पृष्ठ पर)

[1] सरस्वती में प्रकाशित लेख में भी उनका नाम सुर्यकान्त त्रिपाठी ही दिया हुआ है । 'मतवाला' में आने के पहले 'समन्वय' के प्रथम वर्ष के पांचवें अंक में 'निराला' का जो श्री रामकृष्ण सम्बन्धी लेख छपा, वहां भी नाम यही दिया हुआ है । अतएव मानव जी की सम्भावना निश्चितरूप से भ्रमपूर्ण है

'निराला' जब पांच साल के हुए, तब उन्हें पढ़ने के लिए एक बंगला पाठशाला में भेजा गया । जहां वह तीन चार साल पढ़े । इसके बाद उन्होंने महिषादल हाईस्कूल में अध्ययन किया यहां अंग्रेजी के साथ द्वितीय भाषा के रूप में उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया । १३ सितम्बर१६०७ को आठवीं कक्षा के बी सेक्शन में सुर्जकुमार तेवारी का नाम लिखाया गया था, पिता और गार्जियन नाम में रामसहाय तेवारी लिखा गया[3] ।

'निराला' का प्रारम्भिक जीवन महिषादल और गढ़ाकोल में व्यतीत हुआ । अधिकांश समय उनका महिषादल में ही बीता था, पर गांव भी वे आया करते थे । 'कुल्लीभाट' में 'निराला' ने अपने जीवन की तीन घटनाओं का स्मरण किया है, जिससे उनके विद्रोही और स्वच्छन्द दृष्टिकोण के साथ परिवार की रूढ़िप्रियता और सामाजिक बन्धनों पर आस्था पर भी प्रकाश पड़ता है । पिता द्वारा किए प्रहार का भी उल्लेख उन्होंने इन तीनों प्रसंगों--हाजत रफा करने, राजा को लूटने की मौलिक उद्भावना और जनेऊ के बाद पतुरिया के घर पानी पीने-- में किया है । उन्होंने यहां यह भी लिखा है " मैं भी स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था । चार पांच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते पाते सहनशील भी हो गया था, और प्रहार की हद भी मालूम हो गयी थी[4] ।" इन प्रसंगों से यह भी स्पष्ट है कि वे बचपन से ही आजादी पसन्द थे, दबाव नहीं सह सकते थे, खास तौर से वह दबाव जिसका वजह न मालूम हो । शुरू से ~~महिषादल से ही~~ वे विरोध के साथ चलते रहे हैं[5] । स्पष्ट है कि विद्रोह की आंशिक प्रेरणा उन्हें परिवार से मिली थी । महिषादल की राजबाड़ी और कस्बे की बस्ती को अलग करने वाली बड़ी नहर के तट पर यह स्कूल राज्यबाड़ी की शोभनीय चहारदीवारी से बाहर स्थित था । स्कूल में भी 'निराला' की 'बगावत' का परिचय मिलता है । उनकी टोली में वह। लड़के थे जो मित्र को धर्म से बड़ा मानते हैं, अतः हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान सभी उसमें थे[7] ।

(पिछले पृष्ठ की टिप्पणियां)

२- कवि निराला, पृ० २२६ सम्मेलन पत्रिका का श्रद्धांजलि अंक, पृ०५६५, ५६८ श्री रामकृष्ण त्रिपाठी-का लेख ।

+-- १३-७-६७ का पत्र ।

३- साहित्य सन्देश का निराला अंक, पृ० ४७७ श्री मक्खनलाल शर्मा का लेख 'निराला' काव्य का अध्ययन, पृ० १८-१६ : डा० भगीरथ मिश्र

४- काव्य का देवता : निराला, पृ०१२

१-निराला की साहित्य साधना, पृ०४३ में सरस्वती के दिसम्बर अंक में लेख छपने की बात गलत है । सरस्वती में उस समय कुछ काल के अनन्तर से बंगला और हिन्दी से सम्बन्धित निराला के दो लेख छपे थे, एक अक्टूबर २० के अंक में, दूसरा फरवरी २१ के अंक में ।
२-नए भारत के नए नेता, पृ०१५, राहुल महाप्राण निराला, पृ०४७ : गंगाप्रसाद पाण्डेय ।
३-निराला की साहित्य साधना, पृ०१८, ५६० : डा० रामविलास शर्मा ।
४- कुल्ली भाट, पृ०२६, ३८
५- ,, ,, पृ०२२ । ६- निराला अभिनन्दन ग्रन्थ संपादक बहुआ, संपादकीय, पृ०११
७- सकुल की बीबी, पृ०१३

'निराला' जब आठवीं कक्षा में थे, तभी वे 'इण्डियन एम्पायर' नामक अँग्रेजी पत्रिका के ग्राहक बने और लगभग इसी समय से वे 'सरस्वती' भी पढ़ने लगे थे। आठ साल की आयु में ही उन्होंने बंगला में तुकबंदी प्रारम्भ की और बाद में महिषादल की काव्य गोष्ठियों में उनकी कविताएं पसन्द की जाने लगीं, उनकी ख्याति का प्रसार कलकत्ता तक हो गया। जब वे १३-१४ साल के थे उन्होंने कवित्त सवैये लिखे। एक कवित्त का कुछ अंश उन्होंने 'करि अंग भंग बंग भाषा के समस्त छंद ब्रज अवधी में अब कवित्त हमें लिखने हैं।' भी पाण्डेय को बताया था। १४-१५ वर्ष की आयु में ही उन्होंने संस्कृत पद्य भी लिखे थे। एक पद्य का कुछ अंश था -- 'जड़ो मुखों बाल: पशु मरण कार्येषु निरत:, कृपादृष्ट्या जात: कविकुलशिरोभूषण मणि:।'[1] हाईस्कूल की परीक्षा की चर्चा करते हुए 'निराला' ने स्वयं 'चुकुल की बीबी' कहानी में अपने कवि होने, फलत: पढ़ने की आवश्यकता न रखने, प्रकृति की शोभा देखने और कल्पना में पृथ्वी-अन्तरिक्ष पार करने और परीक्षा में गणित की नीरस कापी को पद्माकर के चुहचुहाते कवित्तों से सरस करने का उल्लेख किया है[2]।

अँग्रेजी का ज्ञान 'निराला' को हरिपद घोषाल से मिला था। उनके छात्र-जीवन में ही परीक्षा में एक प्रश्न आया--' तुम अपने जीवन में क्या बनोगे ? उत्तर में 'निराला' ने निराला बनने, अपने कविता-पाठ करने पर अनुभूतियों की सामूहिक वर्षा होने, जनता के बीच चलने पर लोगों का हृदय मनुष्योचित भावनाओं से आर्द्र होने अपना वरदहस्त उठाने पर राष्ट्रपति के साष्टांग प्रणाम करने और अपने करुणा के अश्रुसिक्त होने पर देवियों का स्नेह प्राप्त होने का उल्लेख किया। यहाँ उन्होंने लिखा -- 'इसलिए भी मैं 'निराला' बनूंगा, क्योंकि देश अभी गरीब है और आर्थिक दयनीयता का बवरण आज के भारतीय साहित्यकारों को सिर्फ देखकर ही नहीं, अनिवार्य है तभी तो जनता का प्रतिनिधि साहित्य स्रष्टा बन सकूंगा[3]।' अपनी प्रारम्भिक कविताओं के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि अल्पबुद्धि से लिखने तो लगे थे, परन्तु बंगला में लिखते थे। ---------- ------

----

१- नए भारत के नए नेता, पृ०१५-१६ , महाप्राण निराला, पृ०४७,४८,५२

२- चुकुल की बीबी, पृ०१४-१६

३- निराला जीवन और साहित्य, बी०एन० कालेज, पटना से प्रकाशित, पृ०८, प्रो०देवनारायण प्रसाद सिंह का लेख, निराला सम्पादक, 'कमलेश', पृ० १८ विश्वम्भर अरुण का लेख

और 'वारुणाणां मनोरथा:' जैसे वे भी उठकर कागज की पंक्तियों में खिलकर अज्ञात हृदय में मिल गयीं। उनका कोई चिन्ह शेष नहीं। 'जनवरी ३१ में पन्त जी को उनके ब्रजभाषा में लिखे पत्र का उत्तर बंगला में देते हुए 'निराला' ने लिखा था कि उन्होंने इसी भाषा में प्रथम कविता लिखी थी, इसीलिए इसी से उनका अभिनन्दन किया है[१]।

अध्ययन के साथ खेलकूद में भी 'निराला' की अभिरुचि थी। हर्डल रेस, कुश्ती और फुटबाल से पैरों में गहरी चोटें आने का उल्लेख उन्होंने स्वयं ही किया है[२]। स्कूल के दिनों में क्रिकेट और हाकी का भी उन्हें अच्छा अभ्यास था। तैरने और बन्दूक चलाने की कला भी उन्हें आती थी। इसके साथ ही गोला और ताश खेलने में भी वे प्रवीण थे, अपने ऊपर किए गए प्रहार को रोकने और पत्थरों अथवा फलों को मालाकार घुमाने में भी उन्हें कुशलता प्राप्त थी[३]।

अपने घर की संस्कृति के अनुरूप 'निराला' बचपन से ही सन्तों की उक्तियों पर भक्ति करते हुए विशेषरूप से ईश्वरानुरक्त हो गए थे। महावीर पर उनकी श्रद्धा असीम थी, राम से अधिक वे उन्हें प्रिय थे, यह उन्होंने स्वयं ही स्वीकार किया है[४]। परिवार की परम्परा के अनुरूप उनका जनेऊ आठ साल की अवस्था में ही हो गया था, जिसके लिए वे पिता के साथ महिषादल से गढ़ाकोला आए थे और उन्हें गुरुमन्त्र भी मिला था जब वे नौ साल के थे[५]। वंश-मर्यादा की रक्षा के लिए इसी प्रकार निराला का विवाह भी बचपन में ही हो गया था[६]। निराला के श्वसुर पं० रामदयाल द्विवेदी रायबरेली जिले के सब डिवीजन डलमऊ के निवासी थे। अपनी पहली पत्नी भागवती परागा देवी के निस्संतान रहने पर उनके विशेष अनुरोध पर पार्वती देवी के साथ उन्होंने दूसरा विवाह किया, 'निराला' की पत्नी मनोहरा देवी उन्हीं की संतान थीं। श्री विश्वम्भर 'अरुण' ने 'निराला' की जीवनरेखा में पं० रामदयाल द्विवेदी को

१-कुल्ली भाट, पृ०७०, गीत गुंज, परिवर्धित संस्करण, पृ०६७-६८।
२-प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०२४
३-महाप्राण निराला, पृ०४८, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, निराला अंक, पृ०३७
४-चतुरी चमार, पृ०५४, ७२, कुल्ली भाट, पृ०८०
५- कुल्ली भाट, पृ०२६, चतुरी चमार, पृ०५७
६- सुकुल की बीबी, पृ०१५

चांदपुर(फतेहपुर) का निवासी बताया है,[+] जो अपनी पहली पत्नी के मायके की जायदाद प्राप्त होने के कारण डलमऊ(रायबरेली) में ही सपरिवार रहते थे। ये नवाबों के रईस मिजाज व्यक्ति थे, लोग उन्हें राजा रामदयाल जी कहते थे और 'निराला' का विवाह उन्होंने काफी दान-दहेज देकर बड़े समारोह से डलमऊ में ही सम्पन्न किया था, इसका भी उल्लेख उन्होंने किया है[१]। सन् १९११ में विवाह के समय 'निराला' की आयु १२ वर्ष और मनोहरा देवी की लगभग ११ वर्ष थी। विवाह के दो-तीन वर्ष बाद उनका गौना हो गया था, उस समय गांव में प्लेग भी फैला था। 'निराला' ने 'कुल्ली भाट' में उस समय अपनी अवस्था १५ वर्ष होने और श्रीमती जी के तेरहवां पार कर चुकने का उल्लेख किया है। गौने के पांच दिन बाद ही 'निराला' के श्वसुर बीमारी के भय से अपनी लड़की को विदा कराकर ले गए। पं० रामसहाय ने पुत्र का दूसरा विवाह करने की जो धमकी दी, उसे ऊंचा सुनने के कारण उनके समधी नहीं सुन सके थे। बाद में गवहीं का निमन्त्रण इसलिए लगभग तुरन्त ही मिला[२]। गवहीं के लिए ससुराल जाने पर ही 'निराला' को पत्नी के अध्ययन और संगीत का परिचय मिला।

पत्नी की श्रेष्ठता और अपनी पढ़ाई लिखाई का विचार कर 'निराला' कलकत्ता चले गये। अध्ययन तो शुरू हुआ, परन्तु परीक्षा में पास वे अवश्य नहीं हुए, क्योंकि वही विषय वे पढ़ते थे, जिसमें उनकी रुचि होती थी। परिणाम से परिचित 'निराला' ने परीक्षाफल की घोषणा के पहले ही जमींदार की बारात में जाने की बात कहकर ससुराल का टिकट लिया। मुहर्रमी सूरत बनाकर उन्होंने वहां पिता की गिरफ्तारी का किस्सा बनाकर तीन सौ रुपयों का प्रबन्ध करने को कहा, पर सास जी से जो २५० मिले, उन्हीं को लेकर फिर कलकत्ता चले आए। यहीं से 'निराला' के नये जीवन की नींव पड़ी, एक बार धोखा खाकर वे बराबर धोखा खाते रहे, एक परीक्षा की तैयारी न करके वे कभी पास नहीं हो सके--यह उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है[३]। 'कुल्ली भाट' में भी वे लिखते हैं : 'सोलह सत्रह साल की उम्र से

१- निराला, संपादक, कमलेश, पृ० १४-१५
+- श्री रामकृष्ण त्रिपाठी का लेख, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, निराला अंक, पृ० ३७, रामविलास जी ने भी अपनी पुस्तक में यही लिखा है।
२- कुल्ली भाट, पृ० ७-६
३- स्कूल की बीबी, पृ० १६-१८

भाग्य में जो विपर्यय शुरू हुआ, वह आज तक रहा। लेकिन मुझे इतना ही हर्ष है कि जीवन के उसी समय से मैं जीवन के पीछे दौड़ा था, जीव के पीछे नहीं।' और इस जीवन के पीछे चलने वाला जीवन के रहस्य से अनभिज्ञ नहीं होता[1]।' पराशरीफल देखकर पिता ने क्रुद्ध होकर 'निराला' को घर से निकाल दिया; पत्नी सहित उन्होंने अपनी ससुराल में आश्रय लिया। छह महीने बाद पं० रामसहाय सुत डलमऊ से दोनों को गांव ले आए[2]।

'निराला' ने स्वयं इस तथ्य का उल्लेख किया है कि उनका विवाह सुप्रसिद्ध ज्योतिषी पं० गिरिजादत्त जी त्रिपाठी के पूज्य पिता जी ने निश्चित किया था। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार यह शादी नहीं बनती थी, क्योंकि 'निराला' मंगली थे। पं० जी के पिता परन्तु वहाँ के बृहस्पति थे और उनपर सब की बड़ी श्रद्धा थी, अत: उन्होंने 'निराला' के ससुर को विवाह कर देने के लिए समझाया था। 'निराला' के पिता ने भी ज्योतिषी जी की खुशामद की होगी, इसमें निराला को सन्देह नहीं, क्योंकि उनके ससुर की लड़की को पुत्रवधू बनाने का ध्यान पं० रामसहायको कई साल से था, यह 'निराला' जानते थे[3]। एक अन्य लेख में 'निराला' ने यह भी लिखा है कि उनका विवाह सम्बन्ध क्योंकि पत्रा देखकर हुआ था, अत: विवाह के पश्चात् उन लोगों की प्रकृति भी वैसे ही मिली, "जैसे पंडितों की पोथियों के पत्र एक-दूसरे से मिले रहते हैं।" यहीं उन्होंने पत्नी की अखण्ड भारतीयता, हिन्दी के पाण्डित्य के साथ अपनी मुखरता का उल्लेख और उनके प्रभाव से मांस खाना छोड़ने का उल्लेख भी किया है, जिसके कारण उनका स्वास्थ्य भी उन्हें छोड़ने लगा था। एक पूज्य वृद्ध ब्राह्मण से अभय प्राप्त होने पर ही उन्होंने पुन: मांस खाना प्रारम्भ किया और पत्नी के चले जाने का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है --"पत्नी-प्रेम इसी तरह तीन-चार साल कटा। चार महीने मेरे यहाँ रहती, आठ महीने मायके[4]।

१- कुल्लीभाट, पृ०७०-७१

२- निराला की साहित्य साधना, पृ०२६

३- चाबुक, पृ०१२

४- ,, पृ०५६-५७

'चतुरी चमार' में 'निराला' ने चतुरी के माध्यम से पत्नी के पढ़े-लिखे होने और चतुरी के उनसे चिट्ठी लिखवाने, उनके रोटी करने और बर्तन मलने, रोज रामायण पढ़ने और बड़ा अच्छा गाने का उल्लेख किया है।[१] उनका रामायण पाठ पं० रामलाल दरवाजे बैठकर सुना करते थे।

अपनी पत्नी के सुपठिता होने और हिन्दी में अपने 'बिल्कुल ठोस मूर्ख' होने का उल्लेख भी 'निराला' ने किया है।[२] उस समय अंग्रेजी, उर्दू, फारसी एवं [illegible] संस्कृत का ज्ञान तो 'निराला' को था पर खड़ी बोली से उनकी भी कतराती था। उन्होंने लिखा है --" श्रीमती जी का आधार कम न था, मगर विद्या का घमण्ड मामूली रुकावट न डालता था कि वैसे की तरह खड़ी बोली का ज्ञान प्राप्त करूं, उनके गुरु और ज्ञाता पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी नामधेय महानुभाव के यहां आमद व रफ्त मैंने भी शुरू की और 'मिल' (Mill) की 'लिबर्टी' (Liberty) का हिन्दी अनुवाद पढ़ने लगा।[३]" 'सरस्वती' और 'मर्यादा' खड़ी बोली की दोनों पत्रिकाएं 'निराला' मंगाने लगे, भाव तो उन्हें समझ में आते थे, परन्तु लिखने में अड़चन होती थी, क्योंकि घर की जिस ज़बान ब्रजभाषा व अवधी खड़ी बोली से वे परिचित थे, उससे खड़ी बोली का व्याकरण भिन्न था, विशेषतः कारकों का प्रयोग। सायास परिश्रम करके उन्होंने एक-एक वाक्य को अंग्रेजी, बंगला और संस्कृत के व्याकरण के अनुसार सिद्ध करने का प्रयास किया और खड़ी बोली के क्रिया-प्रयोगों के कारण तलाश किए। यहीं 'निराला' ने बाद भी लिखा है कि व्याकरण की इस शिक्षा के पूर्ण होने के पहले ही उन्होंने 'जुही की कली' की रचना कर ली थी, जो बाद में व्याकरण की दृष्टि से पूरी उतरी। 'निराला' ने यह भी लिखा है कि उर्दू की बंदिश की मार्फत सारे अच्छे जानकार की तरह खड़ी बोली के अखाड़े में वे आ उतरे थे।[४]

इसी बीच मनोहरा देवी ने अपनी मां के घर सन् १४ के आश्विन मास में एक पुत्र को तथा तीन वर्ष पश्चात् सन् १७ के उत्तरार्द्ध में एक कन्या को जन्म दिया।[५]

१- चतुरी चमार, पृ०७

२- कुल्लीभाट, पृ० ४२, चयन, पृ०१६१।

३- चयन, पृ०१४२

४- कुल्लीभाट, पृ०७०, चयन, पृ०१४२

५- साप्ताहिक हिन्दुस्तान का निराला अंक, श्रीरामकृष्ण त्रिपाठी का लेख

नाती के जन्म पर पं० रामसहाय ने उत्सव किया, पर इन्हीं दिनों उनका स्वास्थ्य बिगड़ रहा था। महिषादल में हार्निया का सफल आपरेशन होने के बाद वे गढ़ाकोला चले आए। यहीं 'निराला' की कन्या सरोज के जन्म के वर्ष ही उनकी मृत्यु हो गयी[1]। श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने 'निराला' के पिता को सन् १६ में लकवा मारने और तदुपरान्त उनके घर आने की बात लिखी है[2]। राहुल जी ने उनकी मृत्यु भी सन् १६ में लकवे से हुई बताई है[3]। डा० गिरीशचन्द्र तिवारी ने राहुल जी के मत का ही समर्थन किया है, जो असंगत है[4]। अभी तक 'निराला' हर लड़के की तरह दुनिया को सुखमय देखते रहने के स्वप्न लिए थे, परन्तु पिता की मृत्यु के उपरान्त उन्होंने नौकरी की, उसी स्टेट में उन्हें एक मामूली नौकर की जगह मिली, चिट्ठी पत्री और हिसाब किताब उन्हें अच्छा नहीं लगता था। पर लाचारी थी। इसी समय राजा साहब के थियेटर खोलने के शौक के कारण नाटक में 'निराला' को एक बहुत मामूली सा संस्कृत का भाग दिया गया, इसलिए कि बंगालियों में अधिकांश संस्कृत का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते। रिहर्सल के दिन श्लोक को याद कर 'निराला' के गाने पर राजा साहब पर यह प्रभाव पड़ा कि उन्होंने 'निराला' के लिए गाना सीखने का प्रबन्ध कर दिया। कला की कृपा से 'निराला' की लोकप्रियता बढ़ी[5]। बंगाल में कोठिया बाबू के नाम से वे लोकप्रिय हुए, उनके ठुमरी, ध्रुपद, भजन और बंगाल के भाव गानों, सभी का अच्छा अभ्यास हो गया था[6]। बदलूप्रसाद जी पहले से ही 'निराला' के साथ महिषादल में थे, इन दिनों उनका १५ वर्ष का लड़का बिहारीलाल भी उनके पास रहकर पढ़ा करता था।

'निराला' के पिता की मृत्यु को एक साल ही हुआ था कि महामारी (इन्फ्लुएंजा) की आग प्रकोप गांव में फैला। 'निराला' की पत्नी की अस्वस्थता के साथ अन्तिम मुलाकात के लिए आने की सूचना तार द्वारा दी गयी। परन्तु 'निराला' डलमऊ पहुँच पाते, उसके पहले ही उनकी स्त्री गुजर चुकी थी[7]। 'निराला' के पारिवारिक

१- निराला की साहित्य साधना, पृ०३८ : डा० शर्मा
२- महाप्राण निराला, पृ०५२
३- नए भारत के नए नेता, पृ० १५
४- निराला और उनका काव्य साहित्य, पृ०१३ : गिरीशचन्द्र तिवारी
५- कुल्ली भाट, पृ०७१
६- साप्ताहिक हिन्दुस्तान के निराला अंक में पं० रामकृष्ण त्रिपाठी का लेख, पृ०३७
७- कुल्ली भाट, पृ०७२

मित्र करबे के डाक्टर ने उन्हें बताया कि मनोहरा देवी के दोनों फेफड़े कफ से जकड़ गए थे, प्यास ज्यादा था, डाक्टरी दवा देने के लिए पूछने और पानी का जगह अलना पाने पर मनोहरा देवी ने यह कहकर इन्कार कर दिया कि इस बार नहीं मरना है। 'निराला' ने लिखा है --' इस दिव्य भावना ने अगर कुछ भी मेरे साथ सहयोग किया होता तो शायद यह अकाल मृत्यु न हुई होती और जीवन भी कुछ सुखमय होता।'[1] श्री रामकृष्ण त्रिपाठी ने साप्ताहिक हिन्दुस्तान के 'निराला अंक' के लेख[2] में तो माता की मृत्यु देश में फैले इन्फ्लुएंजा से बताई है, जब वे स्वयं चार वर्ष के और सरोज एक वर्ष की थी। सम्मेलन पत्रिका के श्रद्धांजलि अंक[3] में इसके विपरीत आपने अपनी मां की मृत्यु का कारण सन् १८ में फैला प्लेग महामारी बताया है। यहीं उन्होंने नाना के ऊपर इन दोनों बच्चों की जिम्मेदारी मां द्वारा छोड़ने का उल्लेख भी किया है। मनोहरा देवी के निधन के कुछ पहले ही बदलूप्रसाद जी गांव आए थे, और मनोहरा देवी की अस्वस्थता का समाचार सुन उन्हें देखने लखनऊ आए थे, पर वे बीमार होकर गांव लौट गए थे। यह सूचना 'निराला' को अपने ससुराल में ही मिली। विक्षिप्तों की भांति गंगा के किनारे घूमते रहने और श्मशान में रात-रात भर बैठे रहने के उपरान्त जब 'निराला' लखनऊ से चलने लगे, बच्चों को ले जाने के प्रश्न पर उनकी सास ने इन्कार कर दिया। लखनऊ से गढ़ाकोला के लिए जब 'निराला' चले, बीघापुर स्टेशन पर उतर कर कुछ दूर उधर की ओर चलने पर उन्हें एक बैलगाड़ी आती दिखायी दी, बैलों को पहचान कर 'निराला' ने निश्चय किया कि गाड़ी घर की ही है। उसके समीप आने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि उसपर बदलूप्रसाद का शव था, जिसे पं० महावीर लखुआ गांव के लोगों के साथ गंगा जी लिए जा रहे थे। भाई की मृत्यु का समाचार सुनकर 'निराला' अपने को न सम्हाल सके और पछाड़ खाकर गिर पड़े पं० महावीरप्रसाद और अन्य लोगों ने उन्हें सान्त्वना दी और घर जाकर पं० रामलाल, भाभी और उनके बच्चों की हालत देखने और बीमारों की सेवा करने की बात समझाई। घर पहुंचकर 'निराला' ने अपने काका के बच्चों की

१- चाबुक, पृ०५८
२- ,, पृ०४६
३- ,, पृ०५२४-५२५

चिन्ता को दूर किया और उनके ठीक हो जाने पर सब को लेकर बंगाल चलने की बात कही। पं० रामलाल ने आश्वस्त होकर उनसे भाभी की चिन्ताजनक हालत का उल्लेख कर उनकी तीमारदारी करने को कहा, पर क्रमश: सभी भाभी, भतीजा और चाचा तीनों विनाश लीला में अदृश्य होते गये। बप्पू के निधन के तीसरे दिन उनकी भाभी दूसरे दिन भाभी की दुधमुंही लड़की चन्द्रकला और फिर उनके चाचा जी ने प्रयाण किया। उन्होंने भाभी के तीन लड़कों को सेवा-सुश्रूषा से ठीक किया। जीवित लोगों में भाभी के चार लड़के-- बिहारीलाल, रामगोपाल, केशवलाल और कालीचरण और निराला के पुत्र श्री रामकृष्ण तथा पुत्री सरोज बचे थे। घर से फुर्सत पाने पर 'निराला' डलमऊ गए, वहां गंगा के किनारे बैठकर उसमें एकत्रित होती लाशों का ढेर वे देखा करते थे। इस समय का अनुभव को विचित्र स्वीकार करने के साथ ही 'निराला' ने 'इतने दु:ख और वेदना के भीतर भी मन को विजयी रहने का उल्लेख किया है। यहीं कुल्ली ने उनसे ईश्वर की बात को जगह मार कर होश देने की बात कही थी, जो 'निराला' को बड़ी भली लगी और आश्वस्त करने वाली भी थी[1]।

'भक्त और भगवान' कहानी में 'निराला' ने लिखा है कि भक्त का घर सूना होने की विपत्ति के बाद ही पड़ोस की एक भाभी ने भक्त से कहा था कि ऐसी देवी उन्हें दूसरी नहीं मिल सकती। उसी ने बताया कि भक्त की पत्नी अरसा दो साल पहले कहा था कि वे दो साल और हैं। भक्त दंग रह गया, उसके पहले के संस्कार प्रबल हुए, यह नहीं समझा कि एक अपनी जन्मपत्रिका पढ़ते हुए उसने कहा था कि दो साल बाद प्यारी और बच्चों से वियोग होगा, इसी उसकी पत्नी प्रमाण की तरह ग्रहण किए थी और इसी आधार पर उसने दादी से भविष्यवाणी भी की थी[2]।

सन्निपात के प्रसंग में श्री रामकृष्ण त्रिपाठी ने इस ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है कि 'निराला' की अनुपस्थिति में घर का इस स्थिति से लोगों ने लाभ उठाया। 'गांव के लोगों ने ही नहीं निकट के रिश्तेदारों ने भी, जो पं०रामसहाय जी की विपत्ति में हाथ बटाने आए थे, बल्कि अपने को लाभान्वित करने से नहीं चूके,

---

१-सम्मेलन पत्रिका, श्रद्धांजलि अंक, श्री रामकृष्ण त्रिपाठी का लेख, पृ० कुल्ली भाट, पृ०७३-७४

२- चतुरी चमार, पृ०७७

दिन-दहाड़े लूटा ।' श्री. रामकृष्ण लिखते हैं --' हमारे घर से वे स्वयं को भारी तथा निराला को आभारी बनाकर चले गए[१]।'

इसके बाद 'निराला' अपनी नौकरी पर महिषादल लौट आए, तहसील-वसूल, जमा-खर्च, खत-किताब, अदालत मुकदमा आदि राज्य के कार्य फिर से करने लगे । इसी समय श्री रामकृष्ण के शिष्य स्वामी प्रेमानन्द महिषादल आए और वहाँ कीर्तन हुआ । राजा साहब की रामकृष्ण के प्रति तो श्रद्धा थी, परन्तु स्वामी जी के प्रति नहीं थी । उनके दीवान अवश्य स्वामी जी को अपने घर ले गए थे, जहाँ कई अच्छे अच्छे अफसर थे । बड़े समारोह के से स्वामी जी का स्वागत हुआ । भक्त और भगवान में निराला ने भक्त की दीनता, पूजा के लिए उसके फूल चुनने और स्वामी जी के माता के मर जाने पर उनके हंसकर तुम लोगों ने मुझे काली बना दिया -कहने का उल्लेख किया है । इसके बाद बड़ी भक्ति से परमहंस देव का पूजन हुआ, दीवान साहब ने कबीर के पदों का बंगला अनुवाद सुनाया, भक्त ने तुलसीकृत रामायण से सुलक्षणा के राम से मिलने और फिर उसके पास ले जाने के प्रसंग की कथा का पाठ किया : 'श्याम तामरस -दाम-शरीरम् । जटा मुकुट परिधन-मुनि चीरम् ।' आदि स्वामी जी ध्यानमग्न थे, लोग तन्मय थे, भक्त के थक जाने पर जब पूर्ण विराम भाव दौड़ आया, स्वामी जी ने पाठ बंद कर देने को कहा[२]।

स्वामी जी पर लिखी अपनी लम्बी कविता[३] में 'निराला' ने एक परिचर्या तरुण का उल्लेख किया है जिसके पिता कंग देश गए थे और फिर वहीं बस गए थे, जो स्वामी जी को लेने गया था और जिसने सुलक्षणा की कथा भी स्वामी जी को पढ़कर सुनाई थी । कथा की परिसमाप्ति पर गृहस्वामी द्वारा आयोजित भोज्य काण्ड उल्लेख 'निराला' ने किया है । यहाँ श्रेष्ठ राजकर्मचारी के स्वामी विवेकानन्द और प्रेमानन्द के भी कायस्थ होने के कारण, गर्व से कायस्थों के ब्राह्मणों के साथ सर उठाकर रह सकने का तथा स्वामी जी का ब्राह्मणों के कुपित होने पर सन्यासी होने के कारण देश-काल-पात्रता से दूर होने और रामकृष्णमय जीवन सब के लिए

१- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, निराला अंक, पृ० ३५

२- चतुरी चमार, पृ० ७७-७८

३- अणिमा, पृ० ६८-६७

होने के कथन का उल्लेख 'निराला' ने किया है । राजकर्मचारी के सभापतित्व में प्रातःकालीन हुई सभा में समागत सभ्य विद्वानों के व्याख्यान, एक ब्रह्मचारी के स्वामी विवेकानन्द का 'वीर वाणी' से 'सखा के प्रति' विशिष्ट पद की आवृत्ति करने और तदुपरान्त स्वामी जी के सांसारिक धर्म को श्रेष्ठ बताकर उसी के सम्बन्ध में नारद और विष्णु सम्बन्धी कथा सुनाने का वर्णन निराला ने किया है । एक अन्य घटना जिसका उल्लेख इस कविता में किया है, वह दर्शनीय स्थल देखने की स्वामी जी की इच्छा पर राज्य चीफ मैनेजर का उनको राजा के गढ़ के मध्य स्थित कृष्ण मंदिर में संध्या आरती समय ले जाने का प्रसंग है । स्वामी जी तीन ब्रह्मचारियों और मैनेजर के अतिरिक्त मंदिर के लिए प्रस्थान करते समय पाश्चमीय युवक भी उनके साथ था । ड्योढ़ी पर संतरी के रोकने पर प्रातःकालीन सभा में कुपित ब्राह्मणदेव ने आकर महाराज के श्रीरामकृष्ण देव के प्रति श्रद्धा की भावना होने और अपमानकारी स्वामी जी जो इस आश्रम के कायस्थ हैं -- की उचित व्यवस्था मन्दिर के दर्शन दिलाते समय करने की बात कही । स्वामी जी के देव दर्शन के लिए आज्ञा लेने के स सम्बन्ध में अपनी अनभिज्ञता प्रकट करने पर ब्रह्मदेव ने सूचना दी कि देवता राजा के हैं, किसी प्रजा के नहीं । मैनेजर साहब ने स्वामी जी को बताया कि कृष्ण ही राज्य के राजा कहे जाते हैं, क्योंकि उन्हीं की छाप मुहर में चलती है । स्वामी जी ने सरलता से मुस्करा कर पूछा, 'क्या वह भी ब्राह्मण थे, जिसका उन्हें गर्व था । ब्रह्मदेव ने झेंपकर महाराज का संदेश दिया कि नंगेपन के उत्तर में वह नंगे बाबा को पेश करते हैं । इसपर स्वामी जी ने सब गुरुओं के समान कहकर साधु के अपमान न कर उसे रहने की बात कही । ब्रह्मदेव के एक महामहिम्जन को प्रधानमार्ग से जाने की अनुमति और पाश्चमीय के लिए मंदिर में विशेष प्रवेश-निषेध का उल्लेख किया और तभी ब्राह्मणदेव ने श्रीकृष्ण को स्वामी जी में और स्वामी जी के साथ ज्योति की रेखा से बंधे पाश्चमीय के शरीर को देखा । इस घटना से महाराज भी प्रभावित हुए और ब्राह्मण को स्वामी जी को सादर कृष्ण मन्दिर में लाने के लिए भेजा, परन्तु स्वामी जी ने अपने को साधारण कहकर घूमकर जाना ही स्वीकार किया । पाश्चमीय जब मंदिर के बाहर ही रहा, पर स्वामी जी ने चलते समय कहा कि 'मैं वही हूं, जो बाहर खड़ा है ।' भक्त और भगवान' में 'निराला' ने लिखा है

कि स्वामी जी के आगमन के उपरान्त भक्त का मन राज्य के कामों में न लग कर प्रकृति के सौन्दर्य निरीक्षण की ओर रहता था।' मन में घृणा हो गई, राजा कितना निर्दय, कितना कठोर होता है। प्रजा का रक्त शोषण ही उसका धर्म है।'[1] शक्तिपुर नाम के सीधे और सच्चे ब्राह्मण विश्वम्भर भट्टाचार्य जो राज्य की विशालाक्षी देवी का पुजारी था, के चार महीने से वेतन न मिलने पर दी गयी दरख्वास्तों की सुनवाई न होने पर प्राणों की भाषा में अपना दुःख कहने, राजा के उसे अपना अपमान समझने और उसके आदमियों के अपनी रोटियों का प्रबन्ध करने की घटना में प्रजा के उत्पीड़न की वाणी दी है[2]। 'भक्त और भगवान' के निराला ने स्पष्टतः भक्त के स्वप्न में उसके हृदय के अन्दर, महावीर के उसको समझाने कि सब धातुएं राजा की हैं और भक्त को मानने वाले गरीबों के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर महावीर के उनके मर न सकने और उनके लिए वहीं है जो वहां के राजा के लिए यह कहने का और इसके पहले ही भक्त के नौकरी छोड़ने के निश्चय का उल्लेख किया है[3]। कुछ दिनों के बाद वहां एक दुर्घटना हुई। एक साधु वहां आए, उनको उड़िया जगन्नाथ जी ने की और राजा से किराया वसूल करने की और 'निराला' से उनको देख आने के लिए राजा ने कहा, क्योंकि 'राजा लोग एक विषय को अनेक मुखों से सुनते हैं, तब राय कायम करते हैं, इसलिए कि उनके कान ही कान हैं, आंखें इस जगह नहीं पहुंचतीं।' स्वामी विवेकानन्द रामतीर्थ की बातें सुनकर किताबें पढ़कर 'निराला' की निगाह साधु के सम्बन्ध में भी आधुनिक ढंग की ही हो गयी थी, अतः राजभक्ति की पराकाष्ठा दिखाते हुए 'निराला' ने राजा से राजकोष का रुपया इस तरह खर्च न करने को कहा। परन्तु क्योंकि राजा की आज्ञा की उपयोगिता भी नौकर होने के कारण समझते थे, अतः साधु के पास वे अपनी विरोधी दृष्टि लिए हुए ही गए। साधु से अपने वार्तालाप का विस्तृत वर्णन करते हुए 'निराला' ने 'कुल्ली भाट' में लिखा है कि उसका चमत्कार पूर्ण प्रभाव उनपर पड़ा था। उन्होंने लिखा है --"मुझे ज्योति भी दिखी। पहले 'जुही की कली' लिखते वक्त दिखी थी, तब नहीं समझता था। अब के एक साधु ने पहचान कराई।" परन्तु जब वे साधु के पास से चलने लगे तो

१- चतुरी चमार, पृ०७८
२- ,, पृ०३४-३८
३- ,, पृ०७६-८०

कर्मकाण्ड ने उन्हें संसार की ओर खींचा। उन्होंने राजा साहब से रुपये न देने को कहा। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब ने उन पांच रुपयों की मजूरी करा २०) साधु को दिए पर उसके न लेने पर सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब ने राजा से 'निराला' की शिकायत की। राजा साहब के प्रश्न करने पर 'निराला' ने कहा --'हां, मैंने कहा, राजा का नौकर राजा नहीं तो क्या है? यह १, अद्वैतवादी राजा समझते थे। भारत की नौकरशाही का यही अर्थ है।' इस समय 'निराला' को निष्कृति मिली, परन्तु कठिन संसार की उलझनें साथ हो ली। 'कथा प्रसंग में मजाक के तौर पर 'निराला' ने राजा साहब से सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को शराब पी हुई हालत में देखने का उल्लेख किया। 'निराला' को अचानक एक दिन गोपाल जी के मंदिर जाकर कसम खाने का आदेश मिला, क्योंकि बड़े आदमी कहलाने वाले लोग अपने मातहत रहने वालों या नौकरों से तरह-तरह से पेश आते हैं।'[1] 'कसमीकसमा' हो जाने के बाद 'निराला' ने राजा साहब को लिखे अपने पत्र में धर्मस्थल पर हस्तक्षेप करने का अधिकार न होने का और स्थिति की सत्यता का उल्लेख कर अपना इस्तीफा दिया। उसके मंजूर न होने पर भी 'निराला' ने नौकरी छोड़ दी, अपनी चीजें नीलाम करके एक भतीजे को साथ लेकर गांव का रास्ता लिया[2]।

गांव पहुंचकर 'निराला' ससुराल गए परन्तु वहां कन्यादाय भ्राताओं की संख्या और अधिक दिखी। उस समय देश में पहला असहयोग आन्दोलन जोरों पर था। 'निराला' बेकार के 'साहित्य सेवा की प्रबल प्रेरणा' से जो कुछ वह लिखा करते थे वह एक ही सप्ताह में सम्पादक महोदय की प्रबल रचनाकृति के साथ उन्हें वापस मिल जाता था। 'सरस्वती' से कविता-लेख वापस आते थे, एकाध बार छपी भी। प्रभा में बड़े आदमियों के लेख और कविताएं छपा करतीं थीं। कुल मिलाकर इस समय तक केवल दो लेख और शायद दो कविताएं ही छप पाई थीं, सो भी जब हिन्दी के शब्दों में बड़ी रगड़ कर और लेखों में कलम की पूरी ऊंची आवाज़ से हिन्दी की प्रशंसा। 'जीविका की कोई उपाय न होने और चार भतीजों की परवरिश सिर पर होने के कारण चरखे की उपयोगिता समझाने वाले सज्जन की

१- कुल्ली भाट, पृ० ७४-८२

२- ,, पृ० ८२-८४

'निराला' ने एक लड़ुआ खरीद लाने को पैसे दिये, और गांव के पड़ोस में कुनाई का काम करने वाले कोरियों से कुनाई सीखने को वे जाने लगे ।

'निराला' ने जिन दो कविताओं और दो लेखों का उल्लेख किया है, वह 'प्रभा' और 'सरस्वती' में ही प्रकाशित हुए थे । प्रकाशन की दृष्टि से जून सन् २० की 'प्रभा' में 'निराला' की कविता 'जन्मभूमि' सर्वप्रथम प्रकाशित हुई । नवम्बर २१ की 'प्रभा' में प्रकाशित उनकी दूसरी कविता 'अध्यात्म पुष्प' था । इस दूसरी कविता के पहले उनके दो लेख 'सरस्वती' के अक्टूबर २० अंक में 'बंगभाषा का उच्चारण' और फरवरी २१ के अंक में 'हिन्दी और बंगला में अन्तर' प्रकाशित हो चुके थे । 'परिमल' में 'अध्यात्म-फल' नाम से छपी कविता के 'प्रभा' में प्रकाशित होने का उल्लेख उन्होंने स्वयं भी किया है । यहाँ उन्होंने रामकृष्ण और विवेकानन्द के साहित्य से अपने परिचय और दो एक बार मिशन,बेलूड़,दक्षिणेश्वर को देखा, के लेख आ चुकने का उल्लेख भी किया है[१]।

स्वामी सारदानन्द पर लिखते हुए 'निराला' ने नौकरी छोड़कर घर पर रहने के प्रसंग को सन् २१ का बताया है । उन दिनों कभी-कभी वे आचार्य द्विवेदी के दर्शनों के लिए जुही कानपुर भी जाया करते थे । इसके पहले वे दौलतपुर में उनके दर्शन कर चुके थे । द्विवेदी जी के प्रति अपनी श्रद्धा और उनकी गुरुता स्वीकार करने की भावना के साथ 'निराला' ने अपनी स्वतन्त्रता से उत्पन्न आर्थिक परतन्त्रता पर द्विवेदी जी के विचार करने का उल्लेख यहां किया है । काशी के प्रसिद्ध रईस राजनीतिक नेता कानपुर से 'निराला' के पास दो पत्र द्विवेदी जी के प्रयत्नों से ही आए । काशी के पत्र में आने जाने का खर्च देने के साथ योग्यता की जाँच के बाद जगह देने की और कानपुर के पत्र में रुपए की जगह होने और याद चाहें तो चले जाने की बात लिखी था । सिपाहगरी के समतल प्राप्त से रुबेदारी तक के दुस्तर पर अपना अविचल श्रद्धा न होने ,अपने अन्दर के मर्यादा के प्रबल ज्ञान का अभिमान द्विवेदी जी को होने पर उन्हें उत्तरदायी पद दिलाने का उनका प्रयत्न और प्रमाण के अभाव में उनकी असफलता का उल्लेख भी उन्होंने किया है । उसी समय स्वामी ~~विवेकानन्द~~ माधवानन्द

१- चतुरी चमार,पृ०५२

अल्मोड़ा अद्वैत आश्रम ,मायावती के प्रेसिडेण्ट हिन्दी में पत्र निकालने के विचार से सम्पादक की तलाश में द्विवेदी जी के पास आए। द्विवेदी जी ने 'प्रभा' के प्रत्यक्ष आधार पर पत्र के लिए 'निराला' की सिफारिश की,स्वामी जी ने 'निराला' का पता नोट कर लिया और योग्यता का प्रमाणपत्र भेजने की आज्ञा देते हुए 'निराला' को अंग्रेजी में पत्र लिखा। बंगला में उत्तर देते हुए 'निराला' ने श्री रामकृष्ण विवेकानन्द साहित्य के अध्ययन मिशन के सेवा कार्य आदि पर उल्लेख कर अपनी योग्यता के प्रमाण दिए। द्विवेदी यहां कुछ दिन बाद जाने पर निराला को ज्ञात हुआ कि स्वामी के एक सुयोग्य साहित्यिक सम्पादक मिल गया है। घर लौटकर आने पर स्वामी जी का बंगला में लिखा एक पत्र 'निराला' को भी मिला, जिसमें धैर्य-धारण करने,प्रभु की इच्छा होने पर आगे देखे जाने का उल्लेख था।[1]

आचार्य वाजपेयी पर लिखते हुए 'निराला' ने लिखा है कि सन् २० में द्विवेदी जी ने उनके लिए कई प्रयत्न किए थे, परन्तु उनकी शिक्षा का निर्वाह 'निराला' की शक्ति से बाहर की बात थी। यहीं उन्होंने पुन: द्विवेदी जी के प्रति अपनी श्रद्धा को व्यक्त करते हुए उनकी कृपा का स्मरण करते हुए लिखा है कि बाद में उनके 'मतवाला' में चले जाने से और असमर्थित साहित्य की सृष्टि करने से द्विवेदी जी असन्तुष्ट हो गए थे लेकिन फिर भी द्विवेदी जी के हृदय में उनके लिए स्नेह था।[2]

'निराला' विषयक अपने संस्मरण में सनेही जी ने इस बात का उल्लेख किया है कि १८ में जब वे उन्नाव में मनोहरपुर हाईस्कूल के हेडमास्टर थे, 'निराला' ने उनके पास पहुंचकर कविता करने की इच्छा व्यक्त की। सनेही जी के पूछने पर कि कुछ लिखा है, उन्होंने ताटंक छन्द की आठ पंक्तियां सुनाईं ,जिन्हें सुनकर सनेही जी ने उन्हें लिखते रहने का आदेश दिया। सनेही जी के यहां यह भी

१- चतुरी चमार,पृ० ५२

२- चाबुक,पृ०३६

लिखा है कि सन् २१ में जब वे कानपुर में थे, और गोरखपुर से निकलने वाले 'कवि' पत्र का सम्पादक 'त्रिशूल' नाम से कर रहे थे, तब निराला की एक कविता 'कवि के प्रति' और एक लेख 'काव्य और कविता' उन्होंने अपने पत्र में प्रकाशित किए थे। उन्होंने यह भी लिखा है कि जब निराला कानपुर आते थे तो 'प्रताप' प्रेस में रहा करते थे।[1]

इसी समय महिषादल से निराला को अकेले चले आने का तार मिला और 'निराला' नामंजूर इस्तीफे पर हठवश चले आने का दोष छूट जाने के कारण दुविधा में न पड़ पुनः महिषादल नौकरी पर चले गए। 'पर राजा, योगी, अग्नि, जल की उल्टी रीतिवाली नीति याद न रही।' यहीं मिशन का 'समन्वय' पत्र 'निराला' के पास भी लेख के तकाजे के साथ पहुंचा। निराला ने उसके लिए 'युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण' लेख लिखने और प्रकाशित होने पर द्विवेदी जी की सम्मति मांगने पर उनके बधाई देने और मौलिक लेख लिख सकने के आशीर्वाद देने का उल्लेख स्वयं किया है।[2] 'समन्वय' में सर्वप्रथम 'निराला' का लेख ही प्रकाशित हुआ था परन्तु जिस लेख का उल्लेख निराला ने किया है उस शीर्षक से उनके दो लेख 'समन्वय' सातवें वर्ष के नवें अंक और आठवें वर्ष के चौथे अंक में प्रकाशित हुए। 'समन्वय' में प्रकाशित 'निराला' की पहली रचना 'भारत में श्रीरामकृष्णावतार' थी। यह लेख 'समन्वय' के पांचवें अंक में प्रकाशित हुआ था। समन्वय में प्रकाशित उनका दूसरा लेख 'तुलसीकृत रामायण में अद्वैत तत्त्व' था जिसका प्रकाशन पत्र के नवें अंक में हुआ।

इसी समय निराला के सामने राजा वाली उल्टी नीति पेश हुई और साथ ही 'समन्वय' के मैनेजर स्वामी आत्मबोधानन्द जी ने बंगालियों के भावों को समझने के लिए बंगला जानने वाले व्यक्ति की आवश्यकता का उल्लेख कर उन्हें बुलाया। निराला ने वहां जाकर देखा कि आठ महीने में दो संपादक बदल चुके थे, सम्पादक की जगह स्वामी माधवानन्द जी का नाम छपता था। 'समन्वय' में जाकर 'निराला' स्वामी जी महाराज के साथ 'उद्बोधन' कार्यालय बागबाजार में रहने लगे और वहीं पहले पहल स्वामी सारदानन्द महाराज के दर्शन किए। यह १९२२ ई० की बात थी।[3] मिशन के सन्यासियों के साथ रहते हुए 'निराला' को

१- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, निराला अंक, पृ०३३, ५३।

२- चतुरी चमार, पृ० ५३

३- ,, पृ०५३

समुचित आदर और मान मिला । उनके भोजन, वस्त्र और आवश्यकताओं का विशेष ध्यान स्वामी माधवानन्द जी और स्वामी वासेश्वरानन्द जी रखते थे[1]। 'निराला' यहां पहले तो अवैतनिक काम करते थे, पीछे वे खर्च के लिए पैसे लेने लगे थे[2]। इसके अतिरिक्त यह उल्लेख भी मिलता है कि लगभग डेढ़ साल तक ५०) मासिक पर कार्य करने के बाद निराला 'समन्वय' से अलग हो गए[3]। आरम्भ में जब वे मिशन में आए विवेकानन्द सोसायटी से हर महीने ठीक समय पर वेतन मिल जाया करता था, पर डेढ़-दो साल से परिवार को कुछ नहीं भेजा । सब सुबह-शाम में उड़ जाता था[4]।

'समन्वय' में काम करते हुए 'निराला' ने मौलिक साहित्य रचना, टिप्पणियां लिखीं और अनुवाद भी किया । दो लेखों के बाद 'समन्वय' के ग्यारहवें अंक में उनकी एक कविता 'माया' प्रकाशित हुई, फिर 'तुम हमारे हो' कविता और बाबू रजनीसेन के एक गीत का अनुवाद 'तुम' । इसके पहले प्रथम वर्ष के दसवें और बारहवें अंक में 'एक दार्शनिक' नाम से उनके दो लेख 'प्रवाह' और बाहर और भीतर भी निकले थे । धर्म, दर्शन, साहित्य, भाषा सभी विषयों पर निराला की दृष्टि थी, रामकृष्ण वचनामृत का बंगला से हिन्दी में अनुवाद करके भी उन्होंने 'समन्वय' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित कराया । यहां रहते हुए उन्होंने कई बंगालियों को हिन्दी भी पढ़ाई थी ।

'निराला' जब 'समन्वय' में काम करने गये, दार्शनिकता के साथ नास्तिकता और शंकित चित्त वृत्ति तथा घर की संस्कृति के कारण आस्तिकता भी उनमें विद्यमान थी । उन्होंने लिखा है कि 'स्वामी सारदानन्द इतने स्थूल थे कि उन्हें देखकर डर लगता था ।' उनकी ओर वे बहुत दिन तक नहीं देख सके थे । आंखें झुकाकर प्रणाम कर 'निराला' उनकी सभा में कभी-कभी बातचीत सुनने के लिए बैठा अवश्य करते थे, पर दर्शन या धर्म ग्रन्थ का पाठ होने पर उठकर चले आते थे,

----

१- अभिनन्दन ग्रन्थ, संपादक, [illegible] , श्री शिवपूजन सहाय का संस्मरण ।

२- नए भारत के नए नेता, राहुल, पृ०२८

३- निराला और उनकी कविता, पृ० ७, लेखकगण, राय, शर्मा और प्रशान्त ।

४- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ११ फरवरी, ६२, पृ०५ शिवपूजन सहाय का लेख

क्योंकि दार्शनिकता की मात्रा यों भी दिमाग में बहुत ज्यादा था, जी घबरा उठता था।" स्वामी जी का वार्तालाप सभा में कुछ बोलकर बेवकूफ न बनने के सिद्धान्त के कारण निराला ने महीनों संयम रखा। एक रोज धैर्य जाता रहा, उन्होंने पूछा--"यह संसार मुझमें है या मैं इस संसार में हूं।" स्वामी जी ने बड़े स्नेह से कहा --"उस तरह नहीं।" एक दिन स्वामी जी से उन्होंने रो जाने पर देवताओं के बातचीत करने का उल्लेख भी किया, स्वामी जी सस्नेह हंसकर बोले--" बाबूराम महाराज से भी करते थे।" (स्वामी प्रेमानन्द) इस प्रसंग के कुछ दिनों में निराला अपने कोठी मित्र के बिस्तर पर सो रहे थे, उन्होंने स्वामी शारदानन्द को वहीं ध्यान में मग्न देखा। स्वप्न में ही उन्होंने एक सन्यासी को उन्हें खिलाने के लिए रसगुल्ले लाने, स्वामी जी की ध्यानावस्थित अवस्था में निराला की ओर इशारा करके निराला के खुद रसगुल्ला खिलाकर कठोर सन्यासी को देने की घटनाएं भी देखीं।[1]

'निराला' ने अपनी विरोधी शक्ति की प्रबलता का और तीव्र तार्किक दार्शनिक वज्र प्रहारों से बराबर मन से स्वामी जी का अस्तित्व मिटाने का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है --" जीवन्मुक्त महापुरुष क्या है, मैं अब और अच्छी तरह समझने लगा। मैं प्रहार करता हुआ जब थक जाता था, तब मेरे मनस्तत्व के सत्य स्वरूप स्वामी शारदानन्द मुझे रंगीन छाया की तरह ढककर हंसते हुए वरद् देते थे।" स्वामी जी के क्रुद्ध होने का उल्लेख कर उन्होंने आगे लिखा --"उन्होंने अपनी पूर्णता देकर मेरी स्वल्पता ले ली। अब दोनों भाव उन्हीं के हैं, एक से वे लड़ते हैं, दूसरे से बचते हैं-- यही मेरा इस समय का जीवन है।"[2]

निराला ने जिस देवक सन्यासी को स्वप्न में देखा था उन्होंने एक दिन उनसे कहा --" तुम मंत्र नहीं लोगे? आओ।" निराला ने बड़े को गुरु मानने में आपत्ति न होने, केवल गुरुडम के खिलाफ रहने का उल्लेख कर स्वामी जी के पास जाकर मन्त्र लेने आने की बात कही और स्वर से तंत्र मंत्र पर अपने

१- चतुरी चमार, पृ०५३-५४

२- ,, पृ० ५५-५६

अविश्वास को स्पष्ट कर दिया । स्वामी जी ने प्रसन्न गम्भीरता से फिर कभी आने को कहा 'निराला' मन्त्र लेने के लिए गए नहीं, पर माँ शारदामणि के कमरे में तुलसीकृत रामायण पढ़ने जाया करते थे । पहले दिन पढ़ने पर उनको दो रसगुल्ले प्रसाद में स्वामी शारदानन्द ने खिलाये थे, इसके पहले केवल स्वामी जी के बड़े भाई शंकर महाराज को दो रसगुल्ले पाते, निराला ने देखा था । एक बार जब 'निराला' प्रसाद लिए स्वामी जी के जाने की तरफ से उतरने जा रहे थे, उन्हें भावावेश में देखकर स्वामी जी रास्ता छोड़कर एक तरफ खड़े हो गए । निराला को होश था, वह भी एक तरफ हटकर खड़े हो गए । प्रसाद के सम्बन्ध में प्रश्न कर स्वामी जी ने प्रसाद खाकर उनसे ऊपर आने को कहा । निराला के ऊपर जाने पर पहले के प्रसंग का उल्लेख कर निराला से उन्होंने उनके गुरुमुख होने के सम्बन्ध में पूछा । निराला के स्वीकारात्मक उत्तर देने पर स्वामी जी ने श्रीरामकृष्ण को ईश्वर मानने का उल्लेख किया, जिसका समर्थन निराला ने किया । निराला लिखते हैं--" वह भावस्थ गुरुत्व से मेरे सामने आए । मुझे ऐसा जान पड़ा, एक ठंडी छाँह में मैं डूबता हुआ जा रहा हूं । फिर मेरे गले में अपनी उंगली से बीजमंत्र लिखने लगे । मैंने मन को गले के पास ले जाकर क्या लिख रहे हैं, पढ़ने की चेष्टा की पर कुछ मेरी समझ में न आया।" गले का मंत्र क्या गुल खिलाता है, देखने के लिए निराला ने पूजा पाठ भी बन्द कर दिया । इस सब का चमत्कारिक प्रभाव 'निराला' पर पड़ा, महादेव बाबू से उन्होंने इन साधुओं को जादूगर जान पड़ने की बात कही, महादेव बाबू ने उसे भ्रम कहा, पर निराला चुप रहे क्योंकि उन्हें भ्रम होता तो विश्वास भी होता था । इस घटना के समय 'समन्वय' के कार्य कर्ता उद्बोधन छोड़कर 'मतवाला' आफिस यानी बालकृष्ण प्रेस में आ गए थे । 'मतवाला' निकलना अभी प्रारम्भ नहीं हुआ था । निराला यहाँ अलग कमरे में समन्वय कार्यकर्ताओं के साथ रहते थे[1]।

'समन्वय के कार्यकर्ताओं के साथ बालकृष्ण प्रेस में आकर रहने पर 'निराला' की घनिष्ठता सेठ महादेव प्रसाद से बढ़ी । वस्तुतः गुणग्राही सन्यासियों से निराला की प्रशंसा सुनकर ही सेठ जी और मुंशी नवजादिकलाल उनकी और आकृष्ट हुए थे[2]। यहाँ शिवपूजन से भी निराला का परिचय हुआ । इसके साथ

१- चतुरी चमार,पृ०५६-५८

२- वे दिन,वे लोग,पृ०४४-- शिवपूजनसहाय

ही निराला भी साहित्य की ओर अधिक झुके । 'समन्वय' में रहते हुए ही उन्होंने अनेक रचनाएँ लिखीं । इसी बीच में आदर्श में उनकी 'जुही की कली' और त्रिरश्मि पर व्यंग्य[1] रचनाएँ छपीं, 'समन्वय' में 'माया'[2] निकली और 'माधुरी' में उनकी 'अधिवास', 'तुम और मैं', 'शृंगारमयी' और 'दूर' रचनाएँ प्रकाशित हुईं । माधुरी में ही उनका एक लेख तुलसीकृत रामायण का आदर्श भी निकला था । 'पंचवटी प्रसंग' भी समन्वय कालीन रचना है ।

उनकी 'अनामिका' भी इसी समय प्रकाशित हुई । ४० पृष्ठों की इस छोटी-सी पुस्तक में 'निराला' ने अपनी नौ रचनाएँ दी हैं । पतले कार्डबोर्ड का मटमैला कवर है । पुस्तक का नाम कुछ बड़े टाइप के टेढ़े अक्षरों में आसमानी रंग में छपा है, प्रकाशक हैं नवजादिकलाल श्रीवास्तव, २३ शंकर घोष लेन, कलकत्ता । यह पुस्तक सन् २३ में प्रकाशित हुई । इसके क्रम में सेठ महादेवप्रसाद की लिखी एक पेज की भूमिका है, इसके बाद 'शारदा' के भूतपूर्व सम्पादक और वर्तमान शिक्षा संपादक पं० चन्द्रशेखर शास्त्री की सम्मान्य सम्मति है । प्रारम्भ में 'गीता' की तरह 'हरा कथानां गणना प्रसंगे'... आदि श्लोक दिया गया है, कवर की पीठ पर छोटी मोटी किताबों का विज्ञापन है । यहाँ लेखक का नाम केवल 'सूर्यकान्त त्रिपाठी' दिया हुआ है[3] । शास्त्री जी की सम्मति के नीचे तिथि ३-७-२३ दी है[4], जिससे स्पष्ट है कि 'मतवाला' का प्रकाशन प्रारम्भ होने के पहले ही यह पुस्तक निकल चुकी थी, तभी मतवाला के १८ वें अंक में 'जुही की कली' निकलने पर उसमें नोट था-- अनामिका से उद्धृत । भूमिका में सेठ जी ने सूर्यकान्त त्रिपाठी को अपना अभिन्न हृदय मित्र कहकर गुण-दोष विवेचन आलोचकों पर छोड़ 'पंचवटी प्रसंग' के सम्बन्ध में आचार्य द्विवेदी की सम्मति उद्धृत कर सन्तोष किया, इतना अवश्य उन्होंने कहा कि पंचवटी प्रसंग अधिवास और 'जुही की कली' लिखकर कविताओं के लेखक ने एक अभूतपूर्व व नई शैली का समावेश किया है । शास्त्री जी ने पुस्तक की नवीनता और उच्चता और उक्तियों की मधुरता का उल्लेख किया है । इस संग्रह की 'सच्चा प्यार' और

१- आदर्श वर्ष १ संख्या २ मार्गशीर्ष संख्या ३-४ पौष माघ ।

२- समन्वय, वर्ष १ अंक ११

३- साप्ताहिक हिन्दुस्तान १८ फरवरी, ६२, पृ० ६-७ बच्चन का लेख ।
४- डा० रामरतन भटनागर से प्राप्त सूचना ।

'उज्ज्वला' की रचनाएं किसी भी अन्य संग्रह में समाविष्ट नहीं की गयी हैं।

'कुल्ली भाट' में 'निराला' ने उन दिनों को याद करते हुए सेठ महादेव जी की उनकी शक्ति पर उनसे अधिक विश्वास होने का उल्लेख कर लिखा है "(जो) पर वेदान्त विषयक नारी एक साम्प्रदायिक पत्र का संपादक भार छोड़कर मनसा-वाचा-कर्मणा सरस्वती कोमला कुमारी की उपासना में लगा।"[1] सेठ जी ने ही 'मारवाड़ी सुधार' के बंद होने पर बालकृष्ण प्रेस में रहने का अनुरोध आचार्य शिवपूजन सहाय से किया। उनका और मुंशी जी का आग्रह हास्य रस का सुन्दर साप्ताहिक पत्र निकालने का था और यह प्रेरणा उन्हें बंगला के हास्यरसात्मक अवतार से मिली थी, उसे मुंशी जी रोज पढ़ा करते थे। २० आस्त सन २३ रविवार को पत्र निकालने की बात तय हुई, २२ अगस्त सोमवार को मुंशी जी ने पत्र का नामकरण 'मतवाला' किया। पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा ने भी पत्र निकालने पर बहुत और दिया। यह निर्णय कियागया कि मुखपृष्ठ के लिए प्रति सप्ताह निराला अपना (निराला देंगे) मैं और समालोचनाएं भी यही लिखेंगे, अग्रलेख (सम्पादकीय) और चलती चक्की स्तम्भ के लिए (शिवपूजन जी लिखेंगे, 'मतवाला की बहक' के लिए व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ) ~~मैं लिखा~~ विनोदपूर्ण टिप्पणियां मुंशी जी लिखा करेंगे। अन्य सारी सामग्री का सम्पादन और पूरे पत्र का प्रूफ-शोधन का काम भी शिवपूजन जी को मिला है और सम्पादक के रूप में सेठ जी का नाम छपेगा, यह भी तय हुआ। मुख पृष्ठ के लिए चारु बाबू चित्रकारने नटराज की छवि अंकित की, 'मोटो' निराला ने तैयार किया और बालकृष्ण प्रेस २३ शंकर घोष लेन कलकत्ता से भाद्र पूर्णिमा, २६अगस्त २३ रविवार+ को मतवाला का प्रथम अंक निकलना सर्वथा निश्चित किया गया और निकला। प्रेस की व्यवस्था स्वयं सेठ जी करते थे, प्रबन्ध विभाग मुंशी जी के पास था[2]।

१- कुल्ली भाट, पृ०६

२- मैं इन मैं लोग, पृ०५३-५४ एवं सितम्बर ३१, पृ०११-१२

+-- शिवपूजन जी ने शनिवार लिखा है पर यह गलत है क्योंकि मतवाला के प्रथम प्रथम अंक में दिन रविवार दिया गया है। श्री विष्णुचन्द्र शर्मा ने ओंकार शरद द्वारा संपादित 'निराला स्मृति ग्रन्थ' में प्रकाशन तिथि २६ अगस्त २६ दी है जो सर्वथा असत्य और भ्रामक है।

'मतवाला' के प्रथम अंक में ही निराला की दो कविताएं छपीं 'रक्षाबन्धन' एक में नाम दिया था, पुराने महारथी । दूसरे अंक में इसी नाम से 'कृष्ण महातम' कुण्डलिया निकली इसी अंक में मतवाले की चाबुक भी सर्वप्रथम निकला, लेखक श्रीमान् गरगज सिंह वर्मा साहित्य शार्दूल । तीसरे अंक में 'गद रूप पहचान' कविता प्रकाशित हुई, फिर पांचवें अंक में 'दिव्य प्रकाश कविता और चाबुक' के अन्तर्गत सरस्वती के सम्पादकीय नोटों की चर्चा निकली । मतवाला के छठें, सातवें और आठवें अंकों में क्रमश: 'नयन', चुम्बन', और उसकी स्मृति में रचनाएं निकली । नवें अंक में काफि प्रिया (विजया की भेंट' कविता, चाबुक स्तम्भ में सिलेबर की सभा के माखनलाल चतुर्वेदी के प्यारे निरधार पर व्यंग्य और 'क्या देखा ?' कहानी जनाबआली नाम से प्रकाशित हुई । डा० शर्मा ने इस तथ्य का उल्लेख किया है कि ग्यारहवें अंक में 'शौहर' नाम से छपा देखि । कौन यह ? कविता भी निराला की ही लिखी है[१]। इस समस्त उल्लिखित सामग्री में पुराने महारथी और शौहर नाम से लिखी रचनाओं के अतिरिक्त निराला की 'गद रूप पहचान' और 'काफि प्रिया' (विजया की भेंट) रचनाएं किसी संग्रह में नहीं आई हैं । ६ फरवरी २४ के मतवाला की २५वीं संख्या में प्रकाशित 'शंकिता' कविता और २३ एवं ३० अगस्त २४ के मतवाला में निकली 'स्वाधीनता पर' दो रचनाएं और १० अक्टूबर २४ के अंक में छपी 'अमृत में गरल' कविता भी किसी संग्रह में समाविष्ट नहीं है । २७ सितम्बर के अंक में 'दान' कविता छपने के बाद 'मतवाला' में निराला की कविताएं छपना बंद हो गया[२]। डा० रामविलास शर्मा के इस कथन का खण्डन १० अक्टूबर २४ के अंक में छपी 'अमृत में गरल' कविता करती है ।

'मतवाला' कार्यालय की तीसरी मंजिल के एक छोटे से कमरे में आचार्य शिवपूजनसहाय पत्र के लिए 'मैटर' तैयार करते थे । शाम को बनारसी छूटी छनती, सम्मिलित बैठक होती, अखबारों की खबरों पर विचार होता और देश, समाज, धर्म एवं साहित्य सम्बन्धी महत्वपूर्ण समाचारों एवं ज्वलन्त राजनीतिक समस्याओं पर झुक-झुक

१-'निराला' की साहित्य साधना, पृ०७०

२- ,, ,, पृ०१०४

भरी टिप्पणियां लिखने का निश्चय होता था । शिवपूजन जी ने ही इस प्रसंग का भी उल्लेख किया है कि बालक में छद्म नाम से लिखी सरस्वती की समालोचना से क्षुब्ध होकर आचार्य द्विवेदी ने मतवाला का एक अंक आदि से अंत तक संशोधित करके भेज दिया । अंक पाकर निराला के खूब हंसने और बैसवाड़ी में उनकी स्तुति करने का उल्लेख भी आपने किया है । 'निराला' 'मतवाला' के इन संशोधित पृष्ठों को प्रकाशित करना चाहते थे, परन्तु 'मतवाला' सम्पादक ने उन पृष्ठों को तिजोरी में सदा के लिए बन्द कर दिया' यह सूचना भी शिवपूजन जी ने दी है[1]। निराला ने स्वयं भी लिखा है कि उन्होंने मतवाला में मुक्त छंद और मुक्त गीत लिखना शुरू किया था यद्यपि वे और कई साल पहले से लिख रहे थे परन्तु उस समय तक हिन्दी के पत्रों में ऐसे छन्दों को स्थान नहीं मिलता था । उनके छन्दों के अलावा अपनी अन्य पाठ्य सामग्री के कारण 'थोड़े ही साल महीनों में' मतवाला काफी लोकप्रिय हो चुका था और उनकी कविताएं ताज्जुब की निगाह से नासमझों से देखी और पढ़ी जाती थीं[2]।

'मतवाला काल के निराला के मित्रों में सेठ महादेव प्रसाद, मुंशी नवजादिकलाल और शिवपूजन जी के अतिरिक्त उग्र, रामलाल गर्ग, विनोद शंकर व्यास, भगवतीचरण वर्मा, शिवशेखर द्विवेदी, दयाशंकर वाजपेयी और परमानन्द शर्मा का उल्लेख उनके पुत्र रामकृष्ण त्रिपाठी ने किया है[3]।

'मतवाला'-काल में ही 'निराला' सन् २८ में दिल्ली में होने वाले अखिल हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में भी सेठ महादेव प्रसाद के साथ गए थे । उस सम्मेलन की अध्यक्षता 'हरिऔध' जी ने की थी । इस अधिवेशन में 'निराला' ने वंदना गीत गाया था और अपना मुक्त छन्द भी पढ़ा था । पंचवटी प्रसंग से पढ़े गए लक्ष्मण वाले हिस्से को सुनकर पं० श्यामबिहारी ने सेठ जी से चकित होकर पूछा था कि यह

१- वे दिन वे लोग, पृ०५४-५८, ६२, ६६

२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०२८१

३- सम्मेलन पत्रिका, पृ० ५२५

गद्य है या पद्य ? यह 'निराला' को बाद में सेठ जी ने बताया था[१]। कलकत्ता में रहते हुए ही 'निराला' ने राजस्थानी चित्रकार पं० मोतीलाल शर्मा की कलकत्ता से प्रकाशित चित्रावली के चित्रों के नीचे ब्रजभाषा में परिचयात्मक कवित्त लिखे थे[२]।

'मतवाला' में वस्तुतः 'निराला' एक वर्ष ही रहे थे। 'प्रभा' में 'भावों की भिड़न्त' होने के उपरान्त 'मतवाला' से उनका स्नेह-सम्बन्ध पूर्ववत् बना नहीं रह सका, इसका परिचय एवं प्रमाण 'मतवाला' के अंकों में प्रकाशित 'निराला' की रचनाओं को देखकर मिलता है। 'मतवाला' में सक्रिय सहयोग न देने पर भी 'निराला' ने बंगाल नहीं छोड़ा, बीच-बीच में यद्यपि वे डलमऊ और गढ़ाकोला के चक्कर अपनी सन्तानों और भतीजों को देखने के लिए लगाया करते थे। 'मतवाला' के सारे वर्ष के अंकों में प्रकाशित उनकी 'निवेदन', 'आगे फिर एक बार' और 'महाराज शिवाजी का पत्र' रचनाएं उनके योगदान का प्रमाण हैं, यद्यपि यह भी निश्चित है कि सन् २४ के उपरान्त उनकी रचनाएं पुनः सन २६ के आरम्भ से प्रकाशित होनी प्रारम्भ हुई थीं, जिनका क्रम अधिक न चल सका।

सन् २४ में 'मतवाला' से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर जब 'निराला' कलकत्ते से गढ़ाकोला आए, इसी साल अवध में भूमि सम्बन्धी नए बन्दोबस्त के अनुसार उन्होंने कचहरी में अपने बाग और खेतों के रेकार्ड दुरुस्त कराए। इसी समय जुही में वे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और कानपुर में 'प्रभा' के दफ्तर में 'नवीन' जी से भी मिले। गांव में रहते हुए ही उन्होंने चतुरी चमार के लड़के अर्जुन को पढ़ाया था। इसी समय चतुरी की संत साहित्य की मर्मज्ञता का परिचय भी मिला। उन्होंने स्वयं लिखा है कि " उन दिनों बाहर मुझे कोई काम न था, देहात में रहना पड़ा।" और उस समय उनका 'मकान साधारण जनों का अड्डा बल्कि (House of Commons) हो गया' था। इसी अवधि में आम पकने के दिनों में आम खिलाने के विचार से 'निराला' अपने सुपुत्र को लेने ससुराल गए। 'निराला' के चिरंजीव की अर्जुन से गहरी दोस्ती' हो गयी थी, जिसके द्वारा वे ब्राह्मण संस्कारों की बातों--चमार दबेंगे,

---

१-'प्रबन्ध प्रतिमा', पृ० २८१-८२

२-'वे दिन वे लोग', पृ० ६३ -- शिवपूजनसहाय

ब्राह्मण पदार्थी -- को समझते थे[१]। इसी समय का उल्लेख करते हुए श्री रामकृष्ण त्रिपाठी ने अपने लेख में लिखा है कि इस समय वे चार पास कर चुके थे और 'निराला' से वे और श्री गयाप्रसाद तिवारी अँग्रेज़ी पढ़ा करते थे[२]।

'चतुरी चमार' लिखते हुए भी 'निराला' ने अपनी इस विशेषता का भी उल्लेख किया है कि उन्हें 'ज्ञान मात्र में सब समझ लेने का 'काफ़ी अभ्यास' हो चुका था, गुरुमुख ब्राह्मण आदि उनके घड़े का पानी छोड़ चुके थे और 'साहित्य की तरह समाज में भी दूर-दूर तक उनकी 'तारीफ़' फैल चुकी थी[३]।'

सन् २८ के ग्रीष्मावकाश में ही 'निराला' का परिचय आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी से हुआ, जब वह मगरायर अपनी डाक लेने गए थे[४]। इसी समय उनके विवाह के प्रयत्न भी हो रहे थे। 'सरोज स्मृति' में 'निराला' ने भाग्य अंक को खंडित करने के लिए भविष्यके प्रति अशंक देखने, एक सज्जन के विवाह के लिए आग्रह और सरोज द्वारा कुण्डली के फाड़े जाने की घटनाओं का उल्लेख किया है। आचार्य वाजपेयी ने यह सूचना दी है कि यह कन्या फतेहपुर जिले के किशुनपुर गांव के श्री जुगलकिशोर मिश्र की कन्या थी, जिसका विवाह 'निराला' ने अपने भतीजे बिहारीलाल से करा दिया[५]।

गांव से 'निराला' पुन: कलकत्ता गए, यहाँ उन्हें अनुवाद, संशोधन एवं विज्ञापन इत्यादि जिस भी प्रकार का काम मिला, वह सब उन्होंने किया। इसे 'निराला' ने स्वयं 'बाजार का काम' कहा है, जैसे वे अनुवाद के कार्य को 'मजदूरी' करना समझते थे। 'रवीन्द्र कविता-कानन', 'महाराणा प्रताप', 'भीष्म', 'ध्रुव' और 'प्रह्लाद' इसी प्रकार की कृतियाँ हैं, जो पापुलर ट्रेडिंग कम्पनी से प्रकाशित हुईं[६]। ये सभी जीवनियाँ लगभग १०० पृष्ठों की और १२ सेंटीमीटर लम्बे आकार की हैं।

१- 'चतुरी चमार', पृ० ८-११

२- सम्मेलन पत्रिका, क्रांति अंक, पृ० ५९२

३- 'चतुरी चमार', पृ० ११-१२

४- 'कवि निराला', पृ० १

५- ,, पृ० २१७

६- 'निराला स्मृति ग्रन्थ', पृ० १७८, सम्पादक- ओंकार शरद, शिवनारायण खन्ना का लेख।

'रवीन्द्र कविता कानन' के सम्बन्ध में श्री निहालचन्द वर्मा ने लिखा है कि इस पुस्तक की लिखाई ८ रु० फार्मा तय हुई थी, जिसका सम्पादन 'निराला' ने प्रेस में ही बैठकर किया था। 'शकुन्तला'[+] नाटक भी 'निराला' को उन्होंने ही लिखने को दिया था, जिसे उन्हीं के यहाँ बैठकर 'निराला' ने लिखा था। इसके उपरान्त बंगभाषा से वात्स्यायन कामसूत्र का अनुवाद, जिसकी लिखाई ५ रु० प्रति फार्म तय हुई थी, भी 'निराला' से निहालचंद जी ने करवाया। इसके सम्बन्ध में यह निश्चित हुआ कि ३ रु० फार्म अनुवाद की कापी देते समय और बाकी आधा छपने के बाद मिलेगा। परन्तु दयाराम बेरी के साथ कहा-सुनी हो जाने के कारण यह पुस्तक प्रकाशित नहीं हो सकी। इसका उल्लेख उग्र ने भी किया है[1]। इसी बीच वर्मा जी ने हिन्दी नाट्य समिति के लिए 'निराला' से माहेश्वरी कोलवार प्रकरण पर बिड़ला बन्धुओं के समर्थन में एक नाटक भी लिखवाया और उसका २०० रु० पुरस्कार भी दिया। इस प्रहसन में 'निराला' ने सूत्रधार और रामेश्वर बिड़ला का अभिनय भी किया था और सूत्रधार के रूप में अपनी बनाई एक कविता भी पढ़ी थी[2]। 'रस अलंकार' पुस्तक भी आर्थिक अभाव की दृष्टि से इसी समय लिखी गयी थी, जिसके प्रकाशन का असफल प्रयास शिवपूजन जी ने लहेरिया सराय, पटना से किया था[3]। श्रीरामकृष्णवचनामृत और स्वामी विवेकानन्द की कुछ वक्तृताओं के अनुवाद भी 'निराला' ने इसी समय किए थे, जिसके लिए बाजार की दर ६ रु० फार्म से अधिक ७ रु० फार्म समन्वय वाले 'निराला' को दिया करते थे[4]। इसी प्रकार की एक रचना 'हिन्दी बंगला शिक्षा' भी थी, जिसका उल्लेख 'सुधा' पत्रिका अंक की 'साहित्य सूची' में भी है[5]। 'मतवाला' से अलग होने पर और कलकत्ता छोड़ने से पहले 'निराला' ने कलकत्ता के कतिपय विद्वानों

+ -- डा० शिवगोपाल मिश्र से प्राप्त सूचना -- कि यह पुस्तक हिन्दी प्रचारक के डी०एन० कश्यप को 'मतवाला' से नकल कर उन्होंने छापने को दी थी।

१-- 'अपनी खबर', प्रवेश ११, पृ० १

२-- 'अन्तर्वेद', बसंत पंचमी, १९८२, पृ० २९-३०

३-- 'निराला की साहित्य साधना', पृ० १२०

४-- 'नए भारत के नए नेता', पृ० २०, राहुल 'महाप्राण निराला', पृ० ५५१, गंगाप्रसाद पांडेय

५-- सुधा, अप्रैल ३०, पृ० २५० ।

से अपने साहित्यिक जीवन-सम्बन्धी प्रमाण पत्र लिए । इनमें बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने उनकी कवित्व-शक्ति और ज्ञान का, लक्ष्मणनारायण जी गर्दे ने उनकी प्रतिभा और असमंजसता-के असामान्यता का, संस्कृत के विद्वान् सकलनारायण शर्मा ने हिन्दी-संस्कृत-बंगला के साथ अंग्रेजी ज्ञान, मुक्त छंद, भावों की उच्चता और दार्शनिकता का तथा पण्डित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने उनके निराले ढंग के पद्यों द्वारा उपस्थित युगान्तर, गद्य रचनाओं और विविध भाषाओं के ज्ञान का उल्लेख किया । इनके आधार पर कानपुर, बनारस, लखनऊ सब जगह काम की तलाश में 'निराला' घूमे । 'सुधा'-सम्पादक रूपनारायण पाण्डेय ने काम का समय ६ से ५ तक बताकर वेतन और क्वालिफिकेशन पूछे[१] । छतरपुर से गुलाबराय ने चण्डीदास के ग्रन्थों का पद्यानुवाद करने की बात लिखी, जिसके लिए प्रयास शिवपूजन ने किया था । 'निराला' छतरपुर गए, तीसरे रोज महाराज से उनकी भेंट हुई, चण्डीदास की खरलड़ी के अनुरूप किया अनुवाद उन्होंने गुलाबराय के माध्यम से महाराज के पास भेजा था, उन्होंने ब्रजभाषा के कवि ललितकिशोरी के छन्द के अनुवाद करने को कहा, जिसमें 'निराला' को कुछ शब्द अपनी ओर से रखने पड़े, क्योंकि उनकी खर लड़ी चंडीदास से बड़ी होने के कारण शब्द अधिक चाहती थी । वहीं रामनारायण शर्मा के कहने से गुलाबराय जी की 'शस्य श्यामलाम्' देखते हुए 'निराला' ने 'झकन-झलकन' की पूर्ति में एक दोहा बनाया । इसके बाद 'निराला' बीमार पड़ गए । मियादी बुखार में १५ दिन उपवास किया और गुलाबराय और डा० सी०भट्टाचार्य के प्रयत्नों से स्वस्थ होकर २६ वें दिन सकुशल घर लौट आए[२] । फरवरी २८ में गढ़ाकोला से अल्मोड़ा के अद्वैताश्रम के अध्यक्ष स्वामी विश्वेश्वरानन्द को बंगला में लिखे पत्र में 'निराला' ने कलकत्ता, कानपुर और छतरपुर का विवरण लिखा था । उसमें काम न होने, पैसे कम देने के उल्लेख के साथ 'निराला' ने ७० रुपये लौटते समय 'विदाई' मिलने का उल्लेख किया है । छतरपुर जाने से पहले कानपुर के डी०ए०वी० कालेज के कवि सम्मेलन की सभापतित्व करने और छतरपुर से लौटकर 'सुधा' और 'माधुरी' को लेख भेजने की व्यवस्था और गंगा पुस्तकमाला से बातचीत चलने का भी विवरण दिया है[३] ।

१- हंस , जुलाई ४६, पृ० ६१०-६१२

२- चयन, पृ० १७०-१७३

३- हंस , जुलाई ४६, पृ० ६११

श्री रामकृष्ण त्रिपाठी ने 'निराला' के जीवन-तथ्य सम्बन्धी भ्रमों का निवारण करते हुए लिखा है कि सन् १६३७ में 'निराला' अपने भतीजे बैजनाथ सहित गर्मियों के दिनों में डलमऊ आये थे, जब १३ वर्ष की आयु में रामकृष्ण का जनेऊ हुआ था। उसी समय 'निराला' की सास ने उनसे सरोज के विवाह की बात कही थी, जिसके उत्तर में 'निराला' ने पुत्री का विवाह न करने और पुत्री के सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने की इच्छा रखने पर इस चक्कर में न पड़ने की और सरोज का विवाह एक-दो वर्ष में अच्छा वर ढूंढ़ कर कर देने की बात कही थी। श्री रामकृष्ण ने ही बताया कि अगले वर्ष पुन: आने पर 'निराला' के सरोज के विवाह का प्रबन्ध न कर पाने पर उनकी सास ने 'कुछ कटु शब्दों में कर्तव्य और धर्म का संकेत करके उन्हें सरोज को अपने साथ लिवा जाने की आज्ञा दी थी।' 'निराला' दूसरे दिन कानपुर जाने वाली गाड़ी से दोनों बच्चों को लेकर गांव गए थे।[1]

सन् ३८ के शरत्काल में ही, जब 'निराला' गांव में थे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी परिषद् के उपसभापति नन्ददुलारे वाजपेयी की ओर से 'निराला' को छायावाद और रहस्यवाद पर व्याख्यान देने के लिए पत्र मिला। सभापति 'हरिऔध' जी और सेक्रेटरी सोहनलाल द्विवेदी थे। हर निगाह में आग्रह देखकर 'निराला' दो-तीन दिन पहले ही काशी पहुंचे। वे आर्य भवन में आचार्य वाजपेयी के साथ रहे, लड़कों के साथ सहज ही घुल-मिल गए। आधुनिक हिन्दी कविता का विकासक्रम बताने के बाद रहस्यवाद को मनुष्य-मन की उच्च कृति बताकर उन्होंने रहस्यवाद-छायावाद की मूल-धाराओं को समझने के लिए अध्ययन और मनन की आवश्यकता बताई। इस बात से उपाध्याय जी नाराज होकर, काम की आड़ लेकर चले गए। सभापतित्व फिर वाजपेयी जी ने किया और छायावाद को विद्रोहात्मक काव्य धारा बताया।[2]

इससे पहले 'निराला' ने एक ही भाषण विद्यासागर कालेज कलकत्ता में दिया था। सभापति, मालवीय जी से उन्होंने श्री जे०एल० बनर्जी के हिन्दी-विरोधी धारा-प्रवाह अंग्रेजी भाषण के जवाब में बोलने पर 'निराला' की प्रशंसा की थी, 'निराला' का डर उससे छूट चुका था।[3] उसके पहले बरात-विवाद के समय उन्हें शान्तिनिकेतन

१- सम्मेलन-पत्रिका, श्रद्धांजलि अंक, पृ० ४१६-४२१

२- भावुक, पृ० ३६-३८

३- ,, पृ० ३६

सुधा, मार्च, ३५, पृ० १७६-१७७

से निमन्त्रण-पत्र मिला था । परन्तु अस्वस्थता के कारण वे वहाँ जा नहीं सके थे[1] । सन् २८ में ही शिवपूजन जी रामायण की टीका के लिए और श्रीयुत रायकृष्णदास रवीन्द्रनाथ की रचनाओं का अनुवाद कार्य दिलाने की कोशिश भी कर रहे थे । 'माधुरी' में सहायक सम्पादक होने के प्रश्न पर प्रूफ रीडिंग के अभ्यास का प्रश्न उठा, 'निराला' की शर्तों को न मानने पर 'माधुरी' के सम्पादक और प्रबन्धक ने क्षमा चाही[2] ।

'मतवाला' कलकत्ता से मिर्जापुर जाने की योजना बनने पर मुंशी जी ने १५१ मधुआ बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता से 'सरोज' पत्र निकाला और 'निराला' के सहयोग की अपेक्षा की । पत्र का मोटो 'मतवाला' के सदृश ही 'निराला' ने लिखा । 'निराला' ने उसके लिए सरोज के प्रति कविता लिखी । १० पृष्ठ का 'सौन्दर्य दर्शन और कवि कौशल' लेख लिखा, इसके अतिरिक्त नारी सौन्दर्य पर लिखी उनकी एक अन्य कविता भी थी[3] ।

कुछ ही दिनों बाद 'निराला' अपने भतीजे केशवलाल और कालीचरण के पास रामकृष्ण और सरोज को छोड़कर कलकत्ता चले गए । उसी समय कालीचरण की नौकरी का प्रबन्ध होने पर उनके साथ ही रामकृष्ण भी कलकत्ता जाने को प्रस्तुत हुए, अतः 'निराला' के सबसे बड़े भतीजे बिहारीलाल जो उस समय रंगून में थे और जिनके छोटे भाई रामगोपाल ने कालीचरण की नौकरी का प्रबन्ध किया था -- की पत्नी को विदा कराके गढ़ाकोला लाया गया था और फरवरी १९२९ में रामकृष्ण ने बंगाल यात्रा को प्रस्थान किया । कलकत्ते में ही रामकृष्ण जी को शिवशेखर द्विवेदी से ज्ञात हुआ कि 'निराला' सरोज का विवाह उनसे करना चाहते हैं और दहेज में उन्हें पैतृक सम्पत्ति देना चाहते हैं । इसी समय 'मतवाला' वालों से उनका झगड़ा भी हुआ था और 'मतवाला' से अलग होकर 'निराला' शिवशेखर जी के निवास स्थान ताराचंद दत्त स्ट्रीट गए । रामकृष्ण का भार शिवशेखर द्विवेदी को सौंपकर अपने सन्यास की घोषणा कर कालीघाट तक साथ चल सकने की बात पूछी । शिवशेखर जी मित्रों सहित 'निराला' के साथ गए और

१- 'निराला स्मृति ग्रन्थ' सं० ओंकार शरद, पृ० १४ पदुमानन्द शर्मा का लेख

२- 'हंस', जुलाई ४६, पृ० ५१४

३- 'निराला : जीवन और साहित्य', पृ०८५ - रामप्रीत उपाध्याय का लेख

लौट कर 'निराला' के सन्यास लेने की सूचना भी उन्होंने दी । रात को ११ बजे 'निराला' के लौटकर आने का कारण बताते हुए रामकृष्ण जी ने स्वामी शारदानन्द के उन्हें सन्यास-धर्म स्वीकार करने की आज्ञा न देने अथवा सरोज के विवाह के उपरान्त सन्यासी होने के निश्चय की सम्भावनाओं का संकेत किया है । उसी के बाद 'मतवाला' से अपना प्राप्तव्य लेकर 'निराला' गढ़ाकोला के लिए चल पड़े । मार्ग में थोड़ी देर वह काशी उतरे और फिर रामकृष्ण को गांव जाने का आदेश देकर स्वयं लखनऊ चले गए, जहाँ से वे दो दिन बाद गढ़ाकोला पहुँचे[1] ।

सन् २६ की गर्मियों में जब आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी एम०ए० की परीक्षा देकर गांव आए, 'निराला' भी गांव में ही थे । एक दिन गांव में पुस्तकालय की स्थापना का निश्चय हुआ , और बड़ा होने के कारण वाजपेयी जी का गांव ही उसके लिए चुना गया । अपनी अदूरदर्शिता और आदर्शप्रियता का उल्लेख कर 'निराला' ने बताया है कि किताबों, पत्र-पत्रिकाओं और रुपयों के रूप में उन्होंने भी सहयोग दिया । पुस्तकालय द्वारा आस-पास की जनता के लिए व्याख्यानों की योजना हुई, जिसमें वाजपेयी जी और 'निराला' ने भाषण दिए और 'उनसे अच्छी जागृति आस-पास की जनता में हो गयी थी[2] ।' बारदोली आन्दोलन के समय भी 'निराला' ने उसका प्रबल समर्थन किया और जमींदारों द्वारा ली जाने वाली हरी-बेगारी का भी विरोध किया । अपने कहने पर जमींदारों के अत्याचारों के विरोध में किसानों के अपनी-अपनी जमीन से इस्तीफा देने पर 'निराला' ने भी अपनी ज़मीन छोड़ दी , बाद में सरकार और जमींदारों की मिलीभगत के फलस्वरूप कुछ किसानों ने तो माफ़ी मांगकर अपनी जमीनें वापस ले लीं, परन्तु ज़मीन के लिए झुकने को प्रस्तुत 'निराला' गढ़ाकोला छोड़कर चले गए[3] ।

सन् २५ से २८ के बीच 'निराला' का स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता था । प्रसाद, शांतिप्रिय द्विवेदी, कृष्ण बिहारी मिश्र, विनोद शंकर व्यास और प्रेमचन्द

१- सम्मेलन पत्रिका- श्रद्धांजलि अंक, पृ० ५२३-५२७

२- चाबुक, पृ० ३८

३- धर्मयुग, १८अक्टूबर,६६ राजदेव त्रिपाठी के लेख में उल्लिखित पं०गयाप्रसाद त्रिपाठी से प्राप्त सूचना, पृ० ४७। चतुरी चमार, पृ० १०-१५ ।

को उस समय लिखे पत्रों में 'निराला' ने निरन्तर अपनी अस्वस्थता का उल्लेख किया है[1]। सन् २८ के उपरान्त भी 'निराला' का स्वास्थ्य खराब ही था। कलकत्ता से वे स्वास्थ्य सम्बन्धी कोई रोग लेकर काशी आए थे, इसका उल्लेख वाजपेयी जी ने किया है[2]। कलकत्ता छोड़कर गढ़ाकोला आने पर सन् २८ में ही 'निराला' ने गांव में ही 'पंत और पल्लव' पर अपनी विस्तृत और प्रसिद्ध समालोचना लिखी थी[3]। इसका उल्लेख 'निराला' ने आलोचना में अंग्रेज कवियों के उद्धरण न देने का कारण बताते हुए भी किया है[4]। कलकत्ता से आने पर सन् २८-२९ में ही जब 'निराला' अव्यवस्थित रूप से लखनऊ में रह रहे थे, तब प्रयाग विश्वविद्यालय के विजयानगरम् हाल में आयोजित कवि-सम्मेलन में उन्होंने भाग लिया था। कविता सुनाने के पहले गला खराब कहकर उन्होंने गाकर कविता सुनाने की जगह मुक्त छंद सुनाया, परन्तु बाद में अनुरोध करने पर गीत भी सुनाए। बच्चन के अनुसार उनके मुक्त छंद की विशेषता 'तन्मयता, उच्चारण की सुस्पष्टता और वाणी की ओजस्विता थी।

सन् २९ में ही 'निराला' कलकत्ता से लखनऊ आए थे। स्वाकृत किताबें छपवाने के विचार से ही उन्होंने लखनऊ में डेरा डाला था। कुछ काम भी उन्हें लखनऊ में मिल गया था, और अमीनाबाद होटल में एक कमरा लेकर निश्चिन्त चित्त से साहित्य साधना करने का 'निराला' का निश्चय था[5]। प्राणाधिक प्रिय आधुनिक काव्य उपवन का 'परिमल' इसी समय निकला, जिसके लिए भार्गव जी से ढाई सौ रुपये उन्हें प्राप्त हुए थे[6]। अक्टूबर २९ की 'सुधा' में प्रकाशित साहित्य-सुधा में इस कृति का समावेश इसके पहले उसके प्रकाशन होने का प्रमाण है[7]। सन् २९ से ही 'निराला' गंगा पुस्तक माला में स्थायी रूप से काम करने लगे थे, 'सुधा' के सम्पादन का पूरा-पूरा

१- 'निराला', पृ० ९-- डा० रामविलास शर्मा
२- 'कवि निराला', पृ० ५ -- निराला : काव्य और व्यक्तित्व', पृ०५९-धनंजय वर्मा
३- 'निराला', पृ० १६८
४- 'प्रबन्ध पद्म', पृ० १०६
५- चतुरी चमार, पृ०१४
६- 'निराला की साहित्य साधना', पृ० १७८, डा० शर्मा
   सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला डा० चन्द्रकला, पृ० २४
७- सुधा, अक्टूबर २९, पृ० ३५७
   भगीरथ मिश्र ने अपनी पुस्तक के पृ०२९ और ३३ पर प्रकाशन तिथि क्रमशः १... और १३... दी है।

भार उनके ऊपर था । सन् २६ में 'निराला' लखनऊ आए थे, अर्वाचीन कवियों में वे केवल पंत और रवीन्द्र की ही बातें करते थे, और स्वयं चाहे जो कहें, परन्तु दूसरों की बुराई उन्हें असह्य थी, इसका उल्लेख अमृतलाल नागर ने किया है[1]।

अर्थाभाव में इस समय 'निराला' ने कहानी और उपन्यास आदि भी लिखने प्रारम्भ किए, 'सुधा' और 'माधुरी' के लिए बंगाल के वैष्णव कवियों पर लेख लिखे और उनके अनुवाद किए, अपने विरोधियों को उत्तर देते हुए आलोचनात्मक लेख भी लिखे । पद्य के साथ इस अवधि में गद्य-साहित्य का प्रचुर सृजन 'निराला' ने किया । साहित्य, समाज, राजनीति और धर्म सभी क्षेत्रों में रूढ़ियों का विरोध और क्रान्ति का आह्वान करते हुए 'निराला' ने लेख लिखे । श्री रामकृष्ण त्रिपाठी ने अपने पिता का संक्षिप्त परिचय देते हुए इस तथ्य का उल्लेख किया है कि 'निराला' की साहित्यिक-साधना के फलस्वरूप मिली दरिद्रता के कारण उनका परिवार भी दुःख ही झेलता रहा और सभी स्थितियों में परिवार और बच्चों का उन्हें ध्यान रहता था, समय-समय पर वे मदद भी किया करते थे[2]।

सन् २६ के श्रावण में जब शुक्रास्त था, अर्थाभाव की स्थिति में ही 'निराला' ने सरोज का विवाह किया । सामाजिक योग के नियमों को तोड़ते हुए इस आमूल नवल विवाह में कान्यकुब्ज समाज में एक तहलका मचा दिया था । लग्न न रहने और विवाह के स्थगित करने के मन्त्री पंडित का प्रस्ताव भी 'निराला' ने स्वीकार न कर स्वयं विवाह कर देने और उन्हें विवाह देखने के लिए आमंत्रित किया । अपने पुत्र से दहेज में अपने हिस्से की कुल जायदाद दे देने के सम्बन्ध में भी उन्होंने परामर्श किया । दान-दहेज, न्यौता, बरात इत्यादि की उपेक्षा कर 'निराला' ने पत्र द्वारा शिवशेखर द्विवेदी को बुला लिया था । पंडित से लेकर प्रजावर्ग तक सब के विरोध करने पर 'निराला' ने स्वयं सारी तैयारी की । वर-वधू के लिए सादी के कपड़े लिए, भगरामर, गढ़ेवा, जाजनपुर, कटहट, मौहकमगंज आदि गांवों के कान्यकुब्ज मित्रों को विवाह देखने के लिए आमंत्रित किया। बाद में गांव वालों ने भी सहयोग किया और एक-डेढ़ घण्टे में विवाह के सारे कृत्यों के

१- स्मृति चित्र, पृ० ६३

२- अन्तरवेद, निराला स्मृति अंक, पृ० १४

समापन के उपरान्त आगन्तुकों को पेड़े खिलाकर ससम्मान विदा किया गया । विवाह के कुछ दिनों बाद 'निराला' ने अपनी दोनों सन्तानों को लखनऊ भेज दिया और वहाँ से जाड़ों में सरोज को सब कुछ देकर ससुराल ग्राम रसिया, पो० बदरका, जिला रायबरेली भेजा गया था[1]।

सन् ३० में सरोज ससुराल में थी, रामकृष्ण लखनऊ में थे और करबंदी आन्दोलन में उस समय एक कांग्रेसी की तरह लखनऊ और लालगंज क्षेत्रों में आन्दोलन सम्बन्धी कार्य कर रहे थे । 'निराला' उस समय लखनऊ में थे[2]। सन् ३० में 'निराला' हीवेटरोड के भार्गव मैजिस्टिक होटल में रहा करते थे, जिसका उल्लेख उन्होंने 'देवी' कहानी में किया है, और उसके टूटने पर वे ५८ नं० नारियल वाली गली के दुमंजिले मकान में रहने लगे थे, जहाँ उन्होंने 'गीतिका', 'तुलसीदास' और 'प्रभावती' का प्रणयन किया था ।

निराला सन् ३० में ही अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कलकत्ता वाले अधिवेशन में गए, जिसके सभापति रत्नाकर थे । दिल्ली वाले सम्मेलन से यद्यपि 'निराला' की यह धारणा दृढ़ हो गयी थी कि हिन्दी के प्रवर्तनकाल के लिए जो विचार प्रणाली प्रशस्त और प्रखर होनी चाहिए, वह हिन्दी में नहीं है, तथापि वातावरण के कुछ बदलने और दूसरे उनके कार्य का केन्द्र कलकत्ता होने के कारण फिर साहित्य की प्रतिष्ठा के लिए कलकत्ते का वातावरण --जहाँ बंगाली हिन्दी प्रेमी विद्वान् भी सम्मिलित होते हैं--अनुकूल मालूम देने के कारण 'निराला' उस अधिवेशन में शामिल हुए । सम्मेलन में जे०एम०सेन गुप्त ने बंगला की उच्चता से अलंकृत भाषण दिया । उस पर 'निराला' की टिप्पणी यह थी ,"हिन्दी वाले जैसे उसकी ऊँचाई की समझ भी न रखते हैं । लेकिन चूंकि महात्मा जी ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया है- चूंकि हिन्दी बहुतों की जुबान है, इसलिए वे कृपा से हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानते हैं ।" सेनगुप्त महाशय की बंगला की तारीफ के साथ हिन्दी से अपनी अभिज्ञता का उल्लेख कर 'निराला'

१- अन्तरवेद, निराला स्मृति अंक, पृ० १४-१५- सम्मेलन पत्रिका का श्रद्धांजलि अंक, पृ० ५२२,५२७-५२८।

२- अनामिका, पृ० १३४-१३५- सम्मेलन पत्रिका का श्रद्धांजलि अंक, पृ०५२२

ने सम्मेलन के अधिकारियों से सेनगुप्त को प्रबोध देने के लिए पांच मिनट का समय मांगने और उस अनुरोध के अस्वीकार होने पर यह समझाने, कि 'हिन्दी कुछ असाहित्यिकों के हाथों का पुतला है' की बात लिखी है[1]।

बंगीय साहित्य परिषद् में 'निराला' ने सेनगुप्त महाशय की वक्तृता का उत्तर दिया, जहाँ डा० सुनीति कुमार चटर्जी के द्वारा हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के प्रतिनिधि आमंत्रित थे। सभापति यहां रत्नाकर जी थे। बाबू शिवपूजन सहाय के कहने पर जब 'निराला' मंच पर गए, तब डा० चटर्जी ने उनकी प्रशंसा की। वयोवृद्ध बंगाली साहित्यिकों के मध्य हिन्दी की अप्रतिष्ठा का संदेह 'निराला' को हुआ और हिन्दी की तरफ से बोलने वालों में उनका नाम पुरुषोत्तमदास टण्डन ने उनके विशेष अनुरोध पर रखकर उन्हें पन्द्रह मिनट का समय दिया। 'निराला' ने यहाँ दो-एक गाने गाए, फिर भाषण हुए। टण्डन जी ने हिन्दी के खिलाफ लिखने के कारण 'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक बाबू रामानन्द चटोपाध्याय पर भी आक्षेप किया और हिन्दी का समर्थन किया। अमृतलाल चक्रवर्ती ने यहाँ पुरानी बंगला में हिन्दी के महत्व पर भाषण दिया और 'निराला' ने उसी समय की बंगला में 'प्राचीन हिन्दी और नवीन बंगला' पर वक्तृता की और उच्चता में दोनों को बराबर बताया[2]।

कलकत्ता कवि-सम्मेलन में भी 'निराला' सम्मिलित हुए। स्वागताध्यक्ष पं० गांगेय नरोत्तम शास्त्री थे, कविवर माधव शुक्ल ने 'निराला' के लिए अपनी कुर्सी खाली कर कार्यकर्ता का फर्ज अदा किया। शास्त्री जी की स्वागत कविता के बाद दुर्गाप्रसाद जी खेतान ने 'निराला' से अपनी कविता पढ़ने को कहा। शोरगुल के बीच कविता न पढ़ने का प्रतिवाद न कर 'निराला' जब उठे, उनके सम्मुख लाउडस्पीकर लाया गया। 'निराला' ने कवि सम्मेलनों के लिए यंत्र वहीं, शांति की आवश्यकता का उल्लेख करते हुए इस कवि सम्मेलन के सम्बन्ध में लिखा है कि यद्यपि यंत्र के रूप में कृत्रिमता की कैद में कृत्रिम स्वर का आनन्द देना कठिन था, फिर भी सब चुपचाप सहन कर उन्होंने 'राम-राम करके एक छोटा-सा गीत पढ़ दिया' यहीं 'निराला' ने हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की साहित्यिकों की अपेक्षा धन और कानून द्वारा साहित्य के उद्धार की

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १८१-१८३

२- ,, पृ० १८३-१८५। 'सुधा' मार्च ३५, पृ० १७६, सौरभ(सम्पादकीय विचार) बंगालियों की प्रान्तीयता।

आवश्यकता आत्मा के प्रति अवहेलना और अविश्वास के साथ साहित्यिकों से सम्मेलन का परित्याग करने का अनुरोध किया था[1] ।

सन् ३१ में 'निराला' नेशनल हेराल्ड के कर्मचारी श्री रामप्रसाद के यहां भी रहे थे, जहां मिलने वालों के तंग करने के कारण वे मकान के बाहर ताला लगवा कर चामी खुद ले लिया करते थे[2] । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इसी वर्ष लीडर प्रेस की लेखमाला और पंत जी का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उस समय तक 'निराला' ने श्री पंत के काव्य पर अपना मत प्रकट किया था[3] । सन् ३४ में श्री पंत जी जिस समय कालाकांकर में थे, 'निराला' वहां गए थे और पंत जी के साथ उन्होंने फैन्सी ड्रेस में भाग लिया था । कुंवर सुरेश सिंह ने लिखा है कि 'निराला' ने कुकुरमुत्ते की तरकारी बनाकर खिलाई था, पकाते समय उसकी तारीफ के पुल बांधे और स्वतंत्र रूप से उसमें के गुण के कारण उसे सर्वश्रेष्ठ कहा[4] ।

इसी अवधि में मित्रों द्वारा 'रंगीला' नामक पत्र निकालने का निश्चय होने पर 'निराला' पुन: लखनऊ से कलकत्ते गए, परन्तु वहां से वे शीघ्र ही लौट आए । जाने से पहले ही उनकी मानसिक स्थिति काफी गिरी हुई थी, परन्तु आर्थिक संकट को देखते हुए उनका जाना भी जरूरी था[5] । पत्र का मोटो 'निराला' ने लिखा और ४ जून १९३४ को 'रंगीला' (साप्ताहिक) का जो प्रथम अंक निकला, उस पर पहली बार सम्पादक के रूप में पं०सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का नाम प्रकाशित हुआ । मुखपृष्ठ पर प्रसाद का प्रसिद्ध गीत 'बीती विभावरी जागरी' प्रकाशित हुआ । पहले ही अंक के 'चाबुक' स्तम्भ में 'निराला' ने 'प्रवासी' में छपे टैगोर के पत्रों पर कड़ी टिप्पणी करते हुए उनकी खबर ली । 'रंगीला' में 'निराला' ने 'कृष्ण जी का विवाह' निकाल कर अंग्रेजी-उर्दू और हिन्दुस्तानी के समर्थकों, ब्रजभाषा दल वालों, हिन्दुस्तानी एकेडमी

१-'वीणा' अक्टूबर ३१,पृ०१००६-११,संपादकीय विचार कवि सम्मेलनों का नियंत्रण,

२१ सितम्बर के भारत से उद्धृत । २- निराला स्मृति ग्रंथ,विविधा,पृ०८६ब्रजकिशोर मिश्र का लेख।
~~२---स्मृति-चित्र,पृ०२७,कवि-पंत,-सम्मेलन-पत्रिका-का-श्रद्धांजलि-अंक,पृ०३९५~~
३- स्मृति चित्र,पृ० ११३
४- ,, पृ०२७ कविपंत, सम्मेलन पत्रिका का श्रद्धांजलि अंक,पृ०३९५
५- कवि निराला ,प०७ आचार्य वाजपेयी

आदि सभा पर गूढ़ व्यंग्य किया । अपने दो गीत 'रे अपलक मन' और 'मेघ के घन केश' तथा कहानी 'श्यामा' भी 'निराला' ने प्रकाशित किए । मतवाला के 'चाबुक' की तरह यहाँ 'मजाकिया' स्तम्भ पर उन्होंने सब पर व्यंग्य किए । अगले अंकों में 'विशाल-भारत' के चतुर्वेदी जी को लक्ष्य कर काव्य की स्थिति पर विचार किया, कैप्टन आवारा नाम से 'परिचय' कहानी लिखी । 'रंगीला' के संचालक के अपनी व्यावसायिक बुद्धि के अनुसार 'निराला' के नाम और लोकप्रियता का अर्थ लाभ के लिए दुरुपयोग करने की चेष्टा करने पर 'निराला' सन् ३२ के जेठ में 'रंगीला' से अलग होकर वाजपेयी जी के यहाँ प्रयाग आ गए, जहाँ वे 'रंगीला' के सम्पादन के लिए कलकत्ता जाते समय भी रुके थे[1]।

कलकत्ता और रंगीला से वापस लखनऊ आकर 'निराला' ने पुनः 'सुधा' का सम्पादन-कार्य करना प्रारम्भ किया । उनके 'कथानक-साहित्य' की सर्जना का प्रारम्भिक काल यही था, जिसके मूल में आर्थिक अभाव की ही स्थिति थी । अपने काव्य की तुलना में अपने इस साहित्य को 'निराला' स्वतः तुच्छ स्वीकार करते हैं । अपनी कहानियों पर अवश्य सम्मति देते हुए उन्होंने सभी कहानियों की मौलिकता और सत्य घटनाओं के आधार पर उनका चित्रण करने का उल्लेख कर 'चतुरी चमार' को सर्वश्रेष्ठ, 'सुकुल की बीबी' के मौलिक स्थान होने और 'देवी' को अच्छा बताया था[2]। 'ऊषा' नाटिका लिखने और अभिनय करने की अपूर्ण योजना भी उन्होंने बनाई थी, जिसमें प्रसाद और पंत के साथ मैथिलीशरण गुप्त के सहयोग की अपेक्षा भी उन्होंने की । अपने एक लेख में 'निराला' ने नाटक में अपने अवतरित होने का निश्चय का भी उल्लेख किया है[3]। जानकी पहाड़ी ने 'निराला' पर लिखते हुए बताया है कि रेडियो के लिए नाटक लिखने को 'निराला' तैयार थे, परन्तु इस शर्त पर कि संचालन वे खुद ही करेंगे । रेडियो वालों के तैयार न होने पर 'निराला' चुप रहे थे[4]। भार्गव मैजेस्टिक होटल में रहते हुए ही 'निराला' ने 'देवी' की कथा देखी और लिखी । साहित्य-सर्जना के साथ

१- 'युयुत्सा' दिसम्बर ६८, पृ०१०३ डा० कृष्ण बिहारी मिश्र का लेख 'हिन्दी पत्रकारिता और निराला', निराला की साहित्य साधना, पृ०१६८-१६६, गुप्त, पृ०१२४ ।

२- निराला अभिनन्दन ग्रन्थ, संपादक बरुआ, पृ० ८८ ।

३- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०४८ । ४- 'हंस', मार्च ४७, पृ०

अपने चतुर्दिक गतिविधियों को भी 'निराला' सजग दृष्टि से देखते रहते थे । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अभिनन्दन पर काशी में नेहरू के सम्मान और उनके भाषण पर डा० सम्पूर्णानन्द के जौनपुर सम्मेलन के भाषण पर, स्वाधीनता संग्राम में कांग्रेस के नेतृत्व आदि पर 'निराला' निरन्तर 'सुधा' में लिख रहे थे । 'उच्छृंखल' नामक उपन्यास लिखने का निश्चय भी उन्होंने किया था, जो पूरा नहीं हो सका । उसके स्थान पर 'निरुपमा' के प्राथमिक दो अध्याय उन्होंने लिखे, जिसे पूरा बाद में किया । वाजपेयी जी के शब्दों में "इन वर्षों में उनकी परिस्थितियां उन्हें यथेष्ठ मानसिक संतोष, संतुलन और शान्ति देने में असमर्थ थीं[1]।"

सन् ३४ में डा० रामविलास शर्मा ने 'निराला जी की कविता' पर प्रशंसात्मक लेख लिखा, जो २३ जुलाई ३४ के 'अभ्युदय' में प्रकाशित 'निर्मल' के लेख की प्रतिक्रिया था, मुंशी नवजादिकलाल ने जिसे 'चांद' में प्रकाशित किया[2]। दुलारेलाल भार्गव की परिमल विषयक उदासीनता में भी डा० शर्मा की परिमलकृत प्रशंसा से कोई अन्तर नहीं पड़ा[3]। 'चांद' के नवम्बर ३४ के अंक में ही श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का एक लेख 'भारत की विधवा' भी प्रकाशित हुआ था, गीतिका में संकलित 'सखि, धीरे अब री', 'साधिक करो प्राण', 'नयनों का नयनों से बंधन' और 'कैसी बजी बीन' गीत भी 'चांद' में ही प्रकाशित हुए थे[4]। 'गीतिका' के गीत 'तुलसीदास' और 'प्रभावती' तक की रचना 'निराला' ने ५८ नारियल वाली गली में रहकर ही की थी ।

लखनऊ में रहते हुए भी 'निराला' ने मिशन से अपना नाता तोड़ा नहीं था, वे रामकृष्ण मिशन के लखनऊ केन्द्र में जाते थे । श्री रामकृष्ण मिशन (लखनऊ) की गतिविधियों और कार्य आदि पर एक लेख भी उन्होंने लिखा[5], जिसके द्वारा उसके इतिहास पर प्रकाश पड़ता है, साथ ही सन्यासियों और मिशन के सम्बन्ध में 'निराला'

१- कवि निराला, पृ०८
२- विराम चिन्ह, पृ०६३, डा० शर्मा
~~३- चांद नवम्बर ३४, पृ०२९-३५~~
३- निराला की साहित्य साधना, पृ०२३६
४- चांद जून ३४, नाडु(कावेरी) अक्टूबर ३५, वागीश्वरी फणताल, अप्रैल३८ और सितम्बर३६ वागीश्वरी (फणताल)।
५- 'माधुरी' अक्टूबर ३५, पृ० ३८३-३८५ ।

की पूर्व विज्ञप्त मान्यताओं की अपरिवर्तित स्थिति का परिचय भी प्राप्त होता है। लखनऊ में रहते हुए ही लिखी 'अर्थ', 'भक्त और भगवान', 'स्वामी सारदानन्द' 'महाराज और मैं' तथा 'देवी' आदि रचनाएं भी इसका साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं। यह अवश्य है कि जब मिशन के वार्षिकोत्सव में अध्यक्षता के लिए सिद्धान्त जी को बुलाया गया, 'निराला' उसमें सम्मिलित नहीं हुए, क्योंकि यह स्थिति उनके क्रान्तिकारी वेदान्त के अनुकूल नहीं थी। वेदान्त की अपनी व्याख्या में वह जितना महत्त्वपूर्ण आत्मा को मानते थे, उतना ही शरीर को, इसका उल्लेख डा० शर्मा ने किया है[1]।

अगस्त सन् ३५ की 'माधुरी' में प्रकाशित 'स्वकं' 'सकाया' लेख में 'निराला' ने आत्म-दोष-दर्शन को आत्म-गुण कीर्तन का उपाय कहकर और खड़ी बोली की वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए मुक्त छंद को स्वर की बुनियाद आनन्द पर प्रवाहित बताया है। यहां उन्होंने लिखा है --' एक दिन देखा, 'परिमल' पांच साल में केवल आठ सौ रुपया देते हैं और उसके प्रकाशक किसी व्यक्ति या संस्था को पुरस्कार देते हैं, तो किताबों में 'परिमल' अवश्य होता है।' अपने चिरंजीव की संगीत में स्वर-साधना का उल्लेख कर 'निराला' ने आगे लिखा है कि उनके स्वर में करुण-रस का अभाव रहने के कारण अर्थ देने वाले भी उन्हें करुण रस सुनाने लगे, उन्होंने पुत्र को फीस देने के प्रश्न पर निरुत्तर रहकर उन्हें नाना के घर भेजा और अपने बम्बई जाने के आशय का पत्र लिखा। दस-पन्द्रह दिन बाद जब श्री रामकृष्ण को पता चला कि 'निराला' यथास्थान विराजमान हैं, वह वापस आकर स्वावलम्बी हुए। पुत्र की नाराज़गी का उल्लेख करते हुए 'निराला' लिखते हैं :'मुलाकात होने पर मुंह फेर लेते थे। मुझसे सारी दुनिया इसी तरह पेश आई या आंख न मिलाता दिखा, यह मेरी प्रतिभा का परिचय था या और कुछ भगवान जाने। जैसे रुपया पैदा करने में लाचारी थी, वैसे ही चिरंजीव से मिलने में[2]।

'निराला' प्रयाग विश्वविद्यालय के कवि-सम्मेलन में तो सम्मिलित हुए थे[3], और सन् ३५ में ईविंग क्रिश्चियन कालेज के कवि सम्मेलन में भी उन्होंने भाग लिया था। पर लखनऊ में विश्वविद्यालय से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। कान्यकुब्ज कालेज

१- 'निराला की साहित्य साधना', पृ० २५२-२५३।

२- 'माधुरी' अगस्त ३५, पृ० ११२-११३ 'सकाया'।

के प्रिन्सिपल श्री बालकृष्ण पाण्डेय अवश्य उन्हें कालेज के साहित्यिक समारोहों में बुलाया करते थे । कान्यकुब्ज कालेज में ही कविता-पाठ के लिए आमंत्रित होने पर 'निराला' ने गौरव करने और उसमें बालास मिर्चे डालने के उल्लेख से अपना भाषण शुरू करते हुए अपनी कविता के स्वाद को भी गढ़िया और सारा बताया था[१]। 'सुधा' में छपी 'निराला' की 'वनबेला' कविता उन्होंने कान्य कुब्ज कालेज, लखनऊ के छात्रों को पुरस्कृत है, 'जिन्होंने दोने में बेले की कलियाँ उन्हें दी थीं[२]।' सन् ३५ की ही सुधा के प्रारम्भिक वर्षों में[३] 'निराला' का 'तुलसीदास', काव्य प्रकाशित हुआ। युग के महाकवि की सांस्कृतिक चेतना को इतिहास, जीवन और समाज आदि सभी पार्श्वों का स्पर्श कर प्रवाहित यहाँ 'निराला' ने चित्रित किया है, । डा०रामविलास के शब्दों में 'स्थापत्य की ऐसी पूर्णता, इतने बड़े पैमाने पर ऐसा सुगठित काव्य-शिल्प उनकी किसी रचना में न आया था । वह थक गए थे, पर प्रसन्न थे ।' इसी कृति के सम्बन्ध में दुलारेलाल भार्गव ने शिकायत की थी कि इस कविता की हानि से 'सुधा' की ग्राहक संख्या घट गयी[४]। भार्गव जी की 'दुलारे दोहावली' के प्रथम संस्करण की भूमिका 'निराला' ने लिखी थी । एक लेख भी उन्होंने मंगलाचरण दोहे के प्रथम ६७ संस्करण--का अर्थ करते हुए 'वीणा' में लिखा था 'जुही की कली' पर लिखते हुए ही 'निराला' ने यह भी बताया है कि 'वीणा' में छोड़कर अन्यत्र ० दूसरे आलोचकों द्वारा उसका पूर्ण सौन्दर्य प्रदर्शन नहीं किया गया[५]। लखनऊ में रहते हुए ही 'निराला' ने बिहार के कवि गुलाब के पहले कविता संग्रह की भूमिका भी लिखी थी[६]। भूमिका लिखवाने कवि के साथ कृष्ण देव प्रसाद गौड़ भी गए थे । बलभद्रप्रसाद दीक्षित के सातापुरी अवधी में लिखे पदों की भूमिका भी 'निराला' ने लिखी थी, इसका उल्लेख उन्होंने स्वयं ही एक लेख में किया है । यहाँ दीक्षित जी से ही किसी -किसी कहानी का प्लाट मिलने का उल्लेख भी 'निराला' ने किया है[७]। 'सिरनी' कथा

१- 'निराला स्मृति ग्रन्थ' - विविधा, पृ०४६-ब्रजकिशोर मिश्र का लेख
२- 'सुधा' अगस्त ३७,पृ० ३६
३- ,, फरवरी,मार्च,अप्रैल,मई और जुलाई ३५ के अंक ।
४- 'निराला की साहित्य-साधना', पृ० २८२
५- 'प्रबन्ध प्रतिमा', पृ० २१० । 'वीणा' की फाइल में 'जुही की कली' पर कोई लेख नहीं मिलता ।
६- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ११ फरवरी ६८,पृ०३२ गौड़ जी का संस्मरण ।
७-'माधुरी', फरवरी ४३,पृ० १५ ।

प्रकार की कहानी है, यह डा० शर्मा ने लिखा है ।

५८ नारियल वाली गली से जानकी वल्लभ शास्त्री के लिये अपने ३०-७-३५ के पत्र में 'निराला' ने कई कारणों से अपने खिन्न रहने, काम करने पर जैसे थक जाने का उल्लेख किया है । इस पत्र में उन्होंने यह भी लिखा था कि दुलारेलाल भार्गव की बहुत-सी बातें उन्हें पसन्द नहीं हैं,'सुधा' के विशेषांक के लिए १२० पंक्तियों की एक कविता 'मित्र के प्रति' की पहले ही दे देने पर भी विशेषांक में 'निराला' का नाम नहीं दिया गया था । 'सरस्वती' को पंत जी पर लेख भेजने और 'ऐतिहासिक रोमांस के रूप में लिखे अविशोधित उपन्यास' प्रभावती' का उल्लेख भी इसी पत्र में किया गया है[1]। पंत जी पर लिखा अपना यह लेख और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी पर लिखा एक अन्य लेख दोनों 'निराला' ने वापस आने पर नष्ट कर दिये थे[2]।

१४ अगस्त ३५ के शास्त्री जी को लिखे पत्र में 'निराला' ने १७ साल की उम्र में कन्या का देहान्त होने और उस समय अनेक प्रकार के उलझनों में रहने का उल्लेख किया है[3]। डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है कि जिस समय सरोज का देहान्त हुआ,'निराला','सुधा' के लिए प्रूफ संशोधन का कार्य किया करते थे । उस समय उनका मासिक वेतन ५०) था और 'गंगा' पर जब तक 'निराला' को पारिश्रमिक मिला, सरोज नहीं रही थी[4]। 'निराला' की व्यथा 'सरोज स्मृति' रचना में अभिव्यक्त हुई है । आचार्य वाजपेयी के मतानुसार अपने-आप में आत्मलीन होकर बात करने की आदत उन्हें इसी समय पड़ी थी[5]। अपने ५-६-३५ के पत्र में 'निराला' ने शास्त्री जी को यह सूचित किया था कि वे 'गीतिका' रायकृष्ण दास के भारती भंडार को देने वाले हैं, उसके सम्बन्ध में प्रयाग और काशी जाने वाले हैं । इसी पत्र में यह भी लिखा था कि इसी महीने की १२ तारीख को वे ५८ नारियल वाली गली का मकान छोड़ देंगे । शास्त्री जी ने भी इस बात का उल्लेख किया है

१- साधना , वर्ष १,अंक ६,पृ०३५
२- नया साहित्य, कवि की ५० वीं वर्ष गांठ पर प्रकाशित 'निराला अंक',पृ०४२
डा० शर्मा का लेख ।
३-'साधना',वर्ष १,अंक २-४,पृ० ८७
४-'निराला',पृ० ११६
५-'कवि निराला',पृ० ६ ।

कि 'गीतिका' के प्रकाशन के समय 'निराला' एक लम्बे अर्से तक काशी में पं० वाचस्पति पाठक के घर ठहरे थे[1]।

शास्त्री जी को ११-२-३६ का पत्र भी 'निराला' ने नारियल वाली गली से ही लिखा, जिसमें अपनी मानसिक स्फूर्ति होने और केवल विश्वास रखने का उल्लेख 'निराला' ने किया है। इसी पत्र में वे लिखते हैं--" दूसरों पर भी बैर नहीं रखता, पर न जाने क्यों, मुझसे बैर दूसरों से मिला। अप्रिय सत्य में, सत्य को छोड़कर याद से अप्रियता की ही। वैसे तो मैं हृदय से अपने को निर्दोष ही पाता हूं। और अप्रिय सत्य के प्रयोग मुझे आजकल करने पड़ते हैं कि लोग सत्य प्रियता के नाम से असत्य या अर्द्ध सत्य का मतलब समझते हैं।" इलाहाबाद जाने और वहाँ १०-१२ दिन रहने का उल्लेख भी इसी पत्र में है[2]। १७ तारीख का पत्र 'निराला' ने इलाहाबाद से ही लिखा था, जिसमें 'प्रभावती' के एक फार्म की छपाई बाकी रहने और 'निरुपमा' को देने के साथ पुन: दस दिन के करीब वहाँ रहने की बात लिखी है। २७ फरवरी के प्रयाग से लखनऊ वापस जाने का उल्लेख 'निराला' ने अपने ३१-३-३६ के पत्र में किया है, जहाँ उन्होंने लिखा है --'कटु आलोचना मेरा उद्देश्य नहीं। हो भी जाय अगर कहीं कटुता तो उसे रस मानता हूं। कहने के लिए दुनिया है। --'मुर्दे खान हजार'-- मेरे आविर्भाव से पहले की रचना है।' १७ अप्रैल को लिखे पत्र द्वारा 'निराला' के आर्थिक अभाव का परिचय मिलता है। 'सखी' और 'प्रभावती' वे शास्त्री जी को इस कारण नहीं भेज सके, क्योंकि कांग्रेस भर में उनका अर्जित धन समाप्त हो गया, अत: उन्होंने या तो आठ आने के टिकट भेजने का या बैरंग भेजने के लिए शास्त्री जी को लिखने की बात लिखी है[3]। इसी कांग्रेस की एक सत्य घटना पर 'निराला' ने 'कला की रूपरेखा' कहानी लिखी थी। 'गांधी जी से बातचीत' भी इसी समय उन्होंने की थी जिसका विवरण देते हुए बापू के हिन्दी ज्ञान और नेतृत्व पर 'निराला' ने कटाक्ष किया था।

१- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ११ फरवरी, ५२, पृ० २०, 'महाकवि निराला और मैं'।
२- साधना, वर्ष १, अंक ७-८, पृ० ३५-३८
३- साधना, वर्ष १, अंक ९-१०, पृ० ३५

३० अप्रैल के पत्र में 'निरुपमा' के छपने और गर्मियों में 'गीतिका' और निरुपमा के प्रकाशित हो जाने का उल्लेख है[1]। सन् ३६ के जून महीने में लिखे पत्रों द्वारा निरुपमा और गीतिका के सम्बन्ध में पुन: प्रयाग जाने और वाचस्पति पाठक के साथ नवाबगंज काशी में १५-२० दिन रहने का विचार की सूचना मिलती है। सब तरह की विपत्तियों का उल्लेख करते हुए 'निराला' ने लिखा,' आपकी यथाशक्ति लड़ता है, मैं भी जीने के लिए लड़ता हूं। साहित्य अपना रास्ता आप निकाल लेता है। मैं उसका एक बहुत ही छोटा उपकरण-कारण हूं[2]।' उसके पहले भी एक पत्र में 'निराला' लिख चुके थे,' मुझे लोग नहीं मानते, इसलिए इस साहित्य में मैं आया हूं। जिन्हें मानते हैं, वे साहित्यिक होते तो मेरे आने की ज़रूरत न होती।

सन् ३६ की गरमियों में बनारस जाने पर 'निराला' प्रेमचन्द से भी मिले थे। प्रेमचन्द की यथार्थ स्थिति पर प्रकाश डालते हुए और अपने दु:ख एवं क्षोभ को प्रकट करते हुए पहली अक्टूबर ३६ के भारत में 'निराला' ने एक लेख लिखा, 'हिन्दी के गर्व और गौरव प्रेमचंद जी'। राजनीतिक नेताओं की तुलना में साहित्यिक की उपेक्षा को लज्जाजनक बताते हुए 'निराला' ने लिखा,' इसी अभिशाप के कारण हिन्दी महारानी होकर भी अपनी प्रान्तीय सखियों की भी दासी है।' इसी लेख में वाजपेयी जी के साथ प्रेमचन्द से मिलने जाने का भी उल्लेख है। 'गीतिका' के छप चुकने पर जब वे प्रेमचन्द को देखने गए,' प्रेमचंद जी अत्यन्त दुर्बल' हो गए थे। 'निराला' को शंका हो चली। सिंह को गोली भरपूर लग गयी है।' गुप्त जी के अभिनन्दन के बाद भी 'निराला',' वाचस्पति पाठक एवं पद्मनारायण जी आचार्य के साथ प्रेमचन्द के दर्शनों के लिए गए थे। प्रेमचन्द की स्थिति पर विचार करते हुए इसी लेख में 'निराला' ने लिखा था --'मन ने कहा -'तुम्हारे लिए भी यही फैसला है, जिसने जैसा किया वैसा पाया' मैंने कहा,--' मैं इसी तरह गुज़रूंगा। अगर कुछ काम कर सका तो नाम-यश मुझे नहीं चाहिए।' प्रेमचन्द ने इसे अन्तिम विदा कहा था, लेख समाप्त करते हुए 'निराला' ने प्रार्थना की-- हे ईश्वर! केवल दस वर्ष[3]।' ०७-११-३६ को वाचस्पति पाठक के यहां, लीडर प्रेस, प्रयाग से लिखे पत्र में 'निरुपमा' के तैयार हो जाने और

१- साधना, वर्ष १, अंक ११-१२, पृ०७४३
२- ,, , वर्ष २, नववर्षांक, पृ०८८७
३- के कलम का सिपाही, पृ० ६४७-६५१

'गीतिका' के कठ तैयार होने की सूचना है । १२ जनवरी ३७ को पत्र में 'काम करना बंद करने पैर की अवस्था के उत्तरोत्तर खराब होने ३-४ दिन से अच्छी दवा मिलने, जिससे ४० दिन में फायदा होने की उम्मीद है , कवि सम्मेलन में एक हफ्ते के लिए लखनऊ जाने और वहां अपनी पुस्तकों के प्रकाशन के लिए बातचीत करने का उल्लेख है[1] ।

शास्त्री जी को लीडर प्रेस प्रयाग से, पाठक के साथ रहते हुए जो पत्र 'निराला' ने ६ फरवरी ३७ को लिखा, उसमें उन्होंने लखनऊ का विवरण दिया है । लखनऊ जाने की इच्छा न होने पर भी आचार्य वाजपेयी के बुलाने, कवि-सम्मेलन का निमन्त्रण आने के और प्रदर्शिनी देखने का लोभ होने के कारण 'निराला' लखनऊ गए थे । सम्मेलन से १०१ रुपये पेशगी लेना वे चाहते थे । सम्मेलन वालों ने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए, आदमी भेजकर २५) 'निराला' को दिलाए और केवल एक रोज दस मिनट पढ़ने के लिए प्रार्थना की । दूसरे दिन 'निराला' ने पांच मिनट में दो कविताएं पढ़ीं । दुलारेलाल भार्गव से १५) लेकर 'निराला' ने खर्च पूरा किया । दलज्युत होकर 'निराला' उस समय दूसरी जगह एक विद्यार्थी के पास रहे, यह भी उन्होंने लिखा था ।

शास्त्री जी को ५ अगस्त ३७ का पत्र 'निराला' ने १२२ मकबूलगंज, लखनऊ से लिखा था, जिसमें होटल में उनका पत्र मिलने की चर्चा के साथ एक महीने पहले तक ४० दिन ससुराल में रहने की सूचना भी थी । बड़थ्वाल जी के यहां रात भर काशी रहने, प्रसाद से मिलने और उनको दुर्बल देखकर दुःख और शंका होने, उसी दिन शाम को प्रयाग की अच्छी यात्रा करने की बात भी 'निराला' ने उस पत्र में लिखी थी । यहीं 'निराला' ने यह भी लिखा--' मैं 'विधान' लम्बी कविता लिख रहा हूं । वर्णनात्मक है, कह नहीं सकता कैसी होगी ।' १२ अगस्त के पत्र में प्रसाद के यहां मिलने की बात के साथ 'निराला' ने यह भी लिखा, ' मैं जो कुछ लिखता हूं, साहित्य समझकर । नहीं मन पड़ता, मेरी कमजोरी है । लोग क्या चाहते हैं, लोग जानें । मैं क्या देता हूं, मैं समझता हूं ।' और उन्होंने फिर लिखा ,' मेरे लिखने में व्यापन मत हो, वैमनस्य नहीं[2] ।'

१- 'साधना' वर्ष २, नववर्षांक, पृ० ८६

२- ,, ,, अंक ७-८, पृ०६४

डा० रामविलास शर्मा ने ब्रजमोहन तिवारी और युवक कवि प्रदीप के साथ 'निराला' के मौरावां साहित्य समारोह में सम्मिलित होने की बात लिखी है, जहाँ 'विजय 'निराला' दल के हाथ रही' था[1]। सन् ३८ की 'माधुरी' के फरवरी अंक में 'नवीन कवि 'प्रदीप'[2] पर 'निराला' का लेख प्रकाशित हुआ। वर्ण-विचार की दृष्टि से यहाँ श-ण-लक्ष्म छन्द की आलोचना करते हुए सबल सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए काव्य में जातीयता नहीं, आधुनिकता और भाषा की स्वाभाविकता का उल्लेख कर आगे मुक्त छंद और प्रदीप के काव्य का समर्थन किया। 'सबल' छन्द का प्रतिपादन करते हुए यहाँ 'निराला' ने लिखा था,' यह मैं किसी प्रकार (*challange*) के विचार से नहीं लिख रहा, केवल सत्य के लिए-- जिसे मैंने अपना पूर्ण यौवन अर्पित किया है, लिख रहा हूँ।'

फैजाबाद के प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन में भी 'निराला' ने भाग लिया। वे श्रीनारायण चतुर्वेदी के यहाँ ठहरे, जिससे उनका परिचय कांग्रेसी मंत्रिमण्डल के दिनों में हुआ था। साहित्यकारों का अभाव और राजनीतिज्ञों की प्रधानता यहाँ भी 'निराला' को अखरी थी। साहित्य-शाखा के सभापति आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सभापतित्व में बोलते हुए 'निराला' ने साहित्य का अर्थ स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि साहित्य दायरे से छूटकर ही साहित्य है, उसपर भाषा का केवल देशगत आवरण रहता है। अन्यथा वह मनुष्यमात्र का साहित्य है। उन्होंने अपना गीत 'टूटे सकल बंध' सुनाया, साहित्यिकों के राजनीतिज्ञों से आगे होने के प्रमाण में अपनी 'बादलराग' रचना को प्रस्तुत किया। 'चकल्लस' के लिए इस सम्मेलन का विवरण श्री नरोत्तम नागर को लिखाते हुए उन्होंने साहित्यिकों के राजनीतिज्ञों से आगे होने का कारण विशेषतः यह बताया कि 'वह फालोअर नहीं, और राजनीति हैं 'राजनीति स्वार्थ-साधना के कारण दायरे में रह सकती है, पर साहित्य मनुष्यमात्र के कल्याण का लक्ष्य रखता है।

सन् ३८ में श्री अमृतलाल नागर ने 'चकल्लस' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। उसका सम्पादन उनके परम बन्धु श्री नरोत्तम नागर करते थे। फैजाबाद सम्मेलन

1- निराला की साहित्य साधना, पृ०२६८-२६६

2- माधुरी, फरवरी ३८, पृ०६७-१०१। 'निराला' ने कवि का पूरा नाम पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखा है, लेख के साथ दिए 'प्रदीप' के चित्र के नीचे नाम 'पं०रामचन्द्र द्विवेदी' 'प्रदीप' लिखा हुआ है।

की जो इण्टरव्यु सम्पादक ने 'निराला' से की ली थी, वह चकल्लस के दो या तीन अंकों में छपा थी। 'चकल्लस' की जो फाइल श्री अमृतलाल नागर जी के पास है, उसमें 'निराला' की तीन चीज़ें प्रकाशित हुई हैं, दो उनके नाम से और एक गुमनाम। फैजाबाद प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन के इण्टरव्यु के अतिरिक्त उनका एक मनोरंजक संस्मरण 'ईश्वर का इन्द्रजाल' 'चकल्लस' के मार्च अंक में प्रकाशित हुआ। 'चकल्लस' के जुलाई ३८ के अंक २६, अंतिम वार्षिकांक में एक लेख के बीच में एक बाक्स लगाकर 'निराला' की एक कविता छपी। यह रचना खास 'रूपाभ' के लिए प्रस्तुत दाल का गीत थी। 'रूपाभ' के लिए 'निराला' जी की कविता मांगने पर उन्होंने मज़ाक के मूड में उनके लिए ये चार पांच पंक्तियां लिखी थीं। वह कविता शायद 'रूपाभ' को भेजी नहीं गयी थी, परन्तु उसे छापने का सौभाग्य और अधिकार चकल्लस को प्राप्त हुआ, यद्यपि कविता के साथ 'निराला' जी का नाम नहीं गया[१]।

'चकल्लस' का प्रकाशन साल-भर के अन्दर बन्द होने के बाद श्री नरोत्तम नागर ने श्री पहाड़ी के साथ मिलकर इलाहाबाद से 'उच्छृंखल' नामक पत्र प प्रकाशित करने का निश्चय किया। इसमें सहयोग डा० रामविलास शर्मा का भी था। इस पत्र के भी तीन-चार अंक निकले थे और 'निराला' जी की एकाध रचनाएं भी इसमें छपी थीं[२]। 'आपु तुम मुर्गी खाते यदि' वाली कविता 'उच्छृंखल' में छपी थी, इसका उल्लेख श्री नरेन्द्र शर्मा ने किया है[३]।

१- श्री अमृतलाल नागर से प्राप्त सूचना
'दाल का गीत' कविता--
'तुम तुरी दालि महरानी।
हरदी नीसे जरदी आई,
निमक परे मुसुक्यानी,
भात-भतार से भेंट भई
तब प्रेम सहित लिपटानी।'

२- डा० रामविलास शर्मा से प्राप्त सूचना।

३- 'लहर' का निराला अंक, १०७८

की जो इण्टरव्यू सम्पादक ने 'निराला' से ली थी, वह 'चकल्लस' के दो या तीन अंकों में छपी थी। 'चकल्लस' की जो फाइल श्री अमृतलाल नागर जी के पास है, उसमें 'निराला' की तीन चीजें प्रकाशित हुई हैं, दो उनके नाम से और एक गुमनाम। फैजाबाद प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन के इण्टरव्यू के अतिरिक्त उनका एक मनोरंजक संस्मरण 'देवर का इन्द्रजाल' 'चकल्लस' के माघी अंक में प्रकाशित हुआ। 'चकल्लस' के जुलाई ३८ के अंक २५, अंतिम साप्ताहिकांक में एक लेख के बीच में एक बाक्स लगाकर 'निराला' की एक कविता छपी। यह रचना खास 'रूपाभ' के लिए प्रस्तुत 'डाल का गाल' था। 'रूपाभ' के लिए 'निराला' जी की कविता माँगने पर उन्होंने मज़ाक के मूड में उनके लिए ये चार पाँच पंक्तियाँ लिखी थीं। यह कविता शायद 'रूपाभ' को भेजी नहीं गयी थी, परन्तु इसे छापने का सौभाग्य और अधिकार चकल्लस को प्राप्त हुआ, यद्यपि कविता के साथ 'निराला' जी का नाम नहीं गया[1]।

'चकल्लस' का प्रकाशन साल-भर के अन्दर बन्द होने के बाद श्री नरोत्तम नागर ने श्री पहाड़ी के साथ मिलकर इलाहाबाद से 'उच्छृंखल' नामक पत्र प्रकाशित करने का निश्चय किया। इसमें सहयोग डा० रामविलास शर्मा का भी था। इस पत्र के भी तीन-चार अंक निकले थे और 'निराला' जी की कुछ रचनाएं भी इसमें छपी थीं[2]। 'बापू तुम मुर्गी खाते यदि' वाली कविता 'उच्छृंखल' में छपी थी, इसका उल्लेख श्री नरेन्द्र शर्मा ने किया है[3]।

१- श्री अमृतलाल नागर से प्राप्त सूचना
'डाल का गाल' कविता--
'तुम बुरी डालि महरानी।
छरदा परैसे जरदा आऊँ,
निपक परे मुसुक्यानी,
भात-भतार से भेंट भई
तब प्रेम सहित लिपट्यानी।'

२- डा० रामविलास शर्मा से प्राप्त सूचना।

३- हंस का निराला अंक, पृ० ७५

सन् ३८ में श्री कवि सुमित्रानन्दन पंत ने श्री नरेन्द्र शर्मा के साथ 'रूपाभ' पत्र कालाकांकर से निकाला । जुलाई सन् ३८ में पत्र का पहला अंक प्रकाशित हुआ । तीसरे अंक में 'निराला' के दो गीत 'सहज सहज पग धर, आओ उतर' और 'और-और छवि रे यह' छपे[1]। अगले अक्टूबर के अंक में 'कवि निराला' लेख डा० रामविलास शर्मा का प्रकाशित हुआ, जो उनकी पुस्तक 'संस्कृति और साहित्य' में संकलित है । 'रूपाभ' में ही फरवरी ३६ के अंक में 'निराला' के ठेठ हिन्दुस्तानी भाषा में लिखे 'चमेली' उपन्यास के दो अध्याय प्रकाशित हुए थे[2]। अगले दो अंकों में 'निराला' के 'बिल्ले सुर बकरिहा' का कुछ अंश भी 'रूपाभ' में छपा था[3]। मार्च के अंक में 'चमेली' उपन्यास से सम्बन्धित विवाद भी जाया था । इसके प्रारम्भ में ही सम्पादक ने उपन्यास के अपूर्ण अंश को छापने का कारण पाठकों को साहित्य की गतिविधि और साहित्यकारों की प्रगति का ज्ञान कराना बताया था । सम्पादक ने यह भी उल्लेख किया था कि हमारे युग का यही तकाजा है कि अब हम साहित्य में यथार्थता को अधिक स्थान दें[4]।' अप्रैल के अंक में डा० रामविलास शर्मा का 'अनामिका' और 'तुलसीदास' से सम्बन्धित 'निराला की दो नई पुस्तकें' लेख प्रकाशित हुआ । इसी अंक में उनका एक पत्र भी छपा था, जिसमें उन्होंने बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा की गई उग्र और 'निराला' की मुख़ालफ़त का उल्लेख किया था[5]।

सन् ३६ के लगभग श्री उमाशंकर सिंह ने 'कला' नामक पत्रिका निकालने का निश्चय किया था । इसी के लिए 'निराला' से एक रचना लेने के लिए जाने और 'निराला' के 'कला और देवियां' लेख देने, जो बाद में कला के प्रथम अंक में छपा था, का उल्लेख उमाशंकर जी ने किया है । उन्होंने यह भी लिखा है कि 'सुधा'-

---

१- सितम्बर ३८ का रूपाभ, पृ० ५०

२- रूपाभ, वर्ष १, संख्या ८, पृ० २६-२८

३- ,, मार्च ३६, पृ० १५-२०, अप्रैल ३६, पृ० २६-२५

४- ,, मार्च ३६, पृ० ५५-६२

५- रूपाभ, अप्रैल ३६, पृ० ५४-५७ और ६२-६४

सम्पादक भार्गव जी 'निराला' को बहुत मानते थे और उनका नाम 'सुधा' में प्रधान संपादक की जगह देना चाहते थे और इसके लिए उन्हें मासिक रूप से अच्छी रकम देने को भी तैयार थे, परन्तु 'निराला' जी तैयार नहीं हुए थे। उमाशंकर सिंह के प्रधान सम्पादक के रूप में 'रूपाभ' में उनका नाम देने का इच्छा प्रकट करने पर 'निराला' ने सब मैटर शुद्ध देखने और सम्पादकीय लिखेट करा देने की बात उनसे कही थी। 'ठूंठ' कविता भी सर्वप्रथम 'रूपाभ' में ही सचित्र प्रकाशित हुई थी[1]।

सन् ३८ की जुलाई में 'निराला' ने अपने पुत्र श्री रामकृष्ण का विवाह श्री मिश्र जी रामशंकर शुक्ल की कन्या के साथ गौतमासिंह के मकान से किया। जून में जो पत्र 'निराला' ने डा० शर्मा को लिखा था, वह १२२ मकबूलगंज से लिखा गया था, परन्तु विवाह के समय सम्भवत: 'निराला' भुसामंडी, हाथीखाना के मकान में आ गए थे। विवाह का निमन्त्रण 'चकल्लस' में छपा था और विवाह समारोह में भार्गव जी और वाचस्पति पाठक में कुछ वाद-विवाद हो गया था, इसका उल्लेख डा० शर्मा ने किया है[2]।

इसी समय उन्होंने अपनी नयी-पुरानी रचनाएं मिलाकर एक कविता-संग्रह 'अनामिका' और कथा संग्रह 'सुकुल की बीबी' तैयार किया। 'अनामिका' में वे महादेव बाबू की ही भूमिका और सेठ जी पर शिवपूजन जी का लेख भी देना चाहते थे। अन्तत: लेख और भूमिका दोनों के बिना ही पुस्तक प्रकाशित हो गयी, 'निराला' का लिखा 'समर्पण' ही केवल उसमें गया। वाचस्पति पाठक से इस समय वे काम की बातें कर रहे थे, परन्तु पाठक जी की भी अपनी कुछ विवशताएं थीं[3]। सन् ३४ से ३८ के बीच धानारायण चतुर्वेदी जी ने पटल बाबू से १००) महीना बंकिम की रचनाओं के अनुवाद के लिए ठीक कराया, पर उसको भी 'निराला' ने नहीं निभाया। चतुर्वेदी जी के अनुसार उन्हें *money sense* नहीं था। सन् ३८ में जब 'निराला' भुसामंडी,

---

१- महाकवि निराला का निरालापन, पृ०४०-४७
२- निराला की साहित्य साधना, पृ०३५३-३५५ कवि निराला पृ०२२८ पर आचार्य बाजपेयी ने लिखा है कि रामकृष्ण का प्रथम विवाह शिवशंकर शुक्ल की कन्या फुल-दुलारी से लखनऊ में सम्पन्न हुआ था और इस पत्नी से 'छाया' नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई थी।
३- १६-१२-३८ को भुसामंडी हाथीखाना से पाठक जी को लिखा 'निराला' का पत्र, नया-साहित्य की निराला अंक, पृ० २६-२७।

छायालावादी में रहा करते थे, 'निराला' आनारायण चतुर्वेद। के पास जाया करते थे। पहले यह उनकी समझ में नहीं आया कि 'निराला' बहक जाते हैं। एक दिन 'निराला' ने जाकर उनसे कहा कि पुलिस पीछे लगी है, गोविंदवल्लभ पंत ने लगाई है। फिर कुछ दिन बाद पंत जी की जगह पुरुषोत्तमदास टण्डन और पटेल बाबू (ऑक्सन प्रेस वाले) के नाम उन्होंने लिए। गश्त लगाने वाले सिपाही के कपड़े पहन कर उन दिनों 'निराला' चतुर्वेदी जी के पास जाते थे। एक दिन आकर जब 'निराला' ने दरवाजा बंद करवाया, कहा सुन कर दिया और घड़ी में पड़ा गुलाबी रंग का dot दिखाकर उसे खून के दाग कहा, उस दिन से मानसिक असन्तुलन स्पष्ट हुआ। चतुर्वेदी जी ने हमें बताया कि जब 'निराला' उनके घर जाते थे, कुछ के एक चित्र के नीचे उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियाँ स्वयं लिखकर नीचे महादेवी जी का नाम लिखा था --

> 'यह राशि है सुधि भार,
> जगती का वैभव अमिट भ्रान्ति,
> पारस-पद है अमर-अव्यय
> हो जावे दुख निवेद शांति ।
>
> --- महादेवी वर्मा [१]

उदयशंकर भट्ट ने भी 'निराला' से अपनी अंतरंग भेंट का संस्मरण लिखते हुए पहली ही भेंट में उनके 'एक्सापेल' लगने का उल्लेख किया है[२]।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के शिमला अधिवेशन, जो १९३८ के प्रारम्भ में हुआ था और उसके काव-सम्मेलन में 'निराला' क्रमशः भी गए थे। स्वागताध्यक्ष श्री सत्यनारायण सिन्हा ने कवियों के प्रति अपने भाषण में अपमानजनक शब्द कहे, जिसे सुनकर 'निराला' ने कविता न पढ़ने की घोषणा की। संयोजकों के 'उर्दू तुकबंदी' से कविता पढ़ाने पर यशपाल जी ने बच्चन जी से मारुत पर जाकर सारी स्थिति कहने के लिए कहा। बच्चन के सब कहने पर बाद-बचाव और शान्ति के उपरान्त 'निराला' ने

१- श्री चतुर्वेदी से प्राप्त सूचना

२- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ४ जून, १९६७, पृ०११

उनकी कविता पढ़ने की इच्छा और एक पदक देने की भी घोषणा की[1]। अश्क जी ने शिमला साहित्य सम्मेलन की तिथि सन् ३८ दी है। हिन्दी कवि-सम्मेलन में सभापति 'सनेही' थे, जिनके नए कवियों पर फबती कसने पर नाराज होकर 'निराला' ने कहा था कि हिन्दी का कोई नया कवि कविता नहीं पढ़ेगा[2]। परिस्थिति अन्ततः 'निराला' ने ही सम्भाली और सबसे पहले स्वयं कविता सुनाने की घोषणा की।' सम्मेलन का संचालन तब 'सनेही' नहीं जैसे 'निराला' ही कर रहे थे।' यहाँ 'निराला' ने पहले 'जुही की कली' और फिर शायद 'वह तोड़ती पत्थर' कविताएँ सुनायीं, एक की कविताओं से कहीं ज्यादा उनका कविता पढ़ना भाया[3]। 'निराला' ने रहस्यवाद को प्रकाशवाद सिद्ध करने के बाद 'जागो फिर एक बार' की दूसरी कविता सुनाई[4]।

शिमला के बाद 'निराला' को कलकत्ता के विद्यासागर कालेज के छात्रों ने आमन्त्रित किया। कलकत्ता जाते समय ही 'निराला' ने रेल के डिब्बे में नेहरू जी से बातचीत की थी। पं० नेहरू के साहित्यिक अज्ञान के उल्लेख के साथ वेदान्त की अपनी क्रांतिकारी विचारणा के अनुकूल 'निराला' ने साहित्य और समाज के प्रश्नों का समाधान करने की बात उनके सामने रखी। कलकत्ता में 'निराला' का अद्भुत स्वागत हुआ, उन्होंने कविता पढ़ी, भाषण दिए, उनका अभिनन्दन किया गया। डा० शर्मा को उन्होंने ३-४-३९ को लिखा कि हवड़ा में उन्हें रिसीव करने मालाएँ लेकर कलकत्ता विद्यार्थी अंग्रेजी के एक प्रोफेसर के साथ आए थे, और बड़ा बाजार लाइब्रेरी ने उन्हें एक मानपत्र भी दिया। इसके साथ ही शाम कालका मेल से इलाहाबाद जाने की सूचना भी थी[5]। लखनऊ के साहित्यकारों ने भी 'निराला' का अभिनन्दन किया, प्रयाग में भी अमरनाथ झा ने उन्हें कविता-पाठ के लिए निमंत्रित किया। इस सब के बीच आर्थिक समस्या के समाधान के लिए 'निराला' ने 'साधारण जनों, गृहदेवियों और बालकों के लिए' एक संक्षिप्त महाभारत लिखा, जिसमें 'उन्हें महाभारत की कथाओं

१- नये-पुराने-झरोखे, पृ०४८-१५८
२- 'रेखाएं और चित्र', पृ० १४८-१४९
३- पत्तों के आर पार, पृ०२५

४- निराला की साहित्य साधना, पृ० ३५९

५- ,, ,, पृ० ३६४

का सारांश मालूम हो जाये । यह कृति २६-७-३६ को लखनऊ की प्रिय-स्मृति में बालसखा रामशंकर शुक्ल को समर्पित थी[१] । उसी समय बनारस में होने वाले साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन की अध्यक्षता किसी और के न मिलने पर 'निराला' ने की । श्री अमृतलाल नागर और डा० शर्मा भी उनके साथ गए थे और यहाँ भी 'निराला' ने हिन्दुस्तानी का विरोध करते हुए भाषा के दायरे को छोटा नहीं कहा । भाषा के वर्तमान रूप को परोधान बताकर उन्होंने अपने 'प्रकाशवाद' लिखने का उल्लेख किया ।

उसी समय पन्त जी ने 'ग्राम्या' के कवि श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी के प्रति कविता लिखकर 'निराला' का स्तवन किया । ४-४-३६ को 'निराला' ने पन्त जी को लिखा : "मेरा आपका हिन्दी साहित्य के इतिहास में अभिन्न सम्बन्ध है । मुझे सबसे बड़ी सफलता यही हुई, मैं समझता हूं । लेकिन आपकी रचना देखकर मैं हैरान रह गया । यह तो कवि और वही कवि जिसे मैं प्यार करता हूं, लिख रहा है ।" पंत जी की कल्पना-शक्ति और अपराजिता भाषा का उल्लेख कर उन्होंने यह लिखा था कि "हिन्दी बड़ी गरीब है, कवि, कल्पना से बड़ा धन साहित्यमें और नहीं । इति ।"[२]

श्री केदारनाथ अग्रवाल होमवती देवी और बरेली कालेज के ज्ञानप्रकाश जौहरी के निमन्त्रण पर 'निराला' क्रमशः बांदा, मेरठ और बरेली गए थे । इस समय अपने को वे मिशनरी कहते थे और तबियत ठीक नहीं रहने का उल्लेख भी करते थे । बंगला में अपनी रचनाओं के अनुवाद की दिशा में भी 'निराला' ने प्रयास किया और बंगला में अपने जीवन से सम्बन्धित एक लेख भी लिखा, जो 'वन्दना' में प्रकाशित हुआ । लिखने के विचार से वह सोलापुर भी गए, पर उनका यह कार्यक्रम पूरा नहीं हो सका । उसी समय उन्हें अपने मित्र दयाशंकर वाजपेयी की बीमारी की खबर भी मिली, और बाद में उनकी मृत्यु की[३] ।

१- महाभारत, भूमिका और समर्पण ।

२- नया साहित्य का निराला अंक, पृ० १७

३- निराला की साहित्य साधना, पृ० ३७४-३७५

श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी ने 'निराला' जी और श्री विनोद शर्मा[1] लेख में बताया है कि 'निराला' को कभी-कभी किसी बात की धुन सवार हो जाती थी। हिन्दुस्तानी लिखने की धुन सवार होने पर वे कई महीने हिन्दुस्तानी ही लिखते रहे। 'कुकुरमुत्ता' इसी समय की रचना है। इन दिनों कविता लिखने के बाद वे शर्मा जी को सुनाया करते थे। जिस दिन 'निराला' 'रजोहरा' कविता लिखकर लाए थे और उसे सुनाया था, उस दिन द्विवेदी जी भी उपस्थित थे।' उन्होंने अपने उग्र और असहिष्णु स्वभाव के अनुसार कविता और उसकी भाषा की कड़ी आलोचना आरम्भ कर दी।' 'निराला' और उनमें बहुत देर तक वाद विवाद होता रहा। अन्त में द्विवेदी जी ने ऐसी कविता रातों-रात बना देने की बात कहकर कविता की आरम्भिक पंक्तियों की आशु पैरोडी बना डाली थी। शर्मा जी भी 'निराला' के प्रशंसक थे, परन्तु हिन्दुस्तानी के विरोधी होने के कारण 'निराला' के 'कुकुरमुत्ता' की भाषा उन्हें पसन्द नहीं थी। 'निराला' पर लिखी अपनी कविता में शर्मा जी ने 'निरक्ष 'निराला' के कृतित्व की प्रशंसात्मक आलोचना की, परन्तु अन्त में 'कुकुरमुत्ता' की हिन्दुस्तानी पर एक व्यंग्य - बाण छोड़ दिया था। शर्मा जी 'निराला' की छंद मुक्ति और उनके विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण को स्वीकार करते थे। कविता का प्रशंसात्मक अंश 'निराला' ने चुपचाप सुना, परन्तु अन्तिम अंश सुनकर वे 'केवल मुस्कुरा दिए। कुछ बोले नहीं।' मित्र की आलोचना सुनकर हिन्दुस्तानी की धुन समाप्त हुई, इस कथन को गलत मानते हुए चतुर्वेदी जी ने लिखा है :"किन्तु यह निःसंदेह है कि इसके कुछ ही दिनों बाद उनका हिन्दुस्तानी का जोश जाता रहा और वे अपनी ओजपूर्ण , स्वाभाविक हिन्दी में पूर्ववत् लिखने लगे।' साथ ही चतुर्वेदी जी यह भी स्वीकार करते हैं कि" यह दूसरी बात है कि इस कविता ने ~~श~~ उसकी शीघ्र समाप्ति में कुछ योगदान किया हो।'

इसी समय कलकत्ते से प्रकाशित 'विचार' पत्र के लिए सम्पादक भगवती चरण वर्मा ने 'निराला' से कविता और कहानी की माँग की। अपने संपादकीय

१- सरस्वती, दिसम्बर ६१, पृ० ४०३-४०६

वक्तव्य- जिसमें 'निराला' के विरुद्ध प्रचार अथवा विवाद को स्थान दिया गया था -- के साथ वर्मा जी ने 'निराला' की 'बापू' तुम मुर्गी खाते यदि' कविता छापी । सन् ४१ के 'हंस' में मई और अगस्त के अंकों में क्रमशः उनकी 'कुकुरमुत्ता' रचना का शुरू वाला हिस्सा और 'रजोहरा' रचनाएं प्रकाशित हुई थीं । इसके पहले अगस्त ४० की 'सुधा' में उनका 'मास्को डायलाग्ज' निकल चुका था । कविता के प्रारम्भ में ही 'सुधा' सम्पादक ने 'निराला' को सुधा-मण्डल के चिर प्रसिद्ध युगान्तर-
निराला की 'भगवान बुद्ध के प्रति' कविता और नवम्बर के अंक में
कारी कवि कहा था ।' सन् ४० का 'सुधा' के ही जुलाई के अंक में 'धूलि में तुम मुझे भर दो' गीत निकल चुके थे । दिसम्बर में 'प्रसाद जी के प्रति' रचना 'माधुरी' में प्रकाशित हुई । कविता के अन्त में यह सूचना भी सम्पादक ने दी थी कि 'मित्रवर 'निराला' जी ने 'प्रसाद- परिषद्' के गत अधिवेशन में सभापति के आसन से यह कविता पढ़ी थी ।' 'कामायनी' की आलोचना उसके काफी पहले सन् ३७ की सुधा के अक्टूबर अंक में ही 'निराला' कर चुके थे । जड़ और चेतन का भेद मिटाने वाली 'कामायनी' की प्राथमिक पंक्तियां यद्यपि 'निराला' के सृष्टि तत्व से अनुरूपता नहीं रखती थीं, तथापि 'निराला' ने प्रसाद का विरोध न कर उन्हें हिन्दी के युगान्तर साहित्य का प्रजापति कहा और 'कामायनी' के 'रहस्यवाद का प्रथम महाकाव्य'।

सुधा से अलग होने और दुलारेलाल जी से सम्बन्ध तोड़ने के बाद 'निराला' की रचनाएं भारती-भण्डार, लीडर प्रेस से प्रकाशित हुईं । परन्तु अधिक समय तक यहां भी 'निराला' का निर्वाह नहीं हुआ । इंडियन प्रेस से मनमुटाव पहले ही बंकिम के अनुवादों को लेकर हो चुका था । गंगापुस्तक माला में 'निराला' ने पुनः पुस्तकों के प्रकाशन के लिए प्रयत्न किया, भार्गव जी स्वाध पुस्तक छापने को तैयार भी हो गये । इसके साथ ही चौधरी राजेन्द्रशंकर के युग-मंदिर, उन्नाव से भी 'निराला' अपनी कुछ पुस्तकें प्रकाशित करवा रहे थे । 'हंस' के में कविताएं छपने के कारण श्रीपत राय की कविता पुस्तक- प्रकाशित करने की संभावना भी 'निराला' की दृष्टि में थी । 'निराला' इन दिनों एक स्थान पर न रहकर प्रयाग, लखनऊ काशी, सीतापुर और उन्नाव आदि स्थानों पर पुस्तकों के प्रकाशन की व्यवस्था के लिए घूमा करते थे । वास्तव में सन् ३८ के बाद 'निराला' की परिस्थितियां अत्यन्त विकट हो गयी थीं, उनकी प्रायः सभी कृतियों का कापीराइट बिक चुका था ।

सन् ४१ की गर्मियों में जो पत्र 'निराला' ने कुंवर सुरेश सिंह को लीडर प्रेस, प्रयाग से लिखा, उसमें उन्होंने १६ जुलाई के लखनऊ में होने वाले कवि सम्मेलन में शरीक न हो सकने का उल्लेख किया। इसी पत्र में उन्होंने 'चमेली' और 'बिल्लेसुर' रचनाओं को पूरी करने की बात भी लिखी थी, एक तो प्रेस का तकाजा था, दूसरे वे रुपये पेशगी ले चुके थे। २६-७-४१ के लखनऊ, मुसामंडी हाथी खाना से कुंवर सुरेश सिंह को लिखे पत्र में कवि सम्मेलन में शरीक होने के बाद प्रयाग लौटने की इच्छा, पैर का दर्द बढ़ने काम कम होने और पं० अमरनाथ जी के संवर्धन में होने वाले कवि सम्मेलन में रहने का उल्लेख किया है। यहीं उन्होंने कहानी और कविता के तकाजे के साथ भगवती बाबू का पत्र आने की बात भी लिखी है। पत्र में 'निराला' ने यह सूचना भी दी कि 'कुकुरमुत्ता' पर वे कविता लिखने वाले हैं, बिल्लेसुर बकरी चराकर शादी कर रहे हैं और चमेली एक के साथ भाग गयी है[1]। चमेली के सम्बन्ध में इस सूचना से यह ज्ञात होता है कि 'रूपाभ' में उसका जितना अंश निकला था, उसके आगे की कथा भी 'निराला' ने लिखी थी। श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने भी यह बताया था कि 'चमेली' के सम्बन्ध में पूछने पर 'निराला' कहा करते थे कि 'चमेली' उन्होंने लिख ली थी, पर *fair* नहीं की थी।

दिसम्बर ४१ में 'निराला' अबोहर में होने वाले साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में भी सम्मिलित हुए थे, जहां पहली बार बच्चन जी को 'निराला' के मानसिक असन्तुलन का आभास मिला था। बच्चन ने 'निराला' के अंग्रेजी में बात करने और सम्मान के लिए अंग्रेजी में कविता लिखने की बात कहने का उल्लेख किया है। डाक बंगले के एक कमरे में ठहरे 'निराला' जी ने 'तीन चार दिनों के अन्दर इतने मुर्गे खाए थे कि बिल देखकर सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष स्वामी केशवानन्द अपना सिर पीटने लगे[2]।' पाठक जी ने अश्क को बताया कि सम्मेलन के अन्तर्गत होने वाले कवि सम्मेलन के सभापति 'निराला' चुने गए हैं। अश्क ने यहीं 'निराला' को 'तुम और मैं' की पैरोडी 'निराला' के कहने से सुनाई थी। दूसरे दिन पाठक जी के कहने पर उन्होंने 'निराला' को दोपहर के खाने पर निमंत्रित किया। अधिवेशन के बाद घर लौटते समय 'निराला' के 'अपने आप अंग्रेजी में बड़बड़ाने' और घर पहुंच कर नार्मल हो जाने का उल्लेख अश्क जी ने किया है[3]।

१- सम्मेलन पत्रिका का श्रद्धांजलि अंक, पृ० ३६५ और ३६७

२- नए पुराने झरोखे, पृ० ५० ।   ३- परतों के आर-पार, पृ० २८-३० ।

अबोहर सम्मेलन के ठीक बाद लाहौर के लाजपत-भवन में हुई एक सभा में भी 'निराला' ने कविता-पाठ किया था । अबोहर में तो उनके 'कुकुरमुत्ता' के पाठ ने समा बाँध दिया था, परन्तु यहाँ 'उनका कविता-पाठ कुछ लोगों के लिए अरसिकेषु कवित्वं निवेदन' और अन्य कुछ लोगों के लिए 'बहरों के सामने गीता बिसूरना' प्रतीत हो रहा था ।' सभापति माखनलाल चतुर्वेदी सभा कैक-समने को संयत करने का प्रयत्न कर रहे थे । एक पंजाबी युवक के कविता के ऊलूल-जलूल कहने पर चतुर्वेदी जी ने पंजाब की गैर जिम्मेदार तरुणाई को जोर की फटकार बताई, जिसे श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने 'साहित्य-देवता द्वारा की गयी निराला की पूजा' कहा है[1]। लाहौर में वे एक बीमा कम्पनी के मैनेजर श्री जैन के यहाँ ठहरे थे । लाहौर के बाद वे मुजफ्फरपुर और वहाँ से आचार्य शिवपूजन से मिलने छपरा भी गए थे[2]।

सन् ४१ के अन्त में 'निराला' उन्नाव चले गए थे और ४२ के प्रारम्भ तक वे वहीं रहे थे । 'निराला' की 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'अणिमा' और 'कुकुरमुत्ता' रचनाएं यहीं युगमंदिर से प्रकाशित हुईं । यहाँ 'निराला' का मन अधिक नहीं लगा । अत: वे मित्र रामलाल के यहाँ कलवा चले गए[3]। इस समय का कुछ विवरण 'निराला' ने ४२ की लिखी 'जानकी' कहानी में दिया है । यहाँ से वे चित्रकूट भी गए थे, जिसका विवरण उन्होंने 'स्फटिक शिला' कविता में दिया है । कलवा आकर 'निराला' बीमार पड़ गये, पछाड़ी जूड़ी ने उनको जकड़ लिया था । बीमारी की दशा में ही एक कम्पोजीटर मित्र को तैयार कर उन्हें प्रयाग श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी के यहाँ लाया गया । उन दिनों वे किसी को पहचान नहीं पाते थे । उचित दवा का प्रबन्ध होने पर 'निराला' दो-तीन महीने में ही ठीक हो गए और ठीक होते ही वे अलग मकान लेकर रहने लगे । बीमारी में उन्हें देखने कौन आया और कौन नहीं, यह सब उन्हें मालूम था । गंगाप्रसाद पाण्डेय से उन्होंने कहा था कि बीस साल एक साथ काम करके भी वे अपने मित्रों की ममता के पात्र नहीं बन सके[4]।

१- नया साहित्य, निराला अंक, पृ०८०

२- निराला की साहित्य-साधना, पृ०३६०

३- महाप्राण निराला, पृ०१०६ -- गंगाप्रसाद पाण्डेय

४- ,, पृ० १११, १०३-१०४

'निराला' जब चित्रकूट में थे, नरोत्तम नागर के पत्र से उन्हें मालूम हुआ था कि उनके मित्र पं० बलभद्र प्रसाद दीक्षित का देहावसान बलरामपुर अस्पताल में हो गया और अपने अन्तिम शब्द वे डा० रामविलास को सुना गए हैं। 'माधुरी' के विशेषांक के लिए डा० रामविलास शर्मा ने उनसे एक लेख लिखवाया। अस्वस्थ होते हुए भी यह लेख नरोत्तम नागर को डिक्टेट करके उन्होंने भिजवाया था। लेख का प्रारम्भ होता है," आज बलभद्र प्रसाद जी दीक्षित स्वर्गीय।' -- शब्दों के साथ। 'निराला' ने बताया कि साहित्य में जिन बन्धुओं से उनकी अभिन्नता थी, उनमें दीक्षित जी प्रमुख थे। कालाकांकर राज्य की नौकरी छोड़ने के बाद उन्होंने खेती करने का निश्चय किया और तरबूजों की फसल पांस की गरमी से नष्ट हो गयी, दीक्षित जी के पुत्र बुद्धिभद्र के जनेऊ में गायत्री मंत्र पुत्र के आग्रह पर 'निराला' ने ही दिया था, दीक्षित जी ने रईसों की नौकरी की और कार्याधिक्य के कारण बाद में यह नौकरी भी छोड़कर देहात में अपनी तरफ से अछूतों की पाठशाला चलाई, उसका भी उल्लेख 'निराला' ने किया है। उन्होंने यह भी लिखा है कि 'मेरे साथ घनिष्ठता होने का एक बुरा प्रभाव उनपर यह पड़ा कि बड़े आदमियों की मान्यता रहने पर भी वह उनके आलोचक भी बन गए[1]।'

सन् ४३ में ही 'निराला' की 'अणिमा' चौधरी राजेन्द्र शंकर के यहाँ से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक की अनेक रचनाएं आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के साथ काशी अस्सी में रहते हुए 'निराला' ने लिखी थी। इसके बाद काफी दिनों तक 'निराला' राष्ट्रभाषा विद्यालय, गायघाट में भी रहे थे[2]।

काशी से कुछ दिनों बाद वे प्रयाग चले आए। यहाँ वे कुछ दिन श्री भगवती प्रसाद बाजपेयी और उनके भांजे ब्रजभूषण शुक्ल की बैठक में रहे, कुछ महीने श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी की बगिया के बड़े कमरे में रहे, और फिर मसुरियादीन पंडा के यहाँ अलग मकान लेकर रहने लगे, जहाँ वे सब काम खुद किया करते थे। श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने उनके साथ रहने की इच्छा प्रकट की, परन्तु 'निराला' ने यह

१- 'माधुरी' फरवरी ४३, पृ० १३-१५ 'निराला' का 'बलभद्रप्रसाद दीक्षित' लेख।
२- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ११, फरवरी ६२, पृ०३४--डा० शिवनाथ का लेख।

कहकर मना कर दिया कि अभी वे विद्यार्थी हैं, रिआ। लेने के बाद साथ रहें। पुलिस के पीछे लगने और बहुत-सी बातों का राज बाद में खुलने का उल्लेख भी 'निराला' ने किया था।

पाण्डेय जी ने ही 'निराला' के गीत बेचने के लिए इंडियन प्रेस 'भारत' के सम्पादक के पास जाने की बात भी लिखी है। 'भारत'-सम्पादक के गज़ल न लेकर दूसरी चीज़ माँगने पर 'निराला' ने उनसे कविता का विषय न बताकर माल पसन्द आने पर खरीदने की बात कही। पाण्डेय जी के सम्पादकीय व्यवहार की कटु आलोचना करने पर 'निराला' ने इण्डियन प्रेस 'देशदूत' वालों के पास जाने और गरज वालों के पास सम्मान न रहने, सम्मान की चिन्ता करने पर भूखों मरने का उल्लेख किया। यहाँ 'सौभाग्य से श्री निर्मल जी ने गज़लें ले लीं।' वास्तव में 'देशदूत' में सन् ४२ से लेकर सन् ४६ तक निरन्तर 'निराला' की रचनाएँ प्रकाशित होती रही हैं।[१]

'निराला' इन दिनों स्वाधीनता संग्राम और सामयिक गतिविधियों को भी ध्यान से देख रहे थे, इसका परिचय 'महाप्राण निराला' में उद्धृत वार्तालाप के अंशों से मिलता है। पंत जी की बीमारी का समाचार पाकर दिल्ली जाकर उन्हें देखने की भी 'निराला' की इच्छा थी। इसी समय बाँदा के कवि-सम्मेलन में वे गए, जहाँ उनकी शर्तों को स्वीकार कर लिया गया था और लौटते समय उन्माद होते हुए, करीब ३½ महीना बाहर बिताकर वे प्रयाग आए थे। इसके पहले वे नलिन विलोचन के निमन्त्रण पर आरा गए और उनके साथ कई दिन रहे। परिस्थिति की विषमता को देखकर महादेवी जी ने इसी समय बंगाल के अकाल पर 'बंग दर्शन' निकालने की योजना बनाई, जिसके लिए 'निराला' ने एक छोटी कविता 'माँचक' दी। दिल्ली में हुए कुछ साहित्य मण्डल के अधिवेशन में भी 'निराला' गए थे और उसके कवि सम्मेलन का सभापतित्व भी उन्होंने किया। पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' के साथ वे डॉ० रामविलास के आग्रह पर आगरा भी गए। आगरा से ही 'निराला' ग्वालियर गए,जहाँ उनका परिचय डा० महावीर सिंह से कराया गया, जिनसे 'निराला' इतने प्रसन्न हुए कि

१- महाप्राण निराला ,पृ० २२७-२२८

अगली बार आने पर उनके यहाँ ठहरने की इच्छा प्रकट की । यहाँ से 'निराला' जी रामकृष्ण से मिलने के लिए लखनऊ होते हुए प्रयाग आए[1] । गर्मियों में जब 'सुमन' जी उनसे मिलने गए और ग्वालियर चलने का आग्रह डा० शर्मा और डा० महावीर सिंह की ओर से भी किया, 'निराला' ने 'अपरा' के प्रूफ देखने और 'चोटी की पकड़' को पूरा करने का उल्लेख कर उन पुस्तकों के पूरी हो जाने पर लगभग दो महीने बाद आगरा जाने का निश्चय डा० शर्मा को लिख देने के लिए सुमन से कहा । उस समय 'निराला' की अवस्था अस्त-व्यस्त और दुर्बल सुमन को लगी[2] ।

'निराला' द्वारा १६-८-४५ को डा० रामविलास शर्मा को लिखे पत्र से ज्ञात होता है कि कुंवर चन्द्रप्रकाश ने 'निराला' के सार्वजनिक अभिनन्दन की जो योजना बनाई थी, देश और विश्व की बुरी स्थिति देखते हुए वह 'निराला' की दृष्टि में अभिनन्दनीय नहीं थी । 'निराला' ने लिखा था--"अभी पन्द्रह-बीस साल तक यह अवधि बढ़ाई जा सकती है । यदि मेरा अन्त हो गया तो साहित्य में अभिनन्दनीय व्यक्ति का टोटा नहीं रहेगा ।" उसी पत्र में 'निराला' ने अपने पढ़ने लिखने में व्यस्त रहने, 'कुकुरमुत्ता' को फिर से संवारने और उसके अकेले उर्दू में छपने, दूसरा संग्रह 'नए पत्ते' और गीतों की पुस्तिका 'बेला' निकालने, 'विष वृक्ष' का अनुवाद समाप्त करने, 'चोटी की पकड़' पूरा करने के लिए लिखना शुरू करने, 'सखी' प्रभावती और 'बिल्लेसुर बकरिहा' के दूसरे संस्करण की तैयारी करने, और महादेवी के 'अपरा' निकालने का उल्लेख किया है । अपने पत्र के अन्त में 'निराला' ने यह भी लिखा था : "एक संग्रह महा० पन्त० निरा० के १०० गीतों का कर रहा हूं, वहीं से निकलेगा । प्रसन्न हूं । अकेला बैठा फाटकों से आकाश देखा करता हूं[3] ।"

महादेवी के प्रयत्नों से साहित्यकार-संसद की स्थापना के उपरान्त 'निराला' को भी सहायता सांत्वना मिलने लगी । उनका 'बेला' काव्य संग्रह और 'चोटी की पकड़' उपन्यास उसी समय निकला था । पाण्डेय जी ने लिखा है, "सन् ४४-४५ में भी 'निराला' ने अपने लिखने का क्रम बराबर जारी रखा, क्योंकि रोज कुआं खोदना

१- 'निराला' की साहित्य साधना, पृ०४११-४१२

२- 'हंस' जुलाई ४६, २४ जुलाई ४५ को डा० शर्मा को लिखा सुमन का पत्र, पृ०५१३-१४

३- 'नया साहित्य' का निराला अंक, पृ०१८

और पानी पीना उनके लिए आवश्यक था, उनके जीवन का क्रम था, अविरल प्रवाह था।[1] 'चोटी की पकड़' के प्रकाशक किताब महल वालों की बेईमानी का उल्लेख महादेवी से 'निराला' ने किया। संसद को पुस्तक न देने की बात सुनकर 'निराला' ने अपनी कृतियों का एक संग्रह देने का वचन दिया। महादेवी जी के लीडर प्रेस और दुलारेलाल भार्गव से 'निराला' की पुस्तकों के कापीराइट छीनने के सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी करने और संसद के बिना किसी से पूछे छापने के निश्चय के सम्मुख सब को अवनत होना पड़ा। संग्रह का नाम 'अपरा' 'निराला' ने दिया। महादेवी के संग्रह में 'कुकुरमुत्ता' कविता को सम्मिलित न करने पर 'निराला' ने 'उसे आज की सबसे सुन्दर कविता और जीवन के यथार्थ से न घबराने की बात कहकर अपना विरोध प्रदर्शित करते हुए महादेवी की बात स्वीकार कर ली। 'अपरा' के प्रकाशन के दो महीने के भीतर ही उनका एक नया काव्य-संग्रह 'नए पत्ते' भी प्रकाशित हुआ। 'बेला' और 'नए पत्ते' के प्रकाशक ने प्रथम बार 'निराला' के सम्मुख कोई शर्त नहीं रखी और रुपया भी एडवान्स दे दिया।[2]

अपनी पुस्तक में डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है कि जिन दिनों साहित्यकार संसद 'निराला' की 'अपरा' छाप रही थी और उन्हें प्रतिमास निश्चित आर्थिक सहायता देने का प्रबन्ध भी कर रही थी, 'निराला' मित्रों से निबंध-पाठ के आयोजन के लिए कह रहे थे और कवि-सम्मेलनों में अपनी फीस बढ़ा रहे थे, साथ ही जन प्रकाशन गृह के लिए विराट संस्मरण ग्रन्थ की योजना भी बना रहे थे। अपने 'बेला' और 'नए पत्ते' काव्य संग्रह, जो तैयार थे और 'काले कारनामे' उपन्यास, जो तैयार हो रहा था, उनमें से कोई भी पुस्तक संसद को 'निराला' ने नहीं दी,[3] यद्यपि महादेवी ने 'चोटी की पकड़' के प्रकाशक की शिकायत सुनकर अपनी संस्था, संसद को पुस्तक देने की बात 'निराला' से कही थी।[4]

१- महाप्राण निराला, पृ० २३८

२- ,, ,, पृ० २६७

३- निराला की साहित्य-साधना, पृ० ४१६

४- महाप्राण निराला, पृ० २३८

अपने पुत्र से उस समय जो पत्र व्यवहार 'निराला' का हुआ, वह परिवार के प्रति 'निराला' की विरक्ति-शून्यता का परिचायक है । पुत्र-परिवार को रुपये भेजने, गहना बनवा देने, मकान को तैयार करने, जमा छाबारा और हाथ आने पर रुपया भेजने का उल्लेख सन् ४५ के पत्रों में निरन्तर हुआ है । पुस्तकों की रायल्टी और उनकी पाण्डुलिपि तथा अपने पत्र सम्हाल कर रखने का उल्लेख भी 'निराला' ने पुत्र को लिखे पत्रों में किया है[१] । डा० शर्मा को लिखे पत्र में 'निराला' ने घरेलू कामों से लखनऊ और अमेठी रहने और उन्नाव होते हुए वहाँ आने का उल्लेख किया है । उन्हीं दिनों श्री रामकृष्ण भी पिता के पास आए और उनकी हालत देखकर दुःखी हुए । केदारनाथ अग्रवाल के उनसे मिलने आने पर सहज भाव से बातें करते उन्होंने केदार जी से चले जाने और बाकी बातें पत्र से करने को कहा । अपने साढ़ू रामधनी द्विवेदी की देख-रेख में लखनऊ जाने पर 'निराला' वहाँ लगभग दो महीने रहे, जहाँ डा० शर्मा उनसे मिलने गए थे । वहाँ से वे एक दिन बिना किसी से कुछ कहे कहीं चले गए थे[२] । २ सितम्बर सन ४६ के पत्रों में यह समाचार श्री रामकृष्ण ने प्रकाशित करवाया कि अपने घर से विवेकानन्द का 'राजयोग' लेकर हिन्दी के प्रसिद्ध कवि 'निराला' जी अपने घर से अचानक गायब हो गए । इधर कुछ दिनों से उनका दिमाग खराब था । कुछ ही दिन बाद समाचार पत्रों में 'निराला' के उन्नाव पहुँचने और कुष्ठमंदिर में रहने का समाचार भी प्रकाशित हुआ[३] । उस बीच 'निराला' दो दिन आगरा रहे थे और लखनऊ होते हुए फिर उन्नाव चले गए[४] ।

२ सितम्बर को एक दूसरी 'महान आश्चर्यजनक' घटना थी, प्रयाग रेडियो से ब्राडकास्ट होने वाला हिन्दी-कवि-सम्मेलन । श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय का अनुमान था कि 'निराला' विषयक समाचार को सुनने के उपरान्त वहाँ कोई नहीं होगा,

---

१-'निराला', पृ० ११०-१११-- डा० शर्मा

२-'निराला का साहित्य साधना, पृ० ४१८-४२१

३- महाप्राण निराला, पृ० २५१

४- निराला की साहित्य साधना, पृ० ४२२-४२०

परन्तु डॉ० ब्रजमोहन गुप्त के यह कहने पर कि 'हम। मुझे यहां आयेंगे और गावें-नाचेंगे' पाण्डेय जी सायंकाल रेडियो स्टेशन गए और गुप्त जी के कथन की सत्यता का प्रमाण भी उन्हें मिला । जब उन्होंने 'रसाल' जी के साथ 'सुमन', 'बच्चन' और डा०रामकुमार वर्मा को भी वहां उपस्थित देखा[१]। उस समय आचार्य वाजपेयी जी और गंगाधर मिश्र मिलकर 'निराला' की स्वर्ण जयन्ती मनाने की योजना बना रहे थे । इससे पहले प्रथम बार 'निराला' का अभिनन्दन समारोह चौक की गंगाराम धर्मशाला, लखनऊ में सन् ३३ में हुआ था[२]।

२९ दिसम्बर,४५ के 'देशदूत' की विज्ञप्ति में राष्ट्रभाषा विद्यालय की ओर से आगामी बसन्त पंचमी २७ जनवरी को बनारस की ओर से 'निराला' स्वर्ण जयन्ती के आयोजन की घोषणा की[३]। बीस हजार की रकम और अभिनन्दन ग्रन्थ के साथ 'नया साहित्य' का निराला अंक डा० शर्मा और आचार्य वाजपेयी के एक शोध छात्र की पुस्तक के रहने की भी बात थी । डा० शर्मा ने लिखा है कि अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्पादक मण्डल की कोई बैठक नहीं हुई और जनवरी में स्वर्ण जयन्ती मनाने का अवसर आया, तब अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए लेख-संग्रह का कार्य प्रारम्भिक अवस्था में था ।[४]

२७ जनवरी को होने वाली जयन्ती के उत्सव के पहले श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय लखनऊ होते ~~कलकत्ता होते~~ हुए जब उन्नाव गए, 'निराला' को उन्होंने स्वस्थ और प्रसन्न देखा, परन्तु जयन्ती के उल्लेख पर वे गुस्सा भी हुए । पाण्डेय जी को उन्होंने बताया कि आचार्य वाजपेयी से उन्होंने कह दिया है कि हिन्दी वाले 'निराला' की स्वर्ण जयन्ती मनाकर क्या नागरिक-पूजा का प्रचार करना चाहते हैं ? जब 'निराला' को सम्मान का साथ था, तब किसी ने भी कौड़ी नहीं पूछा, अब यह तमाशा हास्यास्पद लगता है । पाण्डेय जी के प्रयाग चलने के आग्रह पर, 'निराला' ने जयन्ती पर कानपुर होकर बनारस जाने और फिर इलाहाबाद आने की बात कही । भुवनेश्वर,

---

१- महाप्राण निराला, पृ०२५१-२५२

२- निराला स्मृति ग्रन्थ, विविधा, पृ०७०-गणेश शंकर त्रिपाठी 'सारंग' का संस्करण

३- महाप्राण निराला, पृ०२५७-२५८

४ - निराला की साहित्य-साधना, पृ० ४२६

जो इन दिनों 'निराला' के अतिथि थे, ने पाण्डेय जी को बताया कि 'निराला' चिड़चिड़े ज़रूर हैं, पर उन्हें छेड़ा न जाय तो वे गम्भीर रहते हैं और कभी-कभी स्वगत वार्तालाप भी करते हैं। श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय को 'निराला' ने अपना किया रामायण का खड़ी बोली और विवेकानन्द के 'राजयोग' का अनुवाद भी सुनाया, परन्तु जिन नए गीतों की रचना उन्होंने की थी, उन्हें सुनाने या दिखाने को वे तैयार नहीं थे।[1]

'निराला' अपनी जयन्ती-समारोह के लिए बनारस गए, तब वे राष्ट्रभाषा विद्यालय में गंगाधर शास्त्री के साथ रुके थे। गंगा में नाव की सैर करते हुए उन्होंने किनारे की कई आलीशान इमारतें--जो मित्रों के अनुसार बिड़ला की थीं--दिखाकर डा० शर्मा से कहा था कि ये सब उन्होंने अपनी रायल्टी से उनके लिए बनवाई हैं।[2] काशी नागरी प्रचारिणी सभा में उत्सव का आयोजन किया गया था। केले के खम्भों और रसाल पत्र के वन्दनवार से सुसज्जित मंच के ऊपर पीताम्बर, साफा और लहराते कौशेय वसन को पहने 'निराला' विवेकानन्द की मुद्रा में विराजमान थे। उन्होंने कहा था, "बहुत दिनों बाद आज कण्ठ [illegible] किया है।" जानकीवल्लभ शास्त्री के निराला-रचित सरस्वती वंदना, 'वर दे, वीणावादिनि वर दे' से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। स्वागताध्यक्ष श्री [illegible]प्रसाद मिश्र के न आने पर आचार्य नरेन्द्रदेव ने समारोह की अध्यक्षता की। अपने भाषण में उन्होंने साहित्यिकों के ऊपर राजनीतिक व्यक्तियों के आतंक का उल्लेख किया। साहित्यिकों की उपस्थिति इस समारोह में अत्यन्त अल्प थी।' अपनी विख्यात पुस्तक 'हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी' में श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने जिन कलाकारों को स्थान दिया है, उनमें से वहाँ एक भी उपस्थित नहीं था।' वास्तव में 'निराला के समकक्ष साहित्यिक साथियों का वहाँ नितान्त अभाव था।' अभिनन्दन ग्रन्थ के छप न सकने पर 'थाल में रखे शुद्ध लिखित ग्रन्थों की भेंट' 'निराला' को दी गया, और ग्यारह हज़ार की

१- महाप्राण निराला, पृ०२५८-२५८

२- धर्मयुग, १२ फरवरी ६७, पृ०१८

राशि उनको प्रदान करने की घोषणा की गयी । पाँडेय जी के अनुसार 'निराला' जी को एक पैसा भी नहीं मिला । साहित्य के इतिहास में इससे बड़ी धूर्तता और ठगी का कोई दूसरा उदाहरण नहीं है[1] ।"

'निराला' जब बोलने के लिए खड़े हुए, आरम्भ में उन्होंने उचित ढंग से कृतज्ञता ज्ञापित की, परन्तु सहसा ही अति कल्पना के जागृत होने पर वे विक्टोरिया क्रास की बात करने लगे । कविता सुनाने का आग्रह करके 'निराला' को संभाला गया । उन्होंने 'कुकुरमुत्ता' और एक गीत सुनाया और रुपयों का दान विविध संस्थाओं को करते हुए कहा कि जनता के रुपयों का सदुपयोग करने में साहित्यकार कभी नहीं चूक सकता । सभा के समापन पर गंगाप्रसाद पाण्डेय से 'निराला' ने पन्त और महादेवी का स्मरण आने और प्रयाग से किसी के न आने का उल्लेख किया । देवी जी को प्रयाग आने और २००० रुपये संसद के लिए देने की सूचना पत्र में 'निराला' ने दी थी । जयन्ती के उपरान्त 'निराला' प्रयाग न जाकर सीधे उन्नाव लौट गए[2] । कारण बताते हुए गंगाप्रसाद पाण्डेय ने 'निराला' के महादेवी के लिखे पत्र का साक्ष्य प्रस्तुत किया है । उन्नाव से 'निराला' ने प्रयाग आने के मन, परन्तु अभी न आ सकने का उल्लेख कर लिखा :" जयन्ती वाला परिहास-परिवेष आँखों से ओझल होने पर आऊँगा ।" पाँडेय जी से भी उन्होंने कहा था :" संकल्पित दान को न दे सकने का प्रायश्चित केवल आत्म हत्या है[3] ।"

'निराला' की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर काशी के प्रगतिशील लेखक संघ ने २१ जनवरी को आयोजन किया था । यहाँ 'निराला' ने कठोर साहित्य के निर्माण की आवश्यकता बताते हुए कहा था " दूसरों के निर्वाह के लिए सुख के रास्ते निकालने का जो उपाय है, वही प्रगतिवाद है ।" कठोर परिस्थितियों में लिखे अपने साहित्य के इतिहास का उल्लेखमात्र कर देने की आवश्यकता न बता कर 'निराला' ने कथानक और महाकाव्य न देकर अपने काव्य देने की बात कही ।

१- महाप्राण निराला,पृ०२५८-२६२, रत्नाभ ,मार्च४८ में प्रकाशित निराला समाचार ।
२- कवि निराला,पृ०१४, महाप्राण निराला,पृ०२५८-२६२
३- महाप्राण निराला,पृ०२२२

अन्त में उन्होंने कहा 'आप लोग रास्ते पर चले आइये । हम लोग एक हैं । और बढ़ते चल रहे हैं ।'

४ फरवरी को हिन्दु विश्वविद्यालय के 'आर्ट्स कालेज हाल' में 'निराला' के अभिनन्दन का आयोजन किया गया था । यहाँ 'निराला' ने कविता-पाठ भी किया था । एक कविता उन्होंने सस्वर पढ़ी, 'बादल राग' और 'राम की शक्ति पूजा' के कुछ अंश भी सुनाए । 'बादल राग' सुनाने के पहले उन्होंने इस तरह की बातों को सबसे पहले 'मतवाला' में प्रकाशित होने, आज भी उनके लिखे जाने परन्तु गाली-गलौज के कारण उस कला-पक्ष के कमजोर होने का उल्लेख कर बताया कि वर्षों तक एकान्तवास करके उन्होंने कलापक्ष की साधना की है । 'राम की शक्ति पूजा' सुनाने के पहले उन्होंने इस कविता को कठिन कहने वालों को व्याकरण कम का अध्ययन करने को कहा । भारतीय कलाकारों की विकलता का उल्लेख कर 'निराला' ने अपनी इस रचना को हिन्दुस्तान के सबसे बड़े आदमी पर लिखा 'महाकाव्य के ढंग की कविता' कहा[1] । वाजपेयी जी ने लिखा है कि काशी विश्वविद्यालय में 'अपने हाथ से नई पीढ़ी के दस-बारह कवियों को सौ और दो सौ रुपये का उपहार देकर हर्ष का अनुभव उन्होंने किया[2] ।

'निराला' युग मंदिर उन्नाव में ही रह रहे थे और उनकी मानसिक स्थिति भी उस समय ठीक थी । परन्तु २५ जनवरी के बाद उनकी मानसिक स्थिति में जो परिवर्तन आया, [illegible] में उद्दण्डता और आक्रमण प्रवृत्ति भी थी । उनकी बन्धन में रहने पर 'निराला' वहाँ से भाग भी गए, परन्तु कुछ दिन बाद पुन: यहाँ लौट आए[3] । इन समाचारों से अवगत हो महादेवी जी 'निराला' को देखने उन्नाव गयीं, परन्तु उन्हें 'निराला' में विक्षिप्तता के लक्षण नहीं मिले । निराला के वहाँ रहने का कारण महादेवी के पूछने पर 'निराला' ने अन्न के कष्ट का उल्लेख कर चौधरी जी के जमींदार होने और उनके वहाँ रहने पर कुछ भार न होने की बात कही[4] ।

१- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, २२ फरवरी, ६२, पृ०३ -- डा० शिवनाथ का लेख

२- कवि निराला, पृ०४६

३- निराला की साहित्य-साधना, पृ०४२८-२९

४- महादेवी, पृ० २९८ शिवचन्द्र नागर

उन्नाव से 'निराला' बनारस भी गए थे, जहाँ वे राष्ट्रभाषा विद्यालय में रहते थे । उन्नाव में वे बीमार भी पड़ गये थे और काफी दुर्बल हो गये थे । जब डा० शिवनाथ 'निराला' से मिलने ७ दिसम्बर ४७ को गए थे, बीमारी की चर्चा चलने पर 'निराला' ने उन्हें बताया कि वे ४ मन घट गए थे, इधर १५ सेर बढ़े हैं । उन्होंने उस समय 'रामायण' का अनुवाद करने, 'स्पिरिट' और 'ढंग' दुरुस्त का होने का उल्लेख किया था । अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी में 'निराला' बीच-बीच में कुछ-कुछ गुनगुना भी रहे थे,' मानों किसी से कुछ हो उसे जली-कटी सुना रहे थे ।'[1] सन् ४८ के प्रारम्भ में ही बापू के निधन का समाचार ज्ञात होने पर 'निराला' ने १२ दिन का उपवास रखा था । काफी दिनों के बाद जब यह खबर 'आज' में प्रकाशित हुई तब 'निराला' उसे देखकर खिन्न हुए । उन्होंने कहा कि उनके उपवास का प्रयोजन प्रचार न होकर राष्ट्रपिता की हत्या का प्रायश्चित करना था[2] । इन दिनों संयुक्त प्रान्त की कांग्रेसी सरकार से 'निराला' के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त करने के प्रयास भी हो रहे थे । 'हंस' के दमन-विरोधी अंक में प्रकाशित 'उग्र' के 'निराला और हमारी सरकार'[3] वक्तव्य से इसपर प्रकाश पड़ता है । उग्र ने लिखा था कि पिछले पांच छह महीनों से 'निराला' काशी में हैं, पर ऐसा लगता है जैसे काशी के साहित्यकार जानबूझकर 'निराला' को अन्धकार में रखना चाहते हैं ।' इस बारे में सबसे बड़ा दोषी उग्र शिक्षा मन्त्री श्रद्धेय सम्पूर्णानन्द को मानते थे,' जो साहित्यिक साहित्यिकों की मजलिस में भी अपनी टोपी में सुर्खाब का पर खोंसा करते हैं ।' कृष्णदत्त पालीवाल ने २६ जनवरी के अपने काशी के दौरे के दौरान 'निराला' को कम्युनिस्ट कहकर उन्हें सहायता के अयोग्य ठहराने की अफवाह सुनकर उग्र जी ने उन्हें निराला के समर्थन में एक पत्र लिखा । उग्र ने 'निराला' के आर्य साहित्य की अपेक्षा कम्युनिस्ट समर्थक साहित्य कम लिखने तथा उनकी दार्शनिक और वेदान्तिक रचनाओं का उल्लेख करते हुए यह भी सूचना दी

१- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ११ फरवरी ६२ पृ०३४

२- निराला, संपादक 'कमलेश', पृ०२१०, सरला शुक्ल का लेख ।

३- 'हंस' जून, ४८, पृ०६६७-६६८

था कि 'निराला' जी उतनी प्रसन्न नहीं रहते थे हैं। उनके पत्र का उत्तर देते हुए पालीवाल जी ने 'निराला' के कम्युनिस्ट होने की बात का खण्डन करते हुए लिखा कि उन्होंने केवल इतना ही कहा था कि यदि 'निराला' कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य हैं, तो कुछ लोगों को उनकी सेवा-सहायता पर आपत्ति हो सकती है। पत्र में 'निराला' के बारे में क्या किया जाये, पता लगाने का आश्वासन भी था।

सन् ४८ के सावन में 'निराला' प्रयाग गये थे। तीन चार दिन रहकर ही वे वापस लौट गए और स्टेशन पर पाण्डेय जी से कहा कि वे दारागंज वालों से हिसाब-किताब ठीक करने आये थे, पर कुछ हो नहीं सका। उस समय उनकी स्वगतोक्तियाँ देश, काल और पात्र के अनुसार सधी हुई चलती थीं[१]।

महादेवी जी ने भी यू०पी० सरकार से 'निराला' की आर्थिक सहायता के लिए पत्र-व्यवहार किया था। इसके फलस्वरूप यू०पी० सरकार ने 'निराला' को २०० रु० प्रति मास देने का निश्चय किया था। यह रुपया संसद के माध्यम से 'निराला' को भेजा जाता था। उन्हीं दिनों 'अपरा' पर भी यू०पी० सरकार ने २,१०० रु० का पुरस्कार भी मिला। गंगाप्रसाद पाण्डेय की बधाई की पत्र के उत्तर में 'निराला' ने जो पत्र उन्हें लिखा, उसमें 'उल्लास का कोई चिन्ह नहीं मिला, वरन् उदासीनता का शाश्वत राग ध्वनित होता था।' महादेवी जी को भी सांस्थिक मर्यादा के अनुसार रुपया मंगवा लेने के आशय का पत्र 'निराला' ने लिखा था। मई ४६ में जब 'निराला' कानपुर, लखनऊ होते हुए इलाहाबाद गए थे, महादेवी जी के यहाँ २,१०० रुपया जमा रहने और कपड़े लत्ते बनवा लेने की बात कहने पर उन्होंने कहा था, 'निराला दान नहीं लेता, क्या होगा २,१०० रुपया।' लालों के हिसाब-किताब का उल्लेख कर यह रुपया मुंशी नवजादिकलाल की विधवा धर्मपत्नी को संसद के माध्यम से ५०) महीना, देने का अपना निश्चय पाण्डेय जी को बताया। 'निराला' ने अपने अनुष्ठान, बाल न बनवाने, जूता न पहनने, अन्न न खाने फलों और दूध पर रहने-- का भी उल्लेख किया। पाण्डेय जी से उन्होंने एक मार्मिक प्रश्न यह भी किया था : 'क्यों जी, निराला के खाने पीने तथा सोने में ही पागलपन

नज़र नहीं आता, फिर न जाने लोग पागल क्यों कहते हैं ? यह। खरी-खोटी बातें बुरा लगता होगा।[1]'

सन् ४६ का वर्षा और शरद में 'निराला' संसद भवन में रह रहे थे। उसी समय महादेवी जी ने संसद भवन देखने की हजारी प्रसाद द्विवेदी की इच्छा सुनने पर 'निराला' भी वहां गये थे। दूसरे दिन वे लीडर प्रेस गये और पाठक जी के यहां उन्होंने दावत खाई, वहां के अधिकारियों को डांट-फटकार भी बताई। गणेश जी ने दूसरे दिन के लिए दावत दी, जोशी जी के यहां भी उन्होंने खाना खाया था। इसी अवधि में महादेवी ने उन्हें एक होमियोपैथ डा० उमाशंकर को दिखाने का असफल प्रयास भी किया था[2]। मई सन् ४६ में जब वे प्रयाग गए थे, तभी महादेवी और पाण्डेय के आग्रह पर उन्होंने जुलाई से संसद में रहने की बात कही थी, और जुलाई से वह संसद-भवन में रह भी रहे थे। पत्रों में इस आशय का समाचार देने पर वह पाण्डेय जी पर बिगड़े भी थे। पाण्डेय जी से उन्होंने इस समय मन से वैराग्य ग्रहण करने, महादेवी जी के आग्रह से संसद में रहने और सांस्थिक मर्यादा में रहते हुए सहयोग दे सकते हैं या नहीं, यह देखने की बात कही थी। पाण्डेय जी को ही दारागंज के नारायण जी से मिलने के लिए जाने और सम्भवतः वहां से उन्मत्त जाने का निश्चय भी 'निराला' ने बताया था[3]।

'निराला' गांव गए। वहां किसी दुर्घटना में आहत होकर वे रायबरेली अस्पताल में रहे, यह उन्होंने स्वयं भतीजे केशवलाल को इलाहाबाद संसद भवन से लिखे पत्र में लिखा था। ओंकार शरद ने उनकी इस घायल अवस्था और उसके संबंध में उनसे पूछने पर उनके 'नाक ऊंची रही' कथन का उल्लेख अपने संस्मरण 'नरनाहर निराला'[4] में किया है। घायल अवस्था में प्रयाग पहुंच कर 'निराला' लीडर प्रेस में वाचस्पति पाठक के यहां ठहरे थे, वहां से महादेवी के कहने पर वे संसद में रहने गए थे[5]

१-महाप्राण निराला, पृ०३३५-३३८
२- ,, पृ० ३३६-३४१
३- ,, पृ० ३४५,३५० संगम १३ जनवरी ५० में पाण्डेय जी का लेख।
४- नई धारा, अप्रैल-मई,५१,पृ०१६८-२०४
५- महाकवि निराला का निरालापन,पृ०७८

ान । इनमें सन्यास लेने का विचार भी उनके मस्तिष्क में था । महादेवी जी को अपने निश्चय की सूचना देकर उनसे पाव-भर गेरू मंगाकर, गेरू में अपने दोनों मलिन अधोवस्त्र और उत्तरीय रंगने के बाद 'निराला' ने उनसे कहा :' अब ठीक है । जहाँ पहुँचे किसी नीम, पीपल के नीचे बैठ गए । दो रोटियाँ माँगकर खा लीं और गीत लिखने लगे ।'[1] अपने परिवार को सन्यास की सूचना देने के साथ ही 'निराला' ने श्री परमानन्द शर्मा को भी सन्यास और व्रतानुष्ठान की सूचना दी थी । पेड़ के नीचे रहने और टुकड़ा माँगकर खाने का उल्लेख उन्होंने किया था, क्योंकि वे भार बनकर जाना नहीं चाहते थे । पत्र में 'निराला' का यह आश्वासन भी था कि शर्मा जी यह न समझें कि वे 'लिखना' बन्द कर देंगे, बल्कि लिखने की गति और तीव्र होगी ।[2] सन् ४६ के अन्त अथवा ५० के प्रारम्भ में 'निराला' संगम भवन छोड़कर दारागंज कमलाशंकर सिंह के यहाँ आ गए थे । संगम छोड़ने के सम्बन्ध में रामविलास जी के प्रश्न का उत्तर न देकर 'निराला' ने गरीब लड़की को कम्बल देने की घटना उन्हें सुनाई । नियंत्रण 'निराला' को बर्दाश्त न था , यह विचार व्यक्त करते हुए डा० शर्मा ने लिखा है,' महादेवी जी को 'निराला' से आन्तरिक सहानुभूति थी, इसमें संदेह नहीं, पर उनके और 'निराला' के संस्कारों में कहीं मौलिक अन्तर था, इसमें भी सन्देह नहीं ।'[3]

गंगाप्रसाद पाण्डेय से भी उन्होंने कुछ दिनों के लिए दारागंज चले आने, यात्रियों का केन्द्र होने के कारण यहाँ सम्पूर्ण भारत का दर्शन सुलभ होने की बात कही थी । माचवे जी से भी एक दिन उन्होंने संगम में जाने, का उल्लेख कर उस मेले में खो जाने की इच्छा का उल्लेख उन्होंने किया था । पाण्डेय जी ने यह भी लिखा है कि गरमी में एस की टट्टी के प्रबन्ध की और नैनीताल, रामगढ़ चलने के महादेवी जी के प्रस्ताव को 'निराला' ने सायटिका की शिकायत के नाम पर अस्वीकार कर दिया था ।[4]

१-'पथ के साथी', पृ० ६१-६२
२-'निराला स्मृति ग्रन्थ' संपादक, ओंकार शरद, पृ०१३
३-'निराला की साहित्य साधना', पृ०४३५
४- महाप्राण निराला , पृ०३८४

श्री कमलाशंकर जी ने उस समय 'निराला' की अवस्था के सम्बन्ध में लिखा है कि साहित्यकार संसद से ऊबकर जब निराला कला मंदिर में रहने लगे के लिए आए, तब उनकी मनःस्थिति अत्यन्त भयावह थी। वे विचित्र ढंग से हंसते और हंसी रोकने का प्रयास करते थे, उनकी आँखें लाल और चढ़ी रहती थीं, उन्हें नींद नहीं आती थी, अजब बेचैनी और हैरानी उनके मन में रहती थी और वे सदैव मन में न जाने क्या-क्या गुनते रहते थे। उन्होंने यह भी लिखा है कि कलामंदिर में प्राप्त घरेलू शांति और साधारण सेवा से ही वे काफी ठीक हो गये थे[1]। यहीं लिखी 'अर्चना' 'आराधना' और 'गीतगुंज' की रचनाएं इसका प्रमाण है। यहाँ रहते हुए 'निराला' ने उमाशंकर जी को मुख्यतः मतवाला काल के अपने लेखों का संग्रह 'चाबुक' प्रकाशन के लिए दिया था। इन दिनों 'निराला' के गीत मुख्यतः 'देशदूत', 'हिन्दुस्तान' में प्रकाशित हो रहे थे। उनके कुछ गीत 'संगम' और 'सरस्वती' में भी छपे थे। एकाध गीत उनका 'ज्योत्स्ना', 'प्रदीप' और 'नई धारा' में भी निकला था।

१२ जनवरी ५० को 'निराला' ने उमाशंकर सिंह से तबियत ठीक न रहने, कुछ लिखना चाहने की अपनी और साहित्यकार संसद के ऐसे हिसाब-किताब जहाँ लिखना नहीं हो सकता, इन सब बातों का उल्लेख किया था और पूछा था कि वे उनकी किताब छापेंगे या नहीं। उमाशंकर जी के पुस्तक के प्रकाशन के लिए तैयार होने पर 'निराला' ने उनसे कविता या उपन्यास के सम्बन्ध में पूछकर, उनके कहने से कविता-संग्रह ही उन्हें दिया। 'अर्चना' की पहली कविता उसी दिन लिखी गयी, 'निराला' ने रोज कुछ न कुछ लिखकर पुस्तक जल्दी देने का आश्वासन दिया। रोज चार-पाँच कविताएँ लिखने का क्रम देखकर उमाशंकर जी ने 'निराला' से पूछकर उनके पढ़ने की सुविधा के लिए एक तख्त का प्रबन्ध किया। २७ फरवरी तक 'निराला' ने १०१ कविताएँ लिख डाली थीं। इसके बाद उन्होंने लिखना बंद कर दिया और फिर २४ अगस्त को पानी पड़ने पर उन्होंने वर्षा सम्बन्धी सात कविताएं और लिखीं, जिन्हें 'अर्चना' में ही दे दिया गया[2]।

१- महाकवि निराला की निरालापन, पृ०८३-८७

'अर्चना' के बाद के गीतों का संग्रह 'आराधना' 'निराला' ने साहित्यकार संसद को प्रकाशित करने को दिया था । 'आराधना' के लगभग अन्त में जो एक अतुकान्त कविता[1] है, वह सन् ५० की न होकर सन् ३८ की है । इस रचना 'गर्वोन्नित' को चतुर्वेदी जी ने ब्लाक बनाकर नवंबर ५१ की 'सरस्वती' में प्रकाशित किया था ।

'अपरा' पर 'निराला' को पुरस्कार मिलने के साल भर बाद उमाशंकर सिंह जी जब मुंशी जी के गांव सिलकहा गए और रुपयों के सम्बन्ध में पूछताछ की, तो उन्हें पता चला कि मुंशी जी की पत्नी को अब तक केवल वही १००) मिले हैं, जो 'निराला' ने स्वयं उन्हें भेजे थे । मुंशी जी के बड़े लड़के को प्रयाग बुलाकर उमाशंकर जी ने इलाहाबाद आकर देवी जी से भेंट की । महादेवी जी ने 'निराला' की इच्छानुसार ५०) भेजते रहने की बात कही । उमाशंकर जी के यह कहने पर कि रुपया मुंशी जी की पत्नी को नहीं मिल रहा, महादेवी जी ने मनीआर्डर की रसीदों का उल्लेख किया । मुंशी जी के पुत्र के प्रयाग आने पर उसे भी महादेवी जी के पास जाकर रसीदें देखने और रुपयों के सम्बन्ध में पता लगाने को उमाशंकर सिंह जी ने भेजा, परन्तु फल कुछ भी नहीं निकला । पहले तो महादेवी जी मिलीं नहीं और मिलने पर कहा कि रसीदें संसद में हैं । बाकी रुपया मांगने पर भी उसे खाली हाथ लौटना पड़ा[2] ।

परमानन्द शर्मा को लिखने की गति मन्द न पड़ने का आश्वासन तो 'निराला' ने दिया था, परन्तु 'आज' के रविवार विशेषांक में 'निराला' के कलम न छूने की प्रतिज्ञा प्रकाशित हुई । सन् ३७-३८ के लगभग पहले भी एक बार वे इसी प्रकार की प्रतिज्ञा कर चुके थे । बात कटाकर भविष्य में कविता न लिखने का उनका निश्चय २ महीने बाद प्रयाग पहुंचा था । इस अवसर पर 'निराला' की मानसिक स्थिति का सही परिचय प्राप्त करने की इच्छा से महादेवी ने लखनऊ जाकर उनसे पुन: कविता लिखने का वचन ले लिया था । पत्र द्वारा अपने इस अभिनव संकल्प की सूचना देते हुए गंगाप्रसाद पाण्डेय को तब 'निराला' ने लिखा था कि अब दुनिया इतनी गद्यमय हो

१-आराधना, पृ०८६ श्री शीनारायण के लखनऊ के निवासस्थान पर लिखा होने के कारण उनको समर्पित यह रचना उनके पास सुरक्षित है, जिसपर तिथि २४-६-३८ दी गया है ।
२- महाकवि निराला का निरालापन, पृ०८१-८२ ।

गयी है कि कविता लिखते हुए भ। वे अब काव्योचित प्रसाधनों का संविधान-शृंगार फिर न करेंगे । सिर तो टूटा हो रहेगा ।"[1]

सन् ५२ में 'आराधना' की रचना 'निराला' ने २४ अगस्त को शुरू की और २३ दिसम्बर को उसकी पाण्डुलिपि भी उन्होंने महादेवी को दे दी । इसके पहले ही 'गीतगुंज' नामक वृहत गीत संग्रह की योजना वे बना चुके थे । सन् ५३ के आरम्भ में उनकी जयन्ती के अवसर पर फिल्म भी ली गयी, इसी साल मई में उनकी 'अर्चना' और 'आराधना' पर १०००) का उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा प्रथम पुरस्कार घोषित हुआ था ।[2]

१९५३ की सितम्बर में कलकत्ता में 'निराला' के अभिनन्दन का विराट आयोजन किया गया । 'निराला' स्वयं कलकत्ता जाने के सम्बन्ध में अनिश्चित थे, परन्तु कलकत्ता के प्रति गहन मोह के कारण अन्त में वे जाने के लिए तैयार हो गए थे । उनके साथ महादेवी और पाण्डेय जी के अतिरिक्त इलाचन्द्र जोशी, वाचस्पति पाठक और जितेन्द्र सिंह भी गए थे ।[3] इलाहाबाद पर अनेक साहित्यिकों और नागरिकों ने 'निराला' को विदा किया, और कलकत्ता में भी उनका भव्य स्वागत किया गया था । इलाहाबाद से गाड़ी के चलते ही 'निराला' ने हिन्दी और बंगला का प्रयोग करने का उल्लेख किया और अपने वचन का निर्वाह भी किया ।[4] कलकत्ता पहुंच कर शाम को बड़ा बाजार की ओर पैदल घूमते हुए 'निराला' ने अपनी विगत स्मृतियों की चर्चा कर सभी स्थान दिखाए ।

१६ सितम्बर की सन्ध्या को बड़ा बाजार के नव निर्मित जैन भवन में 'निराला' के अभिनन्दन का आयोजन किया गया था । भीड़ ने महादेवी को रोककर 'निराला' के दर्शन करने का आग्रह किया और महादेवी के सार्वजनिक खुले मैदान में दूसरा अभिनन्दन होने का आश्वासन प्रदान करने पर उनको अन्दर जाने दिया । मंच पर

१- महाप्राण निराला, पृ०६१

२- अन्तर्वेद, वसंतपंचमी, ६२, निराला स्मृति अंक, पृ०६-७ डा० शिवगोपाल मिश्र द्वारा संकलित निराला की डायरी की तिथियां ।

३- धर्मयुग, २१ अक्टूबर६२ इलाचन्द्र जोशी के कलकत्ता में निराला समारोह के संस्मरण, पृ०१०

४- महाप्राण निराला, पृ०३६६ ।

निराला आचार्य क्षितिमोहन के साथ बैठे थे । महादेवी की अध्यक्षता में सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ । महादेवी जी ने दूसरे दिन मुहम्मद अली पार्क में सार्वजनिक समारोह के आश्वासन की घोषणा कर शान्ति का आग्रह किया[1]। इसके बाद आचार्य क्षितिमोहन सेन ने अपने भाषण में 'निराला' के साहित्य का सबसे बड़ा विशेषता उनके विद्रोही स्वर, का उल्लेख करते हुए उसे निर्भीक संतों की वाणी कहा । भागवत महाभारत और गीता में कृष्ण के विद्रोह के दृष्टान्त देते हुए उन्होंने बताया कि वे किस प्रकार इन्द्र पूजा तथा वैदकालीन दूसरी रूढ़ियों के विरुद्ध लड़े थे । अन्त में उन्होंने कबीर, गुरुदेव और निराला को एक ही परम्परा का देन स्वीकार करते हुए उन्हें सारे देश के लिए पूज्य कहा । श्री सेन के भाषण की समाप्ति पर भाड़ का कोलाहल बढ़ने पर 'निराला' ने स्थानाभाव की विवशता बताकर सबके मनोरंजन के लिए 'भर देते हो' कविता ताल और लय के साथ सुनायी और फिर शास्त्री जी से कविता सुनाने को कहा[2]। शास्त्री जी ने 'यमुना के प्रति' के कुछ पद गाकर सुनाए[3]। इसके बाद 'निराला' ने 'शिवाजी का पत्र' शीर्षक प्रसिद्ध ओजस्वी कविता सुनाई । 'निराला' को अभिनन्दन ग्रन्थ के अर्पण के साथ सभा विसर्जित हुई और संयोजकों से दूसरे दिन के अभिनन्दन में पार्क में आम-सभा करने का निश्चय किया गया । दूसरे दिन 'निराला' किसी कारणवश खिन्न थे, उनका 'मुड' इतना खराब था कि उनके पास जाने का साहस किसी में नहीं था । साढ़े तीन बजे वे कमरे में टहलते हुए क्रोध में बद अपने आप कुछ बड़बड़ा रहे थे और चार बजे उन्हें लेने के लिए गाड़ी भी आ गया । जोशी जी के धृष्टता करके मुहम्मद अली पार्क में अपार जनता की भाड़ के दर्शनों का प्रतीक्षा में बैठने की बात कहने पर 'निराला' की भटकी हुई चेतना पुनः यथास्थान आ गयी । यहाँ क्रमशः श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय, बेनीपुरी, जोशी और महादेवी जी ने 'निराला' के व्यक्तित्व एवं कृतित्व प का आख्यान किया । महादेवी ने 'निराला'

१- महाप्राण निराला, पृ० ३६५

२- धर्मयुग, २९ अक्टूबर६२, पृ०१०

३- महाप्राण निराला, पृ०३६६

की प्रतिभा और व्यक्तित्व पर बोलने के उपरान्त अन्त में 'निराला' के हिन्दी में लिखने के सौभाग्य का उल्लेख कर इस बात की आवश्यकता बताई कि 'निराला साहित्य के संदेश के समग्र मानवता के कल्याण के लिए सारे विश्व में प्रचारित किया जाय।' महादेवी के भाषण के बाद 'निराला' 'अपरा' लेकर उठे और उन्होंने 'राम की शक्ति पूजा' का कुछ अंश सुनाया, सभा के अध्यक्ष मेयर नरेन्द्रनाथ मुखर्जी की देता। प्रिय रंजन सेन के 'निराला' के तैल चित्र का उद्घाटन करने के साथ सभा समाप्त हुई। जोशी जी ने लिखा है कि भारतीय साहित्य जगत के इतिहास में यह पहली घटना थी जब किसी साहित्यकार के अभिनन्दन समारोह के अवसर पर जनता में ऐसा अपार उत्साह उमड़ा हो।[१]

अनेक साहित्यिक और शिक्षा संस्थाओं ने 'निराला' का अभिनन्दन इस समय किया था। बंकीय साहित्य परिषद् के अभिनन्दन में कलकत्ता-भाषी प्राय: सभी साहित्यिक विद्यमान थे, जहां डा० चटर्जी के 'निराला' से कुछ उर्दू में लिखने के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर 'निराला' ने उत्तर दिया था कि वे उर्दू बोली में नहीं, फारसी, भाषा में लिखते हैं।[२] विशुद्धानन्द विद्यालय के अभिनन्दन में जयगोपाल और शिवगोपाल मिश्र तथा श्रीरामकृष्ण के बाद 'निराला' ने महादेवी को देता। देवली पार्क के दिन महादेवी के उपस्थित न होने का उल्लेख 'निराला' ने स्वयं किया है।[३] बरुआ जी ने संस्मरण और चित्र आदि एकत्रित कर एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया।

इसके कुछ दिन बाद ही दिसम्बर में प्रान्तीय सम्मेलन में मैनपुरी से निमंत्रण 'निराला' को मिला। सभापति धीरेन्द्र वर्मा थे और इसमें महादेवी वर्मा, शिवगोपाल और जयगोपाल मिश्र भी 'निराला' के साथ गए थे।[४] हरिश्चन्द्र 'बालक' ने 'निराला' और महादेवी को तैयार किया और राजा साहब मैनपुरी के किले में से

१- धर्मयुग, २१ अक्टूबर ६२, पृ० २०

२- महाप्राण निराला, पृ०३६७

३- चयन, पृ० १०५

४- ,, पृ० ९४६

टिकारा गए । यहाँ, अधिवेशन के अध्यक्ष, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी साहित्यक के विद्यार्थी और उपन्यास लेखक के रूप में महाकवि 'निराला' से मिलने आए[1] । कवि-सम्मेलन रेडियो से प्रसारित होगा , यह सुनकर 'निराला' ने कविता पढ़ने से इन्कार कर दिया और आश्वासन मिलने पर कि उनकी कविताएं प्रसारित न होंगी,'शिवा जी का पत्र' और 'कुत्ता का बच्चा' रचनाएं सुनाईं, अंग्रेजी और गुलाबी उर्दू में व्याख्यान भी दिया । समारोह के समाप्त होने पर 'निराला' बाद में इटावा और फिर इलाहाबाद आए । 'निराला' को जितने सम्मान से ले जाया गया था,उतने सम्मान से विदा नहीं किया गया, इसकी शिकायत जयगोपाल शिवगोपाल ने 'चातक' से की थी[2] ।

सन ५४ में 'निराला' की अस्वस्थता को लेकर विवाद चलने पर और भारत में गंगाप्रसाद पाण्डेय का मिथ्या और भ्रमात्मक पत्र पढ़कर कमलाशंकर जी ने ५ अप्रैल को 'निराला' जी की अस्वस्थता का विवरण समाचारपत्रों में भेजा । 'निराला' के मन से दुःखी रहने के साथ उनके शारीरिक कष्ट से भी पीड़ित होने का उल्लेख इस पत्र में था । 'निराला' का दाहिना हाथ ऊपर नहीं उठता और उनके दाहिने पैर के घुटने और एड़ी के ऊपर की गांठों में दर्द रहता है, ३ फरवरी से १५ मार्च तक उनके पैर में भयानक पीड़ा थी,महानारायण तेल की मालिश 'निराला की होती है, सेवा और दवा का प्रबन्ध शीघ्र न होने पर बीमारी के बढ़ जाने की सम्भावना की सूचना के साथ महादेवी से हुए क्षोभजनक पत्र व्यवहार का उल्लेख कमलाशंकर जी ने किया है[3] ।

२३ अप्रैल के 'भारत' में महादेवी का वक्तव्य प्रकाशित हुआ । इसमें 'अपरा' के पुरस्कार और उत्तरप्रदेश सरकार से चिकित्सा के लिए मिले अनुदान की रकमें सुरक्षित रहने,उत्तरप्रदेश सरकार का १००) का अनुदान उनके पुत्र की जानकारी में देने और कलकत्ता अभिनन्दन में २५०० की राशि संसद या उन्हें न मिलने,अपरा और 'आराधना' का हिसाब भी ठीक रहने और प्रकाशकों से समय-समय पर रायल्टी प्राप्त होते रहने का उल्लेख था ।

१- महादेवी संस्मरण ग्रन्थ,पृ०११४, गौरीश जी का लेख
२- निराला की साहित्य साधना,पृ०४८२-४८४
३- नई धारा,अप्रैल ५८,पृ०६३-६४

१८ मई की लिखे अपने पत्र में श्री लालचन्द्र जोशी ने 'निराला के स्वयं सिद्ध संरक्षकों का उल्लेख कर महादेवी जी के ने स्थिति स्पष्ट की है और कलकत्ता अभिनन्दन का स्मरण कर 'निराला' के पागलपन अथवा उनके मानसिक असंतुलन का खण्डन किया है । 'निराला' के मानसिक अवसाद से पीड़ित होने का प्रधान कारण जोशी जी ने उनके स्वयंभू संरक्षकों को बताया है[१]। साहित्यकार संसद की गतिविधि और 'निराला' से सम्बन्धित एक वक्तव्य 'साहित्यिक ब्लैकमेलर' शीर्षक से श्री किशोरीदास वाजपेयी का भी प्रकाशित हुआ था । इसमें 'निराला' जी को लेकर कलंक बढ़ने, 'निराला' की सेवा-सुश्रूषा की समुचित व्यवस्था होने के साथ अन्य साहित्य साधकों की सफल तपस्या की उपेक्षा न करने का उल्लेख लेखक ने किया था । 'अवन्तिका' के सम्पादक ने वाजपेयी जी के व्यंग्यपूर्ण वक्तव्य में सज्जनता का अभाव बताते हुए 'निराला' के लिए आर्थिक सहायता की तो नहीं, परन्तु देखभाल की ज़रूरत महसूस की । महादेवी के वक्तव्य को उद्धृत करते हुए जिसमें आर्थिक और स्नेह सेवा के वातावरण के विविध साधनों का उल्लेख था --उनकी चिकित्सा की आवश्यकता स्वीकार की[२]।

१० दिसम्बर ५४ को कमलाशंकर जी ने 'निराला' की की वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए एक लम्बा पत्र लिखा, जिसके विवादग्रस्त अंशों को निकाल कर अपने के लिए क्षमा मांगते हुए 'नई धारा' के सम्पादक ने उसे प्रकाशित किया । कमलाशंकर जी ने लिखा कि जनवरी ५४ से 'निराला' अस्वस्थ हैं और गठिया के रोग से ग्रसित हैं । यह चिन्तनीय है कि उनके शरीर का क्रमशः ह्रास होता जा रहा है, शारीरिक दुर्बलता बढ़ती जा रही है, किन्तु मुख की श्री वैसी ही दीप्त है । शारीरिक व्याधि के कारण मनःस्थिति के दबे रहने, चिकित्सा और परिचर्या से स्थिति में परिवर्तन की सम्भावना, शरीर की पीड़ा कम रहने पर पढ़ने और मूड आने पर कविता लिखने का उल्लेख भी कमलाशंकर जी ने किया है । चिकित्सा

१- नई धारा, जून ५४, पृ० ७८-८३

२- अवन्तिका, जून ५४, पृ० १-४ सम्पादकीय

के सम्बन्ध में लिखते हुए उन्होंने बताया कि आचार्य जगन्नाथप्रसाद शुक्ल के परामर्श से मुख्यत: आयुर्वेदिक औषधियां ही प्रयुक्त होती है, परन्तु उत्तरप्रदेश सरकार के आदेश पर स्थानीय सिविल सर्जन चन्द्रशेखर दत्त मिश्र ने भी उन्हें दो बार देखा था। रोग को उन्होंने असाध्य, परन्तु बढ़ने से रोका जा सकने वाला बताया। सिविल सर्जन के परामर्श से 'निराला' को इन्जेक्शन और पुष्टिकारक अंग्रेजी दवाइयाँ भी दी गयीं। कमलाशंकर जी ने जिलाधीश द्वारा ५५०) पाण्डेय जी के रहने पाने के प्रबन्ध के लिए नियमित रूप से मिलने का उल्लेख भी किया है। ३० नवम्बर को 'निराला' की चिकित्सा के सम्बन्ध में प्रदेशीय सरकार का ध्यान आकृष्ट करने को 'निराला' के कुछ सेवक मुख्यमंत्री गोविन्द बल्लभ पंत से मिले थे। मुख्यमंत्री ने स्वीकार किया कि महाकवि के स्वास्थ्य का परीक्षण मेडिकल कौंसिल करेगी और इलाज के लिए 'निराला' को सरकारी खर्च पर जहां कहा जायेगा, वहां भेजा जायेगा। पत्र के अन्त में कमलाशंकर जी ने 'निराला' जी की दानप्रियता, प्रकाशकों की बेइमानी और परिवार की दयनीय स्थिति का उल्लेख भी किया है[१]।

कमलाशंकर जी ने सरकार से अलोपीबाग के शरणार्थी शिविर के पास थोड़ी सी जगह 'निराला' को देने की, प्रकाशकों के पास पड़े रुपयों को ट्रस्ट के अधीन करने, उससे सुन्दर भवन बनवाने और भवन में 'निराला सम्बन्धी साहित्यिक सामग्री एकत्र करने की अपील भी की थी, जिसपर सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया[२]।

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय और महादेवी जी के डायरेक्ट से पूछे थे, अब स्वयं भी सैयद हुसैन के नाम से आने की उलझन से अंग्रेजी का डी०लिट० कहा करते थे। डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है कि गंगाधर मिश्र की तुलसीदास पर लिखी पुस्तक पर सम्मति उन्होंने इसी नाम से लिखी थी। श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी ने भी इस बात का उल्लेख किया है कि कुछ दिन से वे सैयद हुसैन नाम से ही कहते थे।

१- नई धारा, मार्च५८, पृ०८६-६०

२- निराला की साहित्य साधना, पृ०४५१-४५२

श्री विनोद शर्मा के अपने अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए संदेश माँगने पर 'निराला' ने अपना सन्देश अंग्रेजी में दिया, और उसमें दस्तखत सैयद हुसेन का किए। अभिनन्दन ग्रन्थ में 'निराला' की यह सम्मति ब्लाक बनाकर छपी, पर नाम सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' हो गया था[1]। सन् ५४ के अन्त में सुधाकर पाण्डेय 'निराला' का 'गीत गुंज' छापकर लाए और ५५ के आरम्भ में ही उन्हें आगरा के पागलखाने में ले जाने का सरकारी आदेश मिला। तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री सम्पूर्णानन्द की पागलखाने भेजकर उपचार की बात सुनकर 'निराला' ने कहा था कि वे आगरे के ताजमहल की अपेक्षा गंगा में विश्राम करना अच्छा समझते हैं। सरकार उनके स्वास्थ्य की चिन्ता न कर खुद अपने स्वास्थ्य को सुधारे[2]। २८ मार्च को जब श्री रमण 'निराला' से मिलने गए स्वगतोक्तियों के मध्य उन्होंने महादेवी को सब काम सौंपने और उनके भी 'वैरागी' निकल जाने की बात कही[3]।

अगस्त सन ५५ में बंगला के कवि चंडीदास की अनेक हस्तलिखित पुस्तकें मिलने के उपलक्ष्य में उनकी समाधि पर आयोजित साहित्यिक समारोह के लिए 'निराला' ने अंग्रेजी में एक संदेश २० तारीख को दिया था।

सन् ५६ में 'निराला' की हीरक जयन्ती समारोह का सभापतित्व श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त ने किया। मदनमोहन मालवीय छात्रावास में जो स्वागत 'निराला' का हुआ, उसमें पन्त जी, महादेवी और भगवतशरण उपाध्याय भी उपस्थित थे। अगस्त सन ५६ में बारान्निकोव सपत्नी 'निराला' से मिलने आए। 'निराला' विषयक अपने संस्मरण में बारान्निकोव ने लिखा है कि इसी साल 'निराला' की कविताओं का रूसी में अनुवाद भी प्रकाशित हुआ। सन् ५७ में मास्को में प्रकाशित 'एशिया के कवि' नामक संग्रह में 'निराला' की कविताओं का रूसी अनुवाद उपस्थित है। सन ५८ में ताशकंद से प्रकाशित 'भारत के कवि' पुस्तक में भी 'निराला' की रचनाओं का

१- श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी से प्राप्त सूचना, चतुर्वेदी जी ने वह कागज भी दिखाया, जिसपर इस काल्पनिक नाम से 'निराला' ने सम्मति लिखी थी।

२- २३ जनवरी ५५ के भारत में प्रकाशित वक्तव्य।

३- नई धारा, जून ५५, ३०३.

मन-अनुबन्ध समावेश है । सन् ६० में 'निराला' की गद्यात्मक कृतियों का एक संग्रह पाठकों में निकला, जिसमें उनका 'अलका' उपन्यास और कई कहानियां सम्मिलित हैं। सन् ६२ में 'धारा' नाम से 'निराला' की कविताओं की एक अलग पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमें उनकी उत्कृष्ट कविताओं का रूसी अनुवाद उपस्थित है[१]। फरवरी सन् ५७ में बारान्निकोव पुन: 'निराला' से मिलने आए थे । सोवियत भूमि में प्रकाशित 'युग कवि निराला' संक्षिप्त लेख में सोवियत साहित्य समीक्षक ई० चेलीशेव ने 'निराला' के कविताओं के संग्रह का नाम 'सरिता' लिखा है । 'निराला' की रचनाओं का यह अनुवाद कविता-अनुवादक ए०शैविरलैव ने किया था, जो एक वर्ष पहले ही भारत से लौटे थे[२]।

अगस्त ५७ में फतेहपुर में आयोजित कवि सम्मेलन में 'निराला' गए थे । पहले तो 'निराला' ने जाने से बिल्कुल इन्कार कर दिया , पर बाद में काफी रुपये लेकर जाने को तैयार हुए । अनुनय-विनय करने पर ५००) रुपये में राजी हो गए,पर ३१ जुलाई तक २५०) अग्रिम की मांग उन्होंने की और कहा कि वे अंग्रेजी में बोलेंगे । डा० शिवगोपाल के जनपद में ग्रामीण लोगों के होने के उल्लेख पर उनको 'अपरा' और 'तुलसीदास' ले चलने की आदेश के साथ हिन्दी बोलने का अभ्यास करने की बात 'निराला' ने कही । आप ने फतेहपुर 'निराला',गंगाप्रसाद पाण्डेय, रामकृष्ण त्रिपाठी ,जयगोपाल और शिवगोपाल मिश्र रावत ओमप्रकाश सिंह और जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल के साथ गए थे । कवि सम्मेलन का आयोजन रूपम टाकीज़ में किया गया था । कवि सम्मेलन की अध्यक्षता शुक्ल जी ने और संचालन गंगाप्रसाद पाण्डेय ने किया । 'निराला' पहले दो लाइन अंग्रेजी में बोले, फिर कुछ हिन्दी बोलने में अपनी लाचारी बताकर 'शिवा जी का पत्र' सुनाने लगे । थोड़ी देर बाद उन्होंने 'राम की शक्ति पूजा' और एक गीत भी लोगों के आग्रह पर सुनाया । दूसरे दिन गवर्नमेण्ट कालेज के विद्यार्थियों द्वारा आयोजित गोष्ठी के लिए वे रुके,जहां उन्होंने विद्यार्जन की बात कहकर हिन्दी के लिए की गयी अपनी सेवा और मजदूरी का उल्लेख किया । यहां 'निराला' ने छात्रों के अनुरोध पर ' बादल-राग ' कविता सुनाई । तीसरे दिन वे प्रयाग लौट आये और प्रयाग से निकलकर नवीनता का आभास

१- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १८ फरवरी ६२,पृ०१८,४८
२-'सोवियत भूमि' अक्टूबर ६२,पृ०२७

जाने का उल्लेख किया।[1]

सितम्बर सन् ५७ में श्री छात्र श्री चेलिकोव और अप्रैल ५८ में मिलने-जन डा० रामकुमार वर्मा के साथ श्री ई०पा० चेलिशेव 'निराला' से मिलने आए। सन् ५८ के अन्त में डा० शर्मा, नागर जी और डा० सिद्धान्त ने उनकी वाणी के रिकार्ड लिए, क्योंकि शिक्षा-प्रसार विभाग के अधिकारी 'निराला' की एक छोटी सी फिल्म बना रहे थे। सन् ५८ में ही उन्होंने 'विधा' कहानी लिखी और चतुर्वेदी जी ने १३ नवंबर को 'सरस्वती' के लिए उनसे एक दूसरी कहानी भी लिखाई+। नवंबर ५८ में उन्होंने मेरी बन्धुओं से नया उपन्यास लिखकर देने का वचन दिया और 'इन्दु लेख' लिखना भी प्रारम्भ किया। उपन्यास का लिखित अंश पत्रिका में प्रकाशित हुआ। इसके पहले १५ फरवरी ५८ को 'निराला' ने श्रीनारायण चतुर्वेदी के सम्बन्ध में कतिपय पंक्तियाँ बोलकर श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' को लिखवाया और सुनकर हस्ताक्षर किए। लखनऊ में साहित्यिक की हैसियत से रहने और दुलारेलाल जी के यहां लिख-पढ़ कर सौ-दो सौ उपार्जन करने की सूचना के साथ 'निराला' ने चतुर्वेदी जी को 'सवैया के रूप में' देखने और लोगों के उनकी लोकप्रियता से पूर्ण समाकृष्ट होने का उल्लेख किया है[2]। राजर्षि की ७६ वीं वर्षगांठ पर अपने संदेश में 'निराला' ने कहा था कि 'पुरुषोत्तम' संज्ञा भगवान की है, जिसके दर्शन मानस पटल में करने के वे आश्रय हैं। राजर्षि की कर्मठता को स्वीकार कर उन्होंने हिन्दी प्रियता में भी टण्डन जी को अपने से आगे माना, क्योंकि उन्होंने तो हिन्दी के लिए मजदूरी की है और टण्डन जी ने हिन्दी का भवन बनाया है[3]।

२२ मार्च ५६ को श्री रामप्रकाश कपूर जब 'निराला' से मिलने गए और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में प्रश्न किया, 'निराला' ने कहा : 'स्वास्थ्य है कहां जो वह ठीक रहे।' जीवन की सांध्य बेला आने, जीवन के अस्ताचलगामी सूर्य के प्रतिदिन निष्प्रभ और तेजहीन होने का उल्लेख कर उन्होंने बताया कि 'शरीर के हर जोड़ में दर्द

१- अन्तर्वेद का निराला अंक, पृ०१६-१९ डा० शिवगोपाल का लेख
+--निराला की यह कहानी अद्यावधि अप्रकाशित है। श्रीनारायण जी ने इस सम्बन्ध में पूछने पर कहानी के कागजों के ढेर में पड़ी रहने और उसे खोजकर निकालने की बात उन्होंने कही थी।
२- श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी के सौजन्य से प्राप्त सूचना।

रहता है । शरीर के साथ मन भी गल रहा है ।' श्री कपूर की डायरी में 'निराला' ने लिखा,' *No good comes when friends fall out*' हिन्दी में भी चार पंक्तियां उन्होंने लिखी थीं --'तुम्हें चाहता था मैं

नहीं पा सका

जहां हवा बनकर, जब

मैं थका, रुका ।'[1]

अपने जीवन का अंतिम, सन् ६० का वसंत पंचमी का समारोह 'निराला' ने राष्ट्रभाषा विद्यालय, काशी में सम्पन्न किया । श्री गंगाधर मिश्र उन्हें सादर लिवा ले गए । प्रसन्न मन 'निराला' ने अपने स्वागत में हुए भाषणों का उत्तर देते हुए बताया कि उनके जीवन का अधिकांश साहित्य-साधना में समाप्त हुआ, परन्तु उनकी साधना का उचित सम्मान नहीं हुआ । अब उनसे अधिक आशा रखना व्यर्थ है, कहकर 'निराला' ने 'सरस्वती के चरणों में स्वाध पुष्प और चढ़ाने का प्रयत्न करने का उल्लेख किया'[2]। दिल्ली में आयोजित जन्म दिवस समारोह की अध्यक्षता डा० शर्मा ने की, लीडर प्रेस की रायल्टी की रसीद पर हस्ताक्षर करने से इन्कार करने पर नागर जी, पंत जी और भगवती बाबू के प्रयत्न भी विफल हुए[3]।

सन् ६० में जब पं० जवाहरलाल नेहरू राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन को देखने गए, 'निराला' को देखने की बात सुनकर उन्होंने समय की कमी का उल्लेख कर मोटर लेकर 'निराला' को लिवा लाने भेजा । पंडित जी का सन्देश सुनकर 'निराला' ने लिखा : ' एक शायर ने लिखा है-- 'है सिर्फ कब्रिस्तान फलातुं तेरे आगे । या सच जो परस्तु भी करूं हुं तेरे आगे ।। और मैं कह रहा हूं कि मुरगान चमन का है गुदरगुं तेरे आगे । मुझ जैसे रकीबों का है हुं हुं तेरे आगे ।'[4]

जाड़ों में श्री शिवदान सिंह चौहान ने मास्को से श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त को पत्र लिखा कि सोवियत लेखक संघ 'निराला' की चिकित्सा की पूरी जिम्मेदारी उठाने को तैयार है, किन्तु कुछ निर्णय होने के पहले वे उनको डाक्टरी

१- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, २८ फरवरी ६२, पृ०४७

२- आज, ४ फरवरी ६० ।

३- निराला की साहित्य साधना, पृ०४५८-४५६

४- अन्तर्वेद का निराला अंक, पृ०३६ उमाशंकर सिंह के संस्मरण ।

पराशर की रिपोर्ट देखना चाहते हैं । भैरवप्रसाद गुप्त और श्री ओमप्रकाश जी के साथ प्रकाशचन्द्र गुप्त दारागंज गए, परन्तु 'निराला' मिले नहीं । यह काम डा० उदयनारायण तिवारी को सौंपकर ये लोग लौट आए । बात संभवतः आगे न बढ़कर वहीं तक रह गयी थी[1] ।

'निराला' जी के जीवन के अन्तिम क्षणों[2] के सम्बन्ध में लिखते हुए श्री कमलाशंकर जी ने यह बताया है कि डाक्टरों के अनुरोध पर वे अस्पताल जाने के लिए मना कर चुके थे । अगस्त ६० से उनकी तबियत, मानसिक दशा अधिक बिगड़ी, मुख्यतः शारीरिक व्याधियों के कारण उनका स्वास्थ्य तेजी से गिरने लगा । 'निराला' को शोथ और जलोदर रोग था, शरीर सूज गया था । उनके उदर और यकृत विकृत हो गए थे और खांसी बढ़ गयी थी, हार्निया के वे पुराने मरीज थे । कैप्टन दास, डा० घोष और डा० ब्रजबिहारी लाल उनका इलाज कर रहे थे ।

इस समय पन्त जी उन्हें देखने गए, 'निराला' प्रसन्न हुए । केदारनाथ अग्रवाल ने भी उनसे मिलकर 'हिन्दी के अपराजेय कवि' के अच्छा होने, पुनः पाताल से सूर्य की तरह' उभरने और आलोक पाकर कवि के अच्छा होने का शुभ संदेश प्रकाशित कराया[3] । इस समय भी गीत रचना का क्रम टूटा नहीं था । ७फरवरी ६१ को उन्होंने 'शाम की गहरी विभावरी' गीत लिखा, फिर 'रमन गीत' और 'उन्मेष, देश, जन, आदि रचना का प्रणयन किया । इन रचनाओं के बाद भी उन्होंने लगभग १५ और कविताएं अन्तिम समय तक लिख डाली थीं, परन्तु उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे खराब ही हो रहा था ।

२५ जुलाई को 'निराला' के पैर फिर से सूजने लगे । श्रीनारायण जी ने भी चन्द्रभानु गुप्ता से कहा और उनके कहने पर कानपुर मेडिकल कालेज के डा० के०एन० गौड़ ५ अगस्त को 'निराला' को देखने आए और दवा बदलने के साथ खून की जांच करवाने और पेट से पानी निकलवाने की बात कही । दवा बदलने से 'निराला'

१- आज का हिन्दी साहित्य, पृ० २२५

२- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ११ फरवरी, ६४, पृ० २३-२०

३- कृति, फरवरी ६१ में केदार जी का लेख ।

की बेचैनी बढ़ने पर उन्होंने डाक्टर की दवा न खाने का निश्चय किया और उनकी जिद से उन्हें पुराने 'इन्जेक्शन लगाए जाने लगे । २ महीनों में उनकी हालत विशेष सुधर नहीं रही थी और स्थिति संकटपूर्ण होती जा रही थी ।

१२ अक्टूबर को 'निराला' ने नाई बुलाकर अपना सिर घुटवाया और दाढ़ी रहने दी । डाक्टर के मना करने पर भी उन्होंने काम करना बन्द नहीं किया । १३ तारीख को चार घण्टे लगातार उन्होंने महाप्रसाद बनाया । थोड़ा सा दूध भी उन्होंने ग्रहण किया, जो उनका अन्तिम भोजन था । शाम से उनकी तबियत बिगड़ने लगी । १३ अक्टूबर को श्री रामप्रताप त्रिपाठी 'शास्त्री' मित्रों के साथ शाम चार बजे उनको देखने गए । 'निराला' ने कहा 'अब इस शरीर का मोह नहीं रहा, बूढ़ा हो गया हूं ।' जब राजर्षि टण्डन के हार्निया का दृष्टान्त प्रस्तुत करने पर 'निराला' ने व्याधि से मुक्त होने की इच्छा तो प्रकट की, पर आपरेशन के माध्यम से नहीं । दूध पीने का आग्रह करने पर 'निराला' ने पहले इंकार किया, फिर दूध पीने को तैयार हुए, परन्तु उनसे चाय पीने के आग्रह के साथ[१] । रात को काफी कराहते रहे और पूछने पर हार्निया के कड़े होने की बात कही, पर अस्पताल का नाम सुनकर बिगड़ गए । दूसरे दिन सिविल सर्जन ने कमलाशंकर जी के फोन करने पर अपने सहायक डा० नैथाणी को भेजा । उन्होंने आकर मार्फिया का इन्जेक्शन दिया और अस्पताल ले जाने का प्रयास किया, परन्तु वे जाग गए । शाम को चार बजे डा० नैथानी पुन: उन्हें देखने आए । १४ अक्टूबर को सुबह पहले वाली दवा, कम्बल और एक प्याला अनार के रस की इच्छा उन्होंने कमलाशंकर जी की पत्नी से कही । इस समय 'निराला' को बहुत कष्ट था, ग्लुकोज इन्जेक्शन लगाने के लिए भी उन्हें बेहोश किया गया । १५ अक्टूबर को सुबह साढ़े छ: बजे अंतड़ियां अकड़ीं, नौ बजकर पच्चीस मिनट पर उन्हें भूमि पर उतारा गया । इस समय उनकी मुखमुद्रा सौम्य थी, शास्त्रानुसार वेद मंत्र और गीता का पाठ तथा गऊ, भूमि और स्वर्ण का दान भी हुआ । जयगोपाल जी उन्हें 'राम की शक्ति पूजा' का अंश सुना रहे थे । नौ बजकर २३ मिनट पर उनके

१- भारत, २६ अक्टूबर ६१, निराला अंक, पृ०३-४

अधखुले नेत्र बन्द होकर खुले, फिर बंद हुए और नौ बजकर २३ मिनट पर उन्होंने प्राण त्याग दिए।

'अन्तिम क्षणों की स्मृति' संजोते हुए डा० जगदीश गुप्त ने लिखा: 'जीवन के अन्तिम वर्षों में जितनी असह्य और मर्मान्तक पीड़ा 'निराला' ने सही और अपने अन्तिम क्षणों में काल से जितना कठोर संघर्ष किया, उसे देखते हुए भी यही कहना होगा कि वे मरे नहीं, जी गए।'[1]

श्रीचन्द्रभाल बाजपेयी 'अलिन्द' ने 'निराला' विषयक अपने संस्मरण[2] में लिखा कि मृत्यु से कुछ दिन पूर्व रोगशय्या पर पड़े हुए पत्रकारों के सम्मुख कहा था कि उनकी अन्तिम इच्छा यह है कि उनके शव का दाह-संस्कार न किया जाय, गंगा में फेंक दिया जाय, ताकि कीड़े-मकोड़े उसे खाकर अपनी क्षुधा शान्त कर सकें। यदि दाह-संस्कार किया जाय, तो उनकी अस्थियां देश में चतुर्दिक फेंक दी जायं, जिससे हिन्दी को गरल न समझा जाय और लोग उससे स्नेह करें। बाजपेयी जी ने यह भी लिखा है कि परिवार के ब्रह्माण्ड में विलीन होने का उल्लेख करते हुए निराला ने पत्रकारों से कहा था ' जीवन में मैंने जो कुछ लिखा है वह दक्षिणेश्वर के मंदिर में अल्पकाल के निवास में ही सीखा है और वहीं मुझे सर्वप्रथम विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्द के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने स्वामी विवेकानन्द को न केवल अपना गुरु माना अपितु वे मेरे सब कुछ थे।' कुछ समय के लिए अपने बिल्हीरगढ़ तथा शान्तिनिकेतन रहने का उल्लेख कर 'निराला' ने विवेकानन्द और रवीन्द्र का ऋण स्वीकार कर जो प्राप्त किया उसे जनता में वितरित कर देने की बात कही, यह भी स्पष्ट किया कि यदि सरकार चाहे तो हिन्दी के संदेश के विस्तार के निमित्त उनकी कृतियों का राष्ट्रीयकरण कर सकती है।

'निराला' को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए भारतस्थित सोवियत दूतावास के संस्कृति विभाग की ओर से २० नवम्बर को दिल्ली के सावणकोर हाउस में सभा आयोजित की गयी, अध्यक्षता दिनकर ने की। अपने भाषण में उन्होंने 'निराला' की प्रतिभा और महानता का उल्लेख कर बताया कि 'निराला' हो ऐसे

१- भारत २६ अक्टूबर ६१,पृ०१

२- निराला स्मृति ग्रन्थ (विविधा) ,पृ०४०-४३

साहित्यिक थे, जिनके अपने जीवनकाल में उनके बारे में काफी अधिक साहित्य लिखा गया । सज्जाद ज़हीर ने मानव के प्रति प्रगाढ़ प्रेम को 'निराला' के कृतित्व का महानतम गुण कहा । बच्चन ने 'निराला' के व्यक्तित्व के उनके कृतित्व पर छाया रहने के कारण कृतित्व के सही मूल्यांकन को असम्भव बताया । साहित्य अकादमी के सचिव प्रभाकर माचवे ने कालिदास से प्रारम्भ होने वाली भारतीय कवियों की परम्परा में 'निराला' को प्रतिष्ठित किया । शिवदान सिंह चौहान ने पुनर्जागरण काल में 'निराला' के जन्म का उल्लेख कर ऐसे कालों में बहुधा महान व्यक्तित्व और कृतित्व वाले कलाकारों के जन्म लेने की बात कही । चेलीशेव ने हाल में 'निराला' के मास्को में प्रकाशित काव्य संग्रह और अन्य सोवियत भाषाओं में उस संग्रह के प्रकाशन की तैयारी का उल्लेख कर निराला से अपनी भेंट का वर्णन और उनकी एक कविता पढ़कर सुनाई[१] ।

दिसम्बर की 'सरस्वती' में सम्पादक ने 'निराला संस्थान' शीर्षक से अपनी एक टिप्पणी प्रकाशित की । 'निराला' के 'सार्वजनिक' प्रशंसकों को लक्ष्य कर बैसवाड़ी में प्रचलित एक दोहा लिखा, जिसका आशय यह है कि जीते जी तो बाप की अवमानना की, और मरने पर बड़ा सम्मान दिलाया । उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय के कुछ प्राध्यापकों के 'निराला शोध संस्थान' स्थापित करने की योजना पर विनोद पूर्ण कुतूहल व्यक्त किया । चतुर्वेदी जी ने बी०ए० के पाठ्यक्रम में समाविष्ट 'निराला' की चार कविताओं और एम०ए० के लिए 'तुलसीदास' के सहायक पाठ्य पुस्तक होने का उल्लेख कर लिखा : कि निराला का स्मारक बनाने का नैतिक अधिकार उनके जीवन-काल में उनकी उपेक्षा करने वाले प्रोफेसरों को नहीं है ।" "निराला" हिन्दी जनता के व्यक्ति थे, और उनका स्मारक उसी के द्वारा बनना चाहिए ।"

सम्पादकीय के अन्त में चतुर्वेदी जी ने २६ अक्टूबर को सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में लखनऊ में हुई विराट शोक सभा का उल्लेख किया है । उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री चन्द्रभानु गुप्त ने यहाँ यह घोषणा की थी कि महाकवि की स्मृति में

१- सोवियत भूमि, दिसम्बर ६१, पृ०१६ 'रूसी में निराला जी की कविताएं', लेख ।
२- सरस्वती, दिसम्बर ६१, पृ०३७८-३७६

सरकार लखनऊ में एक 'निराला हिन्दी भवन' का निर्माण करेगी और यह भवन सरकार और जनता के सहयोगसे बनेगा ।

साप्ताहिक हिन्दुस्तान के सम्पादक ने भी 'निराला' ज्ञान पीठ अथवा निराला अध्ययन-केन्द्र की स्थापना का उल्लेख किया, दारागंज के उस घर को, जिसमें निराला जी की मृत्यु हुई थी, 'निराला-मंदिर' का रूप देने का एक अधिक व्यावहारिक सुझाव भी आया । आह्न के लिए कमलाशंकर जी को १६०० रुपये मिले, रामकृष्ण त्रिपाठी को रसीदें दिखाने पर लगभग साढ़े बारह सौ रुपये मिल सके । निराला के नामसे जमा सरकारी रकम से राशि दी गयी[1]।

दिल्ली में राष्ट्रपति भवन में निराला जयन्ती की योजना श्री बांकेबिहारी भटनागर ने बनाई ।'निराला जयन्ती का वह प्रेरक समारोह' शीर्षक से शिवकुमार कौशिक की रिपोर्ट हिन्दुस्तान में प्रकाशित हुई । उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन ने निराला को सत्य का अनुयायी और धुन का पक्का कहा । जीवन और कृतियों में, साहित्य एवं संस्कृति में,'निराला'के विद्रोह का उल्लेख कर उन्हें नवयुग की भावना की सफल प्रतिनिधित्व करने वाला कहा । 'सुमन' ने कहा : 'भारतीय साहित्यमें कबीर के बाद ऐसा विद्रोही कवि नहीं हुआ और तुलसी के बाद वाणी से ऐसा वर्चस्व कवि नहीं पाया । नन्ददुलारे बाजपेयी ने 'निराला' को या उनकी कृतियों को वाद या सीमा में बाँधने के प्रयास को अन्याय और उन्हें व्यापक सांस्कृतिक चेतना का कवि कहा । 'दिनकर' ने 'निराला' के अभावमय जीवन का कारण बताया उनकी वेदना अथवा अभाव का वैयक्तिक न होना । 'निराला' को युग की वेदना का प्रतीक कहकर उन्होंने इस वेदना का मूल कारण खोजने के कर्तव्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया । इस बात का वास्तविक रूप 'सुमन' को कमलाशंकर के निवासस्थान पर साहित्यिक गोष्ठी में देखने को मिला, जहाँ 'सबने 'निराला' जी 'कैविरुद्ध अपना दबा गुबार निकाला' । सुनकर वे 'सन्न' रह गए । अमृतलाल नागर ने

१- निराला की साहित्य साधना,पृ०४६७

२- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ४ मार्च ६२,पृ०५२-५३

इस आयोजन को निकम्मा उद्योग और उल्टी अभिलाषा कहा और गढ़ाकोला जाकर उन्होंने 'निराला' को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की । इस सम्बन्ध में डा० शर्मा ने लिखा: 'भारतीय जनता के हृदय में हजारों साल से लोक संस्कृति की यह अजस्र धारा प्रवाहित रही है । उसी में 'निराला' के मानस की आधुनिक सरस्वती भी घुल-मिलकर एक हो गयी । उनकी सुदीर्घ साहित्य-साधना की यही सफलता भी है ।'[1]

जनवरी ६२ में विश्वबंधु शर्मा ने लिखा : ' सूर्यकान्त त्रिपाठी बी०ए०,साहित्य रत्न अब नहीं रहे ।'[2]

'निराला' की रचनाओं पर विचार करते समय मुख्यरूप से उनकी कृतियों का उल्लेख आवश्यक है, जिनके सम्बन्ध में विवाद की स्थिति है । उनकी जो रचनाएं प्रकाशित हैं,[3] उनके सम्बन्ध में इतना ही ज्ञातव्य है कि इन सभी की सृष्टि कलकत्ता,लखनऊ और प्रयाग के प्रवास-काल में हुई थी । निराला की साहित्य-साधना के इन तीन केन्द्रों के अतिरिक्त उनका गांव गढ़ाकोला और ससुराल डल्मऊ तथा काशी भी लेखन केन्द्र की दृष्टि से उल्लेखनीय अवश्य हैं । प्रकाशित ये रचनाएं इस तथ्य की विज्ञप्ति भी करती हैं कि 'निराला' ने निरन्तर अपनी पुस्तकों के प्रकाशन के लिए प्रकाशक बदले हैं ।

'निराला' की कविताओं और लेखों की एक बड़ी राशि पत्र-पत्रिकाओं में ऐसी भी पड़ी है, जिसका अद्यावधि संकलित रूप में प्रकाशन नहीं हुआ है[4]। 'मतवाला' में प्रकाशित 'शकुन्तला' नाटक भी उन्हीं रचनाओं के अन्तर्गत गणेय है, क्योंकि प्रकाशित रूप में वह भी अप्राप्य है, यद्यपि उसके प्रकाशन की दिशा में प्रयत्न डा० शिवगोपाल मिश्र द्वारा किया गया था[5]। 'निराला' की ये असंगृहीत रचनाएं जिन पत्रों में मिलती हैं, उनके नाम हैं-- 'समन्वय', 'मतवाला', 'सुधा', 'माधुरी', 'कवि', 'प्रभा', 'आदर्श' 'इन्दु', 'सरोज', ' रंगीला ', 'कला', 'भारत', 'देशदूत'

१- निराला की साहित्य साधना,पृ०४६८-७०

२- वाणी,जनवरी ६२,पृ० १२६,बी०ए० और साहित्य रत्न की उपाधियों का प्रयोग लेखक ने गलत किया है ।

३-इन पुस्तकों की सूची परिशिष्ट में दी गयी है ।

४- प्राप्त रचनाओं की पूरी सूची परिशिष्ट में दी गयी है ।

५-डा० मिश्र से प्राप्त सूचना, हिन्दी प्रचारक के श्री डा०एन०कश्यप जी यह प्रकृति 'मतवाला' से नोट करके उन्होंने प्रकाशन के लिए दी थी ।

`संगम`, `वकल्ला`, `सरस्वती`, `प्रदीप`। इनके अतिरिक्त मारवाड़ी अग्रवाल, साहित्य - समालोचक और `चाँद` में भी `निराला` का एक-एक अंकहित लेख प्राप्त हुआ है। `कान्यकुब्ज` पत्र में छपे एक लेख का उल्लेख श्री रामकृष्ण त्रिपाठी ने `अन्तर्वेद` के निराला अंक में किया है, जिसके सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा ने सूचना दी थी कि वह प्राप्त अद्यावधि नहीं हुआ है। `नारायण` पत्र में भी `निराला` की प्रारम्भिक रचनाएं प्रकाशित होने के उल्लेख मिलते हैं, परन्तु पत्र की फाइल सुलभ न होने के कारण इस विषय में निश्चयपूर्वक से कुछ कह सकने की स्थिति नहीं है।

दो ऐसे संस्मरणात्मक लेखों का उल्लेख भी मिलता है, जिनको `निराला` ने प्रकाशन के लिए भेजा, परन्तु लौट आने पर नष्ट कर दिया था। इनमें एक लेख पन्त जी पर और दूसरा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी पर था।

`निराला` की कुछ पुस्तकें ऐसी भी हैं, जिनके प्रकाशित होने अथवा अप्रकाशित रहने के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है, अथवा जिनका उल्लेख मात्र मिलता है और जो प्रकाशित नहीं हुई हैं। `निराला` की तीन नाट्य कृतियों-- `ऊषा`, `शकुन्तला` और `समाज` का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें से अन्तिम का उल्लेख केवल श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने किया है। इन तीनों पुस्तकों को अप्रकाशित कहा गया है, जब कि `शकुन्तला` के `मतवाला` में प्रकाशित होने के प्रमाण मिलते हैं। `ऊषा` नाटिका की कल्पना मात्र `निराला` ने की थी, उसका सृजन नहीं हुआ और `समाज` नाटक सम्भवत: वह हो सकता है, जो श्री शिवपूजन वर्मा ने `निराला` से बिड़ला बन्धुओं पर लिखवाया था।

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने `निराला` की `वर्षा गीत` और `फुलवारी लीला` नामक दो अप्रकाशित पुस्तकों का उल्लेख भी किया है। इनके सम्बन्ध में डा० शिवगोपाल मिश्र के `निराला` से प्रश्न करने पर उन्होंने बताया था कि फुलवारी-लीला रामायण के धनुष यज्ञ अंश का खड़ी बोली अनुवाद है, जिसकी पाण्डुलिपि पाण्डेय जी के पास रह गयी थी। `वर्षा गीत` के सम्बन्ध में डा० मिश्र को कोई जानकारी नहीं, वह उन्हों ने बताया।

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने वात्स्यायन के कामसूत्र का बंगला से किया हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित बताया है, जिसके प्रकाशक श्री निहालचन्द्र वर्मा थे। वर्मा जी ने 'निराला' से कामसूत्र का अनुवाद कराने का उल्लेख तो किया है, परन्तु उसके प्रकाशन की कोई बात उन्होंने नहीं लिखी है। श्री कमलाशंकर जी तथा डा० शिवगोपाल मिश्र ने इस अनुवाद को अप्रकाशित कहा है, परन्तु उनकी सूचना है कि 'निराला' की हस्तलिपि में इस अनुवाद की पाण्डुलिपि महादेवी जी के पास सुरक्षित है।

डा० श्यामसुन्दर दास ने 'निराला' की कृतियों में 'प्रबन्ध परिचय' और 'अपना घर' का नाम लिया है और उनको प्रगति प्रकाशन से प्रकाशित भी बताया है, परन्तु इनकी कोई भी जानकारी 'निराला'-साहित्य में प्राप्त नहीं होती। इसी प्रकार 'रस अलंकार' पुस्तक को आपने अप्रकाशित लिखा है, जब कि यह पुस्तक लहरिया सराय पटना से प्रकाशित है।

'सरकार की आँखें' 'उच्छृंखल' और 'चार्वी विद्या' शीर्षक तीन उपन्यासों का उल्लेख भी 'निराला' के साथ किया जाता है। 'सरकार की आँखें' के सम्बन्ध में डा० शिवगोपाल मिश्र ने सूचित किया कि श्री रामकृष्ण त्रिपाठी से इस कृति के बारे में सूचना मिलने पर उन्होंने पी०पी०एच० से इस सम्बन्ध में पत्र व्यवहार किया, परन्तु कुछ पता नहीं चला। 'उच्छृंखल' की भाँति 'उच्छृंखल' उपन्यास की रूपरेखा ही 'निराला' के मन में रही, लिखा वह नहीं गया। 'चार्वी विद्या' 'निराला' की इस कृति का नाम किसी ने भी नहीं लिया है, प्रथम बार 'बेला' के अन्तिम कवर पर ही इसके प्रकाशन की सूचना मात्र मिलती है, यह कभी लिखी गयी अथवा इसे लिखने की कोई कल्पना 'निराला' के मन में थी, इसका उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता।

'गीत गुंज' की पुस्तक-सूची में गीत गोविन्ददास की बंगला कृति और उच्छृंखल (ब्रजभाषा) अनुवादों का उल्लेख आया है। इनमें से प्रथम का तात्पर्य संभवतः बंगला कवि गोविन्ददास के उन पदानुवादों से हो सकता है, जो 'माधुरी' में प्रकाशित हुए थे और जिनमें से कुछ 'प्रबन्ध प्रतिमा' में संकलित हैं। द्वितीय के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की सूचना उपलब्ध नहीं है।

'निराला' द्वारा रामायण की टीका लिखे जाने के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। इस दृष्टि से श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय तथा डा० शिवगोपाल मिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं। 'गीत कुंज' की पुस्तक-सूची में श्री तुलसीकृत रामायण की टीका के दस खण्डों में प्रकाशित होने का उल्लेख है, 'सुधा' में भी उसका विज्ञापन दिया गया था, जिसमें टीकाकार का नाम नहीं दिया गया था। डा० मिश्र की सूचना है कि गंगा पुस्तक माला से प्रकाशित टीका में टीका के लेखक का नाम नहीं दिया गया। दुलारेलाल भार्गव से इस सम्बन्ध में प्रश्न करने पर उन्होंने बताया कि टीकाकार 'निराला' ही हैं, जिनका नाम भूल से छूट गया है। डा० मिश्र का यह विचार है कि टीका अत्यन्त साधारण है, अतः वह 'निराला' द्वारा लिखी गयी प्रतीत नहीं होती। बालकाण्ड की अन्तर्कथाओं को सन् ५८ में श्री दुलारेलाल भार्गव ने प्रकाशित किया।

पापुलर ट्रेडिंग कम्पनी से प्रकाशित पुस्तकों में केवल 'रवीन्द्र-कविता-कानन' सुलभ होती है, जिसका दूसरा संस्करण हिन्दी प्रचारक से निकला था। जीवनियों, मनहर चित्रावली तथा हिन्दी बंगला शिक्षक के प्रकाशन की सूचना मिलती है, जो उस का नाम भी प्रकाशित पुस्तकों की सूची में आया था, परन्तु देखने के लिए भी ये कृतियाँ कहीं भी सुलभ नहीं हैं। यही स्थिति 'निराला' द्वारा किए गए बंकिम के अनुवादों की भी है, जो इण्डियन प्रेस से प्रकाशित हैं।

'निराला' की अपूर्ण कृतियों में 'चोटी की पकड़' और 'काले कारनामे' जिनका उपलब्ध और लिखित अंश पुस्तक रूप से प्रकाशित हो चुका है -- के अतिरिक्त 'रूपाभ' में प्रकाशित 'चमेली' जिसके और आगे लिखने का निश्चित प्रमाण कुंवर सुरेशसिंह को लिखे 'निराला' के उस पत्र से प्राप्त होता है, जिसमें चमेली के भाग जाने का उल्लेख है और 'ज्योत्स्ना' और फिर 'अपरा' में प्रकाशित 'इन्दुलेखा' उपन्यासों का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

'निराला' की विवादग्रस्त पुस्तकों के सम्बन्ध में केवल इतने ही उल्लेख प्राप्त होते हैं। यहाँ उन कृतियों का नामोल्लेख नहीं किया गया है, जिनके प्रकाशन के सम्बन्ध में विद्वानों में तो मतभेद है, परन्तु जिनके प्रकाशित होने के निश्चित प्रमाण प्राप्त हो गए हैं।

द्वितीय अध्याय

श्री रामकृष्ण, विवेकानन्द : प्रेरणा-स्रोत

निराला के काव्य का प्रमुख प्रेरणा-स्रोत श्रीरामकृष्ण, विवेकानन्द का विचार-दर्शन रहा है, जिसका सर्वाधिक व्यापक, गहन और स्थायी प्रभाव उनके काव्य-व्यक्तित्व पर पड़ा है। निराला के काव्य और जीवन के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि जीवन के प्रारम्भिक काल से लेकर अन्तिम समय तक, कभी भी श्री रामकृष्ण एवं विवेकानन्द उनके मन से पूर्णत: विलग नहीं हुए, अविच्छिन्नरूप से वे सदा उनके मानस से सम्बद्ध रहे हैं। समत्व भाव तथा प्रत्यक्षानुभूति पर आधारित ज्ञान अथवा मुक्ति का मौलिक वेदान्त दर्शन अथवा साधनानुकूल अद्वैतानुभव जो मनुष्य को केन्द्र में रखकर व्यवहार-पक्ष की नीतिपरक शिक्षा भी देता है, निराला की भावना और चिन्तना का पाथेय रहा है। उनके जीवन, व्यक्तित्व एवं साहित्य में सर्वत्र इस विचारधारा के प्रभाव के यथेष्ट पुष्ट प्रमाण हमें मिलते हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि निराला ने इस अद्वैत दर्शन को ज्यों का त्यों स्वीकार न कर उसे अपनी प्रवृत्तियों एवं अभिरुचियों के अनुरूप, अपने ढंग से आत्मसात् किया और उसकी अभिनव व्याख्या प्रस्तुत की।

उम्र के बत्तीस साल तक कलकत्ता और बंगाल में रह चुकने के कारण परमहंस श्रीरामकृष्ण देव तथा स्वामी विवेकानन्द के साहित्य और उनके विचार-दर्शन से निराला अपरिचित नहीं थे। आध्यात्मिक साहित्य के अभिज्ञ अध्येता थे, यह उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है[१]। अपने साहित्यिक जीवन के उन्मेष-काल में ही, बंगाल में रहते हुए निराला ने श्री रामकृष्ण, विवेकानन्द पर कतिपय निबन्ध "समन्वय" के लिए लिखे थे। इसी अवधि में इनके व्याख्यानों, प्रवचनों और कविताओं के अनुवाद भी उन्होंने किये थे, जो "समन्वय" और "मतवाला" में प्रकाशित हुए।

१- "चतुरी चमार", पृ० ५२, "संग्रह", पृ० ६४

लखनऊ और प्रयाग में रहते हुए भी लेख और अनुवाद के काम का यह क्रम सर्वथा भंग नहीं हुआ था। यह समग्र सामग्री श्री रामकृष्ण, विवेकानन्द के प्रति निराला की अतुल श्रद्धा और स्नेह-भक्ति का परिचय देती है। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से निराला के मानस से उनकी सम्बद्धता का प्रमाण भी हमें यहीं प्राप्त होता है।

'समन्वय' और 'मतवाला' के लिए काम करते हुए निराला ने कुल मिलाकर छह निबन्ध श्री रामकृष्णदेव, स्वामी विवेकानन्द तथा अपने दीक्षा गुरु स्वामी सारदानन्द पर लिखे, जो समन्वय के प्रथम आठ वर्षों में समय-समय पर प्रकाशित हुए। लेख के तक़ाज़े के साथ 'समन्वय' नाम के सुन्दर पत्र के अपने पास आने, और उसमें 'युगावतार भगवान श्री रामकृष्ण' शीर्षक लेख लिखने का उल्लेख स्वयं निराला ने किया है[1]। इस शीर्षक के दो विशालकाय लेख[2] 'समन्वय' के अंकों में प्रकाशित अवश्य हुए थे, परन्तु ये लेख मिशन के प्रारम्भिक नहीं, परवर्ती अंकों में -- 'समन्वय' वर्ष सात, अंक भी संवत् १९८५, आश्विन और वर्ष आठ, अंक चार, संवत् १९८६ वैशाख में प्रकाशित हुए थे। 'समन्वय' के आश्विन वाले अंक में प्रथमबार रचनाकार का पूरा नाम 'पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'' छपा था। दूसरा लेख श्रीरामकृष्ण की साधनाओं और जीवन का परिचायक था। 'समन्वय' में प्रकाशित श्री सूर्यकान्त-त्रिपाठी का पहला लेख 'भारत में कृष्णावतार' था, जो उसके प्रथम वर्ष के पंचम अंक में निकला। परमहंस पर उनका दूसरा विस्तृत निबन्ध 'समन्वय' के दूसरे वर्ष के तीसरे अंक में छपा -- 'जातीय जीवन और श्री रामकृष्ण'। कुछ अवधि के अन्तराल के उपरान्त छठे वर्ष के अंक ७ और ८ में उनका तीसरा निबन्ध 'श्रीमत् स्वामी शारदानन्द महाराज से बातचीत' छपा[3]। स्वामी विवेकानन्द पर 'निराला' का एकमात्र सुदीर्घ निबन्ध 'वेदान्तकेसरी स्वामी विवेकानन्द' आठवें वर्ष के दूसरे अंक में निकला। स्वतन्त्ररूप से स्वामी जी पर न लिखने पर भी श्रीरामकृष्ण देव पर लिखे लेखों में उनका उल्लेख यत्र-तत्र सर्वत्र ही हुआ है।

१- चतुरी चमार, पृ० ५३

२- संग्रह, पृ० ४३ और ५५ पर संकलित

३- ये दोनों निबन्ध 'निराला' के किसी संग्रह में संकलित नहीं हैं।

"समन्वय" से अलग हो "मतवाला" में जाने के उपरान्त भी निरन्तर "निराला" की मौलिक रचनाएं लेख और अनुवाद आदि "समन्वय" में प्रकाशित होते रहे । सन् '२२-२३ में धारावाहिक रूप से उसमें निराला-कृत श्री रामकृष्ण-वचनामृत का अनुवाद निकला, यद्यपि अनुवादक के रूप में निराला का नाम उसमें नहीं दिया गया था । विवेकानन्द के भारतीय व्याख्यानों का अंग्रेजी से अनुवाद भी उन्होंने बाद में किया था । उनकी परिव्राजक(भ्रमण-कथा) तथा "राजयोग" का अनुवाद भी निराला ने किया था । राजयोग के प्रारम्भिक सात अध्याय ही "निराला" द्वारा अनूदित हैं, पातंजल योगसूत्र का अनुवाद उन्होंने नहीं किया[1] । ये सभी अनुवाद श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर से प्रकाशित हुए हैं ।

मतवाला-काल में ही "निराला" ने स्वामी विवेकानन्द की बंगला कविताओं का हिन्दी में अनुवाद किया । ये अनुवाद "समन्वय" और "मतवाला" में प्रकाशित हुए । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि "निराला" द्वारा अनूदित और "समन्वय" में प्रकाशित प्रथम कविता स्वामी विवेकानन्द की नहीं थी । सन् २२ में उन्होंने बाबू रजनीसेन के गीत "तुम" का अनुवाद किया, जो "समन्वय" के दूसरे वर्ष के तीसरे अंक में छपा था[2] । २१ मार्च ४३ में "बेडुल"[3] में यही अनूदित गीत एक दीर्घ अन्तराल के बाद छपा । रचना के अन्त में यहाँ उसके अनुवाद होने का उल्लेख नहीं है । "अणिमा"[4] में संकलित इस रचना को निराला ने १९२२ का अनुवाद कहा है, परन्तु यहाँ भी यह नहीं लिखा है कि यह गीत बाबू रजनीसेन के गीत का अनुवाद है । विवेकानन्द की कृतियों के अतिरिक्त निराला द्वारा अनूदित यही एक रचना भिन्न व्यक्ति की मिलती है । रवीन्द्र की रचनाओं का भी विशुद्ध अनुवाद "निराला" ने नहीं किया है, उनके भावों के आधार पर कविता लिखी है । इससे स्पष्ट है कि जितनी भक्ति और श्रद्धा "निराला" में श्री रामकृष्ण, विवेकानन्द पर थी, उतना उत्साह भी भाव रवीन्द्रनाथ के प्रति नहीं था ।

१- राजयोग, पृ० १-११०

२-"समन्वय", पृ० १०७

३-"बेडुल", पृ० ६

४-"अणिमा", पृ० ६०

"निराला" ने स्वामी विवेकानन्द की पांच बंगला कविताओं का अनुवाद किया, जो "समन्वय" में प्रकाशित हैं। सन् २३-२४ में अनूदित स्वामी जी की तीन रचनाएं "समन्वय" के तीसरे वर्ष के अंकों में निकलीं।[1] पहली अनूदित और प्रकाशित रचना "गाता हूं गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को" (गाई गीत शुनाते तोमाय) है, जो संवत् १९८० में प्रथम अंक में छपी। इस विशालकाय रचना का अन्तिम अंश ३१ मई १९२४ के "मतवाला" की चालीसवीं संख्या में भी निकला था। "समन्वय" के आठे, दूसरे अंक में स्वामी जी की दूसरी रचना का अनुवाद "समाधि"[2] (प्रलय वा गंभीर समाधि) आठ पंक्तियों का प्रकाशित हुआ। स्वामी विवेकानन्द की सुविख्यात रचना "नाचुक ताहाते श्यामा" का अनुवाद "नाचे उस पर श्यामा" भी "निराला" ने किया। अनूदित,यह तीसरी रचना "समन्वय" के तीसरे वर्ष के छठें अंक में निकली थी।[3] २८ जून २४ के "मतवाला" की चौवालीसवीं संख्या में भी प्रकाशित हुई।

स्वामी विवेकानन्द की दो अन्य रचनाओं-- "सखार प्रति" और "सागर -वक्षे" का अनुवाद "निराला" ने "सखा के प्रति" और "सागर के वक्ष पर" किया था, जो क्रमशः "समन्वय" में छठे वर्ष के तीसरे अंक[4] और आठवें वर्ष के आठवें अंक में संवत् १९८५ और १९८६ में प्रकाशित हुआ। ये सभी अनुवाद "निराला" ने बंगाल में रहते हुए किए थे। श्री रामकृष्ण आश्रम नागपुर से प्रकाशित "कवितावली" पुस्तक में ये सभी अनुवाद संकलित हैं। "सृष्टि", "शिव संगीत" १, "शिवसंगीत २ तथा "रामकृष्ण आरात्रिक" विवेकानन्द की इन चार अन्य रचनाओं का अनुवाद भी "निराला" ने किया था, उसका संकेत भी पुस्तक में है। ये अनुवाद किसी पत्र में प्रकाशित नहीं हुए थे।

बंगाल छोड़कर लखनऊ चले आने पर "सुधा" में काम करते हुए भी "निराला" ने रामकृष्ण, स्वामी सारदानन्द और श्री रामकृष्ण मिशन पर लेख लिखे। "श्री देव रामकृष्ण परमहंस" लखनऊ में लिखा उनका पहला निबन्ध था, जो "माधुरी" के माघ ३२ अंक में निकला[5]। प्रमुखतः उनके जीवन पर प्रकाश डालने

१- "समन्वय", वर्ष ३, अंक १, पृ० ३४-३८, "मतवाला", पृ० ७४६
२- "समाधि", पृ०५४-५५, "गीत-गुंज", द्वितीय संस्करण, पृ० ६२
३- "समन्वय", पृ०२६४-२६८, "मतवाला", पृ० ८४३
४- ,, , पृ० १०६-१११।
५- "संग्रह", पृ० ३२

वाला यह लेख इस तथ्य का द्योतक है कि "निराला" ने श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द की मात्र विचारधारा से ही प्रेरणा नहीं ली, अपितु उनके जीवन का भी गहरा प्रभाव उन पर पड़ा था।" स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं" -- सारदानन्द पर उनका दूसरा लेख "सुधा" के नवम्बर ३३ में प्रकाशित हुआ। मिशन के साधुओं के चमत्कारिक प्रभाव का उल्लेख इसमें "निराला" ने किया है। सन् ३२ में लिखे "अर्थ" लेख में भी स्वामी सारदानन्द का प्रसंग आया है।"श्रीरामकृष्ण मिशन (लखनऊ)", मिशन पर "निराला" का प्रथम परिचयात्मक निबन्ध इस श्रृंखला की अन्तिम कड़ी है।[1] यह लेख "माधुरी" के अक्टूबर ३५ के अंक में छपा था। इस लेख के बाद "निराला" के ने अलग स्वतन्त्र रूप में कोई मौलिक लेख नहीं लिखा, परन्तु कुछ मौलिक कविताएं और अनुवाद अवश्य इसके बाद मिलते हैं। लखनऊ में रहते हुए "निराला" रामकृष्ण मिशन के कार्य-कलापों और उत्सवों में सक्रिय भाग लेते थे, उसके पुस्तकालय के पत्र-पत्रिकाएं और पुस्तक आदि भी लेते रहते थे[2], मिशन से उनकी घनिष्ठता का प्रमाण इससे भी मिलता है।

लखनऊ-प्रवास की कालावधि के ही "निराला" ने "सेवा प्रारम्भ"[3] कविता में मिशन के सेवा कार्य पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि सेवा की प्रेरणा स्वामी अखण्डानन्द जी से स्वामी विवेकानन्द जी की मौमिली थी। सन् ३७ के अन्त में लिखी इस रचना[4] के उपरान्त काल-क्रम की दृष्टि से सन् ४३ की लिखी "स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज" कविता का स्थान आता है।"सुधा" में प्रकाशित स्वामी सारदानन्द पर लिखे निबन्ध और "भक्त और भगवान" कथा में इसकी घटनाओं का उल्लेख वे पहले कर चुके थे। सन् ४६ में निकले संग्रह "नए पत्ते" में "निराला" की एक कविता "युगावतार श्रीरामकृष्णदेव के प्रति"[5] भी थी। समन्वयकालीन श्रद्धा और

१- "माधुरी", पृ० ३८३-३८५

२- "निराला", डा० रामविलास शर्मा, पृ० ४०

३- "अनामिका", पृ० १७४

४- "अणिमा", पृ० ६८

५- "नए पत्ते", पृ० ७६

भक्ति का स्वर ही यहाँ भी विद्यमान है। "नए पत्ते" में ही स्वामी विवेकानन्द की दो अंग्रेज़ी कविताओं के अनुवाद--"चौथी जुलाई के प्रति" और "काली माता" भी संकलित हैं, जो सर्वप्रथम "देशदूत" के १० और १७ सितम्बर १९४० के अंकों में प्रकाशित हुए थे।[1] अंग्रेज़ी से अनुदित ये दोनों रचनाएं बाद की ही प्रतीत होती हैं, क्योंकि एक तो पहले की अनुदित सभी कविताएं बंगला की थीं, और दूसरे यदि उनका अनुवाद भी "निराला" ने उसी समय किया होता तो अवश्य ही अन्य अनुदित रचनाओं के साथ उनका भी प्रकाशन अथवा उल्लेख मिलता। "नए पत्ते" के बाद भी रामकृष्ण--विवेकानन्द अथवा मिशन सम्बन्धी एक भी रचना, लेख अथवा अनुवाद हमें नहीं मिलते।

"समन्वय", "सुधा" और "माधुरी" में प्रकाशित यह सारी सामग्री मिशन और उसके सन्यासियों से "निराला" के घनिष्ठ सम्बन्ध के साथ उनकी विचारधारा और जीवन से सतत् प्रेरणा लेने की निदर्शक है। श्री देव रामकृष्ण और उनके प्रिय शिष्य विवेकानन्द के प्रति "निराला" की विचारणा और भावना का परिचय भी इन रचनाओं द्वारा प्राप्त होता है। श्रीरामकृष्ण परमहंस को "निराला" पूर्ण ब्रह्म, ईश्वर का अवतार मानते हैं, जिनका संसार में आगमन दूसरों की मुक्ति के लिए होता है, शान्ति संस्थापन के लिए जो माया--मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के राज्य में पदार्पण करते हैं। माया की अहंकार सीढ़ी तक उतर कर वे साधनों द्वारा मनुष्यों को मुक्ति की शिक्षा देते हैं।[2] लोक में सिद्ध होकर आने वाले उनकी साधना का कारण लोक-दर्शन है।[3] "अपनी अन्तरात्मा के प्रकाशित शक्ति का पर्यवेक्षण" करने वाले "जड़ राज्य के आविष्कारक, मनोराज्य के दार्शनिक और धर्मराज्य के शुद्ध स्वभाव ऋषि अथवा शुद्ध सत्व विग्रह अवतार कहलाते हैं"[4]। "निराला" की यह मान्यता यह स्पष्ट करती है कि "किसी को शुद्ध देखने के अर्थ" में उसके भौतिक रूप में ही नहीं, "सूक्ष्मतम आध्यात्मिक, दार्शनिक, सूक्ष्मतर रूप में भी देखने वाले की दृष्टि प्रसारित है"।[5] रवीन्द्रनाथ की भारतीयता पर विचार करते हुए भी "निराला" ने लिखा है --"जिनके आविर्भाव से संसार में एक युग-परिवर्तन-सा हो जाता है, भारत में उन्हीं की अवतार की आख्या दी जाती है।"

१-- देशदूत, पृ० ५, नए पत्ते, पृ० ८१, ८३
२-- संग्रह, पृ० ७३-७४
३-- ,, पृ० ३५
४-- चयन, पृ० ११२
५-- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ३१
~~४-- रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ० ६७~~
~~५-- [illegible], पृ० ३५~~
६-- रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ० ६७

धर्मशास्त्र के अपने अध्ययन तथा संतों के अवतार पुरुष के इतिहास से अपने परिचय में "निराला" ने श्री देव रामकृष्ण परमहंस से बड़ा अवतार भारतों के साहित्य में कहीं नहीं पाया है। उनकी निश्चित धारणा है कि ज्ञान, चरित्र, तथा शास्त्रानुशीलन में अवतार-श्रेष्ठ ईश्वर के। तुलना वाग्मिप्रवर विवेकानन्द से होती है, परन्तु श्रीरामकृष्ण अतुल हैं[१]। आध्यात्मिक साहित्य के पाठक की हैसियत से "निराला" ने यही बात पुनर्वार कही है। विशेषरूप से मनन करने के पश्चात्,युक्तियों एवं प्रमाणों एवं प्रमाणों से अपने अन्दर की धारणा के अनुरूप एक समालोचक की हैसियत से श्रीकृष्ण के गीता समन्वय तथा श्रीरामकृष्ण के धर्म-समन्वय का उल्लेख करते हुए उन्होंने द्वितीय की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है,क्योंकि गीता का समन्वय निरपेक्ष नहीं रह सका है, जब कि श्रीरामकृष्ण का धर्म-समन्वय निरपेक्ष होकर भी अद्भुत प्रकार से विजयी है[२]। श्री देव रामकृष्ण के ईश्वरत्व के सम्बन्ध में अपनी प्रारम्भिक संशयात्मक प्रवृत्ति का उल्लेख करते हुए अन्ततः उनके ईश्वरत्व पर अपनी दृढ़ आस्था और विश्वास को "निराला" ने स्वयं स्वीकार किया है। वे तमाम दिव्य प्रकृति में परिव्याप्त उन्हें मानते हैं, जैसे किसी दिव्य विषय पर चिन्ता करते हुए बिना रामकृष्ण के जाने का मार्ग ही न हो[३]। वास्तव में भक्त के अभीप्सित इष्ट में ही श्री रामकृष्ण की सत्ता को "निराला" ने स्वीकार किया है, जिस तरह धारा से साधना में मिल चुके हैं[४]।

महाकवि ने जिसके लिए "जो चेतन को जड़ करे,जड़हि करे चैतन्य कहा है, उसी का प्रतिरूप "निराला" श्रीरामकृष्ण को मानते हैं। पूर्ण ज्ञानावस्था को प्राप्त कर अपनी मौन-समाधि द्वारा उसी तत्त्व का परिचय उन्होंने दिया है[५]। "निराला" ने उन्हें "भारत की आत्मा" कहा है और संसार का, संसार की विद्या-शक्ति रूप तथा अविद्या शक्ति का विजयी रूप माना है। तमाम

१- संग्रह,पृ० ३४
२- ,, ,पृ० ६४
३- ,, पृ० ६४
४- ,, पृ०५०
५- ,, पृ० ३५,४५
६- ,, पृ० ४७-४८

मन्तव्यों से चलकर अखिल गतियों को आत्मसात् कर ब्रह्म में लीन, निष्कल कर देने तथा अपने मानसिक संस्कारों के तथा आशु सिद्धि प्राप्त करने के फलस्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति के साथ-साथ उस युग के धर्म भावों में भी श्रीरामकृष्ण देव की व्याप्ति हो गयी, अपने सिवा अन्यत्र कहीं ठहरने की जगह उन्होंने नहीं छोड़ी, यह भी उनके अवतार वरिष्ठ महापुरुष होने तथा भारतीय मूल में स्थित शक्ति और साधनानुकूल सत्ता पर दृढ़ सत्व होने का संकेत है[1]। "निराला" ने बताया है कि सर्वव्यापक भावना के कारण ही उनकी पूर्ण शक्ति स्पर्द्धा या प्रतिद्वन्द्विता से नहीं जीती जा सकती। श्रीरामकृष्ण देव और उनकी साधना का व्यापक अर्थ लेते हुए "निराला" ने उन्हें "जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई" की सार्थकता कहा है, इसीलिए संसार में प्रचलित सर्व धर्मों के स्वरूप में उनकी स्थिति है और यही इस युगावतार की विशिष्टता तथा बीसवीं शताब्दी के व्यापक भावों के सम्मुख भारत की आवश्यकता है, जिसकी पूर्ति श्रीरामकृष्ण ने की[2]।

श्रीरामकृष्ण की साधना देश के उन्नयन और उद्धार का एकमात्र उपाय है-- यह "निराला" की निश्चित धारणा थी। युगधर्म की आवश्यकतानुसार श्री परमहंस के आविर्भाव के अपूर्व महत्व का निर्देश "निराला" ने अपने लेखों और कविताओं में किया है, जिसके द्वारा युग की संदिग्ध परिस्थितियों का परिचय भी मिलता है। "निराला" के शब्दों में उन्नीसवीं सदी का मध्यकाल "मानसिक महाविप्लव" का काल था, जब पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता के प्रवाह के फलस्वरूप देश की मानसिक गति चंचल थी। भारत में सुधार और ज्ञान का प्रवाह बढ़ने पर "धार्मिक पतझड़" का समय भी आया। अंग्रेजों के उदार और स्वच्छन्द शिक्षा-विस्तार के साथ हिन्दुओं में जातिजन्य असुन्दरता और संकीर्णता क्रमशः पृथक होती जा रही थी। बाह्य प्रकृति को वशीभूत करने में तत्पर, पश्चिम के जड़ विज्ञान की शक्ति से प्रभावित इस देश की गति को नियमित और केन्द्राभिमुखी करने के लिए आविर्भूत अनेकानेक मेधावी प्रतिभासम्पन्न महापुरुषों में निर्विवाद श्री रामकृष्ण का महत्व सर्वाधिक अपूर्व है, क्योंकि ज्ञान, भक्ति, कर्म और योगादि का

१- संग्रह, पृ०६३, "माधुरी" अक्टूबर, १९३०, पृ० ३८३

२- ,, पृ०४९-५०, ३५।

समन्वय लेकर युगावतार अवतीर्ण हुए, जो धर्म मीमांसा के सत्य आसन पर प्रतिष्ठित हैं।[1] श्री रामकृष्ण की साधनालब्ध वेदान्त भूमि की निश्छल मैत्री ही भारत के उद्धार और संसार के साथ सद्भाव से मिलने का एकमात्र मार्ग "निराला" की दृष्टि में है[2]। उनका आगमन, महान अर्थपूर्ण, तपस्या और शिक्षाएं यथा समय देश[3] को उसकी विशालता में परिणत करेंगी, इसपर "निराला" को अटूट विश्वास था। "धार्मिक पतझड़" के समय श्री रामकृष्ण ने अपनी साधना से "तदात्मानं सृजाम्यहम्" को पूर्ण[4,5] किया और विविध साधना-पद्धतियों से पूर्ण दर्शन कर सर्वव्यापक भाव को प्राप्त किया। किसी नवीन सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा न कर उन्होंने प्रचलित विविध सम्प्रदायों में मैत्री स्थापना का उद्देश्य सामने रखा जो भारत की तत्कालीन आवश्यकता थी।

इस लक्ष्यभ्रष्ट-युग का सबसे बड़ा विज्ञानविद् भी "निराला" श्रीरामकृष्ण को ही मानते हैं। कारण, वैज्ञानिकों के सर्वाधिक गूढ़ सृजन-शक्ति का नियामक कौन है? का उत्तर उन्होंने अपनी मौन समाधि द्वारा पूर्ण ज्ञान की अवस्था में पहुंचकर दिया है, और समाज एवं कर्म योगियों के भी प्रवाह को रूप दी और उन्मुख किया है[6]। राष्ट्रीय-मुक्ति की मीमांसा में भी श्री रामकृष्ण की उदार भाववाली धार्मिक साधना के प्रदेश को "निराला" ने स्वीकार किया है। कर्म, चरित्र और त्याग की जो शिक्षा उन्होंने दी है, वही जीवन के सभी क्षेत्रों[7] में अर्थात् सार्वभौमिक उन्नयन का माध्यम है, यह "निराला" की निश्चित धारणा है।

श्री रामकृष्ण ही नहीं, उनके "जीवन के व्याख्याकार"[8] अनुभूति की व्याख्या[9] और प्रमुख शिष्य स्वामी[11] विवेकानन्द का अंश कहा है[10], ऐसे वे स्वयं को स्वामी शारदानन्द का अंश कहते हैं। युगावतार ने अपना सन्देश विश्व को

१- संग्रह, पृ० ३५-३६, ५५-५६, ८०-८१ और ८५।
२- ,, पृ० ५१
३- ,, पृ० ४१
४- ,, पृ० ३५, ५०, ५६।
५- ,, पृ० ६३
६- ,, पृ० ४६७
७- ,, पृष्ठ ४०, ५०।
८- विवेकानन्द चरित- मजूमदार, पृ० ४६१
९- संस्कृति के चार अध्याय, "दिनकर", पृ० ५८६
१०- संग्रह, पृ० ३४
११- ,, पृ० ८८।

स्वामी विवेकानन्द के माध्यम से किया, जिन्होंने सब धर्मों की एकता और वेदान्त की सार्वभौमिकता का प्रचार किया[1]। भारत के सामार्थ, उसकी शक्ति एवं प्रतिभा के रूप रामकृष्ण को ही विवेकानन्द ने धारण किया। विचारों के भीतर से भाव का आशय है कि प्रकार वर्तमान भारत धन्य होगा, उसका सरल और श्रेष्ठ निर्णायक जातीय संगठन का आचार्य, स्वामी विवेकानन्द को "निराला" मानते हैं[2]। उनकी एक ही लक्ष्य पर प्रवाहित सहस्त्राधार प्रतिभा को कर्मपथ की प्रवर्तिका भी "निराला" ने कहा है, अतएव पीड़ितों और दीनों की सहायता के लिए मिशन के संगठन के उपरान्त गुरु-भाइयों ने उन्हें सेवा कार्य के लिए प्रेरित किया और उन्होंने मिशन के सेवा-संघ को नियोजित किया। इसके पूर्व साधारण जनों की सेवा के लिए कोई भी संस्था नहीं थी। इसके लिए त्याग आवश्यक था, जिसका भार मिशन के सन्यासियों पर था, जिन्होंने कार्य, चरित्र और त्याग का आदर्श सामने रखा, भौतिक प्रशंसा और सब को इसीलिए सन्यासी छोड़ देता है[3]।

आजीवन तपस्या द्वारा श्रीरामकृष्ण की सहस्रांश साधना का गुरुत्व भी विवेकानन्द जो उनके विश्व-व्याप्त-कीर्ति शिष्य नहीं पा सके, गुरु के गुण उनके साहित्य में अल्पांश में ही प्रकट हैं, यह विवेकानन्द ने स्वयं कहा है[4]। प्राचीन लक्षणानुसार "निराला" विवेकानन्द को भारत का नवीन और यथार्थ नेता मानते हैं, जिन्होंने विश्वधर्म का आदर्श प्रस्तुत किया। इनका अवतरण भी संदिग्ध परिस्थितियों में धर्म संस्थापनार्थ महापुरुष स्वरूप हुआ था और वेदान्त के विजय-घोष से पुनः धर्म-जीवन भारत में अद्वैत की अखण्ड ज्ञान-ज्योति का संचार हुआ[5]। "निराला" ने अपनी सत्ता पर जोर देकर गुरु-संस्कारों[6] पर भी सन्देह करने वाले उनके दृढ़ वेदान्त-निष्ठ मानस-मन का भी उल्लेख किया है।

१- संग्रह, पृ० ६१, ६५, ७५
२- माधुरी, अक्टूबर, १६३०, पृ० ३८३-३८४, संग्रह, पृ० ४०
३- ,, ,, ,, पृ० ३८४, संग्रह, पृ० ६८।
४- ,, ,, ,, पृ० ३८३, संग्रह, पृ० ३४
५- ,, ,, ,, पृ० ३८३ ,, पृ० ३६, ७६।
६- संग्रह, पृ० ८६

विचारधारा, साधना-संस्कार आदि की दृष्टि से 'निराला' श्री रामकृष्ण और विवेकानन्द दोनों से प्रभावित होते हुए भी श्रीरामकृष्ण के अधिक निकट हैं, परन्तु भाषा-साहित्य की दृष्टि से वे विवेकानन्द को अधिक महत्त्व देते हैं। श्रीरामकृष्ण से विवेकानन्द के दर्शन में बड़ा कौन था है-- यह 'निराला' का अभिमत है[1]। स्वामी जी ने उन्नीसवीं शताब्दी के युग-प्रवर्तक होकर भी प्रत्यक्ष किया है, यद्यपि अपने जीवन के अंतिम काल में अपने साहित्य का अधिकांश स्वामी जी ने अंग्रेजी भाषा में ही लिखा। भाषा द्वारा जाति जीवन का परिचय करना तथा अज्ञानान्धकार दूर और निकाल 'निराला' की अन्यत्र दृष्टिगत नहीं हुआ[2]।

स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रचारित वेदान्त सार्वभौमिक और पूर्ण है, क्योंकि उसका आधार व्यक्ति-विशेष नहीं, सनातन सत्य है, जिसपर प्रतिष्ठित होकर यह सिद्धान्त की शिक्षा देता है। धर्म को स्वामी जी भारत और उसके जीवन का मुख्य आधार और पूर्ण जीवन-दर्शन वेदान्त को सभी धर्मों का मौलिक सार कहते हैं। धर्म का दार्शनिक अंश ही उसका मूल तत्त्व है, जिसमें उसका उद्देश्य और प्राप्ति के साधन निहित रहते हैं। व्यवहार दृष्टि में वेदान्त के सत्य अमूर्त हैं, प्रत्यक्षानुभूति ही ज्ञान है, जो वेदान्त-दर्शन का चरम लक्ष्य और जीवन का अभीष्ट है, यह विवेकानन्द ने बताया है। समस्त विश्व एक ही सत्ता का प्रातिभासिक रूप है-- यह वेदान्त-दर्शन का मूल सिद्धान्त है। आत्मा यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लेने पर जगत का बोध हो जाता है और संसार का पुनः प्रत्यक्षीकरण ही ब्रह्मानन्द हो जाता है। वेदान्तिक सत्य की उपलब्धि के प्रमुखरूप से दो मार्ग हैं -- प्रथम अविद्यास्वभाव लौकिक प्रवृत्ति मार्ग, जिसमें कर्म और भक्ति आते हैं और प्रेमभाव प्रधान रहता है, और द्वितीय: नारदभाव लौकिक निवृत्ति मार्ग, जिसमें ज्ञान और योग आते हैं और मन की साधना द्वारा समाधि अथवा पूर्ण ज्ञानावस्था की सिद्धि होती है।

स्वामी विवेकानन्द ने अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र में भी की है और सार्वभौमिक कल्याण की दृष्टि से आध्यात्मिक ही नहीं भौतिक संसार में अद्वैतवाद को कार्यरूप में परिणत करने की आवश्यकता का आदेश दिया है। प्रत्येक

१- संग्रह, पृ० ३६

२- ,, ,पृ० ६०-६१

मनुष्य को निःस्वार्थ का अभिव्यक्त और श्रेष्ठ प्राणी बनाकर उसकी कर्मभूमि पृथ्वी को सर्वश्रेष्ठ स्थान देकर स्वामी जी ने स्वर्ग का महत्व कम किया है। मनुष्य की जीवन्मुक्त दशा बताकर उसके व्यक्तित्व का स्वामी जी का आदेश तथा मनुष्यत्व प्राप्ति को जीवन का सर्वश्रेष्ठ साधन कहना, अद्वैतवाद के व्यवहार पक्ष की विशाल परिकल्पना का परिचायक है।

स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित धर्म-सम्मत दार्शनिक अभियान का निराला के सांस्कृतिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा था। वेदान्त के आलोक में उन्होंने सब जातियों को समान अधिकार देकर, मिशन और सेवाकार्य का आदर्श भी प्रस्तुत किया था। ब्राह्मणों के एकाधिकार तोड़ समान अधिकारों को प्रश्रय देने के कारण ही स्वामी जी ने इस्लामी और अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा की है। हिन्दू जाति के प्रति उनकी उक्ति -- ' We are vedantists ---' में 'निराला' को बहुत बड़ा भाव छिपा मिला, जहाँ सब लोग परस्पर भाई समझे जाते हैं और छुआछूत की तुच्छ बात वर्ण-भेद विभिन्नता भी आ जाती है[1]। शिकागो की धर्म-महासभा में वेदान्त के अलौकिक ज्ञान-राशि और सार्वजनिक भावों के प्रतिपादन के साथ भारत में धर्म की जगह रोटी की आवश्यकता का उल्लेख उन्होंने किया था। ईसाई मिशनरियों --जिनका विरोध राजशासन के लोभ और हिन्दू धर्म के प्रचारशील न होने के कारण सम्भवतः नहीं हुआ था -- की पोल खोलते हुए उन्होंने उनके धर्म-प्रचार को उदर का नहीं, रोटी की समस्या के समाधान का साधन बताया[2]। नई शिक्षा और पादरियों के धर्म-प्रचार से शिक्षित नवयुवकों के विचारों में नास्तिकता फैली[3]। स्वामी जी का आन्दोलन मात्र सन्यासियों का वैराग्य न होकर राजनीतिक दासता और सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देने वाला था। अनेकों दीन और निकृष्ट समझने वाले शिक्षित मनुष्यों को वस्तुतः 'निराला' ने गर्व करने के लिए वेदान्त का दर्शन दिया था[4]।

[illegible] शक्ति के मंत्र के साथ स्वामी विवेकानन्द ने विराट की पूजा की ओर अग्रसर होने पर, भक्ति और वेदान्त के साथ देश और जन्मभूमि को जाग्रत देवता मानकर उसकी आराधना का, समष्टि की मुक्ति का आह्वान किया था[5]। यह समग्र प्रभाव

१- प्रबन्धप्रतिमा, पृ० ५७२-७८
२- संग्रह, पृ०३५, ८८, विवेकानन्द चरित, मजूमदार, पृ०३९-४०, २२०
३- ,, पृ०३०-३१ ,, ,, पृ०४५८
४- 'निराला' - डा० शर्मा, पृ०३४
५- विवेकानन्द संचयन, पृ०१२-१३, विवेकानन्द चरित, पृ०३८३-८४, ३०८, ३४० ।

लौकिक बल, शिक्षा और मानों का सम्मान साधन है । वैदिक ज्ञान का मनुष्य के उत्कर्ष में प्रत्यक्ष उपलब्धि आदर्श आर्य स्वामी दयानन्द में ही 'निराला' को दीखा है, उनसे बढ़कर मनुष्य हो सकता है, इसका प्रमाण उन्हें प्राप्त नहीं[1]। आर्य समाज के प्रति 'निराला' का दृष्टिकोण उदार सम्भवतः इसलिए था, क्योंकि वेदों को सबसे पहले स्वामी दयानन्द ने ही हमारे सामने रखा, और उनके उपरान्त ही इसी पूर्व पीठिका पर स्वामी विवेकानन्द ने अपने परिपूर्ण वेदान्तदर्शन को प्रस्तुत किया[2]। स्वामी दयानन्द को परिव्राजक विवेकानन्द का दूसरा संस्करण कहकर श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार ने इस संभावना का संकेत किया है कि यदि सत्यान्वेषी विवेकानन्द को बाल्यावस्था में श्रीरामकृष्ण गुरु रूप में न मिलते तो सम्भव है विवेकानन्द भी इस दयानन्द की तरह दिखाई देते[3]।

ब्राह्म समाज और आर्य समाज के कुछ बाद ही स्वामी विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण मिशन की स्थापना की । समाज रूप से इसके महत्व और गुरुत्व के दो प्रधान कारण 'निराला' ने बताये हैं -- एक तो सभी जातियों को यहाँ समान अधिकार मिला है। भारत में सर्वप्रथम मिशन में ही श्रीरामकृष्ण के जन्मोत्सव में सब जातियों के लोगों ने एक पंक्ति में प्रसाद पाया[4]। दूसरे, दीनों की सहायता के लिए गुरु-भाइयों से प्रेरित हो स्वामी जी ने सेवा-संघ का निर्माण किया, जो साधारण जनों की सेवा के लिए अपने ढंग का प्रथम संस्था था, जिसमें दया नहीं, सेवा का श्रीरामकृष्ण का उपदेश तत्व निहित था[5]। सुधार की अपेक्षा समन्वय की नीति भी रामकृष्ण और विवेकानन्द की विशिष्टता थी । श्री केशवचन्द्र सेन और श्री रामकृष्ण के बीच के एक बड़े अन्तर की ओर संकेत करते हुए, जिसके द्वारा राजा राममोहनराय से भी उनकी तुलना और श्रेष्ठता का परिचय मिलता है-- स्वामी विवेकानन्द ने कहा था --"श्री रामकृष्ण जगत् में पाप या अशुभ नहीं देख पाते थे, और न इस अशुभ को दूर करने के लिए चेष्टा करने का भी कोई प्रयोजन नहीं देखते थे । और चन्द्रसेन एक महान धर्म-सुधारक, नेता एवं ब्राह्म समाज के प्रतिष्ठाता थे[6]।" रवीन्द्र के प्रति 'निराला' की आलोचनात्मक दृष्टि

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०१७३, ३६-३७, ४० ।

२- ,, पृ०३८

३- विवेकानन्द चरित, पृ० ३०४

४- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १७३

५- 'माधुरी', अक्टूबर -२५, पृ० ३०४
समन्वय, पृ० ६८ ।

६- विवेकानन्द संचयन, पृ० ३३०

का प्रमुख कारण भी। यह तथ्य में उल्लिखित है कि दयानन्द आर्य समाजी थे, जब कि 'निराला' मिशन के साथ थे।

स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व की बौद्धिकता और आर्य समाजियों की भक्ति-विमुखता प्रदर्शित करने के आडम्बर का उल्लेख श्री रामकृष्ण ने भी किया है[१]।

यह स्मरणीय है कि 'निराला' ने श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द के विचार-दर्शन से ही प्रेरणा नहीं ली, अपितु उनके जीवन का भी गहरा प्रभाव उनपर पड़ा था। अतः वे दार्शनिक अभिरुचि के कारण जहाँ वे वेदान्त-दर्शन की ओर आकृष्ट हुए, वहीं अपने भक्तियुक्त भावात्मक संस्कारों के कारण जीवनगत प्रभाव से भी विलग नहीं रह सके। जीवन तथ्य सम्बन्धी परिचयात्मक निबन्ध भी 'निराला' ने श्री रामकृष्ण और विवेकानन्द पर लिखे। उनके द्वारा 'निराला' पर पड़े उनके जीवन के प्रभाव के साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि जीवन-चरितों के सम्बन्ध में उनकी दृष्टि उपेक्षा की नहीं थी। रवीन्द्र, विद्यापति और चण्डीदास आदि के जीवन-वृत्तान्त इसका प्रमाण हैं। स्वयं उनका अपना साहित्य भी उनके जीवन-तथ्यों के संकेतों से शून्य नहीं है।

श्री रामकृष्ण का जीवनवृत्त उनके ईश्वरत्व पर प्रकाश डालने वाला है, जिसके कई उदाहरण बाल्यावस्था से ही मिलते हैं। उनकी सरलता, सत्य और मधुर भाषण, मेधा और ईश्वरानुराग का उल्लेख भी 'निराला' ने किया है। श्रीरामकृष्ण के वचन-- "जो लोग इस जीवन में ईश्वर की प्राप्ति करना चाहते हैं, वह उनके समीप अवश्य आयेगा"-- की संगति 'निराला' ने ब्रह्मचारी बाबा से लगाई है, जिनकी तपस्या देखकर स्वामी विवेकानन्द भी उनकी ओर आकृष्ट हो गए थे, परन्तु गुरु रामकृष्ण के प्रबल संस्कारों के कारण उनसे दीक्षा नहीं ले सके थे। दोनों के आत्मिक संयोग को पूर्णता तक पहुँचाने का श्रेय श्रीरामकृष्ण को ही है, इसका प्रमाण गुरु से भी विवेकानन्द की ब्रह्मचारी बाबा की इच्छा पूर्ण करने की प्रार्थना में 'निराला' को मिला। अपने सगुण भक्ति-युक्त संस्कारों में 'निराला' विवेकानन्द की अपेक्षा श्रीरामकृष्ण के अधिक निकट हैं, जिन्होंने चैतन्य के भाव-भक्ति का उल्लेख करते हुए बताया है कि भक्ति बाहरका भाव था, जो प्रचार के लिए था और वेदान्त या शक्ति-उपासना भीतरका भाव था, जो उनके सुख के हेतु था। इसका प्रमाण केशव भारती से उनके उपन्यास ग्रहण अथवा 'अन्नपूर्णा देवी की उपासना'

१- श्रीरामकृष्ण लीलामृत, भाग २

२- भारत में शक्तिपूजा--स्वामी सारदानन्द, पृ०४०

में मिलता है[१]। वास्तव में श्री रामकृष्ण हिन्दू धर्म के गहराई और माधुर्य की प्रतिमा थे[२]।

स्वामी विवेकानन्द भारत,ज्ञान और शास्त्रानुशीलन में जिनकी तुलना शंकर से होती है और जिनके जीवन की घटनाओं में भी साम्य मिलता है, के जीवन का भी 'निराला' पर प्रभाव पड़ा था । मुख्य कार्य सम्पादन के लिए आया शिव का अंश 'निराला' स्वामी जी को मानते हैं, पर उन्हें ब्रह्म नहीं,महापुरुष और यथार्थ नेता उन्होंने कहा है । प्रारम्भ से ही साहस,स्वातन्त्र्य और प्रत्येक वस्तु को संशय से देख, तर्क द्वारा प्रमाणप्राप्ति के उपरान्त सत्य निर्णय की प्रवृत्ति स्वामी जी में मिलती है । धार्मिक प्रवृत्ति और धार्मिक संस्कारों का पारिवद भी जीवन के प्रारम्भ से ही प्राप्त होता है । सेवा-भाव और शिव विक्रम का संयोग महावीर आपका आदर्श और अभीष्ट था । स्वाभिमान और निर्भीकता,संशयात्मकता और [illegible] की मात्रा हमें 'निराला' में भी समानरूप से मिलती है ।

श्री रामकृष्ण और विवेकानन्द का प्रभाव, उनकी आध्यात्मिक परम्परा की तात्कालिक उपलब्धि 'निराला' को अपने दीक्षागुरु स्वामी सारदानन्द से प्राप्त हुई । उनकी 'स्नेह-दृष्टि की समाधि' 'प्रबन्ध पद्म' समर्पित करते हुए 'निराला' ने उन्हें 'भगवान् श्री रामकृष्णदेव के पद को प्राप्त अपने मनोराज्य के सत्य शिव और सुन्दर' कहा है[३]। वे स्वयं अपने को उनका अंश कहते हैं[४], उनकी श्रद्धा और स्नेह भक्ति का यह प्रमाण है । 'निराला' दरिद्र नारायणों की सेवा के लिए बेलूड़ जाते थे । पहले पहले समय कभी-कभी जाना भरने के लिए श्री रामकृष्ण महोत्सव होने पर जाते थे,तभी उन्होंने सर्वप्रथम स्वामी सारदानन्द के दर्शन किए थे । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के कहने पर जब वे 'समन्वय' के उपसम्पादक होकर बाग बाजार कलकत्ते गये, तब सन् १९२२ में उन्होंने दुबारा उनके दर्शन किए । 'निराला' ने लिखा है कि स्वभाव और महाविद्या का अर्थ भी उन्होंने स्वामी जी से ही मालूम हुआ[५] । श्री रामकृष्ण के शिष्यों में उनके गुरु सबसे पहले संन्यासी स्वामी प्रेमानन्द का दर्शन 'निराला' ने महिषादल में नौकरी करते हुए किया था,उन्हें स्वयं रामचरितमानस से रामायण की कथा सुनाकर उनका स्नेहाशीर्वाद

१- भारत में शक्ति पूजा-- स्वामी सारदानन्द,पृ०४०
२- संस्कृति के चार अध्याय, 'दिनकर',पृ० ५८१
३- प्रबन्ध पद्म का समर्पण
४- संग्रह,पृ० ६[illegible]
५- 'चतुरी चमार',पृ०५३, संग्रह,पृ० ६[illegible]

भी प्राप्त किया था । महावीर के वीर भाव का वर्णन तथा राम धर्मों और देवों का साक्षात्कार एवं कृष्णावतार में उनकी छवि देखने का उल्लेख भी 'निराला' ने किया है, जिसका अर्थ वे सब लोग नहीं समझ सके थे ।[1]

सन्यास का अर्थ, उसका आदर्श और साधन बताते हुए स्वामी विवेकानन्द ने उसे 'मृत्यु के प्रति प्रेम' कहा है । सांसारिक लोग जीवन से प्रेम करते हैं, सन्यासी मृत्यु से । सर्वदा दूसरों की भलाई के लिए स्वयं को अर्पण करते रहना भी सन्यास ही है, जिसके लिए जीवन में उच्च आदर्श और उत्कृष्ट व्यावहारिकता के सुन्दर सामंजस्य की आवश्यकता होती है[2]। भारतीय आख्यानों में सन्यासी के अधिकार और उसके [illegible] त्याग का उल्लेख कर 'निराला' ने सदा मनुष्यों में सन्यासी को ही सबसे बड़ा समझा है[3]। 'मतवाला' वालों से झगड़ा होने पर 'निराला' की सन्यास-धारणा का उल्लेख यद्यपि उस समय उन्हें सन्यास धर्म ग्रहण करने की अनुमति स्वामी सारदानन्द ने नहीं दी थी--उनके आत्मज श्री रामकृष्ण त्रिपाठी ने उनके जीवन-लक्ष्यों के पुनर्निर्धारण के सन्दर्भ में किया है[4]। जीवन के सन्यास के आदर्श को 'निराला' ने अंतिम रूप से चरितार्थ किया था, यह हम देख चुके हैं ।

स्वामी सारदानन्द जी को 'निराला' ने महावीर की विभूति से सम्पन्न कहा है । उनकी महाध्यान में मग्न, ईश्वरीय विभूति से युक्त मूर्ति में उन्होंने महाज्ञान और महाशक्ति को साकार देखा[5]। दार्शनिकता का प्रखर भाव, मानसिक एवं शारीरिक दिव्यशक्ति तथा पूर्वार्जित संस्कार अथवा पुण्यार्थ की सार्थकता के समान आस्तिकता, और प्रबल विरोधी शक्ति की स्थिति सान्निध्य काल में 'निराला' में थी । उसी समय उन्होंने स्वामी सारदानन्द में कृपा भाव और जीवन्मुक्त महापुरुष का दर्शन किया था[6]। स्वामी जी से दीक्षा लेने के बाद भी अलौकिक स्थिति के वर्णन अथवा उनके स्पर्श मात्र से मस्तक की पीड़ा जाने के प्रसंग में 'निराला' ने मिशन के उन साधुओं को आतुर कहा है जो वशीकरण में सिद्ध थे[7]। भारत में 'शक्तिपूजा' का विवेचन करते हुए स्वामी सारदानन्द

१- 'चतुरी चमार', पृ०५२,५५,७८-८०, अणिमा, पृ० ७४-७५, ८० ।
२- विवेकानन्द संचयन, पृ०२२०-२२
३- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०५२, संग्रह, पृ०६८, 'निराला' -डा० शर्मा, पृ० ३.
४- सम्मेलन पत्रिका, [illegible] अंक, पृ०५२८
५- 'चतुरी चमार', पृ०५३-५४,५८
६- ,, पृ०५४-५५,६८
७- ,, पृ०५६,५७,५८

ने अवतार पुरुष गुरु की शक्ति प्रतीक मानकर मनोराज्य में उसके आविर्भाव, धर्म-रक्षा दूसरे के मन के बुरे संस्कारों को नष्ट कर थोड़े ही समय में नए प्रकार के नए आदर्श में ढालने, मात्र शरीर-स्पर्श द्वारा समाधिस्थ करने अथवा भाव-विशेष की उपलब्धि कराने की सामर्थ्य से सम्पन्न माना है। बंगाली गुरु की उपासना को वे बंगाल का लोकाचार निर्देश करते हैं[1]। स्वामी विवेकानन्द के प्रसंग में भी गुरु रामकृष्ण की इसी प्रकार की शक्ति का उल्लेख 'निराला' ने किया है[2]।

संन्यास पर अपनी आस्था को स्वयं स्वीकार करते हुए भी 'निराला' मिशन के संन्यासियों के प्रभाव से अछूते नहीं रह सके थे, उनके लेख इसका प्रमाण हैं। वेदान्त को उन्होंने संसार के चमत्कारों पर प्रभुता प्राप्त करने वाला और भेद में साम्य स्थापित करने वाला ऋषि कहा है[3]। वेदान्त पर उनकी आस्था और श्रद्धा का कारण है, परन्तु स्वामी सारदानन्द द्वारा अपनी उंगली से उनके गले पर लिखा बीजमंत्र--जिसे वे बाद में पढ़ सके थे-- तथा गुरु लिखता है, यह देखने की उनकी धुन संन्यासियों के चमत्कार पूर्ण एवं आध्यात्मिक या वेदान्त के प्रति उनकी संशयात्मक दृष्टि की द्योतक है। 'निराला' पर पड़े संन्यासियों के चमत्कारिक प्रभाव की ओर हमारा ध्यान केवल डा० रामविलास शर्मा ने ही आकृष्ट किया है, जिसका कारण संसार और समाज की भारतीय कही जाने वाली आस्था के अवैज्ञानिक और चमत्कारी रूप का अनावरण है[4]। 'निराला' के दार्शनिक विचारों से अपनी असहमति भी उन्होंने स्पष्ट प्रदर्शित की है[5]।

अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक काल से ही 'निराला' की काव्य-प्रेरणा का प्रधान स्रोत वेदान्त-दर्शन रहा है, इस सत्य की स्वीकृति के साथ यह भी स्मरणीय है कि उनमें विद्रोह भावना प्रबल थी। वेदान्तदर्शन के प्रति 'निराला' का दृष्टिकोण पूर्णतः विद्रोही न होकर संशयात्मक था, अर्थात् इस विचार-धारा को वे अपूर्ण समझते थे। यही कारण है कि स्वामी विवेकानन्द की भाँति वेदान्त की पूर्ण और नितान्त एकान्त स्वीकृति भी 'निराला' में नहीं है, और न ही उसके प्रति उनका

१-'भारत में शक्ति पूजा', पृ० ३३-३४
२- संग्रह, पृ०३७, [illegible]
३- प्रबन्ध पद्म, पृ०३४
४-'निराला', पृ०७९, ८,९०
५- महादेवी संस्मरण ग्रन्थ, पृ० १५६

दर्शन के सर्वथा अनुरूप है । दोनों ही स्थितियों-- भावना और ज्ञान -- का स्वीकृति सापेक्ष है कि 'निराला' स्वामी जी के सदृश केवल वेदान्त के ज्ञानयोग को पूर्णतः स्वीकार नहीं करते तो उसकी एकान्त अवहेलना भी उनमें नहीं है । व्यवहार में ज्ञानयोग को भावयोग में परिणत कर देते हैं, आनन्द साम्य के साथ मानव-मात्र में दुःख के माध्यम से भावना और अनुभूतिजन्य साम्य भी देता है । यही 'निराला' का प्रदेय है कि उन्होंने स्वामी विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त को एक चरण और आगे बढ़ाया है ।

बुद्धिसम्मत ज्ञान-मार्ग का आश्रय लेकर 'निराला' ने मन की उच्चे नाश, तदुपरान्त अहं के निरोध द्वारा आत्मज्ञान होने पर सत्य की प्राप्ति विश्व को ब्रह्ममय देखकर संसार का पुनः आनन्दमय प्रत्यक्षीकरण, इन दार्शनिक तथ्यों की अभिव्यक्ति भी काव्य में की है और जहां भावना या कल्पना की प्रमुखता है, वहां वही दार्शनिक तथ्य प्रेम और सौन्दर्य के माध्यम से काव्य में आए हैं । वेदान्त की दार्शनिक तत्व मीमांसा, उसकी मनोवैज्ञानिक पद्धति और सृष्टि तत्व का निरूपण 'निराला' ने किया है, परन्तु योगमार्गी पद्धति का विशुद्ध रूप विरल ही है । 'परिमल' की अन्तिम कविता 'जागरण'[1] में मायावरण को भेद प्रथम विजय का चित्र उन्होंने अंकित किया है, जिसका सम्बन्ध वे वेदों, उपनिषदों, भाष्य और ऋषियों से भी जोड़ते हैं । माया के आवृत इस नश्वर संसार में, जहां अज्ञान, जनित तिमिर और क्षुद्र अहं का प्रसार था, वासनाओं और मोह का जाल फैला था -- महामोह के जीवन में प्रतिपद पराजित भी अप्रतिहत बढ़ता हुआ मानव अंततः उदय को प्राप्त करता है । उन्नयन की इस स्थिति में उसका एकान्त अविचल शान्ति में खो जाता है, अहंकार अपने ही विस्तार अर्थात् विराट अहं में डूब जाता है, फलतः देशकाल का बन्धन टूट जाता है और निर्जीव होकर वास निज स्वरूप को पा लेता है । मुक्ति की इस अवस्था में 'ज्योतिर्मय चारों ओर परिचय सब अपना ही' उसे मिलता है और संसार के जाल से मुक्त होकर वह चिरकाल तक आनन्द में स्थित रहता है । सृष्टि की इच्छा होने पर जब इस भावरहित ज्ञानाम्बुधि में सृष्टि के बीज रूप तरंग और कम्पन उत्पन्न होते हैं, तब सृष्टि की पूर्व शक्ति सी सब अवश अपूर्णता से झुकता है, मन को विकसित कर वह त्रिगुणात्मक रूपों की रचना करता है । आरम्भ पंचभूत का अव्यक्त संसार भी-सृष्टि

१-'परिमल', पृ० २३७

ही सच्चिदानन्द का ही स्वरूप है । प्रेम ही ब्रह्म का स्वभाव आभरण है, उसी के प्रकाश से सब कुछ प्रकाशमान है तथा मन के गगन से अभिलाषा-घन सदा उच्छीरण नहीं, सर्वथा के जाता है, जहाँ भोग-लालसा और अहं का लय हो जाता है । 'पंचवटी-प्रसंग' के सदृश यहाँ भी 'निराला' की दार्शनिक परन्तु प्रवृत्तिमूलक अभिरुचि का परिचय मिलता है । उनका प्रेम कर्म का संदेश देता है, जहाँ निवृत्तिमूलक दार्शनिकता का स्थान नहीं । अनन्त की प्रथम विद्युत --

"अपना संसार, निष्ठा का सर्वस्व मन
बाहों की सेवा में, सत्य आदर्श का
ज्योति यह विराजता था,
संचालित करता भी उसी ओर ।"

यह कहकर 'निराला' ने देवजन्य प्रेम का ही आदर्श प्रस्तुत किया है । यहाँ 'निराला' स्वामी विवेकानन्द की दार्शनिकता से अलग पड़ते हैं, जहाँ निराकार भाव की प्रधानता के कारण निवृत्तिमूलक मार्ग श्रेष्ठ सिद्ध हुआ है । श्रीरामकृष्ण के 'भक्ति ही सार वस्तु है'[1] कथन के सदृश उन्होंने भी ऐसी भक्ति को ही प्रश्रय दिया है, जिसे श्रीरामकृष्ण ने शुद्ध ज्ञान से अभिन्न कहा है[2] ।

मानव-मात्र पर अगाध विश्वास और उसको शक्ति एवं पौरुष से सम्पन्न देखने का 'निराला' का दृष्टिकोण ही उनका ज्ञानयोग है, और पौरुष एवं शक्ति के लिए वे साधना की आवश्यकता का निर्देश करते हैं । आत्म-ज्ञान ही ब्रह्म-ज्ञान है-- वेदान्त दर्शन का यह सूत्र 'निराला' ने भी याद रखा है । व्यक्ति ही सच्चिदानन्दरूप जीव की रक्षा मुक्त कहकर उन्होंने शेष सब को माया कहा है, 'जागो फिर एक बार'[3] रचना इसी प्रकार की है । उभय आत्माओं में एक ही अनुभव बहता रहे-- प्रिया के इस आह्वान और सिंह के दृष्टान्त द्वारा 'योग्य जन जीता है' गीता की इस उक्ति द्वारा क्रमशः प्रेम और कर्म का सन्देश देते हुए 'निराला' ऋषियों का

१- श्रीरामकृष्ण वचनामृत , प्रथम भाग,पृ० ७५,६८,१३७
२- ,, ,, पृ० ३६६
३-'परिमल', पृ० १७७

परमानन्द भी कुछ नहीं है --

'तुम ही महान, तुम सदा हो महान,
है नश्वर यह दीन-भाव,
कायरता, कामपरता
ब्रह्म हो तुम,
पद-रज भर भी है नहीं
पूरा यह विश्वभार ।

यही सत्य उनकी प्राथमिक कविता 'तुम और मैं'[1] में व्यक्त है, जहाँ अद्वैतवादी वेदान्त दर्शन के अनुरूप जीव और ब्रह्म की अखण्डता और एकता का प्रतिपादन 'निराला' ने किया है । 'तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म, मैं मनोमोहिनी माया' पंक्ति विवेकानन्द की उक्ति मायावाद ही अद्वैतवाद की वास्तविक एवं एकमात्र संभव व्याख्या है-- के अनुकूल है, जहाँ जगत और जीवात्मा के अस्तित्व का कारण माया अथवा अज्ञान बताया गया है, जो न सत् है, न असत्, अपितु अनिर्वचनीय है ।

ब्रह्म-भाव की प्राप्ति अथवा शक्ति के अर्जन के लिए 'निराला' ने योग-मार्ग की साधना को आवश्यक माना है । ब्रह्म-भाव की उपलब्धि दुष्कर है, उसका मार्ग कुटिल और काँटों से घिरा हुआ है, उसके अभियान के लिए शक्ति और प्रेम, उसकी करुणा-दृष्टि आवश्यक है, यह उन्होंने अपनी प्रारम्भिक-काल की रचना 'शंकिता'[2] में बताया है :

'मैं क्या जानूं सर्वशक्तिमय प्रियतम की साधना मैं
हो सकती हूँ कहाँ सुभागिन
शक्तिमती-- हाँ, सर्वभजाधिनी पाऊँ जिसने शक्ति दी,
रूप और लावण्य तुम्हारा निर्विकार यह प्रेम भी ।'

'परिमल' की 'अंजलि'[3] रचना में भी यही भाव है ।

शक्ति-विषयक जिस साधना-पद्धति को 'निराला' ने ग्रहण

१- 'परिमल', पृ० ८०

२- 'मतवाला', वर्ष १, संख्या २५, ९ फरवरी, २४, पृ० ४१४

३- परिमल, पृ० १२०-१२१, १५ सितम्बर २३ के मतवाला का शीर्षक 'प्रार्थना', पृ० २०८

लिया है, उसपर बंगाल का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है, जिसका बंगाल में अत्यधिक प्रचार था[1]। 'जागो फिर एक बार' में उन्होंने लिखा है :

'अमृत संतान ! तीव्र
भेदकर सप्तावरण-मरण लोक,
शोकहारी ! पहुँचे थे वहाँ
जहाँ आसन है सहस्रार --'[2]

'राम की शक्ति पूजा' में भी तंत्र-साधना के अनुरूप ही राम का मन क्रमशः चक्रों को पार करता हुआ ऊर्ध्वमुखी होता है और सहस्रार तक पहुँचता है[3]। राम की शक्ति-साधना के केन्द्र में उनके आत्म त्याग की प्रतिष्ठा और आन्तरिक शक्ति का आह्वान हम पाते हैं, जो स्वामी सारदानन्द के मतानुसार शक्तिपूजा की प्राथमिक आवश्यकता है तथा जिसके लिए अभीष्ट विषय के प्रति तीव्र अनुराग और ध्यान के साथ शक्ति का ध्यान रोककर अन्तर में निहित महाशक्ति का स्मरण कर आत्म त्याग करना होता है[4]। शक्ति-संचय के लिए तांत्रिक पद्धति की उपादेयता पुरश्चरण रूप में भी रचनाओं में बताई गया है, अन्यत्र प्रेम और कर्म का ही आश्रय लिया गया है।

तांत्रिक साधना-पद्धति का 'निराला' द्वारा व्यवहार अस्वाभाविक नहीं है, क्योंकि एक तो 'निराला' बंगाल में रहे थे, जहाँ उसका प्रचार अधिक था और दूसरे उनके दीक्षागुरु स्वामी सारदानन्द ने भी वामाचार, तंत्रोक्त पंचमकार युक्त वीर-भाव की पूजा का समर्थन किया है। 'भाव' शब्द का अर्थ वे विपरीत करते हैं अर्थात् पंचमकार आदि के ग्रहण द्वारा इन दोनों के संबंध में उनका आचरण के विपरीत साधक का आचरणपूर्ण संयम में प्रतिष्ठित होता है, जो वामाचार का उद्देश्य है। इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति के जागरण द्वारा साधक में संयम और धर्म-भाव की स्थिति का आधार का रूप है, उद्याम उच्छृंखलता को आश्रय देना नहीं। वामाचार

१- भारत में शक्तिपूजा, स्वामी सारदानन्द, पृ०४९-७४
कृत्तिवासी बंगला रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन, डा० रमानाथ त्रिपाठी, पृ०७५४ ।

२- 'परिमल', पृ० १७०-१७२

३- 'अनामिका', पृ० १५५-१६७

४- भारत में शक्तिपूजा, पृ० २२

पारावार, प्रणय के (चुम्बन के) संसार का चित्र अंकित है, जिसको पार करते हुए कवि नाना चुम्बन का स्वप्न ले सुप्ति के मौन में डूब जाते हैं। ज्योति के चमत्कार चित्र बार-बार देखता है, संसार चुम्बन से चंचल हो उठता है और कवि--

'स्थिरता में गति फैलती--
याद होता ज्ञान का
कैसे कहूँ, जीवन यह
मोह था, अज्ञान न था ?

इस प्रश्न द्वारा पुनः हमें इस सत्य का प्रमाण उपलब्ध होता है कि 'निराला' ने मोह को, अज्ञान को ही ज्ञान का प्रारूप माना है। मोह को ही ज्ञान का रूप देकर उन्होंने माया और अज्ञान की समस्या का समाधान किया है। तारक मार्ग की रेखाएँ पार कर, जीवन के सारथी ने जब अनन्त धार गहि है--'शिशिर का जैसे निःशब्द अभिसार हो शिशिर में विश्व के'-- यौवन के कानन में रथ रोका, तब विश्व की हरित शोभा का एक नव-रूप में वह दर्शन करता है और समझ नहीं पाता कि 'कैसा निरुपाय यह जीवन बदल गया।' वह एक अपार-लोक देखता है, जहाँ--

'ज्योति मदन-मोहित से
पलकों से पलक मिले,
अधरों से अधर
कण्ठ कण्ठ से लगा हुआ,
बाहुओं से बाहु,
प्राण प्राणों से मिले हुए।'[१]

जब तक काल के बंधन में यह जीवन है, यौवन-वन की शकुन्तला द्वारा चुम्बन से पूर्ण जीवन के प्याले को, स्मृति रिक्त होने पर तत्काल भर देना।-- जीवन की यह स्वीकृति ही जीवन के रहस्य से 'निराला' की अनभिज्ञता का मुख्य कारण है।

'रेखा' में भी 'निराला' ने अन्ततः जीवन का ही वरण किया है और प्रेम और सौन्दर्य का संस्कार-परिष्कार उसको दिया है। आरम्भ में ही वे लिखते हैं--

---

१- परिमल, पृ० २६१

गीतिका का प्रारम्भ 'जाने दो प्रिय, मुझे भूलकर अपनापन,
संसार का दुःख हर'[1] की भावना के साथ करता है। विकास को प्राप्त कर यही भावना
का प्रतिफलन कवि के जीवन-दर्शन के रूप में 'अनामिका' और 'गीतिका' रचनाओं में होता
है। जीवन-भाव तथा दर्शन तत्व के संयोग की दृष्टि से गीतिका अप्रतिम है। जीवन
की व्यथा ही उसका आनन्द और सौन्दर्य बन जाता है, जब आध्यात्म-तत्व के अन्तर में
मातृ-भावना की प्राण-प्रतिष्ठा होती है। भारत में जनक के भाव की अपेक्षा जननी
भाव की उच्चता का निर्देश करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने जननी को ही शक्ति का
प्रथम विकास कहा है, जगत की सभी अभिव्यक्तियों को वे माँ ही मानते हैं। उन्हें
प्राण, ज्ञान और प्रेम रूपिणी जगज्जननी के गुण उन्होंने सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता
और अनन्त दया बताए हैं, जिनकी उपासना ज्ञान-प्राप्ति और आनन्द-लाभ के
उद्देश्य से की जाती है।[2] भारत की पृथ्वी पर स्वयं माता-रूप धारण कर उतरने,
ज्ञानाधार नर-श्रेष्ठ उत्पन्न कर पुनः ज्ञान का प्रसार करने और फिर अन्त में अव्यक्त
रूप में विश्व-रूपिणी माता के तिरोधान होने का उल्लेख 'निराला' ने 'गीतिका'
में किया है।[3] एक ओर तो उन्होंने जननी से दुःख अर्थात कोटि दुरित से आप्त देने,
प्राणों को सार्थक करने की प्रार्थना की है[4], दूसरी ओर वे दुःख सहन करने की
क्षमता प्रदान करने की याचना भी करते हैं। आध्यात्मिक जीवन की सार्थकता के लिए
सहिष्णुता का वर मांगने का यह दूसरा भाव ही 'निराला' में प्रधान है। जीवन के
पथ पर बढ़ मृत्यु-पथ पर बढ़ते हुए, महाकाल के प्रहार पर वहन करने के लिए दृढ़ बनाने
की 'निराला' की प्रार्थना, दुःख का भार ढोने और प्रतिसरण रखने का उल्लेख
कर करुणाधार से करते हैं दुःख का भारावार वह किस प्रकार[5] उनका प्रश्न तथा
जननी के 'दुःखहरण पद-राग रंजित मरण' से चरणों की शरण कर शीश का
'भार मैं उन्हीं स्मरण करूँगा तरण' संसार अधिकारता की उनको आप्त आशंका है।

१- गीतिका, पृ०१३
२- विवेकानन्द-दर्शन, पृ०३४३-४४
३- गीतिका, पृ०३६
४- ,, पृ०५८, चांद, अक्टूबर ३५ आगीश्वरी, अपताल।
५- ,, पृ०२२, सुधा, जनवरी ३१ में प्रकाशित, पद, पृ० २५
६- ,, पृ० ४४
७- ,, पृ०७० माधुरी जून ३६, पृ०६२२-सरस्वती, अपताल

इन पत्थरों के आने पर उन्हें पहचान कर जड़ का सारा उद्गान समझने पर प्रच्छल उनके अन्धकार में जाना तान भरकर अज्ञान की ओर इशारा करके चल देता है । मनुष्य का ज्ञान अथवा वैराग्य, आनन्द रूपी का विकार कवि जड़ प्रकृति द्वारा मानता है ।

डा० रामविलास शर्मा के विचारानुसार गीतिका के 'कौन तम के पार ? - (रे, कह)' गीत में भी इसी प्रकार की शंका की वाणी मिलती है । वे लिखते हैं कि इस गीत में वेदान्त का साधक मानों अपने ही ज्ञान से प्रश्न करता है कि उसका सारा अंधकार अथवा लौकिक ज्ञान के परे कहां है ? जल और थल को जड़ और चेतन को -- जिनका मूल एक ही --कवि ने अखिल-पल का स्रोत स्वीकार किया है । व्योम-निःसीम के विस्तार से आकाश ही घनीभूत होकर क्रमशः सूक्ष्म से स्थूल होता हुआ मेघ की धारा बनता है, अतः तम के पार वस्तुतः किसी की भी सत्ता नहीं है । सब की स्थिति और सार्थकता तक अर्थात लौकिक अनुभव अथवा ज्ञान के अन्दर ही है, सभी पंच तत्वों में लीन हैं, इस सत्य को कवि ने विविध दृष्टान्तों द्वारा व्यक्त किया है । लोकरीति सत्य का उल्लेख करते हुए निष्कर्षतः कवि ने बताया है कि जिस प्रकार आतप जल-वर्षण का कारण है, उसी प्रकार करुणा से निकलकर उसका उत्तमरूप है जलकर लोग शोभित होते हैं । जो अशिव व उपलाकार है, वही रूप-परिवर्तन से मंगलमय हो जाता है तथा शोभित जल ही गाढ़ार बनता है । आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने इस रचना को 'अद्वैतवाद से निःसृत होकर भी निरीश्वरवाद का संकेत देने वाला' कहा है, जिसका 'सारा विस्तार जगत के सभी द्वैतों में अद्वैत की व्याप्ति' देखता है[1] । डा० शर्मा इसके विपरीत --"लौकिक जीवन से परे कोई ज्ञान और अनुभूति नहीं है"--यह भौतिकवादी धारणा इस गीत में पाते हैं, जो 'निराला' के अनेक गीतों में वेदान्त पर भारी हुई मिलती है[2] । आनन्दवादी दृष्टि के सिद्धान्त की अभिव्यक्ति भी यहां उन्हें मिली है[3] ।

जीवनपथ - प्रभात के उभय-कूलों के रहस्य को कवि समझ नहीं सका है और नादान ही बना रहा है[4], यह भाव गीतिका में प्राय: अभिव्यक्त है ।

१- महाकवि निराला, संपादक, आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री, पृ०२०५

२- कवि निराला, पृ० १५०

३- महाकवि निराला, सं० शास्त्री, पृ० २०६-२०७

४- निराला, पृ० १२०

५- गीतिका, पृ० ६१

आगे 'निराला' जी को धोखा कहकर जीवन की सफलता को भी असफलता घोषित कर देते हैं, संसार की उनकी विफलता के कारण असत्य कहते हैं और आत्म-स्वरूप को अक्षय, कुछ-कुछ होने के कारण उसी को सफलता मानते हैं[१], तथापि गीत में सारांश भाव में उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि 'दुनिया में जितनी सफलताएं हैं, वे हर दृष्टि से सफलता की व्याख्या नहीं पातीं। जो असफल हैं, वह वास्तव में असफल नहीं[२]।' स्पष्ट ही स्वभाव से संघर्ष में हार कर कभी-कभी आत्मघातक होना उनके काव्य की सामान्य मनोभूमि नहीं[३]। जीवन की असफलताओं से निराश होकर अलौकिक में सान्त्वना खोजने की इस प्रवृत्ति, इस अंगीत को डा० शर्मा ने 'जीवन के मोह को और भी उभार कर सामने लाने वाली' कहा है।' ऐसा न हो तो वे छायावादी युग के प्रवर्तक न रहें -- यह उनकी निश्चित मान्यता है[४]।

सन् ३८ की अनामिका काल की रचना 'गर्वोक्ति'[५] में भी विश्व के समर में मन के हारने पर प्रिय का एकमात्र आश्रय शेष रहने का उल्लेख है। कारण, 'तुममें ही शेष है दान मेरा --अविरल्य सब।' विश्व में दूसरा प्रभात फैलने पर इस सर्वस्व दान के उपरान्त देने को कुछ भी शेष नहीं रहेगा। आगे वे लिखते हैं--

'किन्तु आजीवन तुम एक सत्य समझोगे
और क्या अधिकता विश्व में शोभन है,
अधिक प्राणों के पास, अधिक आनन्दमय,
अधिक रहने के लिए, प्रगति की सार्थकता।'

'मरण दृश्य'[६] में प्रिय, मृत्यु और प्रेमिका एक रूप हो जाते हैं। जहाँ कवि ने दुःख की निधि, एक नयी निधि का उल्लेख किया है। इसका अभिप्राय न समझ पाने के कारण ही 'हाय' है, यह भी 'निराला' ने बताया है। प्रेम और सौन्दर्य के माध्यम से जहाँ 'बल्ली नासमझी'[७] में आता है, आगे ही भ्रम का गुरु भार नासमझी का कारण है।

१- गीतिका, पृ०५८
२- महाकवि 'निराला' सं०शास्त्री, पृ०१०५
३- लोकदृष्टि और हिन्दी साहित्य, चन्द्रबली सिंह, पृ०८५
४- महाकवि निराला, सं०शास्त्री, पृ०१०६
५- आराधना, पृ०८६, सरस्वती, नवम्बर ५१, पृ०३१८, निराला की हस्तलिपि में प्रकाशित, तिथि २४-८-३५ लखनऊ की हुई है।
६- अनामिका, पृ०४३--३६
७- ,, पृ०१६३, सुधा, जुलाई ३८, पृ०६०

सन् ३० की रचना 'वनबेला' में कवि की आकांक्षा है --

'बेला मैं,--'बनी सत्य,सुन्दर।
नाचती वृन्त पर तुम, ऊपर
होता जब उपल-प्रहार प्रखर।
अपनी कविता
तुम रहो एक,मेरे उर में
अपनी छवि में शुचि,संचरिता।'

अपने उक्त स्नेह और सौन्दर्य में ही कवि बेला सार्थक और सफल है। जीवन का स्वर्ग गान और नरक मस्तक ले लेकर उठी आठ की अतुल राशि(आस)। कभी जीवन के दुस्तर क्लेश भेद कर आने वाली परम सिद्धि, और भारसागर को पार कर आने वाली हिल-जल-केशं शत लहरों पर कांपती विश्व के चंचल नृत्य के कलं हर सुघर अप्सरा कवि ने ही कहा है। 'धन्य गान' बनकर खिली जो उपवन बेला के, केवल आधा सोना, बेला के जीवन में, संघर्ष द्वारा कवि की मान-जन्य साम्य-भाव की उपलब्धि होती है। वनबेला के माध्यम से कवि की यह जीवन-दृष्टि स्वामी विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त-दर्शन की ही विशद् प्रतिकृति है। अतः उषः-काल प्रिय-चरणों पर जीवन अर्पण के लिए बेला के प्रयाण में परिणति का यह भाव है, जो 'जुही की कली' और 'शेफालिका' आदि प्रारम्भिक रचनाओं में हमें मिलता है।

श्रीरामकृष्ण देव और स्वामी विवेकानन्द के प्रति 'निराला' की आस्था और भक्ति का विश्वस्त प्रमाण 'सेवा प्रारम्भ'[2] रचना में मिलता है। कविता के आरम्भ में कवि ने श्रीरामकृष्ण और उनकी आध्यात्मिक साधना की महत्ता और भारत के तात्कालिक धर्म-जीवन में उसके अवतरण की आवश्यकता का निरूपण किया है, जिसका विश्वव्यापी प्रचार उनके श्रेष्ठ शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने किया। श्रीरामकृष्ण के एक अन्य शिष्य श्री अखण्डानन्द जी की प्रेरणा से आपने श्रीरामकृष्ण मिशन में लोक-सेवा का कार्य प्रारम्भ किया था। संघबद्ध रूप से मिशन द्वारा लोकसेवा प्रारम्भ करने के पूर्व की कथा 'निराला' ने इस कविता में दी है। बंगाल में चाटल_

१- अनामिका, पृ० ५४, छन्द   ३० का पाठ कोष्ठक में ।।
२-   ,,   पृ० १७४-१७६

अभिप्सित है[1]। मरण का वरण करने वाला ही जीवन भरता है[2], अथवा जीवन को मरण करने की उनकी विज्ञप्ति में गीतिका का ही उदात्त स्वर पुनः प्रतिध्वनित है। 'सत्य रहे, मिट जाए कल्पना' का आदर्श लेकर अन्त में वे लिखते हैं :

'उठे सृष्टि से दृष्टि, सहज में
करे लोक-आलोक सन्तरण[3]।'

ब्रह्म और जीव का चरम एकत्व प्रतिपादित करने वाली रचना 'तुम और मैं'[4] है, जहां प्रतिपादन की रीति परिमल वाली रचना से भेद रखती है। सर झुकने, दुनिया से धोखा खाकर गिरने पर प्रिय उसी प्रकार जीव को उठा लेता है, 'ज्यों पानी का किरन, तपाकर।' और बादल बनाकर उसे आसमान पर रख देता है। जग की थाह सुनकर जलधर प्रिय की आज्ञा से जलधारा बनकर मिट्टी पर आ जाता है पर तुम मुझे हो फिर छिपे कली के दिल के अन्दर।' और वह जीवन खोकर अतिकन कलिका के जीवन में रहता है। कली के खिलने पर वह सुरभि रूप से मुक्त पंख भर गगन पर उड़ जाता है। परिणति की यह स्थिति श्रेयस्कर आनन्द पाना है'-- सिद्धान्त की पुष्टि है।

समन्वय -मतवाला -काल की रचनाओं की भांति अणिमा में भी विश्व की विविधता को मायाजन्य कहा गया है। अद्वैतवाद के दार्शनिक और व्यावहारिक दोनों सूत्रों का मानो सामंजस्य करते हुए 'निराला' ने लिखा है कि मोहमयी इस तमिस्त्रा के दूर होते ही विश्व-जीवन की विविधता एकता में खो जाती है और तभी मानव-मात्र का दिव्यत्व भी प्रकट होता है। ज्ञानजन्य साम्य की इस दृष्टि का उल्लेख कर निष्कर्ष रूप से उन्होंने लिखा है--

'चाल उलटी, फिर उलटती है, यही है सत्य जग का
देखता हूं, पल्लवों की धुल वर्षा धो गयी है।'[5]

'अक्षमा'[6] में उन्होंने लिखा है कि जिनके मन के तिनके नहीं जले हैं, उनका जीवन से परिचय नहीं हुआ है, उनके आसमान की पौ अब तक नहीं फटी है। ग्राम्य के लिए

१- अणिमा, पृ०१०
२- ,, पृ०५८
३- ,, पृ०१२
४- ,, पृ०२२-२४
५- ,, पृ० ६२
६- ,, पृ०२१, माधुरी, जून ४२, पृ०४६ 'साधारता'।

'बाभी कुल' के लड़के को छोड़कर चलने का उल्लेख किया है, क्योंकि 'शासक है अन्यथा शासित नहीं करता ।' देश के गुणी विद्वान जन तो लड़के को छोड़कर चल दिए, परन्तु 'स्वामी ने पूछा, शासक से मृदु स्वर- हम भी यहाँ रहें ? --''निराला' की एक रचना 'भक्त और भगवान'[1] में भी शासक और शासित की यही समस्या उनके सम्मुख थी । 'गरीबों का क्या होगा, इस प्रश्न का समुचित समाधान 'निराला' को नहीं मिलता है। मतवाद के आवेश--'अपने में रहा' में उत्पीड़न सहन करने का ध्यान उन्हें सुनाई देता है, जो संतोषप्रद नहीं है ।

सन् ३९ से ४२ की रचनाओं का संग्रह 'कुकुरमुत्ता' 'कुरूप जीवन स्थिति'[2] का चित्र है । व्यंग्यपरक इन रचनाओं में वेदान्तदर्शन अथवा मिशन के प्रभाव का अभाव है । 'नए पत्ते' में --'युगावतार परमहंस श्री रामकृष्ण देव के प्रति' रचना और स्वामी विवेकानन्द की दो कविताओं का अनुवाद-- 'जागो माता' और 'बोधि कुटीर के प्रति'[3] -- ये तीन रचनाएं अवश्य इस तथ्य की परिचायक हैं कि श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द 'निराला' के मन से छूटे नहीं थे । वेदान्त दर्शन के प्रति उनकी संशयात्मक स्वीकृति की प्रतीति कैलाश में शरत के अतिरिक्त 'स्फटिक शिला'[4] द्वारा होती है , जिसके अन्त में नहाकर आयी युवती पर आंख पड़ने पर जिसकी उपमा 'निराला' ने वसन्त की चौंच से दी है -- और कुछ देखने की चाह न रहने पर का उल्लेख जीवन पर उनकी आस्था का प्रमाण है । डा०रामविलास शर्मा के शब्दों में 'मानवीय भावनाओं ने उनके अध्यात्मवाद को फिर झकझोर दिया है[5] ।'

सन् ४३ में प्रकाशित 'बेला' में हम पुनः प्रारम्भिक भूमिका पर कवि का प्रत्यावर्तन देखते हैं । वेदान्त अथवा रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति के लिए 'निराला' ने यहां पुरातन, पूर्व-व्यवहृत कल्पनाओं का ही अवलम्बन लिया है ।परब्रह्म प्रिय की वीणाविनिन्दित स्वर सुनकर ही उसकी दृढ़ता और चिरामधारा छूटती है ।

१- चतुरी चमार, पृ०७१

२- कवि निराला, पृ०१५६

३- नए पत्ते, पृ० ७८, ८२ और ८३

४- ,, पृ० ४१

५- निराला, पृ०१५६

नाथ द्वारा हाथ गहने पर वीणा बजती है, विश्व साथ हो जाता है और दुविधा छूट जाती है, स्नेह की गुण-गाथा सुनकर माया छूट जाती है । रवि की किरण गगन आकाश में शुभ्र आनन्द और अमल-कमल के श्वेत शतदल खुलने की स्थिति का कारण है[१] । ब्रह्म की कृपा द्वारा आत्मज्ञान प्रिय की वाणी का आमंत्रण लेकर ध्यान के सरसाने पर चतुर्दिक मंगल और सौन्दर्य का प्रसार-- ये भाव बेला में आद्योपान्त व्याप्त है । कवि ने उसी दिशा में प्रस्थान किया है, जहां जीवन सदा निर्भय न कहकर बहता है और जहां अनायास प्रिय अमित कर मिलता है[२] । वस्तुत: एक ही ज्योति से अखिल सृष्टि के उद्भासमान होते देखा है --

'जीवन प्रदीप चेतन तुमसे हुआ हमारा
ज्योतिष्क का उजाला ज्योतिष्क से उतारा[३] ।'

एक अन्य गीत में 'बाहर मैं कर दिया गया हूं ।'भीतर, पर भर दिया गया हूं'[४] द्वारा ऐसी सत्य की अभिव्यंजना की गयी है । भ्रम का भार दूर होने पर जब भीतर और बाहर एक ही तत्व की व्याप्ति दिखायी देती है, तब वह स्वयं भी अनश्वर हो कर माया का साधन कर लेता है ।'प्रिया की ज्योति से जीवन चलता है'. इस तथ्य द्वारा जीवन पाने की जीवन से तत्पर की सिद्धि 'निराला' ने की है[५] । मन जब सुख की धारा में मग्न होता है, कुछ न होने पर वह चिरवल्लभा में लग्न हो जाता है । दुर्दिन के दुख दूर होने के उपरान्त जब जीवन की स्थिति आती है, आंखों के सार देखता है, तब त्याग और व्रत की शिक्षा लेकर निःशरण मृत्यु का वरण कर,ऐसी भाव से जीवन-सिंधु-संतरण का उल्लेख 'निराला' ने किया है[६] । इष्ट की मातृ-रूप में उपासना की जो कल्पना गीतिकार में मिलती है, उसी प्रकार की शक्ति का परिचय हमें इन रचनाओं में भी मिलता है ।

१- बेला,पृ० ६,१५

२- ,, पृ० ८०

३- ,, पृ०३४

४- ,, पृ० ४३

५- ,, पृ० ३८

६- ,, पृ० ८६ ८७

कवि को भी संघर्ष के लिए शक्ति और धैर्य प्रदान करती है । प्रिय के आह्वान उसे इसीलिए मरण के आगमन में मिलता है । जहाँ भी रागिनी में मृत्यु और तान में कासान है, चरण की गति में विरत लय है और सांस में आकाश का पाय परन्तु --

"सुषमता में अक्षय संचय
चरणों में निश्चरण आया ।"[1]

कवि की इस "मृत्युन्जयी साधना" का मूल स्वर निश्चय ही अपराजेयता का है । "मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की उनकी इस साधना का आधार था-- उसके अन्तरतम की जीवन आकांक्षा ।"[2]

"निराला" की यह अपराजिता साधना "आराधना" में भी अक्षुण्ण है । प्रथम ही गीत में, जहाँ कविता के लिए ईश्वर की याचना कवि ने की है,--"एक दिवस के जीवन में जय-जय-मरण-दाय है । निश्चय" उन्होंने लिखा है उनकी दूसरी रचना --"दुःख के सुख जियो, पियो ज्वाला, शंकर के तार-शर की माला ।" है, जहाँ उन्होंने जीवन के अभिशाप को उसी प्रकार उसका समुत्थान कर सिद्ध करने की कला है, जिस प्रकार शशि का लांछन उसको सुन्दर बनाता है[3]। एक अन्य गीत "नाची है, रुद्र ताल" में ताण्डव की कामना जीर्ण-शीर्ण के विनाश और नवप्रसविनी के उद्भव के लिए की है[4]। "सरस्वती" के नवम्बर ४१ अंक में उल्लिखित रचना में भी शिव के उन्मत्त ताण्डव और संहारिणी बजने का उल्लेख "निराला" ने किया है[5]।

वेदान्त के लोकोत्तरानन्द अर्थात् परिशान्ति का भाव तथा प्रकृति में व्याप्त रहस्य-शक्ति का अभिनन्दन आराधना का केन्द्रीय भाव है, जिसमें जीवन तत्व का प्रवर्तन भी अव्याहत है--यह समन्वय मतवाला-काल की मनोभूमि पर कवि के पुरावर्तन की प्रामाणिकता की सिद्धि की दिशा में इस कृति का

१- अर्चना, पृ० ६६
२- निराला - शर्मा, पृ० १९६
३- आराधना, पृ० १-२
४- ,, पृ० ५५
५- सांध्यकाकली, पृ० ६४

योगदान है। वास्तव में जीवन की संस्थिति ही आनन्द का प्रमाण है। जीवन और उसके रहस्यों से अपनी अनभिज्ञता के कारण ही कवि ने माया को ज्ञान का रूप दिया है और यही कारण है कि जननी से मानस के मिल शतदल की रेणु गंध के पंख खिलाने और जग में मंगल वर्षण के आवेदन के साथ अपने लिए उसने "कवित्व का प्रसाद", "अविरत भारण-भरण भाव" और छंद पदों के उद्धृत वरों की याचना की है[1]। भर कर जीवन का वरण करने का उल्लेख अनेक गीतों में आया है, जीवन की मरण-फाँसी और फूटी हुई केश-राशि निरन्तर साथ-साथ आए हैं[2]। क्योंकि प्रकृति का सौन्दर्य और विभव ही जीवन का स्रोत है।
"कवि के प्रगीत-काव्य" जीवन के इसी सत्य और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है।
"निराला" लिखते हैं--

"मेरा फूल न कुम्हला पाये
जल उलीच कर, मुख सींचकर
लौटें तुम सच के साये।"[3]

हजार मरण मर कर ही प्रभु के चरणों में शरण मिलती है। विश्वजन्मव्य-कारिणि के गुणपदों की वंदना कर, कवि नत-शिर उनकी शरण में जाता है और तिमिर चीर कर शरण कर मंगलमय जीवन-कुंकुम छिटकाने की याचना करता है[4]। जीवन और प्राण के प्रमाण इस चैतन्य की प्रतिच्छाया से सृष्टि पूर्ण है[5], जिसका आनन्दमय परिचय प्रभु की कृपा और गगन-वीणा बजने, किरण के तार पर रागिनी के सजने, ज्ञान की तुरी बजाने और अमृत शंखनाद विश्व में फूंकने तथा पलाश की कलियाँ डाल अथवा मधु-कुसुम के माध्यम से व्यक्त है[6]।

१- आराधना, पृ०८
२- ,, पृ०५, ८८, ९३
३- ,, पृ० ३७ शीर्षक आजकल मई ५३, पृ० २३
४-आराधना, पृ०६, ६२, ६०
५- ,, पृ०५६, ६३, ,गीतगुंज, पृ०२६
६- ,, पृ०६, ८६-८७, ९१, ४०, ७० ।

नभ से स्पन्दन होने पर व स्पन्दन और त्वरा हो जाता है, परा दृष्टि निखर जाती है और दिव्य नयनोत्पल खिल जाते हैं। गीतिका के कवि में हुई[1] अखिल कारुणिक मंगल की कल्पना की प्रतिच्छवि ही यहाँ भी हमें मिलती है। प्रेयसी, रेखा और स्मृति-चुम्बन की भावधारा का संक्षिप्त परन्तु पूर्ण चित्र यहाँ भी प्राप्त होता है। यौवन के उपवन में तन मन खिला निरख ऐंठी प्रिया की, सुगंधि रूप से प्रियागमन होने पर "हुई दशा हारी की हारी।" मानस को उभार कर प्रिय की अन्तर्ध्वनि हो जाती[2] है, परन्तु प्रिया स्वर के समान उठती है, जैसे "कोकिल की काकली मंजरी" कुंजों की रात के प्रभात, सुप्रिया अलसाई गात होने पर[3] पलकों के मुंदने से दिन छिपने में "निराला" के जीवन-रेखा को झुकी देखा है। प्रेम के साथ यौवन और सौन्दर्य की यह अलक्षित और व अविकल्पित अविचलित मंगल और जीवन की शक्ति की आस्था की है। श्रीमती महादेवी वर्मा ने जीवन में जो कुछ सत्य, सुंदर और शिवमय है, उसे "निराला" का आराध्य बता आराधना को उसकी जीवन-व्यापी अर्चन की एक कड़ी कहा है[4]।

निखिलात्मा के प्रति "निराला" की प्रणति की विज्ञप्ति तथा आत्म और अध्यात्म की चिन्ता में उनकी समर्पित भक्ति-भावना, यहाँ स्वतः मुखर है। प्राणधन के स्मरण द्वारा पार की तार कर संवारने, काम-रूप राम का निरन्तर जाप कर दिव्यता पाने और निराधार[5] से मन का समाहार कर मुक्ति प्रदान करने का भाव कई गीतों में व्यक्त है। जब तक मन हरि के पद में नहीं रमता, वासना और मन की चंचलता से जीवन, यौवन और[6] ज्ञान की स्थिति अव्यक्त रहती है, उनके बिना विराजे सारे साज सूने रहते हैं। द्वेष और

१- आराधना, पृ०४

२- ,, पृ० ११

३- ,, पृ० ५८

४- ,, "दो शब्द"

५- ,, पृ०१६, १२, १४, २०, ४६-४५, ८६, ७७।

६- ,, पृ०८२, ३१

कामना का मन करने में जो समर्थ है, उसी की विश्व में विजय होती है। उस पार की आन है, उसे ही "निराला" में नमनीय कहा है। यही ज्ञान अपनत्व, कल्पना और यौवन के मार्जन में समर्थ है।[1] अपने को छोटा समझना भी उस ज्ञान की सिद्धि सम्भव है, मन की समाहित अवस्था को "निराला" ने आँखों के मिलने में गगन मिलने के सदृश कहा है। "पूर्णता है जो कुछ बराबर तुम्हीं सार" यह उन्होंने स्वीकार किया है। परन्तु बहुविध उसका उपाख्यान गाने के बाद भी वह उसका अन्त नहीं पाते हैं—

> "सुनते हो था स्फूर्ति सुख कुछ न आया
> पदों पर कण्ठ कृपानाथ के सम्भार।"[2]

"निराला" ने सृष्टि में पलने वाले विरोध, द्वैत द्वैत और भ्रम को स्वीकार किया है और "हार गया पता जो न पार"[3] लिखकर अपर लोक को अस्वीकार भी नहीं किया है, परन्तु साथ ही उन्होंने जीवन और जगत से सत्य सौन्दर्य का प्रतिपादन भी किया है। जग को जहाँ सत्य प्राप्त होता है, वहीं भ्रम का दान वे करते हैं[4], संसार के पार जाने की उन्होंने जीव की विवशता का नहीं, उसकी पराजय का द्योतक माना है। वे स्पष्ट लिखते हैं: "हार गया ज्यों मैं उस पार गया"। उस पार के नमनीय ज्ञान के तिरस्कार अथवा जीवन में अपनी पराजय के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—

> "आना था जहाँ, वह रहना क्या,
> यहाँ कहाँ अपना भी घर क्या,
> भौतिक की भूमि कहाँ, हल क्या ?
> कोई मुझको यहाँ उतार गया —
> मार गया —
> हार गया।"[5]

१- आराधना, पृ० ६५,७६
२- ,, पृ० १८,२१
३- ,, पृ० १४,१७
४- ,, पृ० ३५
५- ,, पृ० १५

'अधिवास' में जिस प्रकार उन्होंने दुःख और माया को अपना अभीष्ट कहा है, वहाँ उसी प्रकार अपने मरण और पराजय को अपना उद्धार कहा है। कवि उस घर के पारावार को देखने, उसकी रीति और नियमों को सीखने के लिए प्रस्तुत तो है, परन्तु भोजन की अपेक्षा भजन करना कदापि उसका अभिप्रेत नहीं है। सीधी राह चलकर अपने ही जीवन पालना उन्हें प्रिय है। जीवन से विरक्ति अथवा मुक्ति प्राप्ति की अपेक्षा जीवन-निर्वाह जगत और उसके उत्पातघात ही उनका वरेण्य है। दिशा - विहीन होकर उन्होंने जीवन को उसकी समस्त विषमताओं के साथ वरा है --

> 'जहाँ विभव हैं जीवन के प्राण
> कहाँ निरामयता, संचेतन ?
> अपने,रोग,भोग से रचकर,[2]
> निर्वासन के कर फलने वो।'

जीकर जो प्राणों को नहीं त्याग सके, उनका मरकर जीवन जी जाने का लक्ष्य 'निराला' को संगत नहीं प्रतीत होता[3]। स्वयं 'निराला' की साहित्य-साधना मरकर जीवन-जीतने का नहीं,मृत्यु से बचते हुए जीवन अथवा प्राण की स्थिति का परिचय है।

'गीतकुंज' के गीतों में जीवन के बीच रहकर जीवन का दर्शन करने वाले जीवनद्रष्टा के रूप में 'निराला' आए हैं, यह कृति उस साधना-परम्परा का वह रूप है, जो आत्मद्रष्टा ने जीवन के प्रांगण में देखा है[4]। प्रारम्भिक भाव-भूमि कवि की पूर्ण पुण्यागति और उसकी साधना की समाहिति इन गीतों में मिलती है। परन्तु अन्तर मात्र इतना है कि प्रारम्भ में जहाँ

~~१--अनरपमका,पृ०४५~~

१--आराधना पृ० ४२

२- ,, पृ० ५७

३- ,, पृ० ४७

४- गीतकुंज, पृ०२४,२० सुधाकर पाण्डेय

सौन्दर्यांकन की भावना प्रमुख थी, वहाँ अब प्रकृति उनका अधिक गम्भीर आश्रय, गंभीर जीवन-चेतना का अंग बन गयी है, अब कवि उसे जीवन-समृद्धि का अजाय स्त्रोत मानता है[1]।

'गीतकुंज' में प्रकृति निरंजन अथवा सत्य के प्रत्यक्षीकरण का माध्यम है। संसृति उसी के आशीर्वाद से [illegible] रहती है। कानन में उसकी दूर्वा फिर झुकी है, पारस का स्पर्श सघन हरीतिमा का प्रसार कर देता है[2]। 'निराला' का प्रिय गीत है--

'जिधर देखिये श्याम विराजे
श्याम कुंज,वन,यमुना श्यामा,[3]
श्याम गगन घन वारिद गाजे।'

यहाँ उन्होंने अखिल विश्व में एक ही सत्ता व्याप्त देखी है ।'निराला' का यह गीत सूरदास के 'जित देखौं तित श्याममयी है' पद के समकक्ष है, जहाँ कवि के नख नेत्र चारों तरफ श्याम की ही प्रत्यक्ष करते हैं, समस्त संसार में एक ही श्याम छवि सी हुई है[4]।'सूर के इस पद का अन्यत्र भी उल्लेख करते हुए 'निराला' ने लिखा है : 'निस्वार्थ प्रेम अपना सहज परिणाम प्राप्त करता है, तमाम प्रकृति में गोपियों को कृष्ण की ही सूरत नजर आती है। --'सर्वं कृष्णमयं जगत्।' अभेद और आनन्द में उनकी सम्पूर्ण क्रीड़ाएं रसालाप,कौतुक विनोद आदि परिसमाप्त होती हैं[5]।'

सूरदास की रासलीला के सदृश 'निराला' ने भी नृत्य द्वारा लोकोत्तरानन्द को अभिव्यक्त किया है।परन्तु नृत्य और गान की यह प्रवृत्ति उनके शैषकाल की रचनाओं की विशिष्टता है। सन् ५६ के फील भर गया जूही के गंधा पवन ' की परिणति नृत्य में ही होती है[6]। फरवरी सन् ५१ में प्रकाशित

१- कवि निराला : आचार्य वाजपेयी,पृ० १५७-१५८
२- गीतकुंज, पृ० २४, २६, ३०
३- ,, पृ० ३४
४- प्रबन्ध पद्म,पृ० ३६
५- प्रबन्ध प्रतिमा,पृ० २५१
६- गीतगुंज,पृ०५०

इसी प्रकार की एक रचना 'मदनोत्सव नाचगीत' है[1]। 'दमन-गीत'[2] इसी प्रकार की नयी शैली का गीत है, जिसमें रागत्व और गीत का सामंजस्य बिठाया गया है।

'निराला' के शेष काल के गीत भी 'गीतगुंज' की इसी परम्परा में आते हैं, जिनमें विश्वरूप का अभिनन्दन 'निराला' ने किया है। प्रिय के प्राची-रति-समान आने पर जीवन के जीर्ण याम कम्पित होते हैं, और सर्वत्र आनन्द छा जाता है। आनन्द के इस दूसरे लोक के सम्बन्ध में 'निराला' लिखते हैं--

'जग उठा दूसरा विश्व, चला,
पग-पग छायाकुल भला-भला,
सन्देश दूत मुख से निकला
तुम बंद करो, लो राम नाम[3]।'

नई ज्योतियाँ पाकर ही प्रियागमन का परिणाम और जीवन में नव पाने का ज्ञान होता है। उसी के रूप से बराबर निखरा हुआ है। शीत की गहरी विभावरी, तरु-तरु की कली, सहज फूले उपवन और गंध मोदित मधुप घन सर्वत्र उसकी स्थिति है[4]। एक गीत में छाया के दृश्यों से उतरे मन-प्राण को जो सौम्य करता उसका उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है --

'पातों के प्राणों का कम्पन
जैसे अधरों पर है नर्तन--
नयनों की ज्योति का, सन्तरण
इस तट को उस पर रखे हरे[5]।'

१- 'प्रदीप', फरवरी ५१, पृ० ५ --प्राचीनकाल में वसन्त पंचमी के आले दिन मनाया जाने वाला उत्सव। अब कामोत्सव, जो होली पर मनाया जाता है।

२- सरस्वती, मई ५१, पृ० ३२६

३- सांध्यकाकली, गीत, ३८, पृ० २४

४- ,, ,, २८, ३७, ४५, ५०, ६३, पृ० ४४, ५३, ६१, ७६

५- ,, ,, ५७, पृ० ७३

आनन्द की इस अनुभूति के साथ "निःसम्बल के वरण" का मैं। "निराला" विस्मरण नहीं कर सके हैं। दीन के साथ ही दुनिया है, अतः जीवन का पूर्ण विराम, जिसके लिए संग्राम है, वह कवि के एक ही आँख भाता है[1]। यथावत् अब भी उनका प्रश्न है :-

" प्रेम से भरा हुआ है,
पढ़कर भरा हुआ है,
हुआ, तरा हुआ है?[2]
मैं कौन प्राण आऊँ ?"

धरा और धान्य की सत्यता का निदर्शन उनके इस प्रश्न द्वारा भी होता है --

"झंकर झूमकर कुछ जी न, तो क्या ?[3]
अन्नपूर्णा बिना लो क्या व दो क्या ?"

"निराला" के शेष काल के ये गीत वेदान्त-दर्शन विषयक उनकी उसी दृष्टि के परिचायक हैं, जिसका परिचय हमें उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में मिलता है। भौतिक जीवन और जगत के साथ ही उन्होंने दार्शनिक सत्य अथवा उसकी स्वीकार विचार है। स्वामी विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त का विकास उन्होंने अपने विद्रोही दृष्टिकोण द्वारा किया, जहाँ मानव-मात्र में साम्य उसकी दृष्टि से वह, दुख अथवा भावकी दृष्टि से देखा जाता है, जहाँ विचार-पक्ष का ज्ञान-योग, भावयोग में परिणत होता है। विशुद्ध दर्शन अथवा क्षेत्र में भी "निराला" ने अपनी विद्रोही दृष्टि का परिचय अपनी मौलिक व्याख्या और सृष्टि में विरोधी गुणों की स्थिति की स्वीकृति द्वारा दिया। वेदान्त-दर्शन विषयक उनका दृष्टिकोण, स्वामी-विवेकानन्द के अद्वैतवाद का

१-सांध्यकाकली, गीत ४१,४३,४६,पृ०५७,५६,७५
२- ,, ,, ५६,पृ०७२
३- ,, ,, ६१, पृ० ७७

संशोधित और विकसित स्वरूप कहा जा सकता है ।`विवेकानन्द का साहित्यिक प्रतिनिधि`[1] `निराला` को इसीलिए कहा गया है ।

विवेकानन्द से अधिक `निराला` पर श्रीरामकृष्ण का प्रभाव था । यद्यपि विचार अथवा दर्शन के क्षेत्र में उन्होंने भी राजयोग को सर्वोत्कृष्ट कहकर, भक्ति,प्रेम, ज्ञान और वैराग्य का उसका अंग बताया है[2], तथापि एक रूप हुआ भक्ति और शुद्ध ज्ञान में , भक्तिमार्ग का आश्रय उन्होंने निर्दिष्ट किया है । भक्तिमार्ग के अवलम्बन का का यह पृश्रय `निराला` की उनसे समीपता का भी कारण है, क्योंकि `निराला` में भी आनन्द बन जाने से, आनन्द पाने को श्रेयस्कर कहा है । विचार की दृष्टि से श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द ने एक ही तथ्य का प्रतिपादन किया है, `निराला` ने उसको भौतिक जीवन का संस्कार देकर अपना विशिष्ट योगदान किया है ।

-0-

१- अभिनन्दनग्रन्थ, संपादक, बच्चन्जा,पृ० ६३

२- श्रीरामकृष्णवचनामृत, पृ० ३३५

तृतीय अध्याय

-o-

रवीन्द्रनाथ और बंगला कविता : प्रेरणा स्रोत

तृतीय अध्याय

-0-

रवीन्द्रनाथ और बंगला कविता : प्रेरणा स्रोत

बंग भूमि में जन्म होने और जीवन का प्रारम्भिक काल, लगभग तीन युग, व्यतीत करने के कारण बंग भाषा और साहित्य से "निराला" की अभिज्ञता तथा उसके प्रति उनकी अभिरति एवं अभिरुचि आश्चर्यजनक नहीं, सहजतम स्वाभाविक थी। जन्मभूमि होने के कारण बंगाल उन्हें स्वभावतः प्रिय रहा, जिसे वे रोमाण्टिक कविता का पर्यायवाची शब्द मानते थे। बंगाल की प्रकृति और प्रचुर जलाशयता के साथ कलकत्ते का मुक्त और निष्कपट वातावरण कविता के लिए उन्हें पसन्द था[1]। यहीं बचपन की निष्कामिता ने उन्हें सर्वप्रथम सब प्रकार के सौन्दर्य को देखने और उनसे परिचित होने की आदि प्रेरणा दी थी, जो क्रमशः संस्कार रूप में परिणत हुई[2]। अपने वातावरण के प्रति उनकी संज्ञा सदैव जागृत रहने का[3] यह सुष्ठु प्रमाण है। अपने ऊपर बंगला के आधुनिक अमर साहित्य के प्रभाव को "निराला" स्वतः स्वीकार करते हैं[4]। "बंगला मेरी[5] वैसी ही मातृभाषा है, जैसी हिन्दी। रवीन्द्रनाथ का पूरा साहित्य मैंने पढ़ा है", गांधी जी से

१- "निराला" --डा० रामविलास शर्मा, पृ० ९८
२- गीतिका की भूमिका, पृ० ११
३- "निराला" -- डा० शर्मा, पृ० ९८
४- परिमल की भूमिका, पृ० ११
५- "प्रबन्ध प्रतिमा", पृ० २५

बातचीत के समय यह स्वयमुक्ति व्यक्ति की है। बंगला के प्रति उनके स्नेह की इस अभिव्यक्ति को भले ही हिन्दी वालों से झगड़ा होने के उपरान्त विकसित कहा जाय, बंग-भाषा और उसके भाषियों से नि:सन्देह "निराला" का परिचय बहुत पुराना और घनिष्ठ था। चिरकाल से बंगाल में रहने के कारण हुई अपनी प्रगति के सम्बन्ध में उन्होंने उनकी प्रान्तीयता की भावना से मिली सजगता का उल्लेख किया है।[1] इस कथन की सत्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण बंग-भाषा के विवेचन तथा मुख्यतया बंगला के विद्वानों एवं प्रेमियों के सम्मुख हिन्दी और उसके औचित्य की रक्षा के समय निश्चय ही हमें मिलता है। बंगालियों की भावप्रवणता भी, जिसकी ओर लक्ष्य करके "आँसू" को इस देश की प्रधान शक्ति कहा गया है और जो जीवन के प्रति उनके मोह का परिचय देती है,[2] "निराला" में हमें मिलती है। बंग-भाषा-संस्कृति के इस अतिरिक्त भावावेश से इतर दूसरा उल्लेखनीय तथ्य है,[3] राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से बंगाल द्वारा हिन्दी को मिली भावनात्मक समृद्धि, इसका भी प्रमाण हमें "निराला" में उपलब्ध होता है।

बंगाल में रहते हुए उसके सांस्कृतिक अभ्युत्थान में निरत सशक्त व्यक्तित्वों-- श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द और रवीन्द्र -रवीन्द्र से अपरिचित अथवा अप्रभावित रहना "निराला" के लिए सर्वथा असम्भव ही था। भारत में, और सर्वप्रथम ~~बंगाल में~~ बंगाल में, ब्रिटिश शासन और अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के साथ नवजागरण की जो चेतना प्रादुर्भूत हुई थी, उसके प्राथमिक और मूलत: सुधारवादी (मुख्यत: धार्मिक और सामाजिक सुधार से सम्बन्धित) स्वरूप का प्रतिफलन अन्तत: राष्ट्रीयता की भावना में होता है, जिसे तीव्रता बंग-भंग आन्दोलन के साथ मिलती है। विकसित काल का विद्रोह का स्वर भी यहां सुनाई पड़ता है।

१-प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १२, सुधा, मार्च ३५, पृ० ६७५-६७८

२-"कृत्तिवासी बंगला रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन"-- डा० रमानाथ तिवारी, पृ० ४८, १३६ "अश्रुजल एतद्देशेर एकटि प्रधान शक्ति"- बंगभाषा और साहित्य, पृ०७०--दीनेशचन्द्र सेन ।।

३- डा० जगदीश गुप्त, ७ मई ६६ को प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी बंगला पर विचार।

सी राष्ट्रीयता के प्रथम चरण जातीयता की भावना की महत्ता को स्वामी विवेकानन्द और तदनुकूल "निराला" के साथ रवीन्द्रनाथ ने भी स्वीकार किया है। स्वामी विवेकानन्द और रवीन्द्र दोनों ही महापुरुषों ने समानरूप से पुरातन रूढ़ियों और परम्पराओं का विरोध कर अतीतकालीन भारत के चिरन्तन विभव और आर्य संस्कृति के अभिमान का ज्ञान भारतवासियों को किया था। स्वदेश-प्रेम, त्याग और आत्म-विश्वास का मूलमंत्र लेकर विवेकानन्द और रवीन्द्र की क्रान्तिकारी रश्मियों को हम धर्म और साहित्य के क्षेत्र में निरन्तर सक्रिय देखते हैं।

"निराला" जहाँ श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के विचार-दर्शन, मिशन और उसके सन्यासियों के घनिष्ठ सम्पर्क में आए, वहीं रवीन्द्र और उनके साहित्यिक आन्दोलन, जिसका मूल-स्रोत वैष्णव कवि थे, से भी उन्होंने प्रेरणा ग्रहण की। निश्चित रूप से यद्यपि यह कहा जा सकता है कि जितनी श्रद्धा और भक्ति की भावना "निराला" के हृदय में श्री श्रीरामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द अथवा गोस्वामी तुलसीदास के प्रति थी, उसका शतांश भी स्नेह-भाव रवीन्द्र के प्रति उनके मन में नहीं था, तथापि "निराला" पर पड़ा रवीन्द्र का प्रभाव अस्थायी नहीं, स्थायी और गहरा है, जिसे सम्प्रत: अलक्षित करना संभव नहीं है। स्वामी विवेकानन्द और उनके वेदान्त दर्शन की भांति रवीन्द्र और उनका साहित्यिक आन्दोलन भी "निराला" की काव्य-प्रेरणा के आदि स्रोतों में गणेय है।

बंगला-साहित्य-क्षेत्र में रवीन्द्र के पदार्पण के पूर्व राजाराम-मोहनराय, विद्यासागर, बंकिम और माइकेल के समान विभूतियाँ हो चुकी थीं। फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना और पत्रकारिता के जन्म के साथ बंगाल में जिस गद्य-शैली का सूत्रपात हुआ था, उसमें राजा राममोहन राय के लेखों और अनुवादों द्वारा विचारात्मकता, प्यारे चन्द्र मित्र और राधानाथ सिकदार द्वारा सरलता तथा विद्यासागर द्वारा प्रभावशाली परन्तु अनलंकृत लालित्य और

परिष्कार का संयोग ही हुआ था । बंकिम ने मानवतावादी और राष्ट्रीय भावनाओं को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति प्रदान की । साथ ही प्यारी चन्द्र मित्रा और विद्यासागर के बीच एक नूतन गरिमामयी गद्य शैली अपनाई । नाटकों के क्षेत्र में गिरीश घोष और डी०एल० राय के साथ व्यंग्य की दृष्टि से दीनबंधु मित्रा भी उल्लेखनीय हैं । युवा बंगाल के फलस्वरूप माइकेल ने परम्परा का पूर्ण परित्याग कर `शर्मिष्ठा` नाटक की रचना की । उनका 'कृष्ण-कुमारी' युग का प्रथम दु:खान्त नाटक और `पद्मावती` स्वच्छन्द नाटक था । काव्य के क्षेत्र में उन्होंने अमित्राक्षर छन्द का श्रीगणेश किया और `मेघनाद-वध` की रचना में मानवतावादी दृष्टि अपनाकर अभिनव-परम्परा का सूत्रपात किया । `चतुर्दश पदावली` द्वारा सानेट और `वीरांगना-काव्य` द्वारा पत्र-गीति का प्रारम्भ भी आपने ही किया था । बिहारीलाल चक्रवर्ती के स्वच्छन्द प्रगीत भी इस समय तक प्रकाश में आ गए थे, जो निश्चय ही पश्चिम के प्रभाव के घोतक थे । यही भविष्य में रवीन्द्र की कवि-प्रतिभा के स्रोत भी सिद्ध हुए । इनके `सारदामंगल` की ओर उनकी विशेष प्रवृत्ति का उल्लेख भी मिलता है[1] । अतएव थोड़े से ही विश्लेषण और अन्तर्दृष्टि से यह सत्य प्रकट हो जाता है कि रोमाण्टिक प्रगीत की अन्त: धारा महाकाव्य की प्रवृत्ति के साथ प्रवहमान थी[2] ।

बंगला साहित्य का परिपूर्ण विकास, बंगला के जातीय महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के उदय के उपरान्त ही होता है । बंग-भाषा में यौवन का शुभ-भाव लाने का एकमात्र श्रेय उन्हीं को है[3] । माइकेल की रचनाओं में शक्ति अवश्य थी, पर वहाँ जो जीवन का अभाव था, उसकी पूर्ति रवीन्द्र ने अपनी कृतियों द्वारा की । `उनकी अकेली शक्ति बीस कवियों का जीवन तथा छन्दजाल लेकर साहित्य के हृदय केन्द्र से निकली और फैली[4] ` यह `निराला`

१- टैगोर और निराला` -- अवधप्रसाद वाजपेयी, पृ० १०७
`बांगला साहित्येर धारा ,` --डा०श्री कुमारबन्द्योपाध्याय ,पृ०२०२
२-`इण्डियन लिट्रेचर`, पृ०४००
३-`रवीन्द्र-कविता-कानन`,पृ०३,५
४-`प्रबन्ध-पद्म`,पृ० ८२-८३

का विचार है ।" सन्ध्या-संगीत" के प्रकाशन के साथ रवीन्द्र की प्रतिभा चमक उठी और "प्रभात-संगीत" द्वारा बंगला-साहित्य में धूम मच गयी, इसके पदों को विशेषत: ओज और छन्दों के बहाव के विचार से "निराला" सर्वश्रेष्ठ मानते हैं[1]। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ का परिचय देते हुए "निराला" ने बताया है कि क्रमश: कविता की नन्दन भूमि "मानसी", सौन्दर्य की मनोहारी सृष्टि "चित्रा", नवीनता और नए ढंग की प्रकाशन-धारा लिए "सोनार-तरी", सौन्दर्य को हद तक पहुंचाने वाली "चित्रा" और नामकरण में ही कविता लिए "चैताली" आदि विविध सोपानों को पार कर रवीन्द्र की काव्य-साधना "गीतांजलि" में समाहित होती है । उनका सम्पूर्ण साहित्य उनकी नवनवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा का परिचायक है, जिसके विस्तार में सम्पूर्ण विश्व-प्रकृति समाविष्ट है । जीवन-पथ पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सौन्दर्य-प्रतिमा तक पहुंचने का उद्देश्य लेकर वे अग्रसर हुए हैं[2]। उनका ध्रुव-संकल्प सौन्दर्यान्वेषण का ही था ।

कविवर रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रवर्तित साहित्यिक आन्दोलन[3] अथवा बंगला के रोमाण्टिक काव्य का एक स्रोत वैष्णव कवि थे । "निराला" द्वारा प्रशंसित उनकी श्रृंगार और रूप वर्णना का, भक्ति और सर्वव्यापक चेतनवाद के अतिरिक्त उनकी वर्णना-शक्ति और माधुर्य का भी अनिवार्य एवं प्रचुर प्रभाव रवीन्द्र पर पड़ा था । वैष्णव कवियों के "शब्दलालित्य" का उल्लेख करते हुए "निराला" लिखते हैं -- " इन वैष्णव कवियों से कविवर रवीन्द्रनाथ ने इतना ऋण लिया है, जिसका ठिकाना नहीं, परन्तु ब्याज में उन्होंने किसी को एक कौड़ी भी नहीं दी, हे हाँ, एक वैष्णव कविता में अपनी ओर से उनकी तारीफ़ ज़रूर कर दी है ।[4]" वैष्णव कवियों पर लिखी अपनी इस कविता में रवीन्द्र ने

१- "रवीन्द्र-कविता-कानन", पृ० १७-१८
२- ,, ,, पृ० ८०
३- "निराला" -- डा० शर्मा, पृ० ५७
४- "प्रबन्ध- प्रतिमा", पृ० २३३

उनकी भक्ति के मानवीय रूप की ओर संकेत किया है और उनकी शैली के अनुकरण पर "भानुसिंहेर पदावली" की रचना भी कर डाली।[1]

इन वैष्णव कवियों में भी "निराला" ने रवीन्द्र पर चण्डीदास का प्रभाव सबसे जबर्दस्त माना है -- "रवीन्द्रनाथ ने चण्डीदास से बहुत-कुछ लिया है। भावना-प्रकाशन का उनका ढंग भी उन्होंने अपनाया है और छंदों की गति भी ग्रहण की है। "उदाहरणार्थ उन्होंने कदम्ब सहारे खड़े चण्डीदास के कृष्ण और वकुल- मूल से शरीर संभाले बैठे रवीन्द्रनाथ की रचना "विजयिनी" के मदन का उल्लेख किया है[2]। डा० रामविलास शर्मा तो रवीन्द्र को रोमाण्टिक कविता के पुराने स्त्रोत चण्डीदास का आधुनिक प्रतिनिधि कहते हैं[3]। रवीन्द्र के विदग्ध संगीत, नवीन कामिनियों के मुंह से नयन, जागरण-क्लान्ति और अलस सौन्दर्य में भी वैष्णव कवियों, मुख्य रूप से गोविन्ददास की प्रतिध्वनि "निराला" ने सुनी है। वासर जागृत नायिका के रूप का जो चित्र रवीन्द्र ने "अहा जागि पोहाल विभावरी, क्लान्त नयन तव सुन्दरी" संगीत में प्रस्तुत किया है, उसका उल्लेख करते हुए "निराला" ने बताया है कि यहां वैष्णव कवि भी किस खूबी से कह जाते हैं --"यामिनी जागि अलस पीठि पंकजे कामिनी अधरन राग।
कांपली अरुण अधरे, नैन काजर, भालोपरि अलक्त दाग[4]।"

बंगला जानने वाले हिन्दी के नये कवियों का वैष्णव कवियों की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था, रवीन्द्र की प्रशंसात्मक रचनाएं भी इस दिशा में सहायक सिद्ध हुई। वैष्णव कवियों को "निराला" ने बंगला में पढ़ा था और उनके पदों का अनुवाद करते हुए उन्होंने पदों को कहीं अपने अनुसार सुधारा और कहीं उन्हें बंगला के अनुरूप ही रहने दिया[5]। बंगाली वैष्णव कवियों

१- "निराला" -- डा० शर्मा, पृ० ५६

२- "प्रबन्ध प्रतिमा", पृ० ११३

३- "निराला", पृ०५७

४- "प्रबन्ध प्रतिमा", पृ० २४४

५- "प्रबन्ध प्रतिमा की भूमिका"।

के विवेचन में "निराला" ने चण्डिदास, विद्यापति और गोविन्ददास का उल्लेख विशेष रूप से किया है। इन कवियों के साथ विद्यापति को लेने का एक कारण तो "निराला" के अनुसार यह है कि बंगालियों ने उन्हें अपना कवि कहा है और फिर "भाषा-विज्ञान के क्रम-परिणाम पर विचार करने पर सारा आनन्द आता है। तिरहुत, जिसे कविशेखर की जन्मभूमि होने का[1] सौभाग्य प्राप्त है, हिन्दी और बंगला के संगम में "तीरथराज प्रयाग" हो रहा है।" इन तीन कवियों के अतिरिक्त "बंगाल के वैष्णव कवियों की श्रृंगार-वर्णना" लेख में एक अन्य कवि ज्ञानदास के दो पदों-- जिनमें से एक बहुत बड़ा है -- का उद्धरण "निराला" ने दिया है।

बंगाल के वैष्णव कवियों पर कुल मिलाकर "निराला" ने चार लेख लिखे और ये सभी सन् २८-२९ के लगभग मुख्य रूप से "सुधा" और "माधुरी" में प्रकाशित हुए थे। "निराला"[2] का प्रथम परिचयात्मक लेख बंगला के आदि कवि भक्त-प्रवर "कविवर श्री चण्डिदास" पर था, जो समान रूप से बंगाल के सम्मान, श्रद्धा और स्नेह के पात्र थे। सन् २८ की ही "सुधा" के आरम्भ अंक में "विद्यापति और चण्डिदास" पर उनका दूसरा विस्तृत और तुलनात्मक लेख प्रकाशित हुआ, जिसके प्रारम्भ में लेखक द्वारा अपने पहले लेख का उल्लेखमात्र है। सन् २८ की "माधुरी" के भी अगस्त के ही अंक में उनका एक सुदीर्घ प्रशंसात्मक निबन्ध "बंगाल के वैष्णव कवियों की श्रृंगार-वर्णना" निकला था, जिसमें प्रधानतः चण्डिदास एवं गोविन्ददास को ही "निराला" ने उद्धृत किया है। पूर्व निबन्ध में केवल दो-दो अन्य उद्धरण ज्ञानदास और विद्यापति[3] के आए हैं। ज्ञानदास भी गोविन्ददास के सदृश चैतन्य के अनुवर्तियों में थे। वैष्णव कवियों पर उनका अन्तिम और चतुर्थ लेख "कवि गोविन्ददास की कुछ कविता" सन् २९ की "सुधा" के मई अंक में छपा। यह लेख न होकर वस्तुतः कवि गोविन्ददास की कुछ कविता ही है, क्योंकि गोविन्ददास की सरस

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० २४७

२- "प्रबन्ध प्रतिमा" में लेख का रचना काल १९२० दिया गया है, परन्तु सर्वप्रथम प्रकाशित यह सुधा अप्रैल १९२८ में हुआ था।

३- इण्डियन लिट्रेचर, सम्पादक- डा० नगेन्द्र, पृ० ३७५, बंगाली --डा० के० बनर्जी।

पदावली के पाठ से उत्पन्न भावना द्वारा बलात् कवि से कराया गया १६ पदों का हिन्दी रूपान्तर यहाँ प्रस्तुत है । शृंगार-वर्णना के प्रसंग में भी इनके ६ पदों को "निराला" ने उद्धृत किया था । इस पद-राशि के अतिरिक्त गोविन्ददास के १३ अन्य पदों[1] का अनुवाद भी "निराला" ने उसी समय किया था, जो "माधुरी" में प्रकाशित हुआ । इस रूपान्तर में "निराला" ने इच्छानुसार ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी और मैथिली आदि का मिश्रण कर दिया है, यद्यपि प्रधानता ब्रज और अवधी की है । पदों की स्वर-विस्तृति आदि में मूल पदों की अनुकूलता भी उन्होंने रखी है । इनकी रचना, मुख्यतः पदों की गीत-रीति में विद्यापति के अनुकरण की चेष्टा "निराला" ने देखी है, पदों में भी विद्यापति की पदावली का-सा आनन्द मिलता है[2] ।

वैष्णव कवियों की पदावली का "निराला" ने जो अनुवाद किया है, उसमें गोविन्ददास के पदों की संख्या सर्वाधिक है । चण्डिदास के कतिपय पदों का "निराला" द्वारा छतरपुर में किया गया अनुवाद "सुधा" में भक्त-कवि पर प्रकाशित उनके लेख में अपने मूलरूप ~~सहित प्रकाशित उनके लेख में अपने मूलरूप~~ सहित प्रकाशित हुआ था । छतरपुर के महाराज के कहने से ही चण्डिदास के एक पद का अनुवाद ब्रजभाषा के कवि ललित किशोरी के छंद में भी "निराला" ने किया था । यह अनुवाद "छतरपुर में तीन सप्ताह"[3] लेख में उन्होंने दिया है । यों तो अनुदित रूप में चण्डिदास के मात्र तीन पद ही सुधा में दिए गए थे, परन्तु अपने अन्य लेखों में चण्डिदास के आठ और पदों का उद्धरण "निराला" ने दिया है । गोविन्ददास के पदों के समक्ष चण्डिदास के पदों की यह संख्या नगण्य ही है ।

बंगाली वैष्णव कवियों पर लिखे अपने इन प्रशंसात्मक लेखों में "निराला" ने उनके जीवन-वृत्तान्त और पदावली का परिचय देने के साथ ही

१- "माधुरी", दिसम्बर २८ पृष्ठ ७३६-७४०, ४ पद, मार्च२६, पृ०२१६-१७, ६ पद ।
२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १२६ और १३५
३- सुधा, जुलाई २८ । चयन में संकलित ।

उनकी श्रृंगार-वर्णना और भक्ति की, अद्वैत आनन्द में परिसमाप्त होने वाले प्रगाढ़ प्रेम की प्रशंसा की है। पुराने कवियों का श्रृंगार के माध्यम से अभिव्यक्त "सर्वव्यापक चेतनवाद" "निराला" की दृष्टि में विशेषरूपेण प्रशस्य है। उनकी श्रृंगार-स्वरूप भावना गहन वैदान्तिक विचारों की अन्तरित किए क्रमशः विकसित होती है[1]। अतएव यह श्रृंगार-चर्या "निराला" के लिए वेदान्त का भावपक्ष ही है। श्रृंगार के लिए वीर और वीर के लिए श्रृंगार रस की आवश्यकता उन्होंने सिद्ध की है। वीर्य की आवश्यकता भोग के लिए है और भोग के बिना वीर्य भी नहीं बढ़ सकता, इसलिए जो वीर है, वह भोगी अवश्य होगा[2] यह कहकर "निराला" ने श्रृंगार रस के प्रतिकूल -पंथियों का मुंह बन्द कर दिया है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर "निराला" उन कवियों पर जयदेव के "गीत गोविन्द" का प्रभाव पाते हैं, परन्तु जहां वैष्णव कवियों की रचनाएं गीत गोविन्द की रस-प्रधान कोमलकान्त पदावली के मुकाबले में उन्हें कमजोर मालूम पड़ती है, वहीं आजकल की अश्लीलता के विचार से चण्डिदास और गोविन्ददास (बिहारी) उन्हें अधिक शुद्ध प्रतीत होते हैं[3]।

बंगाल के इन भक्त कवियों का मनोविज्ञान के साथ कविता का सार्थक निबाह और विशेषतः रूप-वर्णना के प्रसंग में वर्णन-शक्ति का चमत्कार भी "निराला" द्वारा अकृष्ट नहीं हो सका है। उनके माधुर्य और शब्द-सौन्दर्य की उन्होंने प्रशंसा की है। बंगला-भाषा के माधुर्य का समस्त श्रेय "निराला" ने इन्हीं कवियों को दिया है जिनपर हिन्दी की ब्रजभाषा शैली का अत्यधिक प्रभाव था। इस प्रभाव के दो कारण "निराला" ने बताये हैं—"एक तो ब्रजभाषा वहीं की भाषा है जहां के उनके इष्टदेव थे। दूसरे माधुर्य के विचार से ब्रजभाषा ही उस समय की प्रचलित भारतवर्ष की भाषाओं में मुख्य मानी जाती थी। आज भारतवर्ष में हिन्दी की प्रतिद्वन्द्विनी मुख्य तीन भाषाएं हैं-- बंगला, मराठी और गुजराती।"[4]

१- प्रबन्ध पद्म, पृ० १३६

२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० २३१-२३२

३- गीतिका की भूमिका, पृ० ८-६

४- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० २३३, प्रबन्ध पद्म, पृ० २८-२६, १३७ भी द्रष्टव्य "सुधा", मार्च ३५, पृ० १७६

"बंगभाषा का उच्चारण" लेख में "निराला" ने बताया है कि बंगला की कोमलता और मधुरता का रहस्य उसके ह्रस्वमय उच्चारण अथवा दीर्घत्व की हानि में है[1]। समाज में और जीवन में भी भाषा की इस कोमलता का प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण बंगला में गांभीर्य अथवा पौरुष का अभाव है, इसे संगीत के ध्रुपद-धम्मार के उदाहरण द्वारा भी "निराला" ने स्पष्ट किया है[2]। बंगला के उच्चारण को वे आर्य नहीं, मंगोलियन कहते हैं, इससे सिन्ध और पंजाब, युक्त प्रदेश और मध्यप्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र आदि की संस्कृति को गहरा धक्का लगता है, एरियन उच्चारण से बंगला के उच्चारण की भिन्नता इसका कारण है[3]। औचित्य-रक्षा के विचार से ही उन्होंने बंगला की मधुरता और साहित्यिकों को प्रभावित करने की क्षमता को स्वीकार करते हुए भी ~~उस साहित्यिकों को प्रभावित करने की क्षमता को स्वीकार करते हुए भी~~ उसके सर्वमान्य राष्ट्रभाषा न हो सकने का उल्लेख किया था[4]। एक दूसरे लेख में[5] "निराला" ने व्याकरण का आश्रय लेकर बंगला और हिन्दी का अन्तर स्पष्ट किया है। वास्तव में "निराला" की इसी आलोचना-दृष्टि ने उनकी रक्षा बंगला-आढ्य से की है, उसके प्रभाव में डूब जाने से उन्हें बचाया है, इस ओर हमारा ध्यान श्री नलिन विलोचन शर्मा ने भी आकृष्ट किया है[6]।

इन वैष्णव कवियों के प्रति "निराला" के प्रशस्त दृष्टिकोण का कारण मूलत: उनका मधुर रस है, जो समानरूप से उनकी आनन्दचर्या का साधन भी है। इन भक्तों को इष्ट का साक्षात् दर्शन जहाँ उनकी पृथक और एकनिष्ठ भक्ति

१- "चयन", पृ० १६६-६७
२- ,, पृ० १६८, "रवीन्द्र कविता कानन", पृ० १४२
३- "परिमल की भूमिका", पृ० १०, "सुधा", मार्च ३५, पृ० १७७
४- ,, ,, पृ० ११
५- "सरस्वती", फरवरी २१, "हिन्दी और बंगला में अन्तर", पृ० १२५-१२८
६- "महाकवि निराला", पृ० ६०: संपादक-- शास्त्री

का प्रभाव है, वहाँ उनकी स्नेह-साधना उनकी शक्ति और सिद्धता की परिचायक है। यही कारण है कि इनके प्रति "निराला" का आलोचक मुखर नहीं, प्राय: मौन है। यही ज्ञान-पक्ष की अपेक्षा भावपक्ष के अधिक प्राबल्य का रहस्य भी सन्निहित है, जिसके कारण "निराला" इन्हें ज्ञानी अथवा सन्यासी नहीं, साधक कहते हैं। चण्डिदास आदि वैष्णव कवियों का "निराला" पर वास्तविक प्रभाव शून्य के बराबर इसीलिए है, क्योंकि "निराला" को वही कवि पूर्णत: प्रभावित करता है, जिसका ज्ञान पक्ष और भाव पक्ष समान-रूप से प्रबल हो।

महाकवि रवीन्द्रनाथ को भी यद्यपि "निराला" सन्यासी के सर्वश्रेष्ठ पद पर प्रतिष्ठित नहीं कर सके हैं, तथापि अपने आविर्भाव और शक्ति द्वारा युग-परिवर्तन करने में समर्थ, अतएव "अवतार" के आशय की पुष्टि करने के कारण उन्होंने महाकवि को अवतार की ~~xxx~~ आस्था दी है।[1] रवीन्द्र के आविर्भाव को उन्होंने प्रकृति द्वारा प्रकृति के अभाव की पूर्ति ही कहा है,[2] परन्तु रवीन्द्र को वे उस अर्थ में अवतार नहीं मानते, जिस अर्थ में श्रीरामकृष्ण को। कारण, रवीन्द्रनाथ की जीवनी में प्रकृति-दर्शन की जिन अनेक कथाओं से उनके भावी जीवन का कुछ अनुमान होता है, उनके अतिरिक्त उनके बालपन में कोई ऐसी विचित्रता नहीं मिलती, जिससे यौवन-काल की महत्ता सूचित होती हो। फिर ज्ञान नहीं, मात्र शुद्ध साहित्यिक की दृष्टि से रवीन्द्र की प्रतिभा और कवित्व शक्ति को "निराला" स्वीकार करते हैं। बंगाल के उस जातीय महाकवि के प्रति "निराला" की अरिमता की प्रबलता का भी यही कारण है जब कि सन्यासी के प्रति वे सतत् अवनत रहते हैं। "निराला ने स्पष्ट लिखा है --" रवीन्द्रनाथ की नकल धर्म--मेरी इच्छा नहीं; मैं मैं हूँ,[3] सूर्यकान्त रवीन्द्रनाथ नहीं--- कान्त "इन्दु" और "नाथ" की तुलना चाहिए?"

"रवीन्द्र-कविता-कानन" रवीन्द्र पर लिखित "निराला" की प्रथम कृति है, जिसमें महाकवि का सौन्दर्यपूर्ण संक्षिप्त जीवन-परिचय देने के उपरान्त

१- रवीन्द्र-कविता-कानन", पृ० ४७   रवीन्द्रनाथ के निबंध, पृष्ठ २१८॥

२-   ,,   ,,   पृ० ३०४

३- "साधना", वर्ष १, अंक ९-१०, पृ० ३८, ११-३-३६ को ५८ नारियलवाली गली से जानकी वल्लभ शास्त्री को लिखा "निराला" का पत्र।

"निराला" ने उनकी प्रतिभा और कला का विस्तृत और प्रशंसामूलक विवेचन किया है। उनकी स्वदेश-प्रेम, संकल्प, श्रृंगार, संगीत और शिशु सम्बन्धी सभी रचनाओं को "निराला" ने लिया है। रवीन्द्र के प्रति "निराला" की आलोचनात्मक दृष्टि का उन्मेष इस कृति में नहीं हुआ है और निस्संकोच उन्होंने रवीन्द्र को कवि ही नहीं, "ऊँचे दर्जे का दार्शनिक" भी कहा है।[१] यही तथ्य बाद में "निराला" की रवीन्द्र विषयक आलोचना का मूलाधार सिद्ध हुआ। "मतवाला" के मई, २४ के अंक में निकले अपने प्रथम तुलनात्मक निबन्ध "कविवर बिहारी और कवीन्द्र-रवीन्द्र" में भी रवीन्द्र की श्रेष्ठता का उन्मुक्त प्रतिपादन "निराला" ने किया था। अगस्त सन् २६ में रवीन्द्र पर प्रकाशित उनके अन्तिम निबन्ध में "महाकवि रवीन्द्रनाथ की कविता" भी वृहत्तम रूप में रवीन्द्र का प्रशस्ति गान है, जिसे "रवीन्द्र-कविता-कानन" कृति का अत्यन्त संक्षिप्त रूप अथवा लघु संस्करण कहा जा सकता है। रवीन्द्र के प्रति यहाँ "निराला" का आलोचक नितान्त शान्त है।

सन् २६ के "मतवाला" के मार्च और अप्रैल के अंकों में "निराला" की 'दो महाकवि' लेखमाला प्रकाशित हुई थी। तुलसी और रवीन्द्र के इस तुलनात्मक अध्ययन में "निराला" ने अविकल्प रूप से ज्ञान की दृष्टि से तुलसीदास की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। रवीन्द्र की आलोचना का मुख्य आधार यहाँ उनके दर्शन पक्ष की असंगतियाँ और दुर्बलता है। शुद्ध कवित्व की दृष्टि से यहाँ भी कवीन्द्र पूर्ववत् प्रशस्य है, उनकी निर्विवाद-सिद्ध-प्रतिभा और कवित्व शक्ति के सम्मुख निराला प्रणत है, परन्तु तुलसी के सन्यास और ज्ञान के समक्ष उनकी प्रणति और प्रतिपत्ति की भावना स्पष्ट और सहज ही अधिक गम्भीर और गरिष्ठ है। स्वामी अथवा सन्यासी के प्रति "निराला" की इस श्रद्धा और भक्ति भावना के मूल में मिशन और उसके सन्यासियों का प्रभाव विद्यमान है। इस लेख के पहले सन् २५ ई० में "भरता" लेख में भी "निराला" ने रवीन्द्र पर आक्षेप किए थे, परन्तु उनका आधार था, रवीन्द्र की प्रान्तीयता की भावना, उनका जमींदारी वर्ग का होना

१- रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ०२२

और उनका ब्राह्म-समाज से सम्बन्ध । रवीन्द्र का विरोध इन्हीं दो प्रमुख आधारों पर "निराला" ने किया है ।

के अनुवाद

"निराला" द्वारा रवीन्द्र की रचनाओं का जहाँ तक प्रश्न है, शुद्धतम रूप से उनकी एक भी रचना का "निराला"-कृत अनुवाद उपलब्ध नहीं है । "अनामिका" में संकलित 'तट पर', 'ज्येष्ठ' और 'कहाँ देश है' रचनाएं भी क्रमश: रवीन्द्र की 'विजयिनी', 'वैशाख' और 'निरुद्देश्य यात्रा' का यथार्थ अनुवाद नहीं है । "अनामिका" में विशाल रचनाओंका पाठ कहीं-कहीं "मतवाला" के पाठ से भिन्नता रखता है, विशेषरूप से "तट पर" रचना का काफी परिवर्तित रूप "अनामिका" में मिलता है। रवीन्द्रनाथ के भावों पर आधारित रचना "क्षमा-प्रार्थना" भी रचना-विशेष का अनुवाद नहीं है । "निराला" की "सजोहरा" और "रानी और कानी" को रवीन्द्र की "विजयिनी" और 'कृष्णा-कलि' की पैरोडी कहा गया है; सन् ४० के लगभग की ये रचनाएं भी अनुवाद की श्रेणी में नहीं आती हैं । रवीन्द्र की चार रचनाओं से सम्बन्धित इस अल्पराशि द्वारा जहाँ रामकृष्ण-विवेकानन्द अथवा तुलसी की अपेक्षा रवीन्द्र के प्रति स्नेह-श्रद्धा की अल्पज्ञता विज्ञापित है, वहीं रवीन्द्र के स्थायी प्रभाव का स्पष्ट निर्देश भी ये रचनाएं हैं ।

"निराला" ने रवीन्द्र की कवित्व-शक्ति की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है । उसका रहस्य अथवा उनकी सर्वोत्कृष्ट और अन्यतम विशेषता जिसकी ओर "निराला" ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है, वह है--"भाषा, भाव और छंदों पर उनका बहुत[1] बड़ा अधिकार ।" छंदों के साथ ही संगीत पर भी उनका जबर्दस्त अधिकार था । सौन्दर्य, जिसे हम तक पहुंचाना रवीन्द्र के लिए बहुत आसान बात थी, और मनोहारी सृष्टि का उत्स भी उनकी प्रखर कल्पना शक्ति; उनकी शब्दों की परीक्षा, जिसमें वे अद्वितीय थे; तथा छंदों-- जिसके वे रत्नाकर थे और जिससे उनके भावों की व्यंजना और अच्छी तरह प्रकट होती थी--

---

१- रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ० ९७, १६, १४१

में सन्निहित है। उनके सौन्दर्य के विराट चित्रों को जीवन की स्फूर्ति से शून्य न कहकर[2] 'निराला' ने मनुष्य की सीमा में रहकर अपनी रागिनी को, अपने प्रकाश को असीम सौन्दर्य में मिला देने की रवीन्द्रनाथ की कुशलता का भी उल्लेख किया है।[3] 'निराला' की इन मान्यताओं की परिचायक कृति 'रवीन्द्र-कविता-कानन' को आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने साहित्य सम्बन्धी सैद्धान्तिक विचारणा के अवकाश से शून्य काव्य-सौन्दर्य के व्यावहारिक पक्षों का सुन्दर आकलन करने वाली कहा है। 'निराला' को समीक्षाओं को 'आत्मकेन्द्रित' कहते हुए उन्होंने बताया है कि काव्यजन्य अपने संस्कारों को प्रमुखता देते हुए 'निराला' ने काव्य कला की उन्हीं विशिष्टताओं का समर्थन किया है, जो उन्हें व्यक्तिगत रूप से अभिप्रेत, प्रिय रही हैं, उनकी समीक्षा उनकी ही कविता का विशदीकरण है।[4]

रवीन्द्र की इस प्रशंसा का दूसरा पक्ष वह है, जहाँ हम 'निराला' को महाकवि का घोर विरोध करता पाते हैं। यह विरोध भी समान रूप से 'निराला' के लिए प्रेरणाप्रद है। दर्शन अथवा ज्ञान के क्षेत्र में रवीन्द्र की मौलिकता स्वत: धोखा खा जाती है, अपनी चित्र-प्रधान रहस्यवादी कविताओं में चित्रों की मनोहारिता के फेर में वे दार्शनिक तत्व भूल जाते हैं -- इसका मूलभूत कारण 'निराला' ने यह बताया है कि पाश्चात्य दार्शनिकों और कवियों के समान रवीन्द्र भी द्रष्टा नहीं थे।[5] यौरप की वर्णना-शक्ति को स्वीकार करते हुए[6] 'निराला' ने रवीन्द्र की कला की श्रेष्ठता का उत्स भी पाश्चात्य-प्रभाव में ही देखा है। रवीन्द्र के विश्ववाद को पाश्चात्य सिद्धान्त के अनुकूल बताकर 'निराला' ने उनके ब्राह्म समाजी होने के कारण उसका सम्बन्ध उपनिषदों से भी माना है।[7]

१- रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ० २७, ११८

२- प्रबन्ध पद्म, पृ०८६, संग्रह, पृ० १३६-१३७

३- रवीन्द्र -कविता-कानन, पृ०१५३, ४३, ५० ।

४- 'कवि निराला', पृ० २१०

५- संग्रह, पृ० १५८, १३३, १५३

६- ,, पृ० १६३ 'प्रबन्ध पद्म', पृ० १४८

७- प्रबन्ध पद्म, पृ० १४५

रवीन्द्र का मुक्ति-बंधन का विवेचन--"वैराग्य साधन मुक्ति " से 'प्रायार २५ "-- का दर्शन-- भी "निराला" द्वारा आलोचित है। उनका कहना है कि पत्तों की हरीतिमा और आकाश की नीलिमा में मुक्ति मिलने की बात सुनने में अच्छी लगती है। "निराला लिखते हैं --" मसनद भी न छूटेगी, तकलीफ भी सहनी नहीं और मुक्ति भी हाथों हाथ। एक हाथ में पूंजीवाद और दूसरे में अखण्ड तत्व-ज्ञान। एक आंख से बीबी-बच्चों को स्नेह और प्यार भी कर लेंगे और दूसरे से ब्रह्म भी देख लेंगे। यह दर्शन रवीन्द्रनाथ का है जो कहते हैं-- तब आदमी अपने को धोखा देता है जब दुःसाध्य फल की प्राप्ति के लिए सुख-साध्य मार्ग ढूंढ़ निकालता है।"[1]

रवीन्द्र के "वरसा" की समालोचना करते हुए भी "निराला" ने यह स्पष्ट कर दिया था कि "विधाता नाम के एक अदेख कुछ पर अपनी विजय का सारा बोझ लादकर आप निश्चिन्त भाव से समाज-विधाताओं की फसलों से डालते हैं"[2] रवीन्द्र की यह प्रवृत्ति उनके बिलकुल भी अनुकूल नहीं थी। अन्यत्र "निराला" ने लिखा है कि प्रभु को अपनी सब सम्पत्ति सौंपकर निश्चिन्त होने के उपरान्त जब गरीबों की प्रार्थना का बोझ भी सिर से उतर जाता है, रवीन्द्र रूप-रस-गंध स्पर्श में मुक्ति प्राप्त कर सन्यासियों को निरा आदमी समझा, सत् और न्याय से कोई तअल्लुक न रख अपनी प्रतिमा के प्रहार से उन्हें जर्जर करते हैं।[3] जमींदारी के लोगों के "अमृतस्य पुत्रः" कहकर अन्न की याचना करने पर "कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः" के अनुसार उनका उत्तर होता है, जिसके पास जितना है, वही उतना अधिक चाहता है, इसका भी उल्लेख "निराला" ने किया है और उनके वर्ग पर प्रहार करते हुए लिखा है कि उन जैसे जमींदारों को छोड़कर भोजन-वस्त्र की समस्या हल करने की आवश्यकता अनेकों को है, जिनकी शक्ल निरन्तर सताती रहती है।[4]

१- संग्रह,पृ० १५५, "कुल्ली भाट",पृ० १० पर रवीन्द्र का उल्लेख भी द्रष्टव्य।

२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०३

३- प्रबन्ध पद्म , पृ० ६३-६४ ,प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०१५७
४- प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०१०, ९७, प्रबन्ध पद्म,पृ०६४

'भारती' - प्रसंग में ही 'निराला' ने रवीन्द्र के ब्राह्म-समाजी होने के कारण उनको जातीय प्रथा के का विरोधी भी कहा है। पश्चिमी प्रथा के अनुसार शिक्षित होने के कारण वहाँ जातीय महत्व नहीं, अपितु प्रभाव और विशिष्टता का महत्व है[1]। एक अन्य लेख में भी रवीन्द्र की जातीयता की अवहेलना की प्रवृत्ति का उल्लेख करते हुए 'निराला' ने लिखा है कि " सब सववर्णाकर" लिखकर जहाँ रवीन्द्र ने हिन्दुस्तानियों के गरीब हफली-राग का मज़ाक उड़ाते हुए अपनी भी सम्पन्नता का परिचय दिया है, वहाँ भी सूर, मीरा और कबीर के जातीय स्वरों की अवहेलना स्पष्ट है[2]। यही रवीन्द्र की प्रान्तीयता की भावना भी 'निराला' का आलोच्य है, जो सभी बंगवासियों में समान रूप से प्राप्त है[3]।

महाकवि रवीन्द्रनाथ का जीवन- परिचय देते हुए 'निराला' ने उनकी प्रकृति-दर्शन की प्रवृत्ति के साथ उनकी सौन्दर्य और निर्जनप्रियता का उल्लेख भी किया है। उनकी सौन्दर्य प्रियता के सम्बन्ध में 'निराला' ने लिखा है कि रवीन्द्र को अपने पिता के सदृश हिमालय संकुल प्रदेश पसन्द न होकर 'समतल भूमि पर दूर तक फैली हुई, हरी-भरी, हँसती हुई, चंचल तथा विराट प्रकृति अधिक प्यारी है।' उनके आदर्श कालिदास भी पर्वतप्रिय कवि थे। रवीन्द्रनाथ की मौलिकता यहाँ भी स्वतन्त्र चाल है। उनकी निर्जनप्रियता के सम्बन्ध में 'निराला' ने एकान्त में बैठकर उनके, अपने उनके विकास की उलझनों को सुलझाने का उल्लेख कर लिखा है -- " हृदय की आँख इस तरह खुल रही थी[4]।" इसके अतिरिक्त 'निराला' ने उनकी 'मनुष्य प्रवृत्ति का निरीक्षण' करने की प्रकृति की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। जमींदारी का काम करते हुए

१-प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १५, १७, चाबुक, पृ० ८७

२- प्रबन्ध पद्म, पृ० ६२

३- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०५, ११-१२, चाबुक, पृ०२८

४- रवीन्द्र कविता-कानन, पृ० १५

कृषक और उसके जीवन का व्यक्तिगत और पूर्ण परिचय उन्हें मिला था।[1] उनकी इस प्रवृत्ति का दूसरा पक्ष उनकी शिशु सम्बन्धी रचनाएं हैं और "निराला" के अनुसार बालक की प्रकृति को परखना मनुष्य के मन में पैठने की अपेक्षा अधिक कठिन है।[2] "निराला" ने इस स्मरणीय तथ्य की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है कि उचित उम्र में यौरप भ्रमण के फलस्वरूप "प्राकृतिक दृश्यों की विचित्रता और हर प्रकृति के मनुष्यों का बाहरी प्रकृति के साथ आभ्यन्तरिक मेल, उसका वैज्ञानिक कारण" इनकी समझ में आ गया था।[3]

"निराला" में भी रवीन्द्र के सदृश ही प्रकृति-सौन्दर्य वर्णन और एकान्त-प्रियता की प्रवृत्तियां मिलती हैं। बाल्यावस्था में साधारण और सहानुभूति की अपेक्षा रखने वाला जीवन व्यतीत करने, मां के रोगग्रस्त होने के कारण उनकी गोद में जीवन की पहली सीढ़ी पार करने का सौभाग्य न मिलने तथा कवित्व-शक्ति के कारण आगे न पढ़ने की घटनाओं में जिस प्रकार "निराला" और "रवीन्द्र में सादृश्य है, उसी प्रकार पहले प्रकृति और सौन्दर्य, तदुपरान्त मानव और उसकी प्रकृति ने "निराला" को भी रवीन्द्र की भांति सृजन के लिए प्रेरणा दी है। प्रकृति की शोभा देखते रहने और उसके कारण स्वभावत: ध्यान पर धारणा बंधने का उल्लेख स्वयं "निराला" ने किया है।[4] बैसवाड़ा के शरत्काल का वर्णन करते हुए "निराला" ने लिखा है कि शरत् की स्वच्छ प्रकृति "मन की एक नई आंख खोल देती, दिल में एक दूसरी ला देती है", जहां "मृत्यु के बाद नए जीवन की तरह काम की नई सूरत सामने आती है। इस स्वच्छता में ही कुछ विरोध बढ़कर मर जाता है और रचना की नवीनता अपनी जीवन-दायिनी कला से चपल हो उठती है।"[5] "देवी" कहानी में "निराला" ने स्पष्ट

१- रवीन्द्र-कविता-कानन", पृ०१ २२
२- ,, ,, पृ० १०४
३- ,, ,, पृ० १९
४- "कुल्ली भाट", पृ० १४, "चतुरी चमार", पृ० ७१-७८
५- "चाबुक", पृ० ३५-३६

लिखा है कि पगली स्त्री में उन्हें वह रूप देख पड़ा, जिसे वे कल्पना में लाकर साहित्य में लिखते हैं ।" केवल रूप ही नहीं, भाव भी[1]।" हिन्दी के मुखातिफ़त होने के साथ-साथ वस्तु रूप से आदमी और विषय रूप से उसके मन की जाँच-पड़ताल कम न करने की बात भी उन्होंने स्वयं ही स्वीकार की है[2]।

रवीन्द्र के प्रारम्भिक जीवन और काव्य-प्रवृत्तियों से "निराला" की यह समानता तथा उसके प्रति "निराला" की प्रशंसा और विरोध मूलक दृष्टि निस्संदेह रवीन्द्र और उनके काव्य को "निराला" के काव्य का प्रेरणास्रोत सिद्ध करती है । रवीन्द्र की कला, छंद और भाषा, श्रृंगार-सौन्दर्य एवं स्वदेश-प्रेम की भावना तथा रोमांटिक और रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ जो "निराला" को प्रिय थीं, उनसे वे निश्चय ही अप्रभावित नहीं रह सके हैं । साथ ही यह भी स्मरणीय है कि बंगला और हिन्दी के इन महाकवियों के क्रमशः धनी और सामान्य वर्ग की असमानता के कारण, जीवन और प्रकृतिगत कतिपय सादृश्यों के होते हुए भी, दोनों के काव्य-स्तरों में स्वाभाविक अन्तर आ गया है । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी[3] ने इसका संकेत किया है । पुश्किन की तरह समृद्ध-कुल में जन्म लेकर भी रवीन्द्र जन-जीवन के साथ अपने को एक प्राण न बना सके, अपनी इन सीमाओं के प्रति वे सचेत थे, यह भी शिवदान सिंह चौहान का विचार है[4]। "निराला" की सामान्यता में ही जन-समाज के प्रति उनकी आस्था रही है, जो उनके काव्य की प्रमुख विशेषता है, "निराला" के सम्बन्ध में यह आचार्य वाजपेयी और डा० शर्मा का मन्तव्य है । "रवीन्द्रनाथ और छायावाद" पर विचार करते हुए कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने छायावाद में रवीन्द्रनाथ के इसी अभाव की पूर्ति का संकेत किया है[5]।

१- "चतुरी चमार", पृ० ४१-४२
२- "प्रबन्ध प्रतिमा", पृ० १८
३- "कवि निराला", पृ० १०७
४- "साहित्य की परख", पृ० ७६
५- "कवि निराला" पृ० १६६-६७, "निराला", पृ० १६७
६- "रवीन्द्र प्रवाह" पृ० २०६ "विश्ववाद एवं विश्वबन्धुत्व के अस्पष्ट आदर्शों के कुहासों से मुक्त होकर छायावादी काव्य की सौन्दर्य-भावना आगे चलकर अपने मानवतावाद के आदर्शों को भू जीवन यथार्थ के अधिक निकट ला सकी । संस्कृति उसमें विकसित व्यक्तित्व की संपदा न रह कर लोक जीवन की संपदा बन गयी ।"

"निराला" द्वारा रवीन्द्र से गृहीत प्रेरणाओं में सर्वप्रथम यह द्रष्टव्य है कि युगान्तर उपस्थित करने का भाव उन्होंने रवीन्द्र से ही लिया था। अपने आविर्भाव और शक्ति से युग-परिवर्तन करने में समर्थ होने के कारण "निराला" की दृष्टि में रवीन्द्र अवतार हैं, "निराला" स्वयं अवतार के इस आशय की पुष्टि रवीन्द्र के सदृश करते हैं।[1] बिहारी की तुलना में उन्हें संसार का महाकवि "निराला" ने इसीलिए कहा है, क्योंकि उनके काव्य-विवेक की नवीनता, छन्दों और भावों का अनूठापन, काव्य दोष की प्रशस्ति और विस्तृति उनके युग के वैशिष्ट्य का द्योतन और प्रवर्तन करते हुए उन्हें युग प्रवर्तक बनाते हैं। "निराला" का विद्रोही दृष्टिकोण उनकी विशिष्टता और मौलिकता के साथ उनकी युग-प्रवर्तिका प्रवृत्ति का द्योतक है। काव्य में मुक्ति का आह्वान कर "निराला" ने मुक्त छंद से काव्य-रचना प्रारम्भ की जो "काव्य की क्रमागत भूमिका पर एक अभिनव क्रांति थी", जिसका परिचय छंद-बंधन के उल्लंघन में ही नहीं, छन्दों का नवविन्यास और नवनिर्माण करने में भी मिलता है।[2] "निराला" के विद्रोह और नवीनत्व के साथ रवीन्द्र के सदृश उनका भाव-विस्तार और काव्य-रूपों का वैविध्य उनके युग-प्रवर्तन का निश्चित प्रमाण है। उनकी बहुव्यापिनी निर्मिति, कला की विविध भंगिमाओं और मानवतावादी काव्य-चेतना के कारण ही आचार्य बाजपेयी ने उन्हें "शताब्दी का कवि" और उनके काव्य को "शताब्दी का काव्य" कहा है।[3]

उनके युग-प्रवर्तन के एक दूसरे पक्ष की ओर डा०रामविलास शर्मा ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया, वह है हिन्दी भाषी जनता के सांस्कृतिक विकास में "निराला" की ऐतिहासिक भूमिका और उनके साहित्य की युगान्तरकारी भूमिका का महत्व; जो प्रेमचन्द के समान देश के स्वाधीनता आन्दोलन में किसानों की भूमिका के महत्व को समझाने और उसे जनता के सामने रखने के कारण है।[4]

१- "चाबुक", पृ०२१-२२

२- "कवि निराला" : आचार्य बाजपेयी, पृ० १८०, २००
डा० शर्मा : "सच्चा क्रान्तिकारी हमेशा निर्माता होता है। साहित्य में विद्रोह नवनिर्माण के बिना हो ही नहीं सकता।" २१-२-६७ का पत्र।

३- "कवि निराला" पृ० २०८

४- "निराला", पृ० १७०, १८६

सर्वहारा होने के कारण ही डा० शर्मा ने उन्हें सांस्कृतिक चेतना का अग्रदूत कहा है[1]।

'निराला' पर रवीन्द्र के प्रभाव का प्रत्यय कराने वाला एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य है, उनके काव्य की शृंगारिक रहस्यवादी भूमिका। 'निराला' की यह रहस्यानुभूति-- जिसकी अन्तर्भूमि रवीन्द्र के काव्य में मिलती है और जो उनकी संस्कारजन्य अन्तर्गति भी है -- जहाँ एक ओर युगीन प्रभाव को संकेतित करती है, वहाँ दूसरी ओर स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त दर्शन का स्पर्श भी करती है। रवीन्द्र का विश्ववाद यौरोपीय सिद्धान्त की अनुकूलता के कारण वहाँ सफल है, जहाँ अनादि तत्व का सच्चा अनुवाद है अथवा तदनुकूल लिखा है,[2] परन्तु 'निराला' इसके विपरीत विशुद्ध भारतीय भूमिका पर अवस्थित हैं। रामकृष्ण मिशन से अपनी संसक्ति अतएव श्री रामकृष्ण विवेकानन्द के विचार-दर्शन की संहति के कारण 'निराला' का रहस्यवाद रवीन्द्र की अपेक्षा स्वाभाविक रूप से अधिक पुष्ट है। समाज और साहित्य में 'निराला' ने जिस मुक्त हुई शक्ति का आह्वान किया है,[3] वहाँ भी वे रवीन्द्र की ब अपेक्षा विवेकानन्द के ही अधिक निकट हैं। 'निराला' की दार्शनिक अथवा रहस्यवादी चिन्ताधारा में स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रचारित रामकृष्ण का चिन्तन सहज ही अनुस्यूत है, जिसकी विशदता के कारण उसके प्रति अरुच्य भाव रखना सम्भव नहीं। उसका यथेष्ठ प्रमाण उनकी रहस्यवादी रचनाओं में तो मिलता ही है। दर्शन सम्बन्धी अपने प्रारम्भिक निबन्धों में जातीयता और आत्मवाद का जो राग उन्होंने छेड़ा है, उसमें भी श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द के स्वर ही अपने शुद्धतम रूप में लगे हैं।

रवीन्द्र का रहस्य-चेतना आविष्ट शृंगार और सौन्दर्य का भावयुग्म, उनकी कल्पना और कला, 'निराला' की प्रेरणा का एक प्रमुख स्रोत रहा है। रवीन्द्र और 'निराला' दोनों के 'अध्ययन और चिन्तन की आधारभूत सामग्री एक है--'वैदान्त दर्शन'[4]।' काव्य में रहस्यवाद की अभिव्यक्ति का माध्यम भी एक ही है-- शृंगार-भाव, जिसका प्रतिफलन युग की --

---

१- 'विराम चिन्ह', पृ०६८
२- संग्रह, पृ० १३३
३- प्रबन्ध-पद्म, पृ०२१-२२
४- टैगोर और निराला', पृ०२४४ -- अवधप्रसाद

आवश्यकता के अनुरूप प्रस्ताव-विस्तार का भाव और विराट चित्रों का आयोजन लेकर हुआ है। इस दिशा में रवीन्द्र का प्रभाव अधिक स्पष्ट है। वास्तव में विशुद्ध रहस्यवादी रचनाओं की अपेक्षा रहस्यानुभूति संश्लिष्ट रवीन्द्र की श्रृंगारपरक रचनाएं प्रभाव की प्रमुख दिशा हैं, जिसमें वैष्णव-कवियों का परोक्ष प्रभाव भी अन्तर्हित है। यह स्मरणीय है कि रवीन्द्र से गृहीत यह प्रेरणा निराला की प्रारम्भिक रचनाओं में ही प्रमुख रूप से परिलक्षित होती है, उनकी उत्तरकालीन रचनाएं प्रेरणा के ऊपर विविध-स्रोतों का निदर्शन करती हैं।

रवीन्द्र की 'जीवन-स्मृति' उन विविध प्रभावों और सूत्रों की परिचायक है, जो उनके जीवन की संरचना में सहायक सिद्ध हुए हैं। यहीं उनके जीवन-दर्शन का मूल-सूत्र 'सीमा के बीच ही असीम के साथ मिलन की आराधना' भी सन्निहित है। उसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया है कि क्षुद्र को लेकर ही वृहत् सीमा को लेकर ही असीम तथा प्रेम को लेकर ही मुक्ति है। प्रकृति का सौन्दर्य मन की मरीचिका नहीं, वहां असीम का आनन्द प्रकाशमान है। 'सीमेर मध्ये असीमेर अनुभव करारइ नाम भालवासा, प्रकृतिर मध्ये अनुभव करार नाम सौन्दर्य-संभोग'[1]। रवीन्द्र के जीवन-दर्शन की यही आश्चर्यजनक और असाधारण विशिष्टता है कि वहां आध्यात्मिकता[2] का तात्पर्य भौतिक अथवा प्राकृतिक तत्वों की पूर्ण अस्वीकृति नहीं है। क्षुद्र और महान में कवि की उभ स्थिति और विश्व-प्रकृति में उनके हृदय के प्रसार को 'निराला' उनकी प्रतिभा का प्रमाण मानते हैं[3], रूप और अरूप का तो उन्हें निपुण कलाकार उन्होंने कहा ही है।

'निराला' का कवि-मानस, उनकी दार्शनिक अभिरुचि एवं आध्यात्मिक साहित्य के अध्ययन के फलस्वरूप पहले से ही संस्कृत और परिष्कृत था। यही कारण है कि रवीन्द्र के जीवन-दर्शन का यह मूल सूत्र वहां स्वतः

१-'निराला काव्य पर बंगला प्रभाव'--डा० उपेन्द्रनाथ चौधरी, पृ०४४ एवं ५० से उद्धृत।
२-'इण्डियन लिट्रेचर', पृ०४१०-- डा० एस०के० बनर्जी
३- रवीन्द्र कविता कानन, पृ० ४३, ५०, ११३, प्रबन्ध पद्म, पृ० ८१

अन्तर्भूत था । रूप तथा भावनाओं का अरूप में सार्थक अवसान आवश्यक बता 'निराला' ने इसी को कला की परिणति और काव्य का सबसे अच्छा निष्कर्ष कहा है, जिसे दर्शन-शास्त्र के अनुसार ऊर्ध्व गति और साहित्य-शास्त्र के अनुसार विकास कहते हैं[1]। 'निराला' के अनुसार साहित्य में अरूप ज्योतिःप्रवाह की स्वतन्त्र प्रथा को नारियों में स्थिर रूप दिया गया है, वहीं कलाविदों ने पुरुष और प्रकृति का निरन्तर योग देखा है[2]। साहित्य के हृदय पर कवि प्रिया की तृष्णा के रूप में से अपने अनुभव-सत्य की पंक्तियाँ छोड़ जाता है[3], 'निराला' का यह विचार उनके साहित्य में प्रिया भाव की प्रधानता का स्पष्टीकरण भी है । एक अन्य लेख में 'कला और देवियाँ' में नारी की सनातन श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए 'निराला' ने दिव्य भाव और ऐश्वर्य के सभी गुणों से युक्त लक्ष्मी को नारी भाव की महिमा की व्यंजना करने वाला कहा है, और बताया है कि विश्व का पालन करने वाले विष्णु की शक्ति का विकास मातृत्व में पूर्णत्व प्राप्त करता है । कला, गति और गीति की प्रतिमा उर्वशी के भाव की प्रिया-भाव है, जिसमें गीति और गति के साथ रचना भी आती है, वह ललित वाक्य-रचना हो या छन्द-रचना । शब्दों के साथ मिलकर वह काव्य है और ताल के साथ मिलकर नृत्य । 'निराला' लिखते हैं --'उर्वशी के इसी भाव का आरोप सरस्वती पर किया गया है, इसलिए कि भाव में शुद्धता रहे । पर जैसा पहले कहा गया है, प्रिया भाव की प्रधानता के लिए उर्वशी[4] ही आती है । इस प्रकार के सौन्दर्य-बोध में इस अप्सरा-भाव का प्राधान्य है ।'

रवीन्द्र ने भी स्त्रियों की दो जातियाँ बताई हैं -- माँ और प्रिया, प्रकृति के साथ तुलना करने पर उन्हें वर्षा और वसन्त कहते हैं । वर्षा ऊर्ध्वलोक से अपने को विगलित कर देती ही रहती है, हमारी कमियाँ

१- प्रबन्ध पद्म, पृ० ८४-८५, प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० २२७

२- प्रबन्ध पद्म, पृ० ७२

३- ,, पृ० ७४

४- 'चाबुक', पृ० ६६-६७

और उज्ज्वलता को पूरा करती है, और वसन्त, जिसका रहस्य गंभीर और माया मंद मधुर है[1]।

विश्व-प्रकृति के श्रृंगार-भाव के अंकन, जीवन की स्फूर्ति से संवलित मानवीय सौन्दर्य के चित्रों की दृष्टि से "निराला" ने रवीन्द्र की अद्वितीयता और कला की विशेषता स्वीकार की है, परन्तु रवीन्द्र का काव्य-सौन्दर्य -श्रृंगार मानवीय भूमि से मानव-सौन्दर्य की असीमता तक उठता, अद्भुत कौशल दिखाकर समाप्त होता है-- उसकी इस सीमा का निर्देश भी "निराला" ने किया है[2]। रवीन्द्र द्वारा पुरुष के यौवनोन्मेष का एक चित्र "निराला" ने उद्धृत किया है। जहाँ अनेकानेक चित्रों से यौवन विकास का चित्रण है। "पत्र-पुष्प-ग्रह-तारा भरा नीलाम्बरी मग्न चराचर" के मध्य प्राणों में अंकित प्रियामूर्ति की छवि से गम्भीर, ध्वनिमय अकूल रहस्य के बीच शतदल के सदृश खिला करता है। और वह सौरभ से आकुल प्रिय ऊर्ध्वमुख चकोर के सदृश है, जिसके प्राण उसके रहस्यमय मधुर सौन्दर्य को तोड़ लेना चाहते थे। हृदय के पास प्रेम का यह प्रथम आना-जाना था, चुपचाप प्राणों का पल्लो-पल्ल प्राणों से परिचय था[3]।

"निराला" ने यौवनोन्मेष के जो चित्र अपनी प्रारम्भिक कविताओं में अंकित किए हैं, वह सभी रवीन्द्र की भावना-कल्पना को आत्मसात् कर लिखे प्रतीत होते हैं। "जागो फिर एक बार" की प्रथम कविता में प्रिया-प्रकृति का सौन्दर्य-चित्र इसी प्रकार का है। शशि-छवि देख जगी यामिनी-गंधा, चन्द्र की चाह से एकटक देखता चकोर, शिशिर-भार व्याकुल झुके और झुके फूल, तथा कलियों में आया मधुर-मद -उर-यौवन -उभार[4] -- इन सब का आश्रय "निराला" ने लिया है। इस रचना के छन्द के सम्बन्ध में भी कवि ने स्वयं ही कहा है

१- रवीन्द्र-साहित्य, भाग१,पृ०७, "मुकुलीन" उपन्यास, रवीन्द्रनाथ के निबंध, भाग १, पृ. ३२
२- रवीन्द्र-कविता-कानन ,पृ०१३५, संग्रह,पृ० १३५-१४८
३- संग्रह,पृ० १३८
४- "परिमल",पृ० १७७-१७८ अपरा का रचना काल १६१८, मतवाला, ४ जनवरी२६।

कि बंगला के अमात्रिक छंद को मात देने वाला हिन्दी छंद उसमें ढाला गया है[1]।

पुरुष के यौवनोन्मेष का एक चित्र "स्मृति-चुम्बन"[2] में भी है। प्रियतमा नारी-मूर्ति का प्रिय-दृष्टि में आगमन, पुरुष की अवस्था और क्रिया आदि का वर्णन यहाँ रवीन्द्र की भाँति ही विशद है। जीवन के सारथी के बाल्यकाल की रेखाएं पार कर यौवन-कानन में रथ रोकने की धीर गति को विश्व के शिविर में शिशिर का निःशब्द अभिसार कहना "निराला" की अपनी कल्पना है, जो अपने गाम्भीर्य द्वारा सौन्दर्य की सान्द्र व्यंजना करने में समर्थ है। यौवन- आगमन की अभिव्यक्ति के लिए यह कल्पना "निराला" के काव्य के प्रथम चरण में अनवरत व्यवहृत है। गीतिका में भी काया के नव माया-रथ के सुन्दर कानन छल सजने और लहरीले नीले सर पर कमलों के मुज मुज कम्पन[3] द्वारा यौवन की अप्रतिहत गति चित्रित है। एक दूसरे गीत में चपल बाल -गति का यौवन के प्रति प्रयाण अंकित दिखाया है, जहाँ लघु वारि छल महाराज ने गिन-गिन कर पद रखे हैं[4]।

अप्रकाशित "रेखा" में भी "निराला" ने "सम्राट यौवन" के किशोरिता की केलि को विदा कर अपने सोपान पर गौरव पद रखने और उनके पौरुषोन्मेष का वर्णन किया है। मेदिनी के हृदय पर मेघों के उतरने पर तृण हर्षित रोमांच से सिहर उठते हैं, "गुरु-भार -कम्पित धरा का वक्ष बार बार प्रणय से विह्वल था, पल्लव-कपोलों में उत्सुकता खुली थी, "कुसुम-नयनों में हाल-मौन-आग्रह भरा" प्रेयसी का भाव प्रकट था और वायु में जो अधिर अलाप बह रहा था, वह शरीर को चंचल और मन को अधीर करता था[5]।

रवीन्द्र की "विजयिनी" की "औ" यौवनेर तरंग उच्छल लावणीर माया मंत्रे स्थिर अचंचले" पंक्तियों के सदृश "निराला" ने अनामिका की प्रथम कविता "प्रेयसी" का प्रारम्भ "घेर अंग अंग को लहरी तरंग वह प्रथम तारुण्य की "

१- आजकल, मार्च, ५१ पृ० २१, सम्मेलन भवन में "निराला" का कथन प्रभाकर माचवे द्वारा उद्धृत।

२- परिमल, पृ० १८८

३- गीतिका, पृ० ४६, माधुरी नवम्बर ३२, पृ० ३८५।

४- ,, पृ०७२, सुधा, १सितम्बर३३, पृ० १६३ में गीतिका का दूसरा पद नहीं है।

५- हंस, अप्रैल ३७, पृ० १२६

लिखकर किया है । प्रथम प्रणय रश्मि,जो यौवन का सहज परिणाम है, जो विश्व-ऐश्वर्य को स्फुरित करती है," "शिशिर ज्यों, पत्र पर कनक प्रभात के, किरण-सम्पात से ।"[1] प्रेयसी की निरलस दृष्टि को भी "निराला" ने सद्यः शिशिर-धौत पुष्प के प्रातःकाल एकटक किरणकुमारी को देखने के सदृश कहा है ।

क्रम-क्रम से यौवन का धीर-गंभीर आगमन, उसकी कोमलता और शुचिता की पूर्ण और समर्थ व्यंजना "सरोज स्मृति" में पुत्री सरोज के तारुण्य वर्णन में परिलक्षित होती है । बाल्य-केलियों का प्रांगण शनैः शनैः पार कर तारुण्य के सुघर कुंज में प्रवेश करने पर "लावण्य भार थर-थर काँपा कोमलता पर सस्वर ज्यों मालकौश नव वीणा पर"। अपने आलोक-भार से कम्पित होने पर मन, विद्युत्-प्रसार कम्पित हो जाता है, परिचय से सकल जीवन खिल जाता है और देह के बाँध बंधा यौवन-जल "छलकता दृगों से साथ-साथ ।" दृष्टि के लिए "अतल की निकल धार ज्यों मौनावली उठी अपार" उन्होंने पहले ही लिखा था । रवीन्द्र के शृंगार-विवेचन के प्रसंग में "निराला" ने "उर्वशी" के लिए उनकी उपमा "अंधकार उदय" को देखने लायक और चोट करने वाली कहा था, समता के लिए उन्होंने भी "फूटी उषा जागरण हिम" लिखा है[2]। तारुण्य के लिए कोमल स्वरों के गंभीर प्रकृति के राग में मालकौश का प्रयोग शिशिर के निःशब्द अभिसार के सदृश ही समुचित हुआ है । प्राचीन राग मालकौश की धीर मूर्ति को "निराला" ने अंग्रेजी स्वर में भी साकार देखा है[3]। जीवन को यौवन से भरने वाला मालकौश का स्वर नश्वरता को नवस्वरता से भास्वर करने वाला है । यह अणिमा में भी उन्होंने लिखा है । प्रारम्भिक काल की एक अन्य रचना में प्रणय[4] की कोमलता और मधुरता की व्यंजना के लिए "कोमल निषाद भर कर उठते स्वर"[5] का प्रयोग भी इसी प्रकार का है।++

१- अनामिका,पृ० १ और ६, माधुरी ,नवम्बर ३५,पृ० ५२२-२३।।
२- ,, पृ० १२६-३०, सुधा, फरवरी ३६,पृ० ६५६ ,रवीन्द्र कविता कानन,पृ० १३७
३- प्रबन्ध पद्म ,पृ० ८१
४- अणिमा, पृ० ३६
५- अनामिका, पृ० ६२, मतवाला,५ जुलाई २४,पृ० ८३७

'शृंगार मयी' के लिए 'निराला' ने लिखा है --

"विरह विधुर पर मधुर कंठ की निकली --
वह अम्बर पथ पर स्वर सरिता सी बहती--
थी सरस इमन की तान।"[1]

'इमन रागिनी की वह मधुर तान' कहकर प्रिया का आह्वान 'निराला' ने निरन्तर किया है। 'माया' के लिए भी यही उपमान आया है और 'बादल-राग' में चौंक चमक छिप जाने वाली विद्युत को भी' एक इमन का-सा अति मुग्ध विराम, 'निराला' ने कहा है। शेष काल की रचनाओं में भी इस प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। स्वर्णाभास की व्यंजना के लिए विधुर-इमन की मधुरतम मीड़ उन्होंने लिखा है[3] और राग और गीत का सामंजस्य [illegible] नई शैली के 'कू इमन-गीत' की रचना भी की[4]।

रवीन्द्र का 'भैरवी-गान' प्रिया को न भूल सकने की उनकी दुर्बलता का परिचायक है। 'यथार्थ साधारण घटनाओं के भीतर से कुछ विरकालिक सुन्दर गंभीर भावनामय' ये यहां से आते हैं। मन को उदास कर देने वाली, बिना आशा की भाषा क्षीण तान अपने व्याकुल स्पर्श से कवि के कुल जीवन को विकल कर देती है। अनायास ही उसे छोड़कर जाती प्रिया का स्मरण हो आता है[5]। विराट और चंचला नदी के लिए भी रवीन्द्र ने 'भैरवी' और 'भैरागिनी' सम्बोधनों का प्रयोग किया है[6]। प्रिय की स्मृति के लिए गान की उपमा भी उन्होंने प्रस्तुत की है भैरवी 'निराला' का भी प्रिय था। 'सुबह की हवा' के लिए उन्होंने 'भैरवी की तान' लिखा भी है, परन्तु शृंगार और सौन्दर्य के लिए यहां प्रमुखतः मालकोश और इमन रागों का व्यवहार हुआ है। 'सन्ध्या-सुन्दरी' में अवश्य अर्द्धरात्रि की

१- माधुरी, १३ जनवरी '२४, पृ० ६५७
२- अनामिका, पृ० ३६, परिमल, पृ० ६२, १६३
३- गीत गुंज पु० संस्करण, पृ० ६२
४- सरस्वती, मई ६१, पृ० ३२६
५- संग्रह, पृ० १२६
६- रवीन्द्र प्रभात, पृ० २६१

निश्चलता में सन्ध्या -सुन्दरी--में के लीन होने और कवि का अनुराग बढ़ने,[1] पर विरहाकुल कमनीय कंठ से विहाग निकलने का उल्लेख "निराला" ने किया है।

"तुलसीदास"[2] में "निराला" ने रत्नावली की दूर हुई तान अलस्य मधुर गान कहा है।[3] "गीतिका" में भी प्रवहमान नौका के लिए "स्वर" का प्रयोग उन्होंने किया है। प्रणयियों की प्रिय कथा के लिए "ध्वनिमय ज्यों अंधकार दूरगत सुकुमार" अथवा "ध्वनि सी संगीत की सुकुमार -परिसमाप्ति" लिखना भी इसी प्रकार के प्रयोग हैं।

सौन्दर्य,प्रथम। शृंगार-वर्णन के प्रसंग में रवीन्द्र ने सांध्य-प्रकृति का उल्लेख भी बारम्बार किया है। प्रभात का अरुण आभास,पूर्णिमा और चमेली के लावण्य विलास के साथ क्लान्त-संध्या का दिगन्तव्यापी करुण निश्वास उनमें प्रमुख है।[4] सुन्दर शान्त और करुण क्लान्त ,नीरव एवं उदासिनी संध्या में वे अपनी प्रिया की कल्पना को मूर्त करते हैं। जीवन के तट पर उससे एकाकी खड़े होने की वे प्रार्थना करते हैं, उसका आह्वान कर उसे मृत्यु के आश्वासन की तरह आने का आमंत्रण देते हैं। कवि की कामना उसे अनुर्दाम शान्त आंखों से मान हेरने की है। वह संध्या से अपने केश भार खोल स्निग्ध-घनान्धकार से स्तर-स्तर ढंक देने और निःशब्द स्नेह से अवश अंगों पर अंचल का प्रान्त खोल कर ढक देने की प्रार्थना करता है। करुणा के अश्रु बिन्दुओं से पलकों के भरने और स्तब्ध व्याकुलता के साथ विदा की गहन व्यथा का ... -मन से अनुभव करने का उल्लेख भी कवि ने किया है।[5] रवीन्द्र के इस सांध्य-शृंगार की ओर "निराला" ने ही हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। निष्कर्षत: "निराला" ने लिखा है --

"सन्ध्या की प्रकृति के साथ ही कविवर रवीन्द्रनाथ ने इस करुण शृंगार की सृष्टि की है, जो सब तरह से मौजूं हुआ है। सन्ध्या की प्रकृति में जो संहार की भावना मिली हुई है, उसकी सार्थकता कवि ने बड़ी ही सफलता के साथ प्रदर्शित की है। संध्या-सुन्दरी के काल्पनिक चित्र में परिश्रान्त नायक की

१- "परिमल",पृ०१२७ २४ नवम्बर २३ के मतवाला का पाठ" विरहातुर
२- "तुलसीदास",पृ०३६
३- "गीतिका",पृ०६८
४- बनाभिका,पृ० ६० अथवा मतवाला वर्ष १,अंक४७,१९जुलाई २४
५- रवीन्द्र प्रतीक,पृ०३५८ ६- चयन,पृ०११२-११३

उक्ति और भावनाएं बिलकुल मिल जाती हैं[1]।"

"निराला" का यह मन्तव्य स्वयं उनके काव्य में प्रस्तुत संध्या-चित्रों के सम्बन्ध में भी सत्य है। रवीन्द्र की भावधारा का यह सूत्र उनकी गीतिका में दृष्टिगत होता है। परिमल की "सन्ध्या सुन्दरी" की प्रशान्ति और गंभीरता, अथवा "आग्रह" में जननी के प्रति कवि के प्रश्न में सन्ध्या की रूप-श्री का वर्णन "निराला" ने किया है[2]। यहाँ दिन मणि हीन अस्त आकाश, नियति संध्या में दिनमणि के सकल आणित साजों को भी सुन्दर चित्रित कर संहार-भावना की स्थिति भी हमें मिलती है[3]। अम्बर पथ से संध्या-श्यामा के कोमल नव-भार पृथ्वी पर उतरने और भवन-दीप जला आरती उतारने[4] अथवा हाथ में तारक प्रदीप लिए स्निग्ध शांत दृष्टि संध्या के मन्द मंद प्रिय समाधि की ओर जाने के[5] जो चित्र "निराला" ने दिए हैं, भाव और रूप की दृष्टि से वह रवीन्द्र के चित्रों से सादृश्य रखते हैं।

गीतिका के "अस्ताचल रवि, जल छल-छल छवि, स्तब्ध विश्वकवि, जीवन उन्मन" गीत में आचार्य वाजपेयी के शब्दों में "रहस्यपूर्ण वातावरण की सृष्टि की गयी है[6]।" मन में प्राणधन का चिन्तन करती प्रिया और कवि के अर्पण द्वारा शेष में गीत की परिणति होती है। इसी प्रकार का गीत "डूबा रवि अस्ताचल संध्या के दृग छल-छल" भी है। छवि में डूबे अपार अखिल कारुणिक मंगल में "निराला" ने नीलवर्णी मृत्यु की प्रत्याशा किया है। ध्यान लग्न नैश गगन" और स्तब्ध अंधकार सघन में श्री रामकृष्ण विवेकानन्द की समाधि का भाव भी अन्तरित है। जहाँ सौन्दर्य के साथ सत्य की अवस्थिति है, वहाँ

१- चयन, पृ० ११४
२- परिमल, पृ० १२६-२७, १५८
३- परिमल, पृ० ५०, १०४
४- गीतिका, पृ० १०२
५- अनामिका, पृ० १६०
६- गीतिका, पृ० २६
७- ,, पृ० ६८

विवेकानन्द के स्वरों की अनुगूंज भी स्पष्ट है। वास्तव में गीतिका में जो अपनी कला और कल्पना की श्रेष्ठता के कारण "निराला" की श्रेष्ठतम कृतियों में गणेय है, हम "निराला" को रवीन्द्र की कला और विवेकानन्द के सत्य को आत्मसात् कर मौलिक रचना में प्रवृत्त देखते हैं। रवीन्द्र और विवेकानन्द के प्रेरणा-सूत्र यहाँ उसी प्रकार परस्पर मिल गए हैं, जिस प्रकार "भक्त भगवान" कथा में डा० रामविलास शर्मा के अनुसार "निराला के घर और रामकृष्ण मिशन की संस्कृतियां मिलकर एक हो गयी हैं।[1]

रवीन्द्र के शृंगार-विवेचन के प्रसंग में "निराला" ने उनकी एक कविता "रात्रि ओ प्रभाते" का उल्लेख किया है, जिसमें नारी-सौन्दर्य के विविध रूपों-- रात्रि के चित्र में प्रेयसी के मानवीय सौन्दर्य और प्रभात के चित्र में दैवी सौन्दर्य का निरूपण कवि ने किया है।" "मधुयामिनी से ज्योत्स्ना मिली थी सहधर्मिणी के प्रिय की दृष्टि से अपनी दृष्टि मिलाकर यौवन सुरा का पात्र ग्रहण करने में "मनोराज्य की जटिल किन्तु मोहिनी माया" की ओर स्पष्ट संकेत है।[2] "गीतिका" में "निराला" लिखते हैं --

प्रेम नयन के उर नयन नव,
विधु विलसन, मन में मधु कलरव,
मौन पान करती अधरासव,[3]
कण्ठ लगी उरगी।"

रूप की यह पूर्णता भावों की सुसम्बद्धता और मनुष्य की सहज भावनाओं की उच्चता, गीतों के इस मानवीय रूप को डा० शर्मा ने हिन्दी में दुर्लभ बताया है। सौन्दर्य की गरिमा, रूप की उदात्त भावना, हृदय की विह्वलता और आत्मविभोर गेयता की उन्होंने पुराने कवियों में सूरदास के अतिरिक्त कम मिली है।[4]

१- निराला, पृ०३६
२- रवीन्द्र कविता कानन, पृ० १२६, १२६
३- गीतिका, पृ०३३
४- निराला, पृ०८४, ८६-८७

मान्सीय शृंगार और सौन्दर्य की पराकाष्ठा तक पहुंचाने वाली कला के लिए निश्चितरूप से रवीन्द्र से प्रेरणा ली थी, रवीन्द्र के अतिरिक्त इस दिशा में उनका दूसरा स्रोत कालिदास थे।

रवीन्द्र की प्रस्तुत रचना में मुसलमानी सभ्यता के कवियों का भाव देखते हुए "निराला" ने एक असंगति का निर्देश किया है। पहले रवीन्द्र ने "यौवनसुरा" लिखकर रूप परिवर्तन कर तरंगित यौवन को सुरा बनाया था, परन्तु अन्त में प्रिया की क्रिया यौवनसुरा पान की न होकर मात्र "सुरापान" की है[1]। "निराला" की रचना उस असंगति से मुक्त है।

रवीन्द्र की रात्रि की उस प्रेयसी मूर्ति का विकास प्रातःकाल देवी की मंगल-मूर्ति में होता है, जिसके सम्मुख सम्मान में प्रिय का भी नत-मस्तक है। प्रवाहित निर्मल वायु और शान्त उषा के समय निर्जन नदी तीर से स्नान के अवसान पर शुभ्रवसना धीरे-धीरे आती है[2]। रूप की पूर्णता का "निराला" का चित्र भी अपनी परिणति उसी भावना में पाता है[3]। मधुर स्नेह के मेह बरसने पर उर में अमर अंकुर उगता है जिससे "संसृति भीति भगी"। "स्नेहावगाहन अथवा स्नानो-परान्त प्रिया के परिवर्तित प्रत्यागमन" के चित्र गीतिका में अनेक हैं, जो "आत्मज्ञान" के अभिव्यंजक हैं[4]। मिलन की भावना से पूर्ण होने के कारण "निराला" की प्रकृति के अनुकूल भी है। रवीन्द्र में हम विरह-भावना का प्राधान्य देखते हैं। उनके काव्य में संध्या का करुण और अलस सौन्दर्य इसी से प्रकाशित है, जब कि "निराला" में उनकी मिलन भावना के अनुकूल प्रभात की स्निग्ध और सद्यः प्रस्फुटित ज्योति का विकास हमें मिलता है।

शृंगार के प्रसंग में ही रवीन्द्र की "बारीक निगाह" का उल्लेख कर "निराला" ने उनकी "याचना" कविता को लिया है। प्रिय के प्राणों में अपने

१- चाबुक, पृ०५६

२- रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ० १२७

३- गीतिका, पृ०३३

४- ,, पृ० १६,८८

वाली रागिनी अथवा उठने वाले आलाप की ताल नायिका के नूपुरों में गिरती है[1]। गीतिका का 'मौन रही हार'[2] गीत भी भाव की दृष्टि से इसी प्रकार का है । प्रिया मानवी से देवी बनकर प्रिय के समीप जाती है, उसका अन्तर्जगत और बहिर्जगत दोनों शृंगार के वाद्यों से ध्वनित है । 'निशा के उर की खिली कली'[3] गीत में भी प्रिय-पथ पर अग्रसर संकुचित प्रिया की मंद गति का चित्रण है । प्रीति-भीति से पग उर मन का कंपन, नूपुरों का रुन-रिन-रन-झन बजना और लाजविवश उसका सिहरना, नमित-नयन-मुख उसका चिन्तन, पुलक सुख से कांप पग रखना और पलकें मूंद प्रिय की शय्या पर पैर रखना मानवीय भावना का पूर्ण चित्र 'निराला' ने प्रस्तुत किया है । उनका 'प्रिय यामिनी जागी'[4] गीत रवीन्द्र के 'आहा जागि पोहाल विभावरी' संगीत के समकक्ष उसी प्रकार है, जिस प्रकार रवीन्द्र का गोविन्ददास के अनुरूप है । रवीन्द्र ने अपनी रचना के अन्त में मिलन का संकेत किया है और 'निराला' के गीत की परिणति 'वासना की मुक्ति', मुक्ता त्याग में जागी' में होती है । आचार्य वाजपेयी ने 'निराला' के इस गीत में इस युग के कवि द्वारा भक्तों की भी राधा की अवतारणा देखी है[5]। निश्चय ही शैलीगत प्रेरणा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से रवीन्द्र ग्रहण करने पर भी भावमूलक अध्यात्मवाद की अनुप्रेरणा 'निराला' ने स्वामी विवेकानन्द से ली है[6]।

सुकुमार सेन ने रवीन्द्र के अन्तर्भावित प्रतीकों में काव्य-सत्य की नायिका कल्पना को विशिष्ट माना है, जिसमें वैष्णव काव्य और कालिदास का संयुक्त प्रभाव है । पदावली की राधिका और कालिदास के 'मेघदूत' की यक्षकांता[7]

१- रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ० ११६

२- गीतिका, पृ० ८

३- परिमल, पृ० १०१

४- गीतिका, पृ० ७

५- ,, पृ० २६

६- टैगोर और निराला, पृ० १६५ : अवधप्रसाद

दोनों कवि की विरह-भावना से प्रभावित हैं[1]। 'निराला' में मिलन के प्रतीक के रूप में 'अभिसार' का प्रयोग सामान्यतः नहीं मिलता है। रवीन्द्र के भावों पर आधारित 'क्षमा-प्रार्थना' में 'यौवन वन अभिसार-निशा का यह कैसा अवसान' पंक्ति में भी मिलन नहीं, वेदना की अभिव्यक्ति हुई है। 'निराला' की अपनी रचनाओं में अन्यत्र दो ही स्थलों पर अभिसार का उल्लेख आया है। प्रथम अनामिका की 'सच्चा प्यार'[2] में 'निराला' ने 'खेलने चली प्रीति-अभिसार चपल विचल पलकों की आड़।' स्पष्ट लिखा है, जिसे डा० चौधरी ने रवीन्द्र के 'आजि झड़ेर राते तोमार अभिसार' के अनुरूप कहा है[3]। ६ अक्टूबर के 'मतवाला' में प्रकाशित 'चुम्बन' में भी 'निराला' ने 'मंदस्मित कपोलों से जिनके ऊपर चूमकर अभिसारिका पवन चली मृदु झूम झूमकर' लिखा था, परन्तु 'अनामिका' में इस पंक्ति का पाठ परिवर्तित रूप[4] में मिलता है। 'पंचवटी-प्रसंग' में 'क्षिप्र-गति चलती अभिसारिका यह गोदावरी' प्रयोग भी इसी प्रकार का है।

रवीन्द्र की 'उर्वशी'[5] को 'निराला' ने सौन्दर्य की सर्वोत्तम सृष्टि और शृंगार की पराकाष्ठा कहा है। मंथित सागर से निकली अनन्त यौवना यह उर्वशी विश्व की प्रेयसी है। उसके अपार रूप-संभार के समक्ष महर्षि भी अपने तप का फल अर्पित कर देते हैं। सुर-सभा में पुलकित और कुसुमित होकर उसके नृत्य करने पर उसके छंद-छंद पर सिंधु में तरंग-दल नाच उठता है, शस्य-शीर्ष में धरा का अंचल कांप उठता है और दिगन्त में उसकी मेखला टूट कर गिरती है। पुरातन युग की कल्पना में उर्वशी के सौन्दर्य की उस गौरव-राशि का अम्लान चित्रण किया है[6]। सौन्दर्य और शृंगार की व्यंजना के लिए 'निराला' ने 'प्रेयसी' के उपमान के रूप में

१- बंगला साहित्येर कथा, तृतीय खण्ड, पृ०३८०: डा० चौधरी की पुस्तक, पृ० १०३ से उद्धृत
२- रचना संख्या ७, डा० रामरतन भटनागर से साभार प्राप्त ।
३- 'निराला काव्य पर बंगला-प्रभाव', पृ०१०४-१०५
४- 'परिमल', पृ० २२४
५- रवीन्द्र कविता-कानन, पृ० ११८
६- ,, पृ० १३२, १३४, १३५

'उर्वशी' को लिया है। प्रेयसी के मंजु-मुख के समीप भी 'वर्शक समुत्सुक भ्रमाकुल पतंग ज्यों विचरते' हैं। चतुर्दिक आनन्द के प्रस्रवण भरते और पुलक-राशि से अन्तर को भरते हैं। 'निराला' ने लिखा है --

'चक्राकार कलरव तरंगों के मध्य में
उठी हुई उर्वशी-सी,
कम्पित प्रतनु-भार,
विस्तृत दिगन्त के पार प्रिय बद्ध दृष्टि
निश्चल अरूप में।'[1]

प्रसिद्ध उपमानों से उपमेय की समता की जाने की प्रवृत्ति का अनुसरण करते हुए 'निराला' ने कालिदास और रवीन्द्र की विशेष दृष्टि 'उर्वशी' को उपमान मानकर सौन्दर्य एवं प्रेम के शृंगार का साक्षात्कार करा दिया है,[2] यह भी जयप्रसाद लिखते हैं।

सन् २४ की रचना 'वसंत' में भी 'निराला' ने सुन्दरी रंभा का उल्लेख किया है--

'मथे हुए सागर से
निकली हुई सुंदरी वह रंभा मनो-मोहिनी-सी[3]'

परन्तु 'अनामिका' में यह पाठ 'बादलों के अंक में मिली हुई रश्मि ज्यों'--रूप में विद्यमान है। सन् ३७ की रचना 'वनबेला' में 'निराला' ने बेला के लिए 'मस्तक पर लेकर उठी अतल की अतुल सांस[+]' और 'जैसे पार कर पारा[0] सागर अप्सरा सुघर सिक्त-तन-केश, शत लहरों पर कांपती विश्व के चकित दृश्य के दर्शन शर'[4] लिखा है। 'उर्वशी' के लिए रवीन्द्र ने 'आदि युग पुरातन ए जगते छिले कि आर, अतल अकूल हौते सिक्त-केशे उठिले आसारे ?' लिखा था।

१- अनामिका, पृ०८०, माधुरी, नवम्बर, ३५, पृ०५२२, बंगल
२- टैगोर और निराला, पृ० २१३
३- मतवाला, १६ फरवरी, २४, पृ०४३३
४- 'अनामिका', पृ०८६-६०, सुधा, अप्रैल ३७, पृ०३५
+- बास
०- धार

'पंचवटी-प्रसंग' में शूर्पनखा के सौन्दर्य-चित्रण में 'निराला' ने मानवीय सौन्दर्य की पराकाष्ठा रवीन्द्र के सदृश दिखायी है । उसके सौन्दर्य के सम्मुख प्रकृति की समस्त सौन्दर्य-राशि तुच्छ है । ऋषियों और मुनियों का ध्यान वहां भी भंग होता है और बड़े-बड़े वीर भी उसके पैरों पर पड़कर उस सुन्दरी की कृपा की भिक्षा मांगते हैं[1] । स्थल की समानता के आधार पर यहां श्री धनञ्जय वर्मा ने रूप-चित्रण और अन्तर्मन की अभिव्यक्तियों द्वारा रवीन्द्र की उर्वशी का और 'प्रलय की छाया' की कमला का स्मरण आने का उल्लेख किया है । 'प्रलय की छाया' में तो एकमात्र गुर्जर महीप प्रणत है, यहां शूर्पनखा के चरणों में बड़े बड़े वीर कृपा की भिक्षा मांगते हैं[2] ।

सौन्दर्य की दृष्टि से रवीन्द्र की दूसरी अप्रतिम रचना 'निराला' के विचारानुसार 'चित्रांगदा' नाटक है[3] । वसन्त और वसन्त सखा मदन से अनन्त यौवन और सौन्दर्य का वरदान लेकर प्रत्यागता चित्रांगदा की अपूर्व रूप राशि का वर्णन करते हुए रवीन्द्र ने धरणी का ऐश्वर्य उसमें मूर्तिमान देखा है । चित्रांगदा स्वयं जल में अपना प्रतिबिम्ब देखकर विस्मृत है, 'मानो किसी श्वेत कमल ने अपनी मुकुल अवस्था,मुद्रित नयनों में ही व्यतीत कर दी हो-- और प्रभात में, पूर्ण शोभा पाकर,उसी दिन के प्रभात में गर्दन झुकाकर नील सरोवर के नीर में अपने को प्रथम बार निहार कर सारे दिन के लिए मानो विस्मय में डूब गया हो ।' अर्जुन की दृष्टि में उसका रूप उसको धारण करने में असमर्थ हो थर-थर कांपता है; उसकी उज्ज्वल मुस्कान के भीतर अश्रु छिपे हैं, जो कभी-कभी छलछला उठते हैं । 'निराला' की गीतिका सौन्दर्य के ऐसे संभार और भावना से पूर्ण है । 'लहराते नीले सर पर कमलों का मृदु-मृदु कंपन' अथवा 'विकसित हो करने को मधुमय मृदु नयन नलिन'[4] इसी प्रकार की पंक्तियां हैं । एक अन्यतम गीत में उन्होंने लिखा है --

---

१- परिमल,पृ०२२४-२५

२- 'निराला : व्यक्तित्व और काव्य',पृ०२०१,प्रलय की छाया,हंस,जनवरी,३१ में प्रकाशित और पंचवटी प्रसंग सन् २३ में ही प्रकाशित ।

३- रवीन्द्र कविता-कानन,पृ०२९

४- गीतिका,पृ०६६,७२

" काँपे नीरव मृणाल वृन्त पर
नील कमल कलिकाएं थर-थर,
प्रात-अरुण सी करुण अश्रु-भर
उठतीं अहा अधीर ।" [1]

करुण श्रृंगार की यह अभिनव गीतिका के उपरान्त हम "बेला", "अर्चना" और "आराधना" में विकसित पाते हैं। रवि की आंख खुलने और किरण के मुस्कुराने, विश्व के तार-तार पर करुण मूर्छना जागने, तुहिन और सिंधने और भानु भोर के बंदी होने के प्राकृतिक चित्र बेला में मिलते हैं। [2] "अर्चना" में भी "निराला" ने प्रमद आलस से मिलने, किरणों से पलक कुह निकलने और रूप रेखा से सुघरतर आचरित को खिलने का उल्लेख किया है। [3] आराधना की पंक्तियाँ -- " कांपा विश्वास तरुण, उतरा निश्वास अरुण, हुई धरा करुण-करुण, जागा यौवन, मंगल " गीतिका के करुण परन्तु मंगलमय भावरूप का ही विकास है। [4]

अपने संगीत "जागो जागि पीताल विभावरी" में आगत यौवना सुन्दरी की विरह-कल्पना में रवीन्द्र अपनी सहृदयता और मर्मज्ञता का परिचय देते हुए विरहिनी नायिका के प्रति अपनी अपार सहानुभूति प्रकट कर कवित्वपूर्ण ढंग से उसे मिलन भूमि की ओर ले जाते हैं। शरत के स्वच्छ और निर्मल प्रभात में द्रुमलताओं को पुलक की अतिशयता से व्याकुल किया, पुनः विरह-शय्या पर मलिन-मालिका छोड़कर मालिका के अंचल में नई शेफालिका की माला गूंथ लेने और अलकों में नवीन फूल मंजरी लगाने का संकेत संयोग का सूचक है।

"निराला" ने भी शेफालिका को प्रणय अथवा मिलन के प्रतीक के रूप में अपनाया है। डा० रामरतन भटनागर के अनुसार तो शेफालिका का

१- गीतिका, पृ० १०
२- बेला, पृ० ३१, १६
३- अर्चना, पृ० १२५
४- आराधना, पृ० ४

शेफाली आत्मा का प्रतीक है। आत्मा के परमात्म-मिलन को कवि ने इस सुन्दर रूपक द्वारा स्पष्ट किया है[1]। पल्लव पर्यंक पर सोती शेफालिका के मूक आह्वान भरी लालसी कपोलों के व्याकुल विकास पर गगन के शिशिर के चुम्बन झड़ने और सुप्त डाली सेफाली के झड़कर अमर प्रेम-धाम प्राप्त करने का उल्लेख 'निराला' ने किया है[2]। वागीश्वरी(खम्मार) के गीत की पंक्ति-- 'गगन नयनों के शिशिर झर प्रेयसी के अधर भरते' अथवा खुलती शेफाली की स्मृति और अब की आँखें मुंदने पर उसकी पाँखें खुलने' में भी यही भाव है[3]। अपनी प्रारम्भिक रचना 'वन कुसुमों की शय्या' में भी शरत और शिशिर के रस की बूँदें बनकर नीले अम्बर से हरसिंगार की कोमल दल कलियों पर टपकने पर, प्रातः उनके शृंगार के, उनके निर्जन और कल्पनामय विहार[4] का साक्षी 'निराला' ने कहा है। 'ओस पड़ी, शरद आई, हरसिंगार मुसकाई' अथवा 'हरसिंगार के फूल प्रात को, किसी रश्मि से लगी-गात, जो'। गीत भी मिलन और आनन्द के भावों के अभिव्यंजक है।

'अर्चना' में भी हरसिंगार के फूल झड़ने और भस्म रमाकर विरागी के चलने का चित्र 'निराला' ने अंकित किया है[6]-- जहाँ अभागी की ऐसी निद्रा का उल्लेख है, जो प्रिय के साथ जाने पर ही खुलती है। शेफाली का झड़ना रवीन्द्र में भी शृंगार की परिणति का द्योतक है और गीतांजलि के छब्बीसवें गीत में चलनागिनी की एक घोर निद्रा का उल्लेख रवीन्द्र ने किया है।

छायावाद पर आश्रित रवीन्द्र की रचना 'बाजिछो काहार वीणा मधुर स्वरे' में 'निराला' को कवित्व, प्राणों की भावना का विकास और गम्भीर दर्शन मिला है। वासना रूप से फैलकर जो दुख का अंकुर त्रिभुवन को अपने

१- कवि निराला : एक अध्ययन, पृ० ६८

२- परिमल, पृ० १७५- १७६

३- गीतिका, पृ० ५२, १०६

४- परिमल, पृ० १३६, मतवाला, १२ जनवरी, २४, पृ० ३२१

५- आराधना, पृ०२३, गीतगुंज, पृ०५८, द्वि० संस्करण

६- अर्चना, पृ० ६८

विस्तार से व्याप्त कर लेता है, उसका स्वर सुनकर महाकवि का प्रश्न है ? मेरे निभृत जीवन पर यह मधुर स्वर से किसकी वीणा बजी ? प्रभात-कमल के सदृश मेरा हृदय किसके निरुपम चरण-युगल के लिए विकसित हो गया है ? हृदय के खुलते ही विश्व की समस्त माधुरी स्वाभाविक रूप से ब जा उठती है, कवि का हृदय भी उसमें प्रतिबिम्बित है[1]। उसी प्रकार "तोमार रागिणी जीवन कुंजे बाजे येन सदा बाजेगो" गीत में कवि उसी के चरणों की रेणु से अपना शृंगार करता है[2] और उसी के संगीत और छन्द में उसकी माधुरी को सर्वत्र प्रत्यक्ष करता है । गीतिका[3] में "निराला" की पंक्ति " रेणु के राग फिर शृंगार सहज जाना का रही बिहार " उसी प्रकार की है । उनका "मानस गीत" भी रवीन्द्र के भावों का ही मूर्त रूप है । "निराला" का प्रश्न है, उर में रूप आने पर, बजा मधुर कौन किस सुर में बजी ? हृदय-शतदल के सब दल खुल जाते हैं और मधुपुर में आने वाले की अर्घ्य चढ़ाने का उल्लेख भी "निराला" ने किया है[4]। गोविन्ददास के एक पद में भी यही भावना है, जिसका उद्धरण "निराला" ने अपने लेख में किया है[5]।

वंशी-गान, आकाश-वीणा के तारों, सकल सुरों और तृण-तृण पल्लव पल्लव में प्रिय के आगमन की ध्वनि रवीन्द्र ने सुनी है । प्राणों की वीणा में नित्य उसका गान उन्होंने सुना है[6]। "बेला" में "निराला" ने रूप की धरा के उस पार बसने, मिलित के गान गाने वाले उन गानों को, जिनकी ध्वनि से ध्यान टूटते हैं, देह की वीणा का वह गान गाने की संभावना के सम्बन्ध में प्रश्न किया है[7]। गगन वीणा बजने और किरण के तार पर रागिनी सजने, कमल के

१- रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ० १४७-१४८

२- ,, पृ० १५८-१५६

३- गीतिका, पृ० ३२, सुधा अप्रैल ३०, पृ० ३१५ "मन" पाठ है ।

४- गीतिका, पृ० ३७, हंस, जून ३०, पृ० १५ "बजा बजा वीणा किस सुर में ?"

५- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० २३२
जहं जहं अरुण चरन युग धरई, तहं तहं धरणि कमल दल खुलई ।
देख, सखि कौन मन स रोपर पैठि । मों जीवन संग करतहि बैठि ।।

६- गीतांजलि, पृ० ६२, २१०, रवीन्द्र कविता कानन, पृ० १५१-५७

७- बेला, पृ० १०

अपनी तुहिन जल के उठने और कली कली के हार के भार डाली लचीने का अथवा "प्रथम रवि की किरण को किस" खिलने पर उसका अमय अंत विश्व में बजने का उल्लेख भी "निराला" ने किया है[1]। परिमल की कामना अथवा किरण भरी से उनकी प्रार्थना सह सौरभ-सुधा में छवि मधु- सुरभि भरने की है[2]। गीतिका और आराधना में [3]"निराला" ने हृदय में बांसुरी छिड़ने और उसके बजने से सुख की छाया छाने का उल्लेख किया है।

विश्व और जीवन में एक ही ज्योति की परिव्याप्ति[4] रवीन्द्र देखते हैं। गीतांजलि में यही भाव उन्होंने "आलो[5] आमार,आलो ओ गो" गीत में व्यक्त किया है। स्मृति-चुम्बन और प्रेयसी स्थल में "निराला" ने ज्योति-छवि और उसके मिलन का, जीवन वीणा में अतुल बजते झंकार का उल्लेख किया[6] था। आराधना में "ज्योतिप्रात,"ज्योतिरास" अथवा चल समीर, चल कलि कुल" आदि विश्व में एक ही सत्ता अथवा प्रवाह का प्रतिपादन करते हैं। गति में ही मानव जीवन का तत्व निहित है--- इसे रवीन्द्रनाथ की अनुभूति डा० चौधरी ने कहा है। उनका सम्पूर्ण काव्य इस गतिवाद का ही प्रसार करता है। विकास के लिए "निराला" की आकांक्षा को उन्होंने रवीन्द्र से व्याप्त कहा है[7]। सृष्टि के प्रवाह अथवा गति की जो धारणा "निराला" में मिलती है, मानव में उसका सम्बन्ध रवीन्द्र की अपेक्षा स्वामी विवेकानन्द अथवा रामकृष्ण से अधिक है। अपने प्रारम्भिक दार्शनिक निबन्ध "प्रवाह" में "निराला" ने ब्रह्म और महाशक्ति की कल्पना व की अभिन्नता को स्वीकार करते हुए महाशक्ति की कल्पना से संसार की सृष्टि मानी है और कल्पना की चंचलता[8] अथवा गति के कारण उसे प्रवाह कहा है, उसे परिवर्तन द्वारा गति प्राप्त होती है।

१- आराधना,पृ०८६,६१
२- परिमल,पृ० २४,३४
३- गीतांजलि , पृ० १२४
४- गीतिका,पृ० १०४,आराधना,पृ०७०
५- परिमल,पृ० १६१,अनामिका,पृ० ४
६- आराधना,पृ०५४,५६
७- निराला काव्य पर बंगला प्रभाव,पृ० ६०
८- संग्रह,पृ० ११-१२

रवीन्द्र के सम्बन्ध में श्री सुधाकर चट्टोपाध्याय का कहना है कि सीमा और असीम की मिलन-लीला नर-नारी के विरह-मिलन लीला के रूपक द्वारा परिव्यक्त हुई है। "जीवन-देवता" कभी प्रियतमा और कभी प्रियतम है, जिसके साथ जीवन की आंख-मिचौनी चली है। यह अनुभूति रवीन्द्रनाथ से संक्रमित होकर छायावादी कविता में आई है। उनके मतानुसार रवीन्द्रनाथ के जीवन देवता अथवा जीवन देवी के साथ प्रिय लीला व्यापार में रवीन्द्र-काव्य की विशिष्टता रही है, वही लीला यहाँ अर्थात् "निराला" में भी परिलक्षित होता है[1]। भाव-साम्य की दृष्टि से उन्होंने गीतिका का "कब से मैं पथ देख रही प्रिय, उर न तुम्हारी रेख रही प्रिय।" उद्धृत किया है।

सुकुमारसेन के मतानुसार आध्यात्मिक प्रतीक "आमि- तुमि" औ" रवीन्द्र के लिए क्रमशः अन्तर्यामी या कवि-सत्व, जीवनदेवता तथा विश्व भुवन का प्रतीक है। आमि तुमि अन्तर्यामी जीवन-देवता की ही द्वैत-रूप है, जो द्वैत का ही दृष्टि-भेद है। इस ओर भी आपने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है कि "जीवन-देवता" को मातृ-रूप से सम्बोधित न करना रवीन्द्र में सबसे बड़ी "अ-बंगालीत्व" का परिचय है, यद्यपि रवीन्द्र में मातृ-देवता का अर्घ्य रचा भी नहीं गया, यह सोचना भूल होगी[2]। "निराला" में मातृ भाव की स्थिति रवीन्द्र की अपेक्षा विवेकानन्द की प्रेरणा निश्चितरूप से कही जा सकती है। "निराला" में जहाँ सूर्य, किरण और बादल के माध्यम से "तुम और मैं" की अभिव्यक्ति की है, वहाँ अवश्य रवीन्द्र का प्रभाव सुस्पष्ट है। गीतांजलि के "एव रविकर उसी कर बाडाइया ए आमार धरणी ते"[3] गीत के सदृश अणिमा में "तुम और मैं" रचना[4] में "निराला" ने भी पहले सूर्य की किरण और फिर बादल को लिया है।

१- आधुनिक हिन्दी साहित्ये में बांगलार स्थान, खण्ड १, पृ० ७६, १०६
   निराला काव्य पर बंगला प्रभाव, पृ० ४६, ५५ ।

२- ,, ,, ,, पृ० १०७-१०८

३- गीतांजलि, पृ० १४६

४- अणिमा, पृ० २२

दुनिया से धोखा खाकर जब 'मैं' गिरता हूं और धूर झुकता हूं, तब 'तुम' मुझे पानी को भैरे किरन तपाकर उठा लेता है, उठा लेते हो । दुनिया की आंखों से ओझल होकर आसमान में बादल बनाकर मुझे रख देते हो, रंग और किरणों से भर छवा-छवा पर उड़ाते हो । तुम्हारे आदेश से और उनके आह्वान पर मैं वृष्टि रूप में बरसता हूं और पुन: मिट्टी पर आ जाने पर 'तुम मुझे उठाते हो' फिर छिपे कली के दिल के अन्दर । जीवन खोकर भी इस प्रकार मैं अकिंचन कलिका के जीवन में रहता हूं । पूर्ण विकास की प्राप्ति कर जब कलिका खिल जाती है और माली उसे तोड़कर सुई करता है, तब मैं सुरभि में मुक्त पंख भर और धरा छोड़कर उसी गगन पर उड़ जाता हूं ।
परिणति का यही भाव अनामिका की 'दारिव वेदना'[1] में है । इस कवि ने 'सुरभि, मुकुल शयने ।' कहा है । 'मुक्त-गंध बिखरी' लिखकर यहां भी सुरभि में परिणति दिखाई गई है । गीतिका में भी '(छिपा मन) बन्द करो उस द्वार, (फिर) सौरभ कर दो संसार ।' उन्होंने लिखा है, जहां परिमल और समीर के उपरान्त कूल पर पग रखकर दुख-सुख हर, प्रिय से गगन पर चढ़ने को कहा गया है[2] ।

रवीन्द्र ने अपनी विपरीत लीला के समापन को प्रात:काल का शुभ्र-शीतल निर्मलता में प्रत्यक्ष किया है । 'लीला'[3] में रवीन्द्र ने अपने को शरद-काल के अवाकृष्ट मेघ खण्ड के सदृश उसके आकाश के कोने में निरुद्देश्य फिरता चित्रित किया है । अभी चिरन्तन सूर्य-किरणों के के स्पर्श से प्रकाश के साथ मिलकर वह वाष्प रूप में परिणत नहीं हुआ है, क्योंकि उसकी यह इच्छा और लीला है । कवि कहते हैं कि घोर निशीथ रात्रि-बेला में जब लीला के समापन की इच्छा हो, उस समय --

अन्ध धारे झरे जाय, अंध कारे गो--
प्रभात काले रवे केवल निर्मलता शुभ्र-शीतल,
रेखा मिहान मुक्त-आकाश, हासे चारि-धारे--
मेघेर खेला मिशिबे जाबे ज्योति-सागर पारे ।"

१- अनामिका, पृ० १६८

२- गीतिका, पृ० ६५

३- गीतांजलि, पृ० १७०

'निराला' में 'तुम और मैं' में क्रमशः उनको शरत काल के बाल इन्दु' और 'निशीथ मधुरिमा' कहा है[1]। प्रातःकाल की शुभ्र शीतल निर्मलता और सुरभि में मुक्त पंख भर उड़ना रवीन्द्र और 'निराला' के अन्तर को स्पष्ट करता है ।

'तुम और मैं' के लिए रवीन्द्र ने पथ और रथ के प्रतीक का भी व्यवहार किया है । 'निराला' में भी इस प्रतीक को विद्यमान हम पाते हैं । उसके आगमन के लिए रवीन्द्र ने रथ का प्रयोग किया है, जिसकी ध्वनि वे मुहूर्तभर में बादलों में सुनते हैं; स्वागतार्थ शंख ध्वनि करने को भी कहते हैं[2]। रवीन्द्र के 'आमि भिक्षा करे फिरते छिलेम, ग्रामेर पथे पथे, तुमि कखन चले छिले तोमार स्वर्ण रथे' के सदृश 'अणिमा' की एक रचना में 'निराला' ने लिखा है -- 'मैं बैठा था पथ पर, तुम आए चढ़ रथ पर ।'[3] रवीन्द्र ने श्रावण के अन्धकार में मेघ के रथ पर उसका आगमन देखा है,[4] और 'निराला' का ज्योतिर्यान भी जल के ऊपर भार सब वहन कर आता है । जहाँ सबसे अधम और दीन से भी दीन रहते हैं, वहाँ ईश्वर की स्थिति रवीन्द्र और 'निराला' दोनों ने ही देखी है ।[5] 'निराला' के 'सुन्दर हे सुन्दर' अणिमा के एक गीत पर रवीन्द्र के 'स्वर्गोद्यानक संग तव सुन्दर 'हे सुन्दर' का प्रभाव डा० चौधरी ने देखा है[6]।

'तुम और मैं' की अभिव्यक्ति के एक और चित्र में भी 'निराला' और रवीन्द्र में अद्भुत साम्य दृष्टिगत होता है । ''खुआर धारे'[7] रचना में रवीन्द्र ने पनघट पर नाव की छाया तले अकेली बैठी युवती का चित्र खींचा है, जो सखियों की पुकार 'आय गो बेला जाय ।' सुनकर भी न जाने किस आलस्य और भावना में बैठी ही रही । पथिक की पदध्वनि भी वह नहीं सुन पाती ।

१- परिमल,पृ०८१,माधुरी २०जुलाई १६२३,प्रथम पंक्ति का'तुम शरत सुधाकर कला-हास' पाठ है ।
२-गीतांजलि,गीत ५०,५१
३-अणिमा,पृ०१६
४- गीतांजलि,पृ०४५,बेला,पृ०७७
५- ,, गीत १,१०,आराधना,पृ०३५,अणिमा,पृ०२८
६- निराला जीवन पर बंगला प्रभाव,पृ०१४६
७-गीतांजलि,पृ०५४

करुणा-वधू और क्लान्त कंठ पथिक की वाणी 'तृष्णाकातर पान्थ आमि' सुनकर वह उसकी अंजलि में घड़े से जल डाल देती है; यही उसकी सम्बल था। 'कुआर धारे 'चौपहरी' में पक्षी वैसे ही बोलते ही रहते हैं, नीम के पत्ते वैसे ही काँपते हैं; और उसी प्रकार 'आमि बसेइ थाकि।' 'आराधना' के एक गीत में यौवन उपवन में निरलस बैठी, तन मन किस विकल प्रिया का चित्र 'निराला' ने किया है। उसकी दशा 'आये लाल कर बासे'-- बदल जाती है। मानस को उभारकर प्रिय को सत्वर अन्तर्धान हो जाता है, और प्रिया--'उठी अचानक मैं ऊँचे स्वर कोकिल की काकली सवारी।'[1] गीतिका में प्रिय 'विटप-पादप-छाया में म्लान मन' और व्याकुल प्राण बैठा चित्रित है, जहाँ तिमिर-तर की प्रभा-कुओं में ज्ञान का उपहार ले प्रिया उतरती है।[2] परिमल में भी 'निराला' ने 'तुम पथिक दूर के श्रान्त, और मैं बाट जोहती आशा' लिखकर इसी भाव को अभिव्यक्त किया है।

मौन द्वारा सत्य अथवा आनन्द की अभिव्यक्ति रवीन्द्र और 'निराला' दोनों ने की है। इसी की अनुभूति श्री रामकृष्ण और विवेकानन्द ने 'समाधि' में की थी और इसी की उपायता को स्वीकार कर रवीन्द्र ने उसमें सहृदय की मुखरता की सृष्टि प्रत्यक्ष की है। रात दिन अरण्य के हृदय में पुष्परूप से व खुलने वाली वेदना कैसी और कौन सी है, इसे रवीन्द्र ने मौन भाषा की विशद वर्णना द्वारा स्पष्ट किया है[1]; जब प्रिया और प्रिय दोनों व्याकुल मुख से रो दिये थे। सुख की अधिकता होने पर भाषा मौन हो जाती है। रवीन्द्र ने विरही पथी के सदृश अज्ञात कानन की छाया में हृदय की कातरता के उड़ते रहने का उल्लेख भी किया है।[4,3,+] 'निराला' ने दर्शन शास्त्र में इस मौन रूपी सत्ता, शिव की

१- आराधना, पृ० ११

२- गीतिका, पृ० ६६

३- चयन, पृ० १०५-१०६

+-- 'वैकिंवारे बाँशि पाशि धाम' इस बात में बलरामदास ने क्या नहीं कह दिया ? व्याकुल दृष्टि की व्याकुलता केवल वर्णन से कैसे व्यक्त होती ? दृष्टि पंछी की तरह उड़ चली है, इस चित्र से अभिव्यक्ति की दारुण-आकुलता एक क्षण में शान्ति पा लेती है। --रवीन्द्रनाथ के निबन्ध पृ० २५३ 'साहित्य का तात्पर्य' निबंध। बलरामदास पन्द्रहवीं शताब्दी के बंगाल के वैष्णव कवि थे, जो नित्यानन्द के शिष्य और चैतन्य के साथी थे। उनकी पदावली भी बंगला में प्रसिद्ध है।
-- रवीन्द्रनाथ के निबन्ध, भाग १, पृ० २००

हो। 'आवाङ् मनसोर्गोचरम्' कहते हैं,-- बताया है। एक प्रणय में प्राणों के मिलने पर मौन ही मधुमय गान हो जाता है[1], परिमल में ही उन्होंने लिखा है। परिमल की पहली ही रचना 'मौन' में 'निराला' ने प्रियतम और प्रिया को एक पथ का पथिक कहा है, जीवन की चुप, निर्विन्त चित्रित कर कवि ने मौन को मुखर किया है --

'मौन मधु हो जाय
भाषा मूकता की आड़ में
मन सरलता की बाढ़ में
जल-बिन्दु-सा बह जाय।'[2]

विश्व मुक्ति से प्राणों के विजयी होने पर ही मौन में सुस्वरतर अमर गान फूटते हैं[3] -- यह 'निराला' ने बताया है। अपने 'मोह-मलिन-मन' की उपमा उन्होंने मौन ही से दी है। जो निशि-तम-जल पर मौन अनन्त नभ के मग उड़ जाता है और प्रसुप्त जग को जागरण के गीत से रंग देता है[4]।

कवि के संकल्प को जानने की आवश्यकता का निर्देश करते हुए 'निराला' ने बताया है कि संकल्प रूप से संकलित रवीन्द्र की रचनाओं द्वारा कवि की सुकुमार कल्पना-प्रियता और कोमल भावनाओं की सूचना मिलती है[5]। इन रचनाओं में रवीन्द्र ने कवि के आत्मदान, कविता-कामिनी अथवा असीम के आह्वान का चित्रण किया है। संसार के दुःख और व्यथा के मध्य वे कवि से आत्मदान की प्रार्थना कर स्वर्ग से विश्वास की छवि उतार लाने को कहते हैं। रंगमीय कल्पना का लोक छोड़कर वे संसार में आते हैं और अपने मृत्युञ्जयी संगीत द्वारा संसार के क्षणिक आकांक्षाओं को निर्वाण की प्राप्ति कराते हैं। कवि स्वयं मृत्यु की रेखा

१- परिमल, पृ० ६४
२- ,, पृ० २६
३- वैला, पृ० ६६
४- गीतिका, पृ० ५७
५- रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ० ७०

किए बिना उस सत्य की ओर अग्रसर होता है, जहाँ समस्त दुःख और अमंगल का नाश हो जाता है। निर्वाण-पथ पर निकल कर अन्तत: सत्यं-शिवं-सुन्दरं की प्रतिमा विश्व-प्रिया से उनका मिलन हो जाता है।[1]

परिमल की कविता "कवि"[2] में "निराला" ने जो महाप्राण इसीलिए कहा है, क्योंकि बार-बार संसार के निर्मम वार वह झेलता है और निज सुख से मुख मोड़ जीव को जीवन देता है। विश्व के दैन्य से हृदय के दीन होने पर वही महान दुःख मुक्ति और नवजीवन की शक्ति के सम्बन्ध में सोचता है। प्रकृति और जीवन का अनुपम विहार वह देखता है। उसे वाणी भी देता है, और वही नश्वर को अपने अमृत के पावन-कर-सिंचन से तत्काल अविनश्वर कर देता है। "कवि के प्रति"[3] उनकी उक्ति है : "धन्य जन्म, जीवन, यौवन!" वे उसी दृष्टि में नवजीवन भरने को कहते हैं और निरवधि नव-रस-निधि में उसकी स्थिति स्वीकार कर उसी प्रियतम का आराधन करने को कहते हैं। जिस प्रकार रवीन्द्र ने महालक्ष्मी द्वारा भक्त के कंठ में वरमाल्य डालने और उसके कर-पद्म-स्पर्श से दुःख और अमंगल का नाश चित्रित किया है और एकमात्र प्रेम द्वारा[4] जीवन की प्रेम तृष्णाओं की तृप्ति दिखलाई है, उसी प्रकार "निराला" की "शृंगारमयी" उन्हें अपना हार पहना अनुराग-परागों में शृंगार खोजने को कहती है। यही भाव "कवि-प्रिया" और "कविता"[5] में भी व्यक्त है। अनामिका में संकलित "प्रिया से" और "कविता के प्रति"[6] भी इसी श्रेणी की रचनाएँ हैं।

"देवि तुम्हें मैं क्या दूँ"[7] में देवी के चरणों में विकल यौवन का हार-उपहार अर्पित कर "निराला" ने उसी अपने करुणा प्रेरित हाथ बढ़ाकर अंधकार

१- रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ० ७३-७४

२- परिमल, पृ० १८३

३- "कवि", वर्ष २ अंक १०, मार्गशीर्ष १९८१, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १९ फरवरी १९६२ "समैक्षी" जी का लेख, पृ० ३३

४- माधुरी, १३ जनवरी, १९२४, पृ० ६७७

५- मतवाला, २० अक्टूबर, २३, पृ० ८५, परिमल, पृ० १२३, मतवाला १० नवम्बर २३, पृ० १३३ उपहार।

६- अनामिका, पृ० ४२, मतवाला २९ मार्च २४, पृ० ५५३, अनामिका, पृ० १४४, सुधा मार्च ३८, पृ० १०७

७- परिमल, पृ० ८६, मतवाला २४ मई २४, पृ० ७२५

की कनक रश्मि-पुलकित ललित-प्रभात देने और उर में अपने संगीतों की माला पहनने का निवेदन किया है। अनामिका की "क्या गाऊँ"[1] अथवा गीतिका की "प्राप्त तव द्वार पर"[2] गीत की अवलम्ब भी हूँ प्रसन्न मैं प्राप्तवर" पंक्ति में यही भाव है। मातारूप में आराध्या की शक्ति की देवी मानना यद्यपि श्री रामकृष्ण और विवेकानन्द से गृहीत प्रेरणाओं के अन्तर्गत आती है, तथापि रवीन्द्र की रचना--

देवी, अनेक भक्त ऐसेछे तोमार चरणतले अनेक अर्घ्य आनि,

आमि अभागा एनेछि बहिया नयन जले व्यर्थ साधन खानि,

का भाव भी "निराला" के समकक्ष है। अपने मन की वासना, साध के अनुसार साध्य की अभाव का उल्लेख करते हुए रवीन्द्र ने भी जीवन की विफल वासना-राशि को सफल करने की प्रार्थना की है[3]।

चंचला नदी के लिए रवीन्द्र--[4] "हे भैरवी, ओगो वैरागिणी, चलेछ जे निरुद्देश सेई चला तोमार रागिनी शब्दहीन सुर"-- लिखते हैं। उसका अवसान होता है --" अतल-आंधारे-आकुल अलोके"। असीम से मिलन की अनुभूति को "निराला" ने भी धारा अथवा तरंगों के माध्यम से व्यक्त किया है। परन्तु "निराला" में प्रपात अथवा प्लवन की प्रधानता है। रवीन्द्र की नदी के सदृश "निराला" के मचलते हुए निकले अचल के चंचल क्षुद्र प्रपात के प्रवाह की दिशा अन्धकार से प्रकाश की ओर है। जड़ का सारा अज्ञान समझ वह उसके अन्तर में अपनी अर्चना तान भर कर अजान की ओर इशारा करके चल देता है। बिजली बादल की तरह अन्धकार से खिलने वाले "प्रपात के प्रति" "निराला" की इस रचना में रवीन्द्रनाथ के "निर्झर स्वप्न भंग" की झलक डा० रामविलास शर्मा को

१- अनामिका, पृ० ४०

२- गीतिका, पृ० १००

३- रवीन्द्र प्रवाह, पृ० १६६

४- ,, पृ० २६१

दिखायी देती है[1]। वे लिखते हैं --"उसकी गति अधिक नम्र है, जहां रवीन्द्रनाथ के पर्वश्य ढह जाते हैं, वहां "निराला" का प्रपात केवल पत्थर से टकराता है, मुस्कुराता है और अनाम की ओर इशारा करके आगे बढ़ जाता है और दूसरी ओर बादल है, जिसके लिए "अन्धकार घन अन्धकार ही क्रीड़ा का आगार" है। इसी शून्य में बादल की सारी क्रियाएं समाप्त हो जाती हैं, न कहीं आना है न जाना है[2]।"
"धारा" में अवश्य "निराला" ने मग्न-प्रलय का ताण्डव शिला खण्ड ढहाते वेग दंभ से खड़े भू धरों का कम्पन और कालिका की मूर्ति का उल्लेख किया है, जो विवेकानन्द रामकृष्ण की शक्ति-कल्पना से अधिक निकट है। गीतिका का "गर्जित जीवन - झरना" बाधाओं को अपसारित कर जीवन का वरण करने का भार कर घन बनने और नूतन धारा भरने का संदेश देता है[3]।

"उच्छृंखल" का चित्रण करते हुए रवीन्द्र ने उसकी कुछ क्रियाओं का समाचार अंधकार अथवा शून्य में ही दिखाया है। नियमों के पाश से बंधे संसार में केवल वही एक अनियम है; सृष्टि को मूल के सदृश एक क्षण के लिए आंधी आती है, दुरन्त साथ और कातर वेदना रोती हुई उमड़कर अंधेरे से और अंधेरे की ओर चली जाती है। "बाउ-बाउ" रुदन करने वाले और सब के पास "हाहाकार" रखकर जाने वाले इस "फक्कड़ जीवन" के सम्बन्ध में उनका प्रश्न है --" आजना आंधार सागर मथिया, कि शाये बाउ के की था।"[4] और रात्रि के एक प्रहर में सकल कथा समाप्त हो जायेगी। "निराला" के अनुसार अपने हृदय के इस चित्र में रवीन्द्र ने अपनी रंगीन कल्पना द्वारा जीवन की ज्योति भर दी है। कवि की वर्णना की शक्ति के प्रमाण के रूप में उन्होंने "बाउ बाउ" शब्दों का उल्लेख किया है, जिसमें आंधी की सांय-सांय की ध्वनि के साथ उसकी "अर्थ युति" में व्याकुल प्रार्थना की

१- निराला, पृ०५२

२- संस्कृति और साहित्य, पृ० १०१

३- गीतिका, पृ० १०५

४- चयन, पृ० १०७-११०

सजीव बैठा है। 'हाहाकार' में भी आंधी का यथार्थ शब्द और उच्छृंखलता का अर्थ गौरव भरा हुआ है। 'निराला' के अनुसार शिव और सुन्दर के समावेश के कारण ही यह उच्छृंखलता सबको प्रिय है। सब की सहानुभूति खींच लेने वाली है[1]।

'उद्बोधन'[2] में 'निराला' ने गरज-गरज घन-अंधकार में अपने बाधा-बंध-विहीन संगीत गाने और उर(नीरव) की वीणा पर निष्ठुर (निर्दय) झंकार कर निर्भर भैरव राग उठाने को कहा है। अपने उस स्वर-प्रवाह को उन्होंने अंधावेग प्रभंजन के सदृश बताया है, जिसके उद्दाम वेग से पृथ्वी(भूतल) आकाश एक हो जाते हैं। 'प्रलाप'[3] में भी 'निराला' अपनी शुष्कता, नीरसता और उच्छृंखलता को स्वीकार कर, कविता का उपहार मिलने पर वीणाभिनन्दित वाणी की भैरव के पद सुनाने का उल्लेख करते हैं। ध्वनि-साम्य की दृष्टि से भी रवीन्द्र की 'शिला राशि पड़िछे खसे' अथवा 'घेलार उपरे फेना, ढेउ परे ढेउ गरजने बधिर श्रवण, तीर कोन दिके आछे नाहीं जाने केह, हाहा करे आकुल पवन' पंक्तियाँ और 'निराला' की 'शत घूर्णावर्त, तरंग-भंग उठते पहाड़, जल-राशि राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाड़' अथवा 'क्षुद्र भंगुर तरंगों टूटता सिंधु, तुमुल-जल-थल, क्षार तल क्षुद्र बिन्दु, तट विटप लुप्त, केवल सलिल संहार' पंक्तियों में समानता है[4]।

स्वर और ध्वनि के साम्य की दृष्टि से श्री धनञ्जय वर्मा को 'निराला' के बादल राग की दूसरी रचना-- "ऐ निर्बन्ध ! अंध-तम-अगम-अनर्गल बादल।" को पढ़ते ही नजरुल की पंक्तियाँ--"आमि दुर्वार आमि भेंगे करि सब चुरमार" का स्मरण हो आता है[5]। डा० वर्मा के शब्दों में, "बादल-राग की दूसरी कविता में नजरुल इस्लाम के 'विद्रोही' की तरह विप्लव का नव-जलधर

१- चयन, पृ० १०७, १११-११२

२- अनामिका, पृ० ६७, मतवाला १२ अप्रैल, २४ पृष्ठ ५६३ 'गा अपने संगीत' शीर्षक में मतवाला का पाठ दिया है।

३- अनामिका, पृ० २६, १६ जनवरी, २४ का मतवाला, पृ० २३७

४- अनामिका, पृ० १५७, अर्चना, पृ० ६१

५- निराला: व्यक्तित्व और काव्य

विद्यमान है, तो कहीं भी भी विद्रोह कर वह उसे पीड़ित करने वाला उद्दण्ड नायक भी है[1]। "भैरव राग" उठाने का "निराला" का आग्रह अवश्य रवीन्द्र की अपेक्षा नजरुल के अधिक निकट है। "अग्निध्वनि" के आह्वान में नजरुल ने "अनागत प्रलय के शार नृत्य पागल" मृत्यु गहन अंधकूप और महाकालेर चण्ड रूप का, वज्र-शिखा की ज्वलित मशाल का उल्लेख किया है[2]। मेघ गर्जना और अग्नि के घोर निनाद के उल्लेख के साथ अंधकार का वर्णन करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने "अंधकार उद्गीरण करता, अंधकार घनघोर अपार। महाप्रलय की वायु सुनाती श्वासों में आणित हुंकार" लिखा है। रक्तिम विद्युज्ज्वाला चमकने, फेनिल लहरों के गरजकर गिरि-शिखरों को पार करने, भीम-घोष-गंभीर और अतल में धंस अधीर धरा को टलमल करने, भूमि को छेदकर अनल निकलने और अचल कहने, भूमि-को-छेदकर शरीरों के चूर होने का चित्र विवेकानन्द ने अंकित किया है।

"राम की शक्ति पूजा" में "निराला" द्वारा अमा निशा घन अंधकार उगलते अंधकार, अप्रतिहत गरजते विशाल अम्बुधि, ध्यानमग्न भूधर और जलती मशाल का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है, उसपर रवीन्द्र की अपेक्षा विवेकानन्द अथवा नजरुल की छाप ही अधिक स्पष्ट है। इसी रचना में राम के फैले बालों पर "निराला" की कल्पना को आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री ने विद्यापति की कल्पना के अनुरूप देखा है[4]। डा० नगेन्द्र ने यहाँ कल्पित बिम्ब की स्थिति देखी है[5]।

हिन्दी के अनुसार रचित[6] रवीन्द्र का प्रसिद्ध संगीत है—
"आमि भुवन-मनोमोहिनी। आमि निर्मल सूर्य करोज्ज्वल धरणी जनक-जननि

१- निराला, पृ० ४७-४८
२- निराला काव्य पर बंगला प्रभाव, पृ०७२
३- अनामिका, पृ० १०८-१०६
४- साहित्य-दर्शन, पृ० १२७ कुछ जय मुकुट हो विपर्यस्त... आदि विद्यापति —
"कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल ता अरुझायल हारा, जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल चाँद बिहिनु सब तारा।"
५- काव्य बिम्ब, पृ० ६०
६- कथन, पृ० १२६

अनामिका" गीतिका का "अम्बु पद सुन्दर तव" [1] गीत का शब्द संगीत इसी के अनुरूप है। रवीन्द्र ने जननी को अन्न वितरण के कारण चिरकल्याणमयी कहा है, "निराला" ने भी "जागो जीवन धनिके। विश्वपण्य-प्रिय वणिके।" [2] गीत में प्रति जीवन में धनिका रूप से अवस्थित लक्ष्मी के जागरण का आह्वान किया है। भारत की प्रकृति के अनुकूल ओंकार ध्वनि की वर्जना द्वारा उसकी रवीन्द्र ने सर्वजयी सिद्ध किया है। विश्व के मंगल- शंख के उपरान्त उन्होंने " भारतेर श्वेत-हृदि-शतदले, दांड़ाले भारती तव पदतले, संगीत ताने शून्ये उथले अपूर्व महावाणी" लिखा है। आर्य महर्षियों का आदर्श और वेद शास्त्रों द्वारा प्रदर्शित पथ ग्रहण करने के कारण रवीन्द्र की इन रचनाओं में भारतीयता, उपदेश और व कवित्व तीनों की सहज स्थिति है, यह "निराला" का विचार है। [3] स्वयं "निराला" ने भी जननी रूप से महाशक्ति का आह्वान कर उसके प्रति श्यामा भारत-तन पर भारत की पृथ्वी पर उतरने, और श्रेष्ठ नरों को पैदाकर नवीन शक्ति-पुकार की ओर फिर उनके मानस-शतदल पर अपने चारु चरण युग रख, व्यक्त दिव्य प्रकृति माता के अव्यक्त सत्ता में तिरोधान की कामना व्यक्त की है। [4] गीतांजलि के एक गीत में यद्यपि रवीन्द्र ने भी "स्पर्धित शान्तनीत भीषण शक्ति धरेछे बाभार बाहे जननी मूरति [5]।" लिखकर शक्ति का जननी रूप से आह्वान किया है, परन्तु "निराला" में क इस कल्पना अथवा भावधारा की स्थिति निश्चितरूप से विवेकानन्द और रामकृष्ण की प्रेरणा है।

भारत की श्रेष्ठता का ज्ञान भी सर्वप्रथम हमें विवेकानन्द से ही मिला था, जिसकी व्याख्या अनेक रूपों में रवीन्द्र और छायावादी कवियों में हमें प्राप्त होती है। "राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता" पर विचार करते हुए डा०नगेन्द्र

१- गीतिका, पृ० ८३
२- ,, पृ० ६७
३- रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ० ५२-५३
४- गीतिका, पृ० ३६
५- गीतांजलि, पृ० गीत ६५
६- नया साहित्य, दिसम्बर ४५, पृ० ४४ डा० शर्मा का लेख

ने उधर मध्ययुगीन हिन्दुत्व की पृष्ठ सामन्तवादी चेतना से भिन्न दयानन्द और राजाराम मोहनराय की सांस्कृतिक और सामाजिक हिन्दू भावना का उल्लेख किया है, जिसके अन्तर्गत प्राचीन आर्य गौरव, विदेशी संस्कृति और सभ्यता के प्रति घृणा और वर्तमान अध:पतन का समावेश था, जिसका रागात्मक स्वरूप अत्यन्त व्यापक एवं उदार था। इस युग की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का मूल आधार वे प्राचीन आर्य संस्कृति के पुनरुत्थान की भावना मानते हैं, जो संकीर्णता और कटुता से रहित स्वभावत: अत्यन्त उदार थी, जिसपर गांधी और रवीन्द्र के सार्वभौमिक विचारों का गहरा प्रभाव था।[1]

वर्तमान पश्चिमी सभ्यता पर कटाक्ष करते हुए उसका नग्न चित्र रवीन्द्रनाथ ने खींचा है--

"शताब्दीर सूर्य आजि रक्तमेघ माझे
अस्त गेलो,-- हिंसार उत्सवे आजि बाजे
अस्त्रे अस्त्रे मरणेर उन्माद- रागिनी
भयंकरी। दयाहीन सभ्यता-नागिनी[2]
तुलेछे कुटिल फणा चक्षेर निमेषे।"

उनकी उक्ति की स्वाभाविकता और कवित्व-कला की विभूति का उल्लेख करते हुए "निराला" ने लिखा है --" रक्तवर्ण मेघों में सभ्यता -सूर्य अस्त होते हैं। एक तो स्वभावत: सूर्य के अस्त होने पर मेघ लाल-पीले देख पड़ते हैं, दूसरे मेघों की रक्तिम आभा पश्चिमी शुभ सभ्यता के संग्राम वर्णन की साहित्यिक छटा की ओर बढ़ा देती है; क्योंकि संग्राम या रजोगुण में शताब्दियों के सभ्यता-सूर्य अस्त हो गये हैं-- अब वह उज्ज्वल प्रकाश नहीं है। अब ललाई मात्र रह गयी है। इसके बाद ही रात्रि का अन्धकार तमोगुण[3]।"

१- आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ०२१, ३१
२- रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ०६२
३- ,, ,, पृ०६३

"निराला" द्वारा "तुलसीदास" में प्रस्तुत सांस्कृतिक संध्या का चित्रण रवीन्द्र के चित्र के अनुरूप है--

भारत के नभ का प्रभा पूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे-- तमस्तूर्य दिङ्मण्डल
+ + +
शत-शत शब्दों का सांध्यकाल
यह आकुंचित- भ्रू-कुटिल भाल
छाया अम्बर पर जलद-जाल ज्यों दुस्तर[1]।"

रवीन्द्र के चित्र के सम्बन्ध में "निराला" का कथन स्वयं उनके इस चित्र के विषय में भी उतना ही सत्य है।

पश्चिमी आकाश में खिंची रक्त-राग - रेखा को रवीन्द्र नव प्रभात के सौम्य -रश्मि-अरुण की रेखा नहीं कहते, वह तो दारुण संध्या की प्रलय दीप्ति है। उसे उन्होंने स्वार्थ से दीप्त लुब्ध सभ्यता की मशाल का अन्तिम अग्नि-कण पड़ने से समुद्र के पश्चिमी तट में लगी चिता की आग कहा है[2]। "वनबेला" के प्रारम्भ में "निराला" ने जिस सांध्य समय का चित्र खींचा है, वह अम्बर में प्रलय का दृश्य भरने वाला है, जो समस्त विश्व को भस्मीभूत कर रहा है, और जिसके नीचे देश अदृश्य हो रहा है[3]। "गा अपने संगीत" रचना में भी उन्होंने लिखा था -- " देख एक वह मेघ-श्याम का करता आँखें लाल, हो रहा मेरा हृदय हताश[4]।"

"भगवान बुद्ध के प्रति[5]" में भी "निराला" ने सभ्यता के वैज्ञानिक जड़-विकास पर गर्वित विश्व के नष्ट होने की ओर अग्रसर देखा है। यहाँ "हंसते हैं

१- तुलसीदास, पृ० ३-४
२- रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ० ६५
३- अनामिका, पृ० ८६
४- मतवाला, व १२ अप्रैल २४, पृ० ५६३
५- अणिमा, पृ० ३३

जड़तावग्रस्त, प्रेत ज्यों परस्पर" "निराला" ने लिखा है। "सेवा प्रारम्भ"[1] में भी इसी प्रकार विज्ञान के विकास के फलस्वरूप "छाया उन्माद मरण कोलाहल का सर्प ज़हर" और "स्वार्थ पूर्ण गूंज रहा स्वर" उल्लिखित है। यहां राजनीति की उपमा "निराला" ने नागिनी से दी है --"राजनीति नागिनी डंसती है, पूर्व सभ्यता अनागिन।"

अपने अर्थाढ्य और अमेय शब्दास्त्रों का प्रयोग कर रवीन्द्र ने देश के दीन स्वरूप की पहचान कराई है। अंधेरे में पड़े देश को वे उस सर्प के समान कहते हैं, जिसे अपने मस्तक की मणि का ज्ञान नहीं है[2]। जागरण के सन्दर्भ में यही उपमान "निराला" द्वारा भी प्रयुक्त है, जहां सर्प-मणि मनुष्य के भीतर की अनादि और अनन्त शक्ति, ब्रह्म की स्थिति की द्योतक है[3]।

रवीन्द्र ने अतीत गौरव-गान के प्रसंग में वृन्दावन का उल्लेख कर अपनी करुण कल्पना और कोमल अनुभूतियों की व्यंजना की है। कदम्ब-मूल और यमुना तीर का, शिखी के नृत्य और श्रावण-निशिथ में फैलने वाली विरह-व्यथा का उन्हें स्मरण हो आता है। कारण: "आज भी आछे वृन्दावन मानवेर मने।" शरद् की पूर्णिमा और श्रावण की वर्षा में विरह-गाथा वन-उपवन में उठती है, यमुना-तीर पर वंशी की ध्वनि, प्रेम के खेल और राधा के हृदय-क्रन्दन का उल्लेख उन्होंने किया है। वस्तु-वर्णन में "भावुकतापरक वस्तु विन्यास" की प्रमुखता अतीतकाल की घटना को सजीव या साकार करने की विशेषता, है अतः प्रकृत्यात्मकता की अपेक्षा भावों के उन्मुक्त वातावरण में विचरण की प्रवृत्ति यहां स्पष्ट है[4]।

१- अनामिका, पृ० १७४

२- रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ० ५५

३- गीतिका, पृ० ७६

४- टैगोर और निराला, पृ० १५३, १५५, १५७

"निराला" ने भी यमुना की कल ध्वनि में विगत सुहाग गाथा सुनी है, आज भी वह प्रेम का प्लावित करने की शक्ति दुनिया को दिखाती है। मधुर -मलय में गूंजने वाली तान उन्हें हर्ष से प्लावित कर जाती है, और स्मृति की पुरातन कथा हृदय में आ जाती है[1]। "दिल्ली"[2] में उन्होंने गीता के सिंहनाद-जीवन की मर्मवाणी -ज्ञान-भक्ति-योग-कर्म के सार्थक समन्वय का स्मरण कर यमुना के पुलिन का उल्लेख किया है, जहाँ नारियों की महिमा संगीतिका ने आत्म-अभिमान का पाठ पढ़ाया था, जहाँ प्रणयियों की प्रिय कथा से अम्बर का अन्तराल व्याप्त रहता था[3]। परिमल में उनकी "यमुना के प्रति" की मूल ध्वनि भी उन्हीं रचनाओं के अनुकूल है, जहाँ "निराला" ने शृंगार के विप्रलम्भ अंश को नहीं, उसके सरस प्रसंगों -- ऐश्वर्य और सौन्दर्य को लिया है। कोमल भावों की वर्णना में स्वामी विवेकानन्द ने भी ब्रज के प्रेम उच्छ्वास का उल्लेख किया है। वस्तुस्थिति के आधार पर प्रबन्ध को सजाने की "निराला" की अद्भुत क्षमता, उनके विद्रोह, अतीत के विगत वैभव के प्रति उनकी सहानुभूति का उल्लेख कर श्री जयप्रसाद ने बताया है कि टैगोर जहाँ वस्तु को शान्त भाव में परिणत करते हैं, वहाँ "निराला" रौद्ररूप में विप्लव का उद्घोष करते हैं; उनकी विशेषता यह है कि वह वस्तु वर्णन के साथ अपने सांस्कृतिक संस्कारों को उत्तेजित करते हैं[4]।

रवीन्द्र के संगीत काव्य से भी "निराला" ने प्रेरणा ली थी। गीतिका की भूमिका में उन्होंने बताया है कि अंग्रेजी संगीत का प्रभाव सबसे पहले बंगाल पर पड़ा था, और उसे अपनाने में डी०एल० राय और रवीन्द्रनाथ प्रधान साहित्यिक थे। अंग्रेजी और भारतीय संगीत की स्वर मैत्री प्रतिकूल होने के कारण उन दोनों साहित्यिकों ने स्वर मैत्री भारतीय ही रखी थी। डी०एल० राय का स्वर जो

१- अनामिका, पृ० ३७, मतवाला, १६ फरवरी, १९२४, पृ० ४३३
२- ,, पृ० ५८
३- मतवाला, अंक ४७, १६ जुलाई'२४ में अन्तिम पंक्तियाँ इस रूप में उपलब्ध हैं:--

(अगले पृष्ठ पर देखें)

बंगाल भर में प्रसिद्ध और लोकप्रिय है, अंग्रेजी ढंग पर निर्मित है ,पर उसे कम भारतीयता नहीं दिया गया है[1]। "निराला" की प्रकाशित प्रथम कविता "जन्मभूमि" इसी स्वर में है।

"निराला" का अभिमत है कि स्वर-मैत्री के विचार से रवीन्द्र का स्वर डी०एल०राय के स्वर की अपेक्षा और स्पष्ट साफ अंग्रेजीपन लिए हुए है और उनकी अदायगी भी अंग्रेजी ढंग की है। राग-रागिनियों में उनकी बंधी रचना भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रभाव का द्योतक है, यद्यपि वहाँ भी उन्होंने स्वतन्त्रता ली है और भाव-प्रकाशन के अनुकूल स्वर-विभेदों का प्रयोग किया है, जिसके कारण उनका स्वरूप शुद्ध न रहकर मिश्र हो गया है। भाव-प्रकाशन का उनका ध्येय भी "निराला" के अनुसार पश्चिमी संगीत-बोध से अनुकूलता रखता है[2]। स्वयं भाषिक आधार द पर चलने वाला उनका "मुक्त गीत" इसी शैली का है।

रवीन्द्र ने मुख्यतया तो ध्रुपद और धम्मार की रचना की और उनके अर्थों की रक्षा करते हुए उनमें सौन्दर्य तत्व का सन्निवेश किया है। ध्रुपद रचनाओं का स्वर-सामंजस्य मधुर और गति गंभीर एवं संयत है। इस शैली में उनकी प्रकृति सम्बन्धी रचनाएं भी आती हैं। रवीन्द्र के धम्मार अपनी त्वरा और द्रुत गति

(पिछले पृष्ठ की टिप्पणी संख्या ३ का अवशिष्टांश और ४)

यमुना की ध्वनि में
आज भी है गूंजती सुहाग-भरी
सुनता है अन्धकार खड़ा चुपचाप जहां ?
आज संगिनी और कल्पना कामिनी के
संगम पर खड़ी हुई
सिखाता था कलेजा जहां
प्रिय-वियोग-विधुरा का ? --

पथ में भी आशा का मिलती है,समाचार,
टपक पड़ता था जहाँ आंसुओं में सच्चा प्यार ? --

४- टैगोर और निराला ,पृ० १६८, १६६, ६७, ६७८

१- गीतिका की भूमिका,पृ० १०-११

२- ,, ,, पृ० ११, प्रबन्ध प्रतिमा,पृ० २२१

की दृष्टि से विशिष्ट है। उस काल में अप्रचलित कतिपय ध्रुपदों की रचना भी आपने की और टप्पा-शैली की रचनाएं अपनी गरिमामयी अलंकरण पद्धति की दृष्टि से श्रेष्ठ है। रवीन्द्र के प्रारम्भिक संगीतों में भक्तिपरक उनका ब्राह्म अथवा धर्म संगीत उल्लेखनीय है, जिसमें प्रिय-प्रिया का श्रृंगार-भाव भी आ जाता है। उनके ऋतु-संगीत में उनका 'वर्षा-मंगल' और 'वसन्त उत्सव' उल्लेखनीय है। स्वदेश-संगीत, लोक संगीत और विशेष उत्सवों के संगीत भी रवीन्द्र ने रचे। उनकी तालगत अद्भुत परिकल्पना भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि उन्होंने कुछ ऐसी तालों की संरचना की जो शास्त्रीय संगीत के विशारदों के लिए अज्ञात थीं[1]।

'निराला' के गीतों का प्रथम संग्रह 'गीतिका' है, जिसमें अपने गीतों के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने का प्रयास उन्होंने किया है और दो-एक जगहों को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह संगीत के छन्द शास्त्र की अनुवर्तिता की है। भाव प्राचीन होने पर भी अपना प्रकाशन का ढंग नवीन लिए है, जो इस क्षेत्र में हिन्दी के नहीं है। ताल प्राय: सभी प्रचलित उन्होंने ली है जो उनके अनुसार प्राचीन रंग   रहने पर भी नवीन कण्ठ से नया रंग पैदा करेंगी[2]। पत्रिकाओं में गीतिका के जो नव गीत प्रकाशित हुए थे, उनमें से कुछ में उन्होंने राग-रागिनियों और तालों का उल्लेख किया था, परन्तु गीतिका में भूमिका के अतिरिक्त कहीं भी राग अथवा ताल गीतों के साथ नहीं दिया गया है। असावधान परिस्थिति के ही कारण गीतों की स्वर लिपि स्वप्नमात्र रह गयी और गीतों की उनकी कैफियत उनके सुहृद जनों तक ही परिमित रह गयी[3]।

गीतिका के गीतों में मुख्यरूप से कुछ तालों का प्रयोग किया गया है -- धम्मार--१४ मात्रा(५।२।३।४), रूपक--७ मात्रा(३।२।२), झपताल

१- अमृत बाजार पत्रिका, ८ मई ६६

२- गीतिका की भूमिका, पृ० ११-१२

३- 'गीतिका' [illegible] भूमिका, पृ० [illegible]

१०मात्रा (२।३।२।३), चौताल--१२ मात्रा(२-२ मात्रा के ६ विभाग,यही ध्रुपद की ताल है) ,तीनताल--१६ मात्रा(४-४ मात्रा के ४ विभाग) और दादरा --६ मात्रा(३-३ मात्रा के दो विभाग) । आड़ा चौताल आदि कुछ तालों की पूर्ति समय मिलने पर बाद में करने का आश्वासन भी यहाँ है; प्रचलित कुछ तालों से समन्वित आधुनिक गीतों का संग्रह `अर्चना` उसी अभाव की पूर्ति है[1]। `आराधना` और `गीतगुंज` में भी बेला की पुरानी शैली और अणिमा के गीतों से नितान्त भिन्न संगीत--शास्त्र पर आधारित विविध गीत उन्होंने लिखे और खड़ी बोली के संगीत-शास्त्र को बहुमुखी बनाने के उद्देश्य से गीतों के विधान में आमूल परिवर्तन[2] भी किया । गीतिका में `निराला` ने उस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है कि आज संगीत में जितनी मुख्य तालें प्रचलित हैं, वे प्राय: सभी `गीतगोविन्द` में हैं, और यह रचना संस्कृत में होने के कारण ताल सम्बन्धी एक मात्रा की भी घट-बढ़ उसमें नहीं है[3]। स्पष्ट है कि संगीत अथवा ताल के क्षेत्र में रवीन्द्र की अपेक्षा जयदेव और उनका `गीत गोविन्द` भी `निराला` का प्रेरणा स्रोत रहा है ।

अपने गीतों में स्वर के विस्तार की अपेक्षा का `निराला` ने उल्लेख किया है । स्वरचित मल्हार का उदाहरण देकर उन्होंने बताया है कि उसके अन्तरे में विशेषता है । `रमेह झीम-झीम` और `बहु अभिराम-प्रीत` -- पहली और तीसरी इन पंक्तियों में मात्रा भरने वाले शब्द इसलिए कम हैं, क्योंकि वहाँ स्वर का विस्तार अपेक्षित है । इस घट-बढ़ को वे पुराने उस्तादों के गीतों से भिन्न प्रकार का कहते हैं, जो संगीत रचना की कला में नया है । उन्होंने यह भी बताया है कि रूपकताल के कई गीत गीतिका में हैं, जिसमें अभी तक रचना नहीं हुई है । छह मात्रा की दादरा ताल में जो गीत हैं, उनमें भी मात्राओं की

१- गीतिका की भूमिका,पृ०१७, अर्चना का `स्वयोक्ति`,पृ०५

२- गीत गुंज,द्वि०सं०,प्रस्तावना,पृ० २५,२७

३- गीतिका की भूमिका,पृ०८

पुति स्वर-विस्तार से होती है[१]।

'निराला' के संगीत-प्रेम के सम्बन्ध में डा० शर्मा ने बताया है कि उनका विशेष विरोध भातखण्डे पद्धति से था[+]। उन्हें गज़लें गाने का शौक था, महादेव बाबू से उन्होंने उर्दू की काफी गज़लें सुनी थीं। रवीन्द्र के गीत में वे टैगोर स्कूल की अदायगी से भिन्न अपने सुन्दर ढंग से गाया करते थे। ताल देने में उनकी तन्मयता छंद-शास्त्र में नित्य प्रयोग करने के कारण आश्चर्य जनक नहीं था। उनके गाने की विशेषता बताते हुए डा० शर्मा कहते हैं कि 'उसमें शब्दों के स्वर-सौन्दर्य की पूर्ण प्रसार मिलता है। विशेष रूप से उनके अपने नए गानों में इस तरह का स्वर सौन्दर्य प्रचुर मात्रा में है ' भातखण्डे स्कूल के गायक इस स्वाभाविक स्वर-गायक प्रवाह के सौन्दर्य की रक्षा करने में असमर्थ रहते हैं। गायन के समान कविता-पाठ में उनकी सफलता का कारण भी डा० शर्मा ने स्वर का सहज रूप में पूर्ण प्रसार बताया है[२]।

'निराला' की गीतिका संगीत-विषयक रवीन्द्र की प्रेरणा का विशद् आख्यान है। ध्रुपद और धम्मारों की रचना, ध्रुपद शैली में प्रकृति-गानों का सृष्टि अथवा शृंगार का अभिव्यक्ति इसकी पुष्टि करती है। श्री अवधप्रसाद ने तो संगीत की भाव और गति का उद्रेक कराने वाली ब्रजभाषा की स्वर साधना को स्पष्ट छाप 'निराला' पर देखी है और समर्थन के लिए स्वामी प्रज्ञानन्द का मत भी उद्धृत किया है[३]। गीतिका के ऋतु-गीत अथवा लोक संगीत की शैली पर लिखे गीत भी रवीन्द्र के साथ प्राचीन परम्परा की उपेक्षा न करने की प्रवृत्ति के परिचायक हैं। 'निराला' में हमें केवल ख्याल और टप्पा शैली की रचनाएं नहीं मिलतीं। कदाचित् इसका कारण यह है कि शास्त्रीय संगीत का 'निराला का ज्ञान परिमित था,

---

१- गीतिका की भूमिका, पृ०१३, २६-२७

+-- माधुरी, अगस्त ३५, पृ० ११२-१५ निराला का स्वकीया लेख।

२- 'निराला', पृ० २६-२७, २८

३- टैगोर और निराला', पृ०६१- -६६, संगीत रवीन्द्रनाथ, पृ०४८ "प्राचीन हिन्दी ध्रुपद की धामारगानेर अनुकरण करे ज्योतिरिन्द्रनाथ प्रभृतिर मतो रवीन्द्रनाथ अनेक गान रचना करे छिलेन।" -- स्वामी प्रज्ञानन्द

और भातखण्डे स्कूल से उनका विरोध था। ध्रुपद और धम्मार अपनी गंभीरता और ओज के कारण उनकी प्रकृति के अनुकूल थे ही। संगीत के क्षेत्र में "निराला" ने जिस नई परम्परा का सूत्रपात किया है, उसकी प्रेरणा निस्संदेह उन्हें रवीन्द्र के संगीत से ही मिली थी। श्री धनन्जय वर्मा ने उनके संगीत की उपलब्धि के सम्बन्ध में उचित ही लिखा है -- "यदि स्वर-विस्तार में भाव और काव्य की रक्षा हो सके तो वह एक अनुपम उपलब्धि मानी जानी चाहिए। "निराला" की उपलब्धि यही है,[1]" जिसे प्रचलित नामावली के अभाव में उन्होंने "निराला" संगीत काव्य" कहा है। रवीन्द्र में संगीत और काव्य दोनों की कला अपने श्रेष्ठ रूप में मिलती है,[2] यह "निराला" ने उनकी उपलब्धि बतायी है, स्वयं अपने गीतों के सम्बन्ध में उनका अभिमत गीतिका में उनकी इसी उपलब्धि का संकेत है।

"निराला" की इसी उपलब्धि में उनके गीतों की लघुतर सफलता न होने का कारण भी मिलता है, गीतिका और अर्चना दोनों में स्वयं कवि ने यह स्वीकार किया है। ब्रजभाषा के पद गाने वालों के लिए साफ उच्चारण से इन गीतों को ^जाना^ मार्जन के अभाव में असम्भव था; इस असमता का कारण उन्होंने पहले ही समझ लिया था। खड़ी बोली में जिस उच्चारण संगीत के भीतर से जीवन की प्रतिष्ठा का स्वप्न "निराला" ने देखा था, वह ब्रजभाषा में नहीं; गीतिका की इस स्थापना का स्पष्टीकरण उन्होंने अर्चना में ब्रजभाषा संगीत में "सा" और "ना" के भिन्न उच्चारण न होने और खड़ी बोली में उसकी विपुलता बताकर किया है। अर्चना के गीतों में यथाशक्ति सुरचित शब्दों की शृंखला रखी गयी है, जो सहज ही उच्चरित हो जाय, जिससे अकृत्रिम आधुनिक गीतों की मैत्री और स्वर-कम्पन प्राचीन हृस्वोच्चारण की दीवारों को पार कर अपनी सरसता पर आसीन हों।[3] "आराधना और गीत गुंज अर्चना की परम्परा की ही कृतियां हैं।

१- निराला : काव्य और व्यक्तित्व, पृ० ११८
२- रवीन्द्र -कविता-कानन, पृ० १४१
३- गीतिका की भूमिका, पृ० १८, अर्चना, पृ० ५-६

काव्य-कला की दृष्टि से "निराला" में रवीन्द्र की प्रखर अवलोकन-शक्ति, भावों की व्यंजना में समर्थ उनकी भाषा और छन्दों की महत्ता को असंदिग्ध और निर्विवाद कहा है। "निराला" में एक तो अभिव्यंजना--जिसके अन्तर्गत भाषा के समस्त रूपगत अर्थात् शब्द-वर्ण-योजना एवं लय, छन्द का तत्व तथा अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शक्तियों द्वारा नियोजित अर्थगत सौन्दर्य समाहित होते हैं- और दूसरे रूप योजना-- जिसमें कल्पना प्रसूत छवियाँ, बिम्बों और प्रतीकों की गणना होती है - के क्षेत्र में रवीन्द्र से प्रेरणा ली है।[1]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने "निराला" की काव्य भाषा का एक स्रोत रवीन्द्र को माना है। विशेषतः भावों द्वारा ध्वनित होने वाली सांगीतिक ध्वनियाँ, अनुप्रास और यमक-यमक और उनके अनुसार रवीन्द्र की काव्य भाषा के आधार पर सज्जित है। मुक्त छन्द की लम्बी तुकान्तहीन रचनाओं के बीच में मिलने वाला तुकान्त भी रवीन्द्र की विशेषता है। रवीन्द्र की भाषा की दूसरी विशेषता और उनकी लोकप्रियता का कारण जन भाषा के ठेठ प्रयोगों की बहुलता का उल्लेख कर वाजपेयी जी ने "निराला" की "उन्माद" कविता को लिया है। शब्दावली और पद-विन्यास की दृष्टि से "निराला" की काव्य-भाषा के जिस रूप में संस्कृत और हिन्दी का प्रभाव समानान्तर परिलक्षित होता है, वहाँ संस्कृत पक्ष पर तुलसी का और हिन्दी की उक्तियों और व्यंजनाओं पर रवीन्द्र की प्रेरणा आचार्य वाजपेयी ने देखी है।[2]

शब्दों की ध्वनि पर "निराला" के असाधारण अधिकार का उल्लेख कर डॉ० रामविलास शर्मा ने तुकान्तों के क्षेत्र में अनुप्रास डालने और यति के बराबर घटाकर छन्द में नया प्रवाह पैदा करने की विशेषता की और हमारा

१- कवि निराला : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० १०२, १०३, १०४
२- ,, पृ० ८८, ६४, ६५

ध्यान खींचा है । मुक्त छन्द के आधार- चरण की आवृत्ति से उसमें आन्तरिक एकता का उद्भव और पूर्व अवहेलना से लय-सौन्दर्य का विनाश होता है । लय की विविधता के लिए विराम स्थल का निरन्तर बदलना आवश्यक है और लय का यह परिवर्तन भावानुगामी होता है । 'निराला' इसे 'ध्वनि' का आवर्त कहते थे, पर यह कला डा० शर्मा के अनुसार उन्होंने तुलसीदास से सीखा था[१]।

छंदोबंधन में लय-मय विराम देकर स्वर व्यंजनों की आवर्तमयी कल्लोल ध्वनि-- जो तुलसी और रवीन्द्र से भी अछूती नहीं रही है -- के सन्दर्भ में आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री ने पंडितराज जगन्नाथ का नाम सबसे पहले लिया है और उन्हें ही इस सूक्ष्म सौन्दर्य का पहला पारखी माना है । इस शब्द-बंध को वे 'महज अनुप्रास न कहकर सौन्दर्य के ही अम्बुधि की स्वर्णाभ तरंग' कहते हैं[२]। 'निराला' में भी यह कला उपलब्ध है ।

कौशल अभिव्यंजना और शिल्प- की दृष्टि से 'निराला' की पहली रचना 'जुही की कली' की महत्ता का कारण बताते हुए कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने प्रारम्भिक काव्य-प्रेरणा के लिए रवीन्द्र के नए युग के सौन्दर्य-बोध से परिष्कृत और भाव-संकुल वातावरण मिलने का उल्लेख किया है । 'निराला' के मुक्त छंद पर, जिसका प्रेरणा-स्रोत वे निश्चित रूप से बंगला-छंदों को मानते हैं -- रवीन्द्र के अपार मार्मिक संगीत का प्रसार एवं शब्दचयन बोध उन्हें दृष्टिगत होता है[+]। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि 'लता मुकुल हार गंध-भार भर, बही पवन बंद मंद मंदतर, जैसी सौन्दर्य संभार से झुकी पंक्तियों की शब्द-योजना पर यद्यपि रवीन्द्र की छाप है, पर निखरी वह 'निराला' की बनकर है[३]।

१- निराला, पृ०१६८, १६०-१६१

२- साहित्य दर्शन, पृ० १६७

+-- निराला और पंत की मुक्त छंद विषयक परिकल्पना में अन्तर है, जिसका विवेचन आगे विद्रोही दृष्टिकोण में किया जायगा । 'निराला' उसे 'मुक्त गात' कहते हैं, उसे पन्त जी ने 'मुक्त छंद' कहा है ।

३- छायावाद पुनर्मूल्यांकन, पृ० ६०-६१, ६३

निष्कर्षत: कहा जासकता है कि भावना और अभिव्यंजना दोनों क्षेत्रों में "निराला" ने रवीन्द्र से प्रेरणा ग्रहण की है; भावना की दृष्टि से अवश्य प्रेरणा का यह स्रोत सीमित है, परन्तु अभिव्यंजना की दिशा में निस्संदेह रवीन्द्र की प्रदेय प्रभूत है। "निराला" का विद्रोही दृष्टिकोण उनकी मौलिकता को अक्षुण्ण रखता है, यहाँ यह भी स्मरणीय है। रवीन्द्र के प्रति उनकी दृष्टि आलोचक की और अस्मिता प्रबुद्ध रही है-- यही कारण है कि रवीन्द्र की प्रशंसा के साथ उनका विरोध भी "निराला" के लिए उतना ही प्रेरणाप्रद रहा है, जितनी उनकी प्रशंसा। परन्तु फिर भी रवीन्द्र "निराला" की प्रेरणा का मूल स्रोत नहीं बन सके हैं, क्योंकि "निराला" को वही कवि पूर्णत: प्रभावित करता है, जो ज्ञानी अथवा सन्यासी हो; दूसरी ओर ज्ञान और सन्यास की अवधारणा करने के साथ कला विषयक श्रेष्ठता भी हम संलग्न पाते हैं। ज्ञान के साथ भाव की यह उच्चता "निराला" के लिए अलभ्य ही रही है-- अत: प्रेरणा के हमारे विविध स्रोत इस सीमा का स्पर्श करने वाले हैं। रवीन्द्र से गृहीत प्रेरणाओं में युग-पथप्रवर्तन उल्लेखनीय है, जो अपने में अभिव्यंजना और भावना सब को समाहित करके चला है-और जिसे "निराला" ने अपने विद्रोह द्वारा विशिष्टता प्रदान की है।

-0-

चतुर्थ अध्याय

-0-

तुलसीदास, हिन्दी-कविता और संस्कृत काव्य-धारा: प्रेरणा-स्रोत

चतुर्थ अध्याय

-0-

तुलसीदास, हिन्दी-कविता और संस्कृत काव्य-धारा : प्रेरणा-स्रोत

तुलसीदास और प्राचीन हिन्दी कविता

'निराला' के सन्दर्भ में श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द एवं रवीन्द्र ठाकुर के इन उभय प्रेरणा-स्रोतों पर विचार करने के उपरान्त हम हिन्दी और संस्कृत की समृद्ध साहित्यिक परम्परा पर आते हैं, 'निराला' के काव्य के प्रेरणा-स्रोत में जिसका अन्यतम एवं उल्लेखनीय स्थान है। इसके अन्तर्गत तुलसीदास, ब्रजभाषा और संस्कृत कवियों से प्राप्त प्रेरणाएं आती हैं, जिनका विवेचन ठाकुर से प्राप्त प्रेरणाओं के समक्ष लगभग उपेक्षित-सा रहा है। यह तथ्य इस दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है कि विवेकानन्द की आध्यात्मिक अथवा रवीन्द्र की साहित्यिक कृतियों से परिचय प्राप्त करने के पूर्व ही घर की संस्कृति, अपनी प्रवृत्ति और रुचि के अनुकूल तुलसीकृत रामायण, ब्रजभाषा एवं संस्कृत, इन विषयों का अध्ययन-अनुशीलन 'निराला' ने किया था, जो संस्कार अथवा प्रकृति रूप से उनमें दृढ़ हो चुका था।

'निराला' का जन्म पुरानी संस्कृति की गहरी छाप लिए एक ऐसे परिवार में हुआ था, जहां महावीर के प्रति अगाध श्रद्धा थी[१]। अपने यहां की संस्कृति के अनुरूप बचपन से संतों की सूक्तियों पर भावित करते हुए विशेष-रूप से ईश्वरानुरक्त होने और भिन्न-भिन्न रूपों की प्रकृति को देखते रहने से

१- 'निराला', पृ० ३७ : डा० रामविलास शर्मा

स्वभावत: जाति के कारण-कारण भगवान पर भावना बंधने का उल्लेख स्वयं कवि ने किया है[1]। 'कुल्ली-भाट' लिखते हुए साधु वाले प्रसंग में तो 'निराला' ने स्पष्ट लिखा है -- 'साधु और है, मैं महावीर को अधिक प्यार करता था, राम को कम[2]।' 'भक्त और भगवान' में भी वे लिखते हैं कि महावीर जी की सुन्दर मूर्ति देखकर भक्त को 'तुलसीदास की याद आई। महावीर जी, तुलसीदास जी और श्री रामायण से हिन्दी-भाषी पठित हिन्दु-मात्र का जीवन सम्बन्ध है। मन सोचने लगा तुलसीदास की सिद्धि के कारण महावीर जी हैं।' पत्थर की उस मूर्ति पर प्राणों का मुग्ध होना उनकी दृष्टि में एक 'मुर्दा' संस्कार था,' जिसे अभाव के लोग आज सुसंस्कार कहते हैं, सुन्दर भारत के निर्माण के लिए प्रयत्न पर हैं[3]।' 'निराला' का शब्द-चित्र अंकित करते हुए डा० शर्मा की पंक्तियों में इसी संस्कार का संकेत हमें मिलता है। आपने लिखा है -- 'बैसवाड़े के किसान की रूढ़िप्रियता, धार्मिकता भी उसमें है। सामाजिक उच्छृंखलता के होते हुए भी 'निराला' घोर धार्मिक व्यक्ति हैं, और उसके व्यक्तित्व को किसी ओर से खतरा है, तो धर्म की ओर से[4]।'

'भक्त और भगवान' कथा में ही 'निराला' ने महावीर की सेवा के लिए उन्हें रामायण पढ़कर सुनाने की बात लिखी है, परन्तु 'रामायण के ऊँचे गूढ़ अर्थ अभी मस्तक में विकास प्राप्त नहीं कर सके[5]।' यह भी उन्होंने बताया है। यहाँ महिषादल में स्वामी प्रेमानन्द को -- जिनमें श्री महावीर, उनके राम, देवी और समस्त देव दर्शन समाकुल हो गए थे -- रामचरितमानस से सुतीक्ष्ण की कथा का पाठ कर सुनाने और फिर महावीर की वीर मूर्ति में भारत को साक्षात करने के बाद स्वामी प्रेमानन्द जी की प्रशान्त मूर्ति के भक्त के सुन्दर

१- 'चतुरी चमार', पृ० ५८,७१
२- 'कुल्ली भाट', पृ० ८०
३- 'चतुरी चमार', पृ० ७२
४- 'विराम-चिन्ह', पृ०८०
५- 'चतुरी चमार', पृ० ७७

की सेवा और उनका सिंह-विक्रम भाव था । मिशन के सन्यासी -- स्वामी प्रेमानन्द और सारदानन्द तो उन्हें महावीर का अवतार ही कहते थे । इन सन्यासियों के सम्पर्क में आकर तुलसीदास और उनकी रामायण के प्रति "निराला" की निष्ठा भावना को और भी दृढ़ आधार मिला, रामायण के जो ऊंचे गूढ़ अर्थ पहले अस्पष्ट थे,इस सम्पर्क से स्पष्ट हो गए और यही कारण है कि "निराला" केवल सन्यासी को ही ज्ञानी मानते हैं । मात्र रामचरितमानस के विवेचन के आधार पर ज्ञानी रूप से तुलसीदास की "निराला" द्वारा प्रतिष्ठा का रहस्य भी यहीं निहित है, जिनकी भारतीय संस्कृति से "निराला" जी का मन आच्छादित रहता था । स्मरणीय है कि रामचरित मानस का गेय पाठ "निराला" की प्रेरणा का सक्रिय स्रोत रहा है , रामायण के प्रति उनकी उस स्नेह-भावना को विकसित करने में उनकी पत्नी मनोहरा देवी का प्रमुख हाथ रहा है , जिनका गाया"साहित्यिक गीतों का शिरोभूषण" तुलसीदास का "श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भव भय दारुणम्"-- भजन वे आजीवन नहीं भूले थे ।

यद्यपि "निराला" ने अपने दार्शनिक और साहित्यिक दोनों प्रकार के निबन्धों में यत्र-तत्र तुलसी का उल्लेख किया है, परन्तु स्वतन्त्र रूप से कुल मिलाकर उन्होंने तुलसी और उनकी रामायण पर पांच लेख लिखे हैं । "समन्वय" के नवम अंक में प्रकाशित "तुलसीकृत रामायण में अद्वैत तत्व" तुलसी और रामायण पर उनका पहला निबन्ध था । दूसरा लेख "ज्ञान और भक्ति पर गोस्वामी तुलसीदास"था जो समन्वय के द्वितीय वर्ष के पंचम अंक में निकला था ।" विज्ञान और गोस्वामी तुलसीदास" शीर्षक तृतीय निबन्ध समन्वय के छठे वर्ष के आठवें अंक में छपा था । इसके पहले ही अप्रैल"२३ की माधुरी में "तुलसीकृत रामायण" का आदर्श "निराला" बता चुके थे । तुलसी और रवीन्द्र इन दो महाकवियों पर उनका तुलनात्मक लेख सन् २६ के "मतवाला" में छपा था । तुलसीकृत रामायण पर उन्होंने काफी लम्बे अन्तराल के उपरान्त १४ अप्रैल ४६ के "वैशदूत" में भी लिखा था । इस श्रृंखला की अंतिम

कड़ी ६ अगस्त ५६ की अर्पित "तुलसी के प्रति श्रद्धांजलि" है ।

इन लेखों के अतिरिक्त तुलसी पर स्वतन्त्र रूप से "निराला" ने सन् ३५ में १०० छंदों का एक प्रबन्ध काव्य लिखा था, जो फरवरी से जुलाई तक के सुधा के अंकों में निकला था । यह काव्य तुलसी के प्रति "निराला" की भावसिक्त दृष्टि का सर्वोत्कृष्ट प्रभाव होने के साथ कवि की सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति भी है । इस काव्य की रचना के पूर्व "निराला" ने रामचरितमानस के कुछ अंशों की टीका और उसकी महत्वपूर्ण अन्तर्कथाएं लिखी थीं । इसका कारण "निराला" ने यह बताया है कि आज तक हिन्दी में रामायण पर उन्होंने जितनी भी टीकाएं देखी हैं, उनमें कोई भी टीका दमदार नहीं थी और यही कारण है कि साधारण मनुष्यों तक गोस्वामी जी का "अपार वेदान्त तत्व" नहीं पहुंचता है[1] । कवि-कृतियों में उनकी रामायण के उच्च स्थान की उचित रीति से आलोचना नहीं हुई है, इस सत्य की ओर "निराला" ने हमारा ध्यान अपने पहले ही लेख में आकृष्ट किया था । "निराला" कृत रामायण की इस सुबोध टीका को "बड़ी सजधज के साथ अनेक सादे और तिरंगे चित्र देकर" पूरी बीस खण्डों में निकालने का आयोजन श्री दुलारे लाल भार्गव का था, परन्तु कुछ ही खण्ड निकालने के उपरान्त उन्हें अपनी योजना सुलभ और सस्ती टीकाओं के कारण स्थगित कर देनी पड़ी । यह विवरण भार्गव जी ने सन् ४२ में प्रकाशित "निराला" की "रामायण की अन्तर्कथाएं" पुस्तक के प्रारम्भ में दिया है, जिसमें "केवल बालकाण्ड में प्रयुक्त अन्तर्कथाएं ही संगृहीत हैं" और उनका स्वागत होने पर अन्य के प्रकाशन का आश्वासन भी है ।

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय और श्यामसुन्दरदास जी ने भी रामायण की टीका का और गंगा पुस्तक माला से प्रकाशित टीका में "निराला" के नाम न होने का उल्लेख किया है । इस सम्बन्ध में जानकारी का आग्रह रखने वाले डा० शिवगोपाल मिश्र को भार्गव जी ने सूचित किया था कि भूलवश टीका में "निराला" का नाम नहीं दियागया । डा० मिश्र की यह साधारण

१-"प्रबन्ध प्रतिमा", पृ० १५१, माधुरी, १८ अगस्त,२३,पृ०५१

टीका "निराला" द्वारा रचित प्रतीत नहीं होती है[1]। डा० रामविलास शर्मा के अनुसार " रामायण की टीका के एक दो खण्ड भी निकले थे, तभी वैसे थे, उसके बाद वैसे को नहीं मिले[2]।"

राष्ट्रभाषा विद्यालय में रहते हुए सन् ४६-५० में "निराला" ने मानस के प्रारम्भिक कुछ अंशों का खड़ी बोली में अनुवाद भी किया था। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि इसकी "स्पिरिट और ढंग वही है, भाषा अपनी है" ब्रज और अवधी भाषा से अत्यल्प परिचित रहने वाले दक्षिण भारत के साहित्यिकों और विद्यार्थियों के अध्ययन की सुविधा और उपकार की दृष्टि से इस अनुवाद की आवश्यकता थी[3]। रामविलास जी इस पुस्तक को अनुवाद कहना इसलिए अनुचित समझते हैं, क्योंकि शब्द-रचना का मौलिक ढांचा गोस्वामी जी का होने पर भी खड़ी बोली के अधिक अनुकूल होने से वह मूल रचना से भिन्न भी है।" उनके अनुसार "उसकी सफलता को आंकने का एकमात्र उपाय यही है कि हम देखें कि उसे पढ़ने के बाद हम गोस्वामी तुलसीदास के अधिक निकट पहुंचे अथवा नहीं[4]।

इस अनूदित रामायण की प्रारम्भिक २२ पंक्तियां २ जुलाई सन ४६ के "देशदूत" में निकली थीं। आगे के कुछ अंश "शिव जी की बरात" तथा "शिव का ब्याह" "साधना" के प्रथम वर्ष के पहले चार अंकों में प्रकाशित हुए थे। "साधना" के पहले अंश में "शिव की बरात" के नीचे "निराला" ने नोट दिया था --" गो० तुलसीदास जी के रामचरितमानस का अनुवाद, आज की हिन्दी में। -- "निराला" "साधना" (१९४८) के प्रथम अंक में प्रकाशित इस रूपान्तर के अंश "निराला" ने आचार्य शिवपूजन सहाय को भेजे थे, जिन्होंने

१- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १४ अक्टूबर, १९६२, पृ०५२

२- डा० शर्मा से प्राप्त सूचना के आधार पर।

३- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ११ फरवरी ६२, पृ०३४, डा० शिवनाथ का लेख।

४- रूप रामायण (विनय खण्ड), भूमिका, पृ०६

अप्रैल ५६ के 'साहित्य' में शिव की बरात के वर्णन की कुछ पंक्तियां उद्धृत कर अन्त में लिखा -- 'रामचरित मानस की मूल पंक्तियों से मिलाकर देखने पर स्पष्ट ही अवगत होगा कि 'निराला' जी ने स्वल्प परिवर्तन के साथ उसका सरल, प्रवाहपूर्ण और प्राय: मूल सा लगने वाला रूपान्तर प्रस्तुत किया है।' खड़ी बोली में अनूदित यह रामायण राष्ट्रभाषा विद्यालय काशी से १६४८ में प्रकाशित हुई थी।[1]

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने 'निराला' की जिस 'फुलवारी लीला' कृति का उल्लेख किया, वह रामायण के धनुष-यज्ञ का अंश है, जिसकी पाण्डुलिपि पाण्डेय जी के पास रह गयी थी, यह 'निराला' ने डा० शिवगोपाल मिश्र से कहा था।[2]

गोस्वामी तुलसीदास के प्रति 'निराला' का दृष्टिकोण किस प्रकार का था, यह उन्होंने अपने प्रथम निबन्ध में ही स्पष्ट कर दिया है और यही मूल सूत्र उनके अन्य लेखों और 'तुलसीदास' काव्य ग्रन्थ में विकास को प्राप्त हुआ है। लेख के प्रारम्भ में ही तुलसी को प्राप्त करने के हिन्दी के सौभाग्य और उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'रामायण' जिसकी उचित रीति से समालोचना अभी तक नहीं हुई है, का उल्लेख कर 'निराला' की स्थापना है : 'रामायण के अर्थ-गांभीर्य, भाव-माधुर्य, श्रुति लालित्य और शब्द-योजना आदि काव्य-गुणों का ज्ञान, रामायण की श्रेष्ठता के अनुरूप, उसी को होगा जो स्वयं अच्छा कवि हो, अच्छा समालोचक हो, ईश्वरानुरागी हो और भव-बन्धनों से अलग हो।' देश के गुरु स्थानीय सन्यासी सेवकों से इस ओर ध्यान देने का उनका निवेदन है, क्योंकि 'गुसाईं जी के चित्त मन की मूर्ति रामायण है, उसकी आलोचना वही कर सकता है जो मनोरत्न का जौहरी हो।'[3] 'विज्ञान और गोस्वामी

१- साहित्य, वर्ष २०, अंक१, पृ० ६५

२- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १४ अक्टूबर, १६६२, पृ०५२

३- संग्रह, पृ० ६७

तुलसीदास" लेख में भी आपने यही लिखा है कि "निर्बोध आनन्दमय स्वामी जी के महाकाव्य में विलीन स्वरूप" में ज़रा देर ठहर कर नीचे उतरने पर ही उनकी मधुर भाषिणी कविता, उनके द्वारा चित्रित उन्हीं के मनोबिम्ब को समझा जा सकता है। जब तक हम उनके 'यथार्थ स्वरूप' "जिस मन की छाया रामायण है" उसे नहीं[1] पहचान सकते, हमारा "वह दर्शन, वह परिचय उनके सम्बन्ध में बिल्कुल अधूरा है।" "तुलसीकृत रामायण का आदर्श" बताते हुए भी "निराला" ने गोसाईं जी के साधना से प्राप्त अनुभव कूट-कूट कर रामायण में भरने के कारण उसमें "शब्द थोड़े, भाव गहन" होने का उल्लेख किया है जो "स्वभावतः समझ में जल्दी नहीं आते और उनके समझने में कोरी विद्या से काम नहीं चलता, कुछ साधन भी चाहिए[2]।" अर्थशास्त्र का सम्यक् ज्ञान होने पर ही तुलसीदास तथा अन्यान्य महाज्ञान पारंगत तपस्वियों की उक्तियों की व्याख्या समझ में आ सकती है, अन्यथा नहीं[3], यह उनका दृढ़ विचार था। स्पष्ट है कि रामायण जैसी आध्यात्मिक पुस्तक का पूर्ण अधिकारी "निराला" मात्र साहित्यिक को नहीं, सन्यासी को समझते थे, तुलसी उनके लिए साहित्यिक से पहले ज्ञानी-सन्यासी थे और "निराला" तुलसी को समझने वाले साहित्यिक सन्यासी थे।

इस प्रारम्भिक स्थापना के उपरान्त "निराला" ने रामायण के काव्य-गुणों पर विचार न करने का प्रमुख कारण बताया है-- उनका दुस्साहस की[4] कमी और, उसकी अतुलनीयता पर उनका दृढ़ विश्वास जिसके मूल में स्थित था। इसी भावना से प्रेरित होकर अपने एक अन्य निबन्ध में उन्होंने लिखा है : "हिन्दी के राष्ट्रभाषा का पद केवल रामायण ही को महत्व

१- संग्रह, पृ० २८-२६

२- माधुरी, १८ अगस्त, २३, पृ० ५२

३- चयन, पृ० १३५

४- संग्रह, पृ० १७-१८

दिखाने के लिए किया जायेगा । अथवा रामायण जिस मौन कर्म-वीर की अपूर्व कृति है, उसकी सत्ता को संसार में सुदृढ़ बनाने तथा महान धैर्य के साथ मौन कर्म की महत्ता को प्रकट करने के लिये हिन्दी को उक्त पद दिया जायेगा ।"[1]

"निराला" का यह निश्चित विचार था कि गोस्वामी जी जितने बड़े साहित्यिक थे, उतने ही महान आत्मद्रष्टा थे । यही कारण है कि उनके यथार्थ स्वरूप से परिचय के उपरान्त " हम उन्हें साहित्य-कला के ही पारंगत विद्वान् कहकर नहीं रह सकते, बल्कि इतना ही कहकर हम उनका अपमान करते हैं, तब हम उन्हें विज्ञान की चरम सीमा में पहुँचा हुआ अखण्ड वृत्ति महापुरुष कहते हैं ।"[2]

इस राम के महाकारण स्वरूप के दर्शन के उपाय को विज्ञान और दर्शक को विज्ञानी "निराला" ने कहा है ।[3]

रामायण को साद्यन्त सालंकार स्वीकार करने के साथ "निराला" ने उसके कठिन भावों का उल्लेख भी किया है । परन्तु "तुलसी महाकठिन होकर भी घर-घर अत्यन्त सरल कवि हैं । शृंखला के साथ पद-बंध, अनुप्रास, अलंकार, आदि श्रेष्ठ काव्य गुणों और उसकी लोकप्रियता का प्रधान कारण उसकी सरल, स्वाभाविक सुन्दर गति[4] का उल्लेख करते हुए "निराला" ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि "काव्य कला से कहीं बढ़कर उनके वे भाव हैं, जिनका जीवन के साथ, निम्नतम आदर्श से आरम्भ पर सर्वोच्च सीमा तक घनिष्ठ सम्बन्ध हो ।" रामायण में तुलसी की चिरकाल की निष्कपट तपस्या के जो दृश्य प्रदर्शित हैं, उनमें हमें गौतम, कपिल, जैमिनि, पतंजलि, व्यास और कणाद के दुर्बोध दर्शनों में भी कहीं मुश्किल से दर्शन मिलते हैं[5]।"

रामायण के काव्य-गुणों अथवा तुलसी की कला पर प्रकाश न डालने के "निराला" द्वारा दिए ये दो कारण उस महत्वपूर्ण तथ्य का

१- माधुरी, १८ अगस्त २३, पृ०५०

२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १५१

३- रंगरूप, पृ०२६

४- प्रबन्ध ~~प्रतिमा~~ पद्म, पृ०२५, ६४ ।   ५- माधुरी, १८अगस्त, २३, पृ०५१

विश्लेषीकरण है कि "निराला" की दृष्टि में "गोस्वामी जी सिद्ध पुरुष थे और सिद्ध वह है जिसने मनुष्य जीवन के वेद-सिद्ध सिद्धान्तों को अपनी साधना और प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा प्राप्त कर लिया है, जिसने जीवन और मृत्यु के प्रश्न को हल कर लिया है, जिसे मनुष्य जीवन की जटिल से जटिल हर एक समस्या का सामना करना पड़ा और अपने साधन-सामर्थ्य से उसके रहस्य का भेद समझाना पड़ा है।[1] "तुलसी ही एकमात्र ऐसे महापुरुष हैं, जिन्हें "निराला" ने श्री देव रामकृष्ण परमहंस के अतिरिक्त सिद्धिसम्पन्न अथवा अवतार-पुरुष स्वीकार किया है। पूर्ण ज्ञान की जिस अवस्था का निदर्शन परमहंस ने अपनी मौन समाधि द्वारा किया था, वही अंतिम लक्ष्य अथवा पूर्ण शक्ति श्रीमद्गोस्वामी जी का भी लक्ष्य था, जो स्मृति अथवा प्रतिबिम्बिता द्वारा साध्य नहीं, महाकवि ने उसी के लिए "जानत तुम्हहिं तुम्हहिं हुइ जाई" अथवा जो चेतन को जड़ चेतन करै जड़हिं करै चैतन्य कहा है। विज्ञान के सन्दर्भ में यही उत्तर, परमाणुओं के संघात से उत्पन्न शक्ति का नियामक कौन है-- इस प्रश्न का भी है। स्पष्ट है कि केवल तुलसी ही ज्ञान की कसौटी पर खरे उतरते हैं, और श्रीरामकृष्ण के समकक्ष स्थान पाने के अधिकारी हैं। "निराला" की इस मान्यता के मूल में उनके संस्कारों का --उनकी आस्तिक, दार्शनिक और विरोधी प्रवृत्तियों का सक्रिय सहयोग है।

तुलसीदास की केवल एक ही कृति "रामचरित मानस" के आधार पर "निराला" ने उनके ज्ञानी रूप अथवा काव्य के अंतिम प्रतिपाद्य को अपने विविध लेखों में स्पष्ट किया है। रामायण को वेदान्त ज्ञान का बड़ा रूपक मानते हुए "निराला" गोस्वामी जी को सिद्ध महापुरुष वाल्मीकि की परम्परा में रखते हैं, आत्मा और अनन्त का ज्ञान होने के बाद जिन्होंने रूप के भीतर से अरूप की व्याख्या की। रामायण के आध्यात्मिक विवेचन -- अध्यात्म रामायण -- का उल्लेख करते हुए "निराला" ने बताया है कि तुलसीकृत रामायण दोनों का मिश्रण है। इसीलिए वह जगह-जगह श्रीरामचन्द्र जी[3] को अनादि और अनन्त विभु कहते जाते हैं और सीता देवी को आदि शक्ति।" अपने पहले ही निबन्ध

१- चयन, पृ० १२६-१३०

२- संग्रह, पृ० ३०, ४६, ४६

३- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १५०-१५१

में उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि रामायण की भूमिका रामचरित मानस-सरोवर है इसे होता है, जिसमें उसके के चार घाट वेद निर्दिष्ट ईश्वर प्राप्ति के चार मार्ग-- ज्ञान,भक्ति,कर्म,योग हैं । इसके उपरान्त 'रूप प्रबन्ध' द्वारा योगियों के सात चक्रों का संकेत आगे है । 'ज्ञान नयन' का स्वागत गुसाईं जी करते हैं कि कुण्डलिनी शक्ति जब मूलाधार से चलकर अन्यान्य चक्रों को पार कर सहस्त्रार में लीन होती है, तभी ब्रह्मानन्द का अनुभव साधक को होता है[1]। गोस्वामी तुलसीदास के ज्ञान और भक्ति की विवेचना में भी 'निराला' ने यह स्पष्ट किया है कि उनका भीतरी भाव ज्ञान और भक्ति के ऐक्य का था । ज्ञान की आवश्यकता को वे छोड़ नहीं सके हैं, वरन् ज्ञान को ही भक्ति का प्रथम साधन बताते हैं और उसी को उन्होंने सर्वश्रेष्ठ भी कहा है[2]।

'निराला' के अनुसार ब्रह्म दर्शन के नाम के ध्यान बताते हुए भगवत्तत्व के पूरे पंडित गोसाईं जी मन को विक्षिप्त अवस्था से खींचकर, बहु वस्तुओं से उठाकर, नाम में सद्गुणों से पूर्ण केवल एक वस्तु में लगाने का उपदेश देते हैं । राजयोग की यह एक मात्र महत्वपूर्ण क्रिया है । इसका भी संबंध गोसाईं जी के 'नाम-निरूपण' और 'नाम-जतन' से हो जाता है । मन नाम रूपी विषय का अवलम्ब करके जब उसमें तन्मय हो जायगा, ज्ञान,ज्ञेय,ज्ञाता तीनों एक हो जायेंगे, तब 'एको ब्रह्म' स्वभावतः प्रकाशित होगा ।" मनुष्य स्वभाव के मर्मज्ञ होने के कारण ही तुलसी ने गृही जनों के लिए त्याग का मन्त्र न बता नर-रूप भगवान राम का आदर्श उपस्थित किया था, परन्तु योगियों का आदर्श श्रीराम का सच्चिदानन्द रूप ही था, जो उन्नति का चरम आदर्श है[3]।

तुलसी को ज्ञानी अथवा सिद्ध मानने का एक दूसरा पक्ष यह है, जहां 'निराला' उन्हें महापुरुषों की नहीं, स्यानों की आंख फैलाने के कारण तथा 'जवानी के आगमेश से, ज्ञानी अच्छी तरह होश आने से उम्र के सौ साल बाद अच्छी तरह होश आने तक उनमें पुरुषत्व की प्रधानता के कारण उनको

१- संग्रह,पृ०१८-१६, प्रबन्ध प्रतिमा,पृ० २५१-२५२

२- चयन,पृ०२८-३०-३१

३- माधुरी,१८ अगस्त २३,पृ०५३

'महापुरुष' नहीं 'पुरुष' की संज्ञा देते हैं[१]। रामायण का आदर्श बताते हुए जहाँ 'निराला' ने तुलसी की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है, वहाँ भी उनकी वही 'द्रष्टा की आंख' प्रदर्शित है। 'निराला' लिखते हैं --'भारत की वर्तमान परिस्थिति पर ध्यान दीजिए तो यह बात स्वतः सिद्धान्त के समान जान पड़ता है कि 'हिन्दू,हिन्दी,हिन्दुस्तान' का सबसे अधिक उपकार गोस्वामी जी ने ही किया है। अपढ़ जनता के मर्मस्थल को मानो वह जान गए थे। उनकी अन्तर्दृष्टि के निकट मानो भारत के भविष्य का रहस्य खुल गया था। वह समाज संचालन-क्रिया का पर्यवेक्षण करके समझ गये थे कि पतनोन्मुख हिन्दू जाति को उन्नतिशील बनाना अभी दुःसाध्य ही नहीं,असाध्य है। उसका गिरना,रोकना मानो उसे और भी गिराना है। यही कारण है जो गोस्वामी जी ने समय की प्रतीक्षा की, और भावी सन्तान को उपकामी करने के लिए रामायण के रूप में अपने श्रेष्ठ और अमूल्य विचार भारत को सौंप गए। उनकी गहरी विवेचन-शक्ति को सूचित हो गया था कि समय रामायण का सद्व्यवहार अवश्य करेगा[२]।' सन् २३ की इन पंक्तियों में हमें सन् ३५ के 'तुलसीदास' की रूपरेखा की झलक मिल जाती है, जहाँ 'निराला' ने कवि की प्रतिष्टा देश के जातीय,आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पराभव से मुक्ति दिलाने वाले मुक्त प्राण के रूप में की है।

डा० रामविलास के शब्दों में 'तुलसीदास' में 'निराला' जी ने इतिहास पर नई दृष्टि डाली है। मध्य काल में समाज का जो पतन हुआ और पतन में शूद्रों पर जो अत्याचार हुए, वह इस कथा की पृष्ठभूमि है। मूल चित्र गोस्वामी तुलसीदास के अन्तर्द्वन्द्व का है। 'तुलसीदास का युद्ध उनके पुराने संस्कारों और उस समय की दासता को अपनाने वाली संस्कृति से है। इस तरह तुलसीदास एक विद्रोही के रूप में आते हैं[३]। बद्ध संस्कारों की लहरों को पार करते हुए तुलसी के मन का ऊर्ध्वगमन 'परिमल' की दार्शनिक रचना 'जागरण' के भावोन्मयन के

१- कुल्ली भाट, पृ०२

२- माधुरी,१८ अगस्त २३, पृ०५०

३- निराला ,पृ०१०२, संस्कृति और साहित्य,पृ० १८३

समकक्ष है, जिसे बाजपेयी जी ने वास्तव में 'निराला' जी के अपने भावोन्नयन का भी सम्पूर्ण परिचय कहा है[1]। प्रेयसी और रेखा आदि रचनाओं में भी भावात्मक वही परिवर्तन अभिव्यक्त हुआ है, जिसका सीधा सम्बन्ध वेदान्त दर्शन से है।

चित्रकूट में प्रकृति-दर्शन से विस्मृत संस्कारों की जागृति पर भी कवि को यह प्रेरणा मिलती है कि वह अपनी साधना द्वारा जड़ प्रकृति का उद्धार उसी प्रकार करे, जिस प्रकार राम ने अपने स्पर्श से अहल्या का किया था। अहल्या के पाषाण-मूर्ति हो जाने की आख्यायिका के सम्बन्ध में 'निराला' का विचार है कि उसके अन्दर छिपे सत्य को महाकवि महात्मा तुलसीदास जानते थे, यद्यपि रामायण में उसी सत्य का विचारात्मक उल्लेख न कर उन्होंने ऐतिहासिक उल्लेख ही किया है, क्योंकि पौराणिक कथाओं पर विश्वास के उस युग में विचारात्मक प्रमाणों की आवश्यकता न थी[2]। परन्तु पश्चिमी शिक्षा से प्रभावित 'निराला' ने अपने युग के लिए 'तुलसीदास' में उस कथा के सत्य का विचारात्मक उल्लेख किया है। काव्य में सांस्कृतिक प्रतीक सुरक्षित रखने की कला में तुलसी के समकक्ष भारत का कोई कवि नहीं पहुंच सकता, कालिदास से तुलसी के संगम वर्णन को श्रेष्ठ बताकर 'निराला' ने यह कहा है[3]।

प्रकृति का सन्देश सुनकर ही तुलसीदास का मन सत्य की खोज के लिए ऊपर उठता है, जहाँ उसे भारत की तात्कालिक अवस्था, विशृंखल वर्ण-

---

१- कवि निराला, पृ० १४६

२- संग्रह, पृ० १४८ 'रामायण-रहस्य' नामक निबन्ध की अज्ञात लेखक की पाण्डुलिपि में मिली अहल्या शब्द की व्याख्या का उपयोग करते हुए रवीन्द्रनाथ ने लिखा है: "जो भूमि खेती के लिए अयोग्य होकर अहल्या अर्थात् पाषाण बनकर पड़ी थी, और इसी कारण दक्षिणापथ के प्रथम अग्रगामियों में अन्यतम ऋषि गौतम ने जिस भूमि को पहले ग्रहण करके फिर अभिशप्त समझकर छोड़ दिया था, उसी पत्थर को सजीव करके रामचन्द्र ने अपने कृषि-नैपुण्य का परिचय दिया था।"
-- रवीन्द्रनाथ के निबन्ध, भाग १, पृ० २२३-२२४

३- महाप्राण निराला, पृ० २०८ -- गंगाप्रसाद पाण्डेय

व्यवस्था और शूद्रों पर उच्च वर्ग के अत्याचार का ज्ञान होता है । भारतीय सभ्यता को वे इस्लाम की मोहमयी सभ्यता से आच्छादित देखते हैं; मुक्ति इसी के पार है । तुलसी की इसी चिन्तना में 'निराला' ने रामचरितमानस का संकेत भी किया है । अन्त्यजों के प्रति तुलसी का यह प्रगाढ़ स्नेह हृदय-धर्म की प्रबलता पर विकसित रामानुज के वैष्णव धर्म के कारण था, जिसके अन्तर्गत जाति-पाँति का भेद गुरु के यहाँ नहीं था, यद्यपि समाज में कदाचित् घृणाजन्य ही रहा[1] । मध्यकालीन समाज की इस मूल समस्या को तुलसी के सदृश 'निराला' भी पहचानते थे, उसी प्रकार जिस प्रकार अहल्या की कथा के रहस्य अथवा मर्म को उन्होंने पहचाना था । 'शिवा जी का पत्र' , 'राष्ट्रवादी उद्बोधन' आदि रचनाएं तथा हिन्दू समाज और वर्णाश्रम धर्म सम्बन्धी 'निराला' के निबन्ध भी उनके इसी अभिज्ञान के प्रमाण हैं, जहां उन्होंने जातीय जीवन की शक्ति का आह्वान किया है । 'शिवा जी का पत्र' और 'यमुना के प्रति' पर विचार करते हुए डा० रामरतन भटनागर ने लिखा है : " मध्ययुग को 'निराला' ने राजपूत जीवन के दुर्दमनीय शौर्य और उतनी ही कोमल सौन्दर्य और प्रेम की भावना से समझना चाहा है । उनके कतिपय निबन्धों में मध्ययुग के इतिहास का यही उभयनिष्ठ संस्कारी रूप है[2] ।"

'निराला' ने तुलसी के सम्बन्ध में मानस और उसके ज्ञानपक्ष को लेकर ही उनकी महत्ता का प्रतिपादन किया है, और उनके आत्म-निवेदन और वेदना आदि पर कुछ न लिखकर उनका जो एकांगी चित्र प्रस्तुत किया है, उसके मूल में निस्सन्देह रवीन्द्र से प्रतिस्पर्धा की भावना विद्यमान थी । तुलसी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए भी केवल 'निराला' ने उनकी 'विनयपत्रिका', 'कवितावली' और 'गीतावली' आदि श्रेष्ठ ग्रन्थ समूह का उल्लेख कर उन्हें सामाजिक चारुता लाने में कम सहायक नहीं कहा है । उनका विचार था कि 'काव्यजन्य भी तुलसीदास जी की सामाजिक कल्पना निष्प्राणशासनान्यास बलवत्तर है ।' उनका

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० २७५-२७६

२- 'निराला और नवजागरण', पृ० २५२

उनका मानना --' हिन्दी का यह आधुनिक कवि आधार है साधारण मनोरम गृह निर्माण का प्रौढ़ साहित्य रचना और शिक्षा के माध्यम से कर चुका है[1] प्रमाण है कि वे स्वयं भी तुलसी की परम्परा में ही अपनी गणना करते हैं। अन्त में समाज की अननुकूलता को साहित्य के आधुनिक विपर्यय का कारण बताते हुए उनका प्रश्न : 'अगर पुरातन ही ध्येय है तो एक प्रतिनिधि के विरोध के जवाब के लिए तुलसीदास जी के बाद किनारे खड़ा हुआ एक हिन्दी का प्रतिनिधि निम्न नामांकित विरोध कर रहा है और पूछता है कि इस प्रश्न का क्या जवाब दो तुम दोगे, तुम क्या मुझसे बड़ा निर्माण करा सकते हो ? इति।[2]' उपर्युक्त विचार का पोषक और अपनी प्रतिभा पर उनके दृढ़ विश्वास का सूचक है। रामायण की उचित समालोचना के लिए जब वे सन्यासियों का ध्यान आकृष्ट करते हैं, अथवा स्वामी शारदानन्द से जब वे बातचीत करते हैं, तब अपने को रामायण जैसी आध्यात्मिक पुस्तक पर लिख सकने की योग्यता का अधिकारी समझते हैं, अर्थात् 'निराला' भी अपने तुलसीदास की परम्परा के ही कवि हैं।

'निराला' के 'तुलसीदास' के सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है कि 'तुलसीदास में उन्होंने जिस व्यक्ति की कल्पना की है, वह 'निराला' के अधिक निकट है, तुलसीदास से कम।' 'निराला' और तुलसीदास के सांस्कृतिक साम्य का, एक की अनुभूति में दूसरे के सहज रूप से बंधे चले आने का उल्लेख भी वे करते हैं, साथ ही 'निराला' में अन्य विरोधी तत्वों के समाहार के कारण उनके व्यक्तित्व को उनके नायक से कहीं अधिक वैचित्र्यपूर्ण वे कहते हैं। उनका विचार है :'तुलसीदास महात्मा हैं, निराला में मनुष्यता अपने सभी गुणों के साथ वर्तमान है और इसीलिए वह हमारे अधिक निकट है[3]।'

विद्रोही 'निराला' तुलसीदास जैसे समन्वयवादी व्यक्तित्व को अपना आदर्श कैसे बना सके, इस प्रश्न का उत्तर डा० जगदीश गुप्त की 'निराला' की शक्तिप्रियता' में मिलता है। उन्होंने लिखा है --'राम की

१- चयन,पृ० १३३

२- ,, पृ० १३४

३- संस्कृति और साहित्य,पृ० २६२-२६३

शक्ति पूजा' के लेखक ने यदि रामभक्त तुलसी को 'सांस्कृतिक सूर्य' के रूप में प्रस्तुत किया तो आश्चर्य ही क्या है ? यह आर उसके पहले 'शालच्छाय विशेषण' लगाना भूल जाता तो मैं मानता कि उसके भीतर का ताप जवाब दे गया ।' 'राम' और 'तुलसी' दोनों के 'निराला' द्वारा प्रस्तुत रूपों में उनका निजी संवेदनशील एवं गरिमामय व्यक्तित्व कितनी मात्रा में अन्तर्निहित हो गया है, वह मर्मज्ञों से छिपा नहीं है[१]।' यह उल्लेखनीय है कि 'निराला' के आदर्श श्रीरामकृष्ण भी धर्म के क्षेत्र में समन्वयवादी दृष्टिकोण रखते थे, और उन्हीं की परम्परा में 'निराला' ने तुलसी की गणना भी की है ।'निराला' की शक्तिप्रियता का रहस्य भी यहीं निहित है ।

'गीतगुंज' के गीतों पर विचार करते हुए श्री सुधाकर पाण्डेय भी 'मूलतः विवेकवादी रहस्यवाद की लोकोपयोगी व्याकरण करने वाले समाज सुधारक कबीर की अपेक्षा 'निराला' के हृदय की साधनाओं को तुलसी की साधना परम्परा के विकास की कड़ी में रखना अधिक समीचीन मानते हैं । उन्होंने साथ ही यह भी निर्दिष्ट किया है कि तुलसी की सीमा मर्यादा थी, परन्तु हृदय में रूप सौन्दर्य रंजन पक्ष की रसात्मक प्रतिनिधित्व करने वाले तत्त्व जो सूर और मीरा की सम्पत्ति हैं, 'निराला' की काव्य-सीमा में जीवन के साथ घुल-मिल गए हैं[२]।

यों आम तौर से 'निराला' ने तुलसी के जीवन में अथवा उनकी कला के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है , परन्तु जहाँ उन्होंने रवीन्द्र और तुलसी इन दो महाकवियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है, वहाँ प्रसंगवश तुलसी की श्रेष्ठता के प्रतिपादन के लिए उनकी कला की विवेचना भी की है । रवीन्द्र के प्रति स्पर्धा की भावना से प्रेरित होकर ही उन्होंने इस तथ्य का प्रतिपादन किया है कि 'चित्र काव्य में महाकवि तुलसीदास की कुशलता भी ऊन नहीं ।' उनके चित्रों में 'रवीन्द्रनाथ के चित्रों से कहीं भी सौन्दर्य की

१- धर्मयुग, १२ फरवरी, १९६७, पृ० १९

२- गीत गुंज, प्रथम संस्करण, पृ०२०-२१-२२

कमी नहीं, न कला में, न कवित्व में, वरन् सहृदयता में भाव और बढ़े हुए हैं[1]।" तुलसी की काव्य कला के सम्बन्ध में उनका अन्तिम निष्कर्ष यह है : " इस तरफ से केवल काव्य के सौन्दर्य पर विचार करने पर तुलसीदास ही बड़े ठहरते हैं --भारतीय साहित्य में रवीन्द्रनाथ के सम्बन्ध में देखना पड़ता है कि भ्रम, त्रुटियां मिल सकती हैं, पर तुलसीदास के संबंध में कोई शायद ही मिले।" रवीन्द्र केवल साहित्य के महामान्य महाकवि हैं और तुलसी हैं साहित्य और तत्व - दर्शन दोनों के पारंगत महाकवि[2]।

सन् २६ में लिखे उपर्युक्त निबन्ध के पहले सन् २७-२८ में 'पंत और पल्लव' आलोचना में भी 'निराला' ने दृढ़ता के साथ यह स्वीकार किया था कि हर कृति में विकार हो सकता है, परन्तु 'अवश्य कबीर की या तुलसी की नहीं -- बाल्मीकि की या व्यास की नहीं, जिन्होंने आत्म-दर्शन के पश्चात् शुद्ध और प्रबुद्ध होकर 'एकमेवाद्वितीयम्' की आज्ञा मानकर रचनाएं की हैं[3]।' सन् २६ में जब उन्होंने त्रुटियां और भ्रम तुलसी के सम्बन्ध में कोई 'शायद' ही मिले लिखा, किंचित् संशय का आभास उन्होंने दिया था। सन् ३५-३६ तक आते-आते वे यह स्वीकार करने लगे थे कि दोषों की संभावना कबीर और तुलसीदास की कृतियों में भी है और ' मेरे गीत और कला' लेख में 'निराला' ने बिगड़े काव्य के उदाहरण में प्रथम कबीर और फिर तुलसी को लिया है[4]। यहां भी यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि केवल कला की दृष्टि से ही तुलसी यहां आलोचित हैं, उनके 'तुलसीदास' काव्य में तुलसी का ज्ञानी रूप पूर्ववत् अक्षुण्ण और समादरणीय 'निराला' की दृष्टि में है।

तुलसी के काव्य-कौशल के विवेचन में 'निराला' ने उनकी 'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।' आदि

१- संग्रह, पृ० १३६, १४५

२- ,, पृ० २५२, १५६

३- प्रबन्ध पद्म, पृ० १६५-१६६

४- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० २०७-२०८

पंक्तियाँ उद्धृत कर 'प्रथम पंक्ति के पद के आवर्त में कंकन-किंकिनियों का ध्वनित होना' और प्रेम के पावन रूप, रसिक दृष्टि की सुन्दर व्याख्या का उल्लेख किया है[1]। इसी प्रकार 'कोटि प्रकार कलाप कुटिलाई' तुलसी की इस पंक्ति के सम्बन्ध में वे लिखते हैं -- " कलाप" का सौन्दर्य,स्थान योग्यता और बल एक बहुत बड़े कलावन्त कवि का परिचय दे रहा है और इस तरह के भाषा-सौन्दर्य से रिक्त शायद ही तुलसीदास जी की कोई चौपाई हो[2]।'

तुलसी की 'केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहिं निवारई' पंक्ति उद्धृत कर डा० रामविलास शर्मा ने बताया है कि समान ध्वनियों की आवृत्ति से उत्पन्न ध्वनि-सौन्दर्य की यह कला 'निराला' ने तुलसीदास से ही सीखी है, जो उनके मुक्त और तुकान्त दोनों ही छंदों में प्रदर्शित है[3]। आपने ही इस और हमारा ध्यान आकृष्ट किया है कि "विरोधी आलोचकों ने बंगला और अंग्रेजी कवियों का प्रभाव जाँचने में जितनी तत्परता दिखाई है, उतनी घर के ही कवियों का वास्तविक प्रभाव देखने में नहीं[4]। मुक्त छन्द की लम्बी तुकान्तहीन 'निराला' की रचनाओं में अनेक स्थलों पर मिलने वाले तुकान्तों के प्रयोग को आचार्य वाजपेयी ने रवीन्द्र का प्रभाव और उनकी विशेषता कहा है[5], आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री ने इस संदर्भ में पंडितराज जगन्नाथ, तुलसी और रवीन्द्र तीनों का नाम लिया है[6]। सब मिलाकर शास्त्री जी ने 'निराला' की भाषा - संस्कृति को तुलसीदास, जिनकी भाषा भावग्राहिणी' से अधिक मेल खाने वाला कहा गया है[7]। तुलसी और उनकी रामायण से 'निराला' का परिचय और अध्ययन रवीन्द्र की अपेक्षा अधिक पुरातन और प्रगाढ़ था, अतः उनकी ध्वनि के आवर्त वाली कला का

१- संग्रह,पृ० १४३-१४४
२- ,, पृ० १४७
३- निराला ,पृ० १६१
४- रामायण (विनयपत्रिका) की भूमिका,पृ०६-७
५- कवि निराला ,पृ०८६
६- साहित्य दर्शन,पृ० १६७
७- महाप्राण निराला,पृ०१३६,३८ : गंगाप्रसाद पाण्डेय द्वारा उद्धृत ।

रवीन्द्र तुलसी को मानना अधिक समीचीन है। शब्द-चयन, छन्द और शिल्प की दृष्टि से अवश्य रवीन्द्र 'निराला' के प्रेरणा स्रोत रहे हैं, जिनकी शब्दों की शक्ति की परख को 'निराला' ने स्वयं स्वीकार किया है। 'निराला' की 'भाषा के असाधारण पारखी' थे, उनकी 'खूबियों और खामियों' पर उनकी सूक्ष्मदर्शिता विलक्षण थी, जिसका लोहा भाषा की बारीकियों की पहचान में दक्ष पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी भी मानते थे, इसका उल्लेख आचार्य शिवपूजनसहाय ने अपने संस्मरणों में किया है[1]।

तुलसी ने संस्कृत की शालीन पदावली का हिन्दी के देशज प्रयोगों के साथ मिश्रण किया था, जो उनकी भाषा का केन्द्रीय रूप था, यह आचार्य वाजपेयी ने लिखा है। तुलसी की यही सांस्कृतिक भाषा उनके विचार से 'निराला' की मुख्य काव्य-रचना का आधार थी। जनभाषा के ठेठ प्रयोगों की बहु संख्या को वाजपेयी जी रवीन्द्र की काव्य भाषा का गुण बताते हैं, जिसका प्रभाव 'निराला' पर भी पड़ा उन्होंने माना है, क्योंकि संस्कृत गर्भित पदावली के साथ लोक जीवन में व्याप्त ठेठ शब्दों का प्रयोग 'निराला' में भी मिलता है[2]। 'निराला' में लोक प्रचलित देशज शब्दों का व्यवहार रवीन्द्र नहीं, निश्चितरूप से तुलसी के अध्ययन और मानस के नित्य पाठ तथा उनके बैसवाड़ी संस्कारों और प्रकृति का योगदान था। आराधना के गीतों को देखते हुए जब 'निराला' से श्री विष्णुचन्द्र शर्मा ने 'आँचो' शब्द का अर्थ पूछा था, वे उन्हें 'विस्मय' से देखकर पूछते हैं--'तुलसीदास को कभी पढ़ा है?' और अर्थ बताते हैं आंचो माने आंकड़े, परीक्षा करो[3]।'

सन्यासी महाकवि तुलसीदास 'निराला' के आदर्श थे, इसमें कोई सन्देह नहीं। तुलसी का जो आदर्श और एकांगी चित्र 'निराला' ने प्रस्तुत किया है, उसके मूल में मिशन के सेवा और त्याग के सिद्धान्त के साथ रवीन्द्र के प्रति प्रतिस्पर्धा का भाव-- इन त्रिविध सूत्रों की स्थिति है। तुलसी के

१- वे दिन वे लोग, पृ०७८

२- कवि निराला, पृ०८९-९०

३- धर्मयुग, ७ फरवरी, ६५, पृ०१७

विरोध में 'निराला' ने कुछ लिखा हो, यह देखने में नहीं आता। यह तथ्य श्रीरामकृष्ण के सदृश तुलसी पर भी 'निराला' की प्रगाढ़ श्रद्धा और भक्ति-भावना का परिचायक है। यह सब होते हुए भी तुलसी 'निराला' की पूरी प्रेरणा नहीं बन सके हैं। इसका एकमात्र कारण यह है कि तुलसी में 'निराला' को वह शृंगार, वैभव और विलास नहीं मिला, जो कालिदास, रवीन्द्र अथवा पद्माकर की विशेषता थी। अपने सम्बन्ध से 'निराला' ने यह स्वयं लिखा है कि वे केवल ईश्वर के नहीं, सौन्दर्य, वैभव और विलास के कवि भी हैं, और कान्तिकारी भी।[1] शृंगार के संदर्भ में 'निराला' ने मुक्त कण्ठ से रवीन्द्र की श्रेष्ठता स्वीकार की है, यह हम देख चुके हैं, परन्तु वहां भी अपने आदर्श कवि की प्रतिष्ठा को उन्होंने आघात नहीं पहुंचाया है। रवीन्द्र के शृंगार और सौन्दर्य की सीमा मानवीय कामना तक मानकर उन्होंने तुलसी के आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए उनके दिव्य भावों का उल्लेख किया है। तुलसी 'मानव सौन्दर्य के साथ ही कुछ और देखते हैं, जिसे वे उस सौन्दर्य से अधिक महत्व देते हैं, उसी को श्रेष्ठ भी मानते हैं।'[2] इसका प्रमाण ऋषि-पत्नी का सौन्दर्य नहीं उनका अहल्या का चित्रण है, जिसमें उन्होंने भगवद्भक्ति का आभास देखा है। उनके राम चित्र, वह कितने ही सुन्दर क्यों न हों भक्ति के गुरु-भार से दबे रहते हैं, भरत के प्रसंग के उदाहरण द्वारा 'निराला' ने यह स्पष्ट किया है।

तुलसी के शृंगार-वर्णन के सम्बन्ध में 'निराला' ने पहले ही स्पष्टतः लिखा था : "साधारण नारी रूप का चित्रण जो गृहस्थों के सांसारिक रसों की तरह भोग्य हो, उन्होंने नहीं किया, शायद महात्मा होने के कारण शरीर संस्पर्श की ओर उन्हें बड़ा सतर्क दृष्टि रखनी पड़ी है। जब कभी इस तरह का संस्पर्श आया है, उन्हें उसे दिव्य रूप ही देना पड़ा है।"[3] इसका कारण

१- कुल्ली भाट, पृ०१००
२- संग्रह, पृ०१४८-१४६
३- ,, पृ० १३५

यह है कि दिव्य-भावना और कला, साहित्य और संगीत, जाति के जीवन और अनन्त को धारण करने के मूल आधार हैं, जिन कृतियों में दिव्य भक्ति का विकास हुआ है, वे जातीयता के विकास का यथार्थ मार्ग हैं और आदर्श कला से भी रहित नहीं हैं[१]।

स्पष्ट है कि ब्रजभाषा साहित्य के 'ज्ञान मिश्रित भक्ति-साहित्य'[२] के प्रणेता तुलसीदास के ज्ञान और भक्ति को जहाँ 'निराला' ने स्वीकार किया है और अणिमा एवं उसके बाद की रचनाओं में भक्ति के स्वरों का ही विस्तार किया है -- वहाँ सौन्दर्य-दर्शन की प्रारम्भिक प्रेरणा -- जो संस्कार रूप से उनमें दृढ़ हो चुकी थी -- के कारण शृंगार और सौन्दर्य भी उनके लिए त्याज्य नहीं है। यही कारण है कि तुलसी 'निराला' का आदर्श होते हुए भी उनकी पूरी प्रेरणा नहीं बन सके हैं।

प्राचीन-हिन्दी-कविता

तुलसी ब्रजभाषा के भक्ति काव्य के साथ 'निराला' ने उसकी दूसरी धारा शृंगार काव्य का अध्ययन भी किया था और बंगला कविता और रवीन्द्र की अपेक्षा उनका यह अध्ययन अधिक प्राचीन था। शृंगार की दृष्टि से ब्रजभाषा के कवियों में 'निराला' ने पद्माकर का उल्लेख किया है, जो उनके प्रिय कवि थे। प्रवेशिका परीक्षा में गणित की नीरस कापी को पद्माकर के चुहचुहाते कवितों से सरस कर देने का स्मरण उन्होंने 'सुकुल की बीवी' कथा में किया है[३]। सन् २८ के लगभग पद्माकर पर उन्होंने 'साहित्य-समालोचक' के लिए एक लेख भी लिखा था। उस लेख में 'निराला' ने उनके अनेक कवित्त उद्धृत करके उनकी प्रशंसा की थी और राजा की चाटुकारिता के लिए उनपर व्यंग्य भी किया था। यहीं 'निराला' ने यह भी बताया है कि पद्माकर की भाषा उन्हें पसन्द थी[४]। पद्माकर के प्रति

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०१४४

२- चयन, पृ०७१

३- सुकुल की बीवी, पृ०१५-१६

४- डा० रामविलास शर्मा से प्राप्त सूचना के आधार पर।

'निराला' की प्रीति के दो कारण डा० रामविलास शर्मा ने बताए हैं-- एक तो शृंगार वर्णन में उनकी सानुप्रास शब्दावली, शब्द चयन में माधुर्य के साथ ओज की यथेष्ट मात्रा उन्हें विशेष पसन्द थी और दूसरे पद्माकर के शृंगार-वर्णन की चित्रमयता कल्पनाशील 'निराला' का मन मोह लेती थी[1]।

पद्माकर के अतिरिक्त 'निराला' ने बिहारी का भी उल्लेख किया है, जो उनके लिए आलोच्य रहे हैं, प्रिय नहीं। सन् २४ में ही रवीन्द्र और बिहारी का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उन्होंने दोनों के शृंगार-चित्रण के चमत्कार दिखाये हैं। बिहारी के नायिका-भेद बताने, भावों में विकार आने, सटस्थ रहने और चित्रण कुशलता दिखाने की फिक्र में रहने का उल्लेख कर यहाँ उन्होंने रीतिवाद का विरोध किया है। 'निराला' ने यह स्वीकार किया है, कि बिहारी की ठेठ देहाती वह टीका देते थे और नहीं समझ सकते[2]। पं० पद्मसिंह शर्मा की टीका उन्होंने बिहारी पर देखी थी, और इसके सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है : "कुछ बिहारी की कल्पना है, उसपर पद्मसिंह जी की कल्पना चढ़ाते हैं। बहुत जगह चमत्कार पैदा करने में बिहारी से जो कुछ कोर-कसर रह जाती है, उसे पद्मसिंह जी पूरा कर देते हैं[3]।"

केशव और उनकी रामचन्द्रिका का भी 'निराला' ने अध्ययन किया था, इसकी सूचना हमें आचार्य शिवपूजनसहायकृत संस्मरणों में मिलती है। 'निराला' को ब्रजभाषा का 'रस सिद्ध' कवि कहकर आपने बताया है कि पं० मोतीलाल शर्मा की चित्रावली के प्रत्येक चित्र के नीचे ब्रजभाषा में 'निराला' रचित चित्र परिचय, अथवा ब्रजभाषा में उनकी निपुणता देखकर काशी के वयोवृद्ध साहित्यिक केशव के विरोधी कृष्ण बलदेव वर्मा ने उन्हें रीतिकाल की कसौटी पर परखा। 'निराला' ने केशव की तुलना तुलसी से उस स्थल पर की जहाँ राम की वन-यात्रा में

१- निराला की साहित्य-साधना, पृ०२२-२३

२- प्रबन्ध पद्म, पृ०२७

३- वाहक, पृ०२५

सीता और लक्ष्मण सावधानीपूर्वक राम के पदांक बचाकर चलते हैं । ऐसे ही 'रामचरितमानस' और 'रामचन्द्रिका' के कई स्थलों पर दोनों को भिड़ाकर जब 'निराला' ने दोनों के जौहर दिखलाए तब शर्मा जी ने उनका लोहा माना[1] । 'निराला' ने केशव की विशिष्टता का उल्लेख करते हुए उनकी गणना हिन्दी के चार सर्वश्रेष्ठ कवियों में तुलसी,कबीर और सूर के साथ की है,[2] यद्यपि स्वतन्त्र रूप से केशव पर कोई लेख नहीं लिखा ।

डा० जगदीश गुप्त ने लिखा है कि देव का छंद 'प्रात ही जागत गुलाब चटकारी ... दै' उनसे 'निराला आग्रहपूर्वक सुना करते थे[3] । यह ब्रजभाषा के प्रति 'निराला' के प्रेम का ही प्रमाण है । स्वतंत्र रूप से न लिखकर 'निराला' ने ब्रजभाषा सम्बन्धी जो विवेचन किया है, उसी के में उसके कवियों की चर्चा की है । ब्रजभाषा सम्बन्धी उनका विवेचन प्रमाण है कि 'निराला' के काव्य-संस्कारों के निर्माण में उसका प्रदेय प्रचुर और महत्वपूर्ण है ।

ब्रजभाषा में की गयी 'निराला' की कतिपय रचनाएं भी व इसके प्रति 'निराला' के प्रगाढ़ प्रेम की परिचायक हैं । 'मतवाला' के प्रथम अंक में मुखपृष्ठ पर ही 'निराला' की रचना 'रक्षा बन्धन' और 'पुराने महारथी' नाम से ब्रजभाषा की चार पंक्तियां प्रकाशित हुई थीं । ब्रजभाषा की पंक्तियों में मदन के 'रन' और प्रकृति पुरुष के ~~ब्रजभाषा की पंक्तियों में~~ मिलन का सुखकर स्मरण किया गया था । दूसरे अंक में 'पुराने महारथी' की एक 'कुण्डलिया' प्रकाशित हुई , जिसमें गोरी ब्रजवनिताओं और 'श्याम कामतनु कान्ह' के प्रेम का उल्लेख कर कवि ने अन्त में ' पै अब ऐसो हाल कि 'काले' हाथ पसारे । थोरा भर भी प्रेम लेत 'गोरन' सों हारे ' लिखकर देश की तत्कालीन अंग्रेजी शासन-नीति पर प्रकाश डाला था । प्रथम अंक में 'निराला' की खड़ी बोली की रचना में भी

१- मैं मिन मैं लोग,पृ०७१-७२

२- प्रबन्ध पद्म,पृ०२६

३- धर्मयुग,१२ फरवरी,६७,पृ०५२

यही भाव है, और आगे अर्थात् तीसरे अंक की 'गए रूप पहचान' कविता भी इसी प्रकार की है। मतवाला में प्रकाशित ब्रजभाषा की इन दो रचनाओं के पहले शिवपूजन जी के पत्र 'आदर्श' में 'मुंशी की कला' के बाद पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी की एक घनाक्षरी 'विरहिणी' पर व्यंग्य प्रकाशित हो चुका था[1]।

प्रारम्भिक इन रचनाओं के उपरान्त 'सुधा' में सन् ३५ में जाकर एक गीत 'किहि तन पिय-मन धारौं' री' प्रकाशित हुआ था, जिसे उनके 'प्रभावती' उपन्यास की एक प्रमुख पात्रा 'यमुना' ने आसावरी, तीन ताल में गाया है[2]। सुधा में इस गीत के छपने के पहले 'निराला' ने ब्रजभाषा में एक पद 'नयननि उमड़ आयी रिंझ' सन् २८ में छतरपुर के महाराज के सम्मान में गाया था, इसका उल्लेख डा० शर्मा ने किया है[3]। यहीं अनुप्रास के भक्त पं० रामनारायण जी शर्मा के 'अमरूद भाऊक्रम' की पूर्ति में 'निराला' ने एक दोहा भी तैयार किया था[4]।

अपने शेष काल के गीत 'निराला' ने जिस कॉपी में लिखे थे, उसके अन्त में उनकी कुछ ब्रजभाषा की रचनाएं गीत और कवित्त आदि भी मिलती हैं। ये सभी रचनाएं उनके नवीनतम संग्रह 'सांध्य काकली' में संकलित की गयी है। एक रचना 'जो ने न पिया जा ने मन में मग ने को नने ही रहो' --के सम्बन्ध में डा० शिवगोपाल मिश्र ने बताया है कि एक दिन पद्माकर की कविता और एक रचना द्विवेदी जी की सुनाकर 'निराला' ने अपनी यह रचना सुनाई थी। इसकी तिथि डा० मिश्र ने १६-१२-५६ दी है[5]। श्री नारायण चतुर्वेदी को सन् ५८ में उन्होंने एक सवैया लिखवाया था और उसकी व्याख्या भी की थी, वह भी ब्रजभाषा की परम्परा में ही आता है[6]।

१- आदर्श, पौष माघ, संवत् १६८६, संख्या ३-४, पृ० ११६

२- सुधा, नवम्बर, ३५, पृ०४४०, प्रभावती, पृ०४०

३-'निराला' की साहित्य-साधना, पृ०१४८-१४६

४- वही, पृ०१७३

५- अन्सारैच, बसंत पंचमी, ६२, पृ०४७

६- ५अक्टूबर, ५८, श्रीद की चतुर्वेदी से साभार प्राप्त।

'निराला' के ब्रजभाषा प्रेम और ज्ञान के कारण ही आचार्य शिवपूजन सहाय ने महाराज छतरपुर के सेक्रेटरी बाबू गुलाबराय को चण्डीदास के पदों के अनुवाद के लिए 'निराला' का नाम सुझाया था। चण्डीदास के कितने पदों का अनुवाद 'निराला' ने किया था, इसकी तो निश्चित सूचना नहीं है, परन्तु 'सुधा' में प्रकाशित 'कविवर श्री चण्डीदास' लेख में 'निराला' ने चण्डीदास के तीन पद उद्धृत कर उसके एक पद का अनुवाद किया है --'सुनायो किन सखी री हरि नाम : (सुनायी किन, सखी श्याम-सु नाम :)[1] इसी पद का अनुवाद उन्होंने महाराज के आग्रह से ब्रजभाषा के एक दूसरे कवि ललितकिशोरी के छंद में भी किया था, जो 'सुधा' में इसी कालावधि में प्रकाशित उनके दूसरे लेख में दिया हुआ है।[2] गोविन्ददास की सरस पदावली का अनुवाद का समय भी यही है, जो सन् २८-२९ की 'माधुरी' में प्रकाशित हुए।[3]

लखनऊ में 'दुलारे दोहावली' के २०० दोहों वाले प्रथम संस्करण और 'पढ़ीस'[4] के सीतापुरी अवधी में लिखे पदों -- जो उन्हें पसन्द थे -- के संग्रहों की भूमिका 'निराला' ने लिखी थी --यहाँ भी ब्रजभाषा के प्रति उनका प्रेम ही प्रकट है। केती के 'भौन' कवि पर लिखा 'निराला' का लेख और मधुर महाराज से सुनकर लिखीं उनकी सात रचनाएं भी इसी परम्परा में आती हैं। २१ अगस्त सन् ५५ में हंसवा (जिला फतेहपुर) के संत कवि चंदनदास की हस्तलिखित पुस्तकें मिलने के उपलक्ष्य में जो साहित्यिक आयोजन उनकी समाधि पर हुआ था, उसके लिए अंग्रेजी में दिया 'निराला' का संदेश, भी उनके इसी स्नेह का परिचायक है।[5]

'निराला' जहाँ ब्रजभाषा के महत्व की घोषणा अथवा खड़ी बोली के विकास में उसकी व्यापक और अनिवार्य भूमिका की ओर ध्यान आकृष्ट

१- सुधा, अप्रैल २८, पृ० ३०७-३०८
२- चयन, पृ० १७१
३- माधुरी, दिसम्बर, २८, पृ० ७३९-७४०, मार्च २९, पृ० २२६-२२७
४- चयन, पृ० २६१, सुधा पढ़ीस अंक, फरवरी, ४३, पृ० २५
५- अन्तर्वेद, बसंत पंचमी, १९६२, 'निराला स्मृति अंक, पृ० २२

करते हैं, वहाँ भी उनका ब्रजभाषा का ज्ञान और स्नेह ही विकसित है। ब्रजभाषा की पूर्ण मूर्ति,जातीय प्रगति के उज्ज्वल चित्र के लिए उन्होंने तुलसी और सूर से लेकर पद्माकर और देव तक अपनी अंतर्दृष्टि का प्रसार किया है। तुलसी के ज्ञान मिश्रित भक्ति साहित्य,कबीर के वेदान्त साहित्य,सूरदास के अलौकिक प्रेम के उल्लेख के साथ उन्होंने भूषण के ओज को भी लिया है। साथ ही मतिराम, बिहारी,पद्माकर, देव आदि को भी वे भूले नहीं हैं, जो ब्रजभाषा के 'शृंगार की वासनाओं को रूप देने वाले गृहस्थों के मनोविनोद की पुष्टि करने वाले' हैं।[1] काव्य-साहित्य के विश्लेषण की दृष्टि से 'निराला' ने ब्रजभाषा के रीतिवादी काव्य की प्रशंसा की है। 'निराला' ने ब्रजभाषा की रीतिवादी काव्य की प्रशंसा की है। नारियों अथवा नायिकाओं के भेद,रस,अलंकार और छंदों के भेद,ध्वनियों की परख आदि पर इन कवियों ने खूब लिखा है और 'सौन्दर्य को इतनी दृष्टियों से देखा है कि शायद ही कोई सौन्दर्य इनसे छूटा हो।'[2] रस और अलंकार की प्राचीन प्रथा को मानते हुए 'निराला' ने उसे मानने की एक विशेषता यह बताई है कि " हम भिन्नता भी मानते हैं और एकता भी, जिस एकता का प्रमाण पराधीन,छंदशास्त्र तथा रस अलंकार आदि की बेड़ियों में फँसा हुआ ब्रज-साहित्य आज तक दे सका है -- हमें देखने को नहीं मिला[3]।'

दूसरी ओर इसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप 'निराला' ने इस साहित्य की दुर्बलता का उल्लेख भी किया है। भारत और योरप की भाव-भूमि एक होने पर भी भावनाओं के प्रसरण की भिन्न रीति का उल्लेख कर उन्होंने ब्रजभाषा की कविता के अश्लीलता के प्रसंग से अशिष्ट बतलाए जाने वाले अंश को मानवीय कहा है, आसुरी नहीं, साथ ही वे मानते हैं कि मनुष्यों के नैतिक पतन के कारण मानवीय दृष्टि में उस समय अश्लीलता की रूप कुछ अधिक हो गया था[4]।

१- चयन,पृ०७१

२- प्रबन्ध पद्म,पृ०१४८-१४९

३- चयन,पृ० १३७

४- प्रबन्ध पद्म,पृ०२४१-२४२

पतन का एक प्राकृत कारण यह था कि जाति ने जल की तरह क्रमशः निम्नतर भूमि से होकर बहना पसन्द किया । जनसमूह में शंकर पर रामानुज और मध्व मतभूमि पर वाल्लभाचार के आधिपत्य का भी यही कारण था[1] । 'निराला' द्वारा उल्लिखित दूसरा तथ्य यह है कि ब्रजभाषा काल में जितनी जातिगत विचारों की प्रबलता थी और अपनी संस्कृति की कट्टरता थी, उतनी व्यापकता संसार की संस्कृति और शिक्षा-दीक्षा आदि से सम्बन्ध नहीं थी[2] । गीतिका की भूमिका में भी उन्होंने कबीर से मीरा तक के गीतों के आधार पर लोगों के अपनी संस्कृति को पकड़े रहने का उल्लेख किया है । कबीर को उन्होंने आधुनिकों के मनोनुकूल कह उन्हें भाषा-साहित्य-संस्कृति से असम्बद्ध और तुलसी-सूर के भाषा संस्कार रखते हुए आधुनिक रुचि के प्रतिकूल कहा है, क्योंकि खड़ी बोली ने ब्रजभाषा संस्कृति से भिन्न भाव अपने बढ़कर खड़े किए हैं । 'खड़ी बोली की संस्कृति जब तक संसार की अच्छी-अच्छी सौन्दर्य भावनाओं से युक्त न होगी, वह स्थायी न होगी । उसकी समस्त प्राचीनता जीर्ण है[3] ।' 'निराला' की यह स्थापना खड़ी बोली में नूतनता की प्रतिष्ठा की प्रवृत्ति देती है, जहां ब्रजभाषा के साथ सामन्ती संस्कारों और पुरानी परम्पराओं से उनका विरोध भी स्पष्ट है ।

गीतिका में अभिव्यक्त इस मान्यता के विपरीत 'निराला' ने पहले 'पंत और पल्लव' की आलोचना करते हुए सूर और तुलसी के उदाहरणों द्वारा मध्ययुग में प्रसार की भावना विद्यमान रहने का उल्लेख किया था । पंत के ब्रजभाषा विषयक दृष्टिकोण के मूल में 'निराला' ने पंत जी के अंग्रेजी कविता के सांचे में ढले संस्कार देखे, इसका प्रमाण उन्हें पंत जी की शब्दों की व्याख्या में मिला[4] । मध्ययुगीन प्राचीन चेतनवाद अथवा वेदान्त वैध आनन्दवाद को ही 'निराला'

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०४३-४४

२- चयन, पृ०२८

३- गीतिका की भूमिका, पृ०६, १२

४- प्रबन्ध पद्म, पृ०१२८, १५१ ।

आज का विश्ववाद कहते हैं । भारत की उदारता और उसकी धार्मिक संकीर्णता का उल्लेख कर 'निराला' ने आवश्यक बाहरी आदर्श दबाव के कारण इस संकोच को स्वाभाविक माना । जाति और साहित्य के इस संकोच को 'निराला' ने 'शेर का संकोच' कहा है, जिससे दूर तक छलांग मारने की शक्ति आती है, जो मध्य युग में धर्म में त्याग और साहित्य में बड़े हृदय के रूप में उपलब्ध है[1]। एक अन्य लेख में भी उन्होंने लिखा था ' यह ब्रज साहित्य अपने भावना-प्रसार को कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड के भीतर से शेर के संकोच प्रभाव में फैलना चाहता है[2]।'

तत्त्व विवेचन और भाषा विज्ञान की दृष्टि से ब्रजभाषा पर विचार करते हुए 'निराला' ने बताया है कि प्रान्तों की सहृदयता की मीमांसा के अनुसार शब्दों के अपभ्रष्ट रूपों में उनकी आत्मा की प्रथम ज्योति मिलती है[3] और विभाषाओं में भी खड़ी बोली ब्रजभाषा से समता की स्पर्द्धा नहीं कर सकती, और ब्रजभाषा की क्रियाओं के रूपों में भी यथेष्ट ध्वनि-कोमलता मिलती है[4]। ब्रजभाषा की महत्ता और गुरुता का निर्देश करते हुए 'निराला' ने लिखा : 'आज किसी प्रान्तीय भाषा के साथ अपने हृदय की पूर्णता और उज्ज्वल उत्कर्ष पर विश्वास रखकर वार्तालाप करने की शक्ति हिन्दी के प्रचलित दो रूपों में, यदि किसी में है, तो ब्रजभाषा में[5]।' बंगला के माधुर्य के मूल में भी ब्रजभाषा ही है, जो उस समय की प्रचलित भारतीय भाषाओं में मुख्य थी[6]। ये विचार 'निराला' ने बंगाल के वैष्णव कवियों पर लिखते हुए प्रकट किया है ।

ब्रजभाषा के विवेचन की दृष्टि से 'निराला' का दूसरा महत्त्वपूर्ण निबन्ध ' मेरे गीत और कला' है, जिसमें 'पंत और पल्लव' में व्यक्त कुछ स्थापनाओं का ही विचार किया गया है । प्रारम्भ में ही माता-पिता की दी

१- प्रबन्ध पद्म, पृ०१४८-१४७
२- ,, पृ०६०
३- ,, पृ०१३५, वहीं, पृ०८०
४- ,, पृ० १३६
५- ,, पृ०१३७
६- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०२३३

भावाभिव्यक्ति के वाड़ी जिनके सभी रसों के स्रोत उनके जीवन में फूटकर निकले हैं-- वन्दनीय है। कथा के उत्थान-पतन पर विचार करते हुए, वेदों से ब्रजभाषा तक यहां भी उन्होंने उसकी क्रमानुगामिता और पतन के इतिहास का उल्लेख किया है[1]। प्रकृति के अनुरूप भाषा की दिशा और जातीय जीवन से उसके सम्बन्ध को यहां भी 'निराला' ने उसकी प्राणशक्ति स्वीकार किया है। उनका विचार है कि यह जातीय जीवन ब्रजभाषा में था, जो बुद्ध के बाद के संस्कृत कवियों और दार्शनिकों में नहीं था। ब्रजभाषा के बाद की भाषा में उसके चिन्ह जीवन की शक्ति या रूप के तौर पर अवश्य होंगे, यह 'निराला' के अनुसार निर्विवाद है। यहां ब्रजभाषा के शब्द के 'श' ष के 'स', ण के 'न' और व के 'ब' बन जाने का उल्लेख कर खड़ी बोली में ध्यान शुद्ध उच्चारण की ओर होने पर भी वर्णों की इस अशुद्धि को 'निराला' ने प्रिय माना है। इसकी विशेषता उर्दू मिली हुई जबान से स्पष्ट हो जाती है, यह मालूम हो जाता है कि वर्णों में 'श ण ष' खड़ी बोली के पाठकों को खटकते हैं[2]। 'सरस्वती' के एक लेख में भी उन्होंने काफी पहले 'स न ब' के प्रयोग की सलाह दी थी।

इसके विपरीत 'गीतिका' की भूमिका में 'निराला' ने स्पष्ट लिखा है --' मैं खड़ी बोली में जिस उच्चारण संगीत के भीतर से जीवन की प्रतिष्ठा का स्वप्न देखता आया हूं, वह ब्रजभाषा में नहीं[3]।' पंडित गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' के उपन्यास 'अरुणोदय' की परीक्षा करते हुए भी उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली में लिखा -- 'पहले मैं समझता था, मेरे मित्र एकमात्र अर्जुन चमार जो प्रतिदिन मेरे यहां हिन्दी पढ़ने के लिए आया करते हैं, 'गुण' को 'गुन' कहकर उच्चारण में अधिक मिठास लाने के प्रवर्तक हैं। पर क्रमशः मेरा यह भ्रम दूर हो रहा है[4]। ब्रजभाषा में 'स' और 'न' के अधिक उच्चारण और

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०१६६

२- ,, पृ० २०१

३- गीतिका की भूमिका, पृ० १८

४- सुधा, जुलाई ३०, पृ० ७१६

खड़ी बोली में उसकी शिथिलता स्वीकार करते हुए अर्चना की 'स्वयोक्ति' में भी वे लिखते हैं --'चूँकि खड़ी बोली देश भर की साहित्यिक भाषा बन चुकी है, अतएव ब्रजभाषा अनुकूलता की पूरी उच्चारण पद्धति ग्राह्य नहीं।'[1]

'निराला के भाषा सम्बन्धी इस अन्तर्विरोध को उदय कर उनके 'शब्दचयन' और 'समष्टि' सिद्धान्त को डा० रामा पन्त जी भाषा निर्वेचना के लिए आविष्कृत मानते हैं, जिसकी 'सबसे बड़ी कमज़ोरी यही है कि इसे सत्य मान लेने पर छायावादी कविता की भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण ही खड़ी बोली की प्रकृति के विरुद्ध ठहरता है।'[2] वे यह भी मानते हैं कि इसका कारण भाषा विज्ञान में नहीं मिल सकता। इस ओर भी आपने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है कि छायावादी आन्दोलन के एक स्तम्भ स्वयं होने के कारण 'निराला' इसकी कमजोरी नहीं पहचानते थे, अतः उनका भार भरपूर बैठता है, जो पंत के साथ उनकी अपनी रचनाओं पर भी है और इस लेख के बाद ही 'निराला' में क्रमशः यह प्रवृत्ति जोर पकड़ती गयी कि गद्य में ही नहीं पद्य में भी सरल मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करें।[3]'

'मेरे गीत और कला' लेख में 'निराला' ने एक दूसरे विचार पर भी ध्यान दिया है। वैदिक और संस्कृत के रूपों और उसके अनुरूप अपभ्रष्ट भाषाओं के आधार पर दुर्बल होते हुए जातीय जीवन के पूर्ण प्रतिकूल फारसी के रूप और मुसलमानों का जीवन है, यह बताकर 'निराला' ने मुसलमानों के आधिपत्य को अपभ्रष्ट वैदिक या संस्कृत पर फारसी की विजय कहा है। शंकर से लेकर बाद के समस्त भाष्यकारों को वे अपभ्रष्ट भाषा-काल का कहते हैं, जिन्होंने संस्कृत द्वारा दिग्विजय और अपनी प्रतिष्ठामात्र की है, जाति की जीवनी शक्ति का वर्धन अथवा उस समय की भाषा का उद्धार नहीं। यह संभव इसलिए नहीं था

१- अर्चना,पृ०६

२- महाकवि निराला ,संपादक आचार्य शास्त्री,पृ० ११०-१११

३- निराला,पृ०६८

क्योंकि प्रादेशिक अनेक भाषाओं का एक उन्नयन अवश्य था परन्तु अनेकानेक भेदोपभेद तथा प्राकृतिक परिवर्तन के कारण अपभ्रष्ट भाषाएं उलटा चलकर संस्कृत नहीं बन सकीं और जीवन दुर्बलतर होता रहा। निष्कर्ष यह है कि 'ब्रजभाषा के उच्चारण और भाव-रूप पर, मैंने देखा, उर्दू सवार है, उसी तरह जैसे हारे हुए पर जाता हुआ रहता है।' बंगला की तरह उर्दू में भी दीर्घ को बाहर की लपेट में ह्रस्व कर लेने की गुंजाइश है, जो हिन्दी में नहीं, यह बताते हुए 'निराला' ने हिन्दी को मुक्त छंद की अपनी देन का उल्लेख किया है[1]।

सन् २८ में अपने एक लेख में 'निराला' पहले ही लिख चुके थे कि पराधीन हिन्दी पर पराधीनता के कारण फारसी का प्रभाव पड़ा था और बंगला पर ब्रजभाषा का प्रभाव ब्रजभाषा-हिन्दी के समय पड़ा था। यहीं 'निराला' ने यह भी कहा कि दूसरी भाषाओं के रत्न प्रभावित होकर नहीं 'प्रीत होकर' ग्रहण करने चाहिए[2]। सन् ३४ में यही विचार उन्होंने 'श्री' 'चकोरी की कविता' पर लिखते समय प्रकट किए थे और कविता में भाषा-स्वातंत्र्य गद्य से अधिक लिया जाता रहा है, इसका उल्लेख कर बताया कि उर्दू में पद्य की भाषा भी गद्य की-सी मंजी और शुद्ध होती है, परन्तु यह सार्वभौम नियम नहीं है, यहां मुक्त छंद की और विश्व भर के छंदों को अपनाने की शक्ति का अभाव है[3]।

'भाषा-विज्ञान' पर विचार प्रकट करते हुए 'निराला' ने सन् ३२ में लिखा कि पहले ब्रजभाषा के पद्य-साहित्य में भाषा विज्ञान की तमाम बातों की दिशा में कोई प्रयत्न नहीं हुआ था, वे बस अलंकार और नायिका-भेद के उदाहरण ही तैयार करते रहे। परन्तु उधर जब गद्य का प्रचार हुआ और भले बुरे कुछ व्याकरण भी तैयार हुए, तब 'हम देखते हैं, फारसी और उर्दू का हमारी बाहरी प्रकृति पर, भी बहुत कुछ वैसा ही पड़ा है --हमारी भावरपुराण, प्रकाशन बहुत

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १९९-२००

२- चयन, पृ० ८१

३- संग्रह, पृ० ११८-११९

कुछ वैसा ही बन गया है।[१]' यह दूसरा तथ्य है जो ब्रजभाषा और खड़ी बोली के सम्बन्ध में भी जोड़ता है।

यहाँ 'निराला' ने हमारा ध्यान इस ओर भी आकृष्ट किया है कि 'जिन प्रान्तों पर उर्दू या फारसी की अपेक्षा संस्कृत का प्रभाव अधिक था, अँग्रेजी के विस्तार से उनकी भाषा मार्जित तथा जातीय विशेषत्व की ज्ञापिका हो गयी।[२]' इसके अन्तर्गत हिन्दी की गणना नहीं की जा सकती, क्योंकि उसपर अँग्रेजी का ही प्रभुत्व है, सम्भवतः 'निराला' का संकेत यहाँ बंगला की ओर है। सन् २९ में व्याकरण शास्त्र के आधार पर बंगला और हिन्दी का अन्तर बताते हुए उन्होंने लिखा था कि बंगला में लिंग भेद से क्रिया का न बदलना संस्कृत के प्रभाव का फल है, केवल कर्ता पुरुष के साथ क्रिया का सम्बन्ध होना यहाँ भी क्रिया संस्कृत की ही अधिक पक्षपातिनी है।[३]

स्पष्ट है कि 'निराला' खड़ी बोली को ब्रजभाषा के जातीय जीवन से प्रादुर्भूत मानते थे। ब्रजभाषा साहित्य की क्षमता और उसकी विशेषताओं की पूरी जानकारी रखते हुए, उन्हें स्वीकार करते हुए उन्होंने नए साहित्य की साधना में उसके महत्वपूर्ण योगदान का निर्देश किया है। वे लिखते हैं --' जो लोग ब्रजभाषा के प्रेमी हैं, उनसे किसी को व्यक्तिगत द्वेष नहीं, जब तक वे हिन्दी की नवीन संस्कृति के बाधक नहीं बनते।' परन्तु ब्रजभाषा की श्रेष्ठता की अकारण यशोगान से साहित्य का उपकार सम्भव नहीं, यह भी वे मानते हैं।[४] पुरानी परिपाटी के एक दोहे के अर्थ-अर्थान्तर प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा --' मुझे ऐसा करने के लिए वह शक्ति प्रेरणा दे रही है, जो नवीन युग युग की रहस्यमयी धारा को प्राचीन रीतियों के भीतर से बढ़कर सिद्ध करना चाहती है। जिसने छंदों को तोड़ा है, वह, सरस अलंकारों के हार के अलग-अलग फूलों में

१- सुधा, १६ सितम्बर ३३, पृ०३०८, प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०८६

२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ८७

३- सरस्वती, फरवरी, सन् २९, पृ०१२६-१२७

४- चाबुक, पृ०५३

भी साम्य है, दिखलाना चाहता है। इसे प्राचीन रस अलंकारवादी हम लोगों पर जो आक्षेप करते हैं, उसका यथार्थ उत्तर हमारी तरफ से उन्हें प्राप्त होगा[1]।" खड़ी बोली के विकास से ब्रजभाषा काव्य का दृढ़ एवं सहज सम्बन्ध 'निराला' के इस कथन से स्पष्ट है। प्रगति के लिए परम्परा की यह स्वीकृति-- जो 'निराला' की आलोचक दृष्टि के कारण अन्यत्र स्वीकृति से ऊपर है--छायावादी कवियों में 'निराला' की अपनी विशिष्टता की विज्ञप्ति है।

'निराला' की इस मान्यता से एक अन्य तथ्य जो स्पष्ट होता है, वह है, ब्रजभाषा काव्य परम्परा से उनके अपने घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण उनके काव्य-संस्कारों के निर्माण और साहित्यिक विकास पर ब्रजभाषा का प्रभाव। 'निराला' पर भी ब्रजभाषा का यह प्रभाव उतना ही सहज और अकृत्रिम है, जितना खड़ी बोली पर था, इसका आख्यान उनकी साहित्यिक कृतियां स्वत: करती हैं। डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में "'निराला' जी को अलंकारों से कम मोह नहीं है, परन्तु वह उनका मौलिक प्रयोग करते हैं[2]।" कवि का यह काव्य-संस्कार जिसमें शब्दों का सौन्दर्य और माधुर्य समाहित है-- ब्रजभाषा परम्परा से ही सम्बद्ध है। पद्माकर के सम्बन्ध में 'निराला' की धारणा भी इसी सत्य का साक्ष्य है। 'निराला' के मुक्त छंद में जो लय की विविधता अथवा प्रवाह है, उसके मूल में भी अनुप्रास-जनित ध्वनि सौन्दर्य ही विद्यमान है, जिसे वे 'ध्वनिका आवर्त' कहते थे। हिन्दी के जातीय छंद कवित्त को जब वे मुक्त छंद की बुनियाद मानते हैं, धर्म से धर्म के अधिक रुचिकर लगने का कारण आत्मा का अनुशासन बताते हैं, अथवा छन्द और भाव की उल्टी गंगा बहाने का कारण बताते हुए 'इससे सीधा [illegible] और प्राणों के पास तक पहुंचता रास्ता छंदों के इतिहास में दूसरा नहीं[3]।" लिखते हैं, तब वे प्रकारान्तर से मुक्त छंद की नवीन धारा को प्राचीन छंद बंधन की एकता के भीतर से ही सिद्ध करते हैं। इस संदर्भ में 'निराला' की मौलिकता,

---

१- चयन,पृ०१३६

२- निराला ,पृ०५६

३- प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०१९८

शब्दों के स्वर-सौन्दर्य का पूर्ण प्रसार है, जिसका उल्लेख गीतिका के गीतों की कथा बताते हुए स्वयं कवि ने किया है।[1]

'निराला' की प्रारम्भिक रचनाओं में ब्रजभाषा काव्य की अनुप्रासमय शब्द-सौन्दर्य और शृंगारमय भावों का दर्शन हमें होता है। उन्होंने 'नव-नव परिमल मलमल की जा भौंर भुला भूलों में' एक ओर लिखा है तो दूसरी ओर वे 'भटक पटक झंझट की झटपट झोंक भाड़ में मारे'[2] अथवा 'चमक चौंक की एक चौंधी में सबको डालो'[3] भी लिखते हैं। उनकी 'जुही की कली' की शृंगार-भावना और शब्दचयन भी ब्रजभाषा की छाया से सर्वथा मुक्त नहीं है। शृंगार और सौन्दर्य के क्षेत्र में जो मानवीय चित्र 'निराला' में मिलते हैं, उनमें जो मानवीयता है, वह रवीन्द्रनाथ के साथ ब्रजभाषा से भी प्रेरित है, और यह तत्व छायावादी कवियों में 'निराला' की अपनी विशेषता भी है। तात्पर्य यह कि हिन्दी की रीतिवादी परम्परा से प्रेरणा लेने वाला 'निराला' का शृंगार वर्णन उसकी अनुकृति न होकर विशुद्ध मानवीय धरातल का आधार लेने के कारण विशिष्ट है।

ब्रजभाषा काव्य की विषयवस्तु से भी 'निराला' ने प्रेरणा ली है। इस दिशा में उनकी पहली उल्लेखनीय कृति 'यमुना के प्रति' है। इस रचना का पूर्व आभास उनकी 'यहाँ'[4] कविता में मिलता है, जो वास्तविक पूर्णता 'यमुना के प्रति'[5] में ही मिली है। मोहन का सम्मोहन ध्यान, श्याम केलि, अभिसार निशा और रास आदि के साथ 'निराला' ने यहाँ सूर के रूप-वर्णन की उपकरणों का उल्लेख भी किया है। बाद में भी 'हरिण नयन हरि ने छीने हैं'[6]

१- गीतिका, पृ०६५

२- मतवाला, अंक ३, - सितम्बर २३, पृ०१७

३- परिमल, पृ०८३

४- अनामिका, पृ०३०, मतवाला, २६ जनवरी २४, पृ०३३

५- परिमल, पृ०४३

६- अर्चना, पृ० १०६

जैसी पंक्तियां प्रेरणा के रूप में प्रीत का निदर्शन करती हैं । 'निरंजन बने नयन अंजन' बादल राग की ७ वीं कविता में जहां वे 'आज श्याम-घन, श्याम, श्याम-छवि' लिखते हैं, वहां सूर के पद 'जित देखौं तित श्याममयी है' पद के भाव का स्मरण आता है । गीत गुंज के 'जिधर देखिये श्याम विराजे'[1] गीत जिसे सूर के पद का अनायास हुआ भावानुवाद कह सकते हैं में भी ब्रजभाषा काव्य की चेतनताव ही वहीं है । बेला के एक गीत में 'निराला' ने इसी प्रकार 'गई पत देवता पति ना कि उसने प्रिया मीरा को विष के घूंट घोरे'[2] लिखकर मध्ययुग की गरिमा का स्मरण किया है ।

'निराला' के प्रारम्भिक गीतों पर भी पद शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है । 'गीतिका' में संकलित 'निराला' के १०२ गीतों के के अतिरिक्त उनके पांच गीत उसके पहले 'परिमल' में निकले थे । इनमें से चार सन् २७ के 'मतवाला' के अप्रैल-मई के अंकों में और एक मासिक 'महारथी' में और 'समन्वय' के में संवत् १९८५ अंक ४ में प्रकाशित हुए थे । काल-क्रम की दृष्टि से ये पांचों गीत गीतिका में सम्मिलित किये जा सकते हैं, जिनमें से कुछ २८-२९ में भी पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके थे । गीतिका के गीतों के सम्बन्ध में तो स्वयं कवि का कहना है कि उसने वाणी प्रधानता को तिलांजलि देकर स्वर विस्तार के सौन्दर्य की अपेक्षा रखने वाले गीत रचे हैं । साथ ही उन्होंने यह भी लिखा है कि 'भाव प्रधान होने पर भी प्रकाशन का नवीन ढंग लिए हुए है ।' और 'ताल प्रायः सभी प्रचलित हैं ।'[3] स्पष्ट है कि भाव और ताल के परम्परागत स्वरूप को अपनाते हुए भी कवि ने उनमें नूतन रंग और कला भरे हैं, मुख्यतः संयोग शृंगार की भावना से संश्लिष्ट इन गीतों में उसके मानवीय स्वरूप की प्रतिष्ठा और प्रकृति तक उसका प्रसार हुआ है, यह हम देख चुके हैं । प्रणय की परिणति और नारी के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की दृष्टि से परिमल के पांचों गीत गीतिका की परम्परामें

१- गीत गुंज-प्रथम संस्करण, पृ०५५ ५५

२- बेला, पृ०३५

३- गीतिका की भूमिका, पृ०१२-१३

ही आते हैं, जिनके सम्बन्ध में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का विचार है," जैसे सूरदास जी के पद अधिकांश श्रीकृष्ण की लोक-लीला से सम्बद्ध होते हुए भी अध्यात्म की ध्वनि से आपूरित हैं। वैसे ही 'निराला' जी के भी पद हैं।" अथवा " इन पदों में प्रेमा भक्ति की पराकाष्ठा प्राप्त हुई है।" 'प्रिय, यामिनी जागी' जैसे पदों में उस युग के कवि के द्वारा भक्तों की श्री राधा की ही अवतारणा हुई है।[1] वाजपेयी जी का यह विचार ब्रजभाषा काव्य परम्परा से 'निराला' के सम्बन्ध का संकेत है।

ब्रजभाषा की पद-शैली को तो 'निराला' ने अपनाया ही है, भाव और रूप-साम्य की दृष्टि से 'परिमल' का 'अलि घिर आए घन पावस के' (मल्लार)[2] गीत अथवा 'गीतिका' का 'नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली।' और 'मार दी तुझे पिचकारी, कौन री, रंगी छवि वारी ?' (तीन ताल, १६ मात्रा)[3]-- ये दो होली, सब सांधे ब्रजभाषा-काव्य की परम्परा में आते हैं। परम्परा का यही सूत्र आराधना की सन् ४६ की रचना--' यह गाढ़ तन, आषाढ़ आया, दाह दमक उठी, जगी री' चौमासी (धमार) में मिलता है, जिसके अन्त में नोट है--'यह हमारे एक ब्रजभाषा के गीत का अंश रूपान्तर है'[4]। इन रचनाओं में पावस, लस, कसके, सनेह, परस, अनबोली, रैन, बैरिन, पोर, पी, छुव, कंत परतीति आदि तद्भव शब्दों और क्रियाओं का प्रयोग 'निराला' में ब्रजभाषा के जाग्रत संस्कारों की स्थिति का परिचायक है।

अर्चना, आराधना और गीतगुंज में प्रकृति सम्बन्धी विशेषतः वसन्त और वर्षा के -- गीतों में, जो हिन्दी की प्रवृत्ति और उसके उच्चारण संगीत के अधिक अनुकूल हैं, ब्रजभाषा के काव्य संस्कारों का परिचय मिलता है। इन कृतियों के अनेक गीतों[5] की भाषा-संस्कार मूलतः खड़ी बोली

१- गीतिका की भूमिका, पृ०२६

२- परिमल, पृ०६६, मतवाला ४मई, १६२६, पृ०५

३- गीतिका, पृ०४६ और ६०, वीणा, जून ३५

४- आराधना, पृ०६६, देशदूत, २१ अगस्त, ४६।

५- अर्चना, पृ० ४७, ४६, ८०, आराधना, पृ०४०, ६४, गीतगुंज, प्रथम संस्करण, पृ०४१, ४६

ना होते हुए भी रूपानुभूति की ध्वनि मध्य-युगीन अथवा ब्रजभाषा काव्य की है। अन्तिमकाल का 'धिक मदगर्व,मान, गरजे बदरवा' अथवा 'धिक मद, गरजे बदरवा चमकि बिजुरी डरपावे, सुहावे सघन झर, नर वा कगरवा कमरवा' जैसी पंक्तियाँ भी ब्रजभाषा और खड़ी बोली को परस्पर जोड़ने वाली है।

ब्रजभाषा के तद्भव शब्दों और क्रिया रूपों का प्रयोग भी 'निराला' ने आवश्यकतानुसार निःसंशय किया है। 'हेरे,छुटे,पारता था, परेगा लख,हरेगे और किरन,तरु,बंदा(मधुप वृन्द) छन,छाप,बहता आदि प्रयोग इसी प्रकार के हैं। 'गीतिका' के बाद तो निश्चित रूप से 'निराला' की रचनाओं में क्रमशः भाषा-विषयक सरलता के प्रति प्रीति और शब्दों के तत्सम रूपों के प्रति उपेक्षा निरन्तर बढ़ता गया है। 'अणिमा' में 'पारस क्यों प्राण','भूल गए पहर घड़ी' अथवा 'उतरे बढ़ गहरी बांह'[1] से सहज ही लिख सके हैं। उद्दाम,अनबन, जीवन,दिवस आदि शब्दों का सहज स्थान निरन्तर घनीभूत होता गया है, और यह बहुलता 'बेला' से अनायास ही परिलक्षित होता है। परवर्ती गीतों में तो हिन्दी की सहज प्रकृति के अनुरूप शब्द और क्रिया रूप अपनाने अथवा खड़ी बोली के उच्चारण बंगाल से मैथी की जनसाधारण की बोली में स्वर मिलने के निश्चित प्रमाण हमें मिलते हैं। 'निराला' ने भी अर्चना के प्रारम्भ में इसका संकेत किया है[2]।

'निराला' कृत भाषा-विषयक विवेचन से यह स्पष्ट है कि खड़ी बोली के सन्दर्भ में जहां वे ब्रजभाषा के उत्तराधिकार रूप में 'समबल' सिद्धान्त को अथवा उर्दू के प्रभाव को स्वीकार करते हैं,वहीं खड़ी बोली की प्रकृति के अनुरूप शाणवल सिद्धान्त और संस्कृत के प्रभाव की अवहेलना भी वे नहीं कर सके हैं। खड़ी बोली की भाषा-प्रकृति का यही स्वरूप उनकी कृतियों में हमें मिलता है, सन् ३६ के बाद तो स्पष्टतः ब्रजभाषा और संस्कृत की भाषा-संस्कृति का समन्वित रूप हमें 'निराला' में मिलता है। तुलसी की भाषागत वही

१- अणिमा,पृ०१३

२- अर्चना,स्वयोक्ति,पृ०५

विशेषता को आचार्य वाजपेयी ने 'सांस्कृतिक' संज्ञा दी थी, जो 'निराला' के सम्बन्ध में भी उतनी ही सत्य कही जा सकती है।

संस्कृत काव्य-धारा

तुलसी में शृंगार-भाव के जिस अभाव ने 'निराला' को पद्माकर अथवा रवीन्द्र के अध्ययन की ओर प्रेरित किया था, उसी ने उन्हें संस्कृत काव्य की ओर भी प्रवृत्त किया। सन्यास की अवधारणा को समुचित महत्व देते हुए भी 'निराला' स्वयं पूरे सन्यासी नहीं थे, क्योंकि प्रारम्भिक सौन्दर्य संस्कार के आकर्षण से वे अपने को मुक्त नहीं कर सके। यही कारण है कि महात्मा तुलसीदास के सदृश 'निराला' के लिए शृंगार के प्रति सतर्क दृष्टि रखने की अथवा उसे दिव्य रूप देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। तुलसी में अनुपलब्ध शृंगार, वैभव और विलास की दृष्टि से 'निराला' का आदर्श भी रवीन्द्र के सदृश कालिदास ही थे, परन्तु कालिदास मात्र शृंगार का आदर्श थे। सद् और न्याय की धारणा के अभाव अथवा भाषा-संस्कृति की दृष्टि से वे 'निराला' के आलोच्य भी रहे हैं। वस्तुत: रवीन्द्र के सदृश कालिदास के प्रति भी 'निराला' के कवि का अहंकार जाग्रत है, सुप्त नहीं।

संस्कृत में भी व्रजभाषा के सदृश 'निराला' को व वे ही स्थल विशेष प्रिय थे, जहाँ शब्दावली शब्द-सौन्दर्य से और चित्र शृंगार-भाव से पूर्ण रहते थे। चौरपंचाशिका, कुमार सम्भव, मेघदूत, शाकुन्तल और गीतगोविन्द इन ग्रन्थों से 'निराला' का परिचय घनिष्ठरूप से था। सबसे पहले चौरपंचाशिका 'निराला' ने पढ़ी थी, जिसमें राजकन्या विद्या और सुन्दर कवि की प्रणय कथा कही गयी है। मेघदूत की तरह की यह रचना मूलत: संस्कृत में थी, जो १६वीं शताब्दी में बंगाल में सर्वाधिक प्रचलित थी। उसका तत्सत: रूपान्तर १८वीं शती में कुछ तो फारसी प्रेम कथाओं के प्रभाव के कारण और कुछ उस समय के साहित्यिकों के दरबारी संरक्षण और भ्रष्ट रुचि एवं प्रवृत्ति के कारण हुआ था, जिसमें भारत चन्द्र का प्रयास सर्वाधिक सराहनीय था[१]। उस कथा के सम्बन्ध में

१- इण्डियन लिट्रेचर, पृ०३८६

'निराला' ने अपनी 'विधा' कहानी में बताया है कि 'बंगाल में विधा सुंदर का कहानी टप्पा वगैरह बहुत मशहूर है।' यह लेखक की इस रचना को कालिदास के 'मेघदूत से नीची कोटि' की कहते 'निराला' को झेंप आती है। कहानी में पात्र श्यामनाथ के उन्होंने उसके दो श्लोकों का पाठ करते दिखाया है। पहला श्लोक 'अद्यापि तां कनकचम्पकदाम गौरीम्'[1] आदि का उल्लेख 'निराला' ने 'मेरे गीत और कला' विवेचन में कालिदास के रूप-वर्णन की अपेक्षा भाव-सौन्दर्य की महत्ता के प्रतिपादन के लिए किया था। दूसरा श्लोक 'तवापाङ्गा पयस्त्वदाय मुझे ज्योति-स्त्वदीयांगणे'[2] आदि है। रवीन्द्रनाथ के 'आमार मनेर मोहिर माधुरी माखिया राखिया वियोगी तोमार अंग सौरभे। आमार आकुल जीवन मरण टुटिया लुटिया नियोगी तोमार अतुल गौरवे।' पढ़कर भी 'निराला' के सुन्दर कवि की अंतिम प्रार्थना का स्मरण हो आता है, जहाँ इसी तरह का भाव है।' उसके दो चरण हमें याद हैं।' लिखकर 'निराला' ने यही श्लोक उद्धृत कर उसकी व्याख्या में बताया है 'रवीन्द्रनाथ के नायक की प्रार्थना इसी तरह की है, परन्तु उसका ढंग दूसरा है।'[3] प्रस्तुत रचना के प्रति 'निराला' की प्रीति-भावना आन्तम और प्रारम्भिक कृतियों के उल्लेख से स्पष्ट है।

कालिदास और भवभूति को भी 'निराला' ने पढ़ा था, और इन दोनों का भी नाममात्र को उल्लेख उन्होंने रवीन्द्र कविता-कानन में किया है। रवीन्द्र की मौलिकता की स्वतन्त्र चाल के निदर्शन के लिए कालिदास आए हैं: 'जिन्हें रवीन्द्रनाथ आदर्श मानते हैं, वे कालिदास भी भी पर्वत-प्रिय कवि थे।' चित्रांगदा के सौन्दर्य को आदर्श की दृष्टि से भ्रष्ट करने वाला

१- अद्यापि तां कनक चम्पकदामगौरीम्
   फुल्लारविन्दनयनां तनु रोम-राजिम्।
   सुप्तोत्थितां मदन विह्वलितालसांगीम्
   विद्या प्रमाद गलितामिव चिन्तयामि।'
२- तवापाङ्गा पयस्त्वदाय मुझे ज्योतिस्त्वदीयांगणे।
   व्योमिन व्योम त्वदीयमर्मणि धरा त्वत्तालवृन्तेऽनिलः।।
   सरस्वती, सितम्बर, ५८, पृ०१५६-१६०
३- रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ०१२१, पाठ भेद--'पयस्त्वदाय' और 'धरातलत्वाद'।।

कहकर की गई डी०एल०राय की तीव्र समालोचना को आदर्श की दृष्टि से बुरा न मानते हुए 'निराला' ने कवि की स्वतन्त्रता , कि 'उस पर ये दोष नहीं मढ़े जा सकते '-- का उल्लेख कर समर्थन के रूप में श्री हर्ष द्वारा नैषध में अंकित सती दमयन्ती के न नग्न चित्र की ओर ध्यान आकृष्ट किया है[1]। सन् ३५ में कालिदास और श्रीहर्ष विषयक अपने अध्ययन का संकेत से देते हुए श्री जानकीवल्लभ शास्त्री को 'निराला' ने लिखा था --" कभी मैंने भी इन्हें कुछ-कुछ पढ़ा था। समय नहीं कि दोनों की सौन्दर्य-दृष्टि पर लिखूं। दोनों महान हैं। पर श्री हर्ष का प्रभाव अधिक स्थायी होता है, फिर भी कला की जानकारी कालिदास को अधिक है, अगर कुछ गहन होते[2]।" श्रीहर्ष और उनकी कला के मात्र यही उल्लेख 'निराला' ने किए हैं, कालिदास,जयदेव अथवा चौर पंचाशिका के सदृश उनकी कला अथवा काव्य की विवेचना उन्होंने नहीं की है।

कला और श्रृंगार की दृष्टि से कालिदास 'निराला' के प्रिय और उन्हें निरन्तर प्रेरणा प्रदान करने वाले थे, उनके साथ ही अपनी विद्रोही दृष्टि के कारण 'निराला' ने उनका विरोध भी किया है। इनकी कृतियों में 'कुमार सम्भव','मेघदूत' और 'शाकुन्तल' का 'निराला' ने विशेषरूप से अध्ययन किया था, जिसे डा० शर्मा ने 'घोखना' कहा है। कालिदास की कला के विवेचन में प्रथम दो का ही उल्लेख 'निराला' ने मुख्यतः किया है। शाकुन्तल का भी गहरा अध्ययन उन्होंने किया था और महाकवि के दोष-दर्शन के लिए कृति के उस स्थल का हवाला दिया है,जहां प्रथम मिलन के उपरान्त शकुन्तला दुष्यन्त से विदा होती है[3]। इस कृति के चुने हुए श्लोक और उनके अर्थों की बारीकी 'निराला' ने श्री शिवपूजनसहाय को सुनाई थी, जब सन् ६० में वे उनसे मिलने गए थे[4]।

१- रवीन्द्र-कविता-कानन,पृ०१५,२३

२- महाकवि निराला,पृ०६,१४-८-३५ का पत्र सं० आचार्य शास्त्री

३- निराला,पृ० २६,३१

४- वे दिन वे लोग,पृ० ७६

यद्यपि 'निराला' ने कालिदास की आलोचना की है, तथापि वे यह स्वीकार करते हैं कि 'कालिदास को नीचा दिखाना मेरा अभिप्राय नहीं । वे मेरे दैहिक, मानसिक दोनों प्रकार के सर्वोत्तम भोज्य हैं[1] ।'

कालिदास और उनके युग के महत्त्व की ओर भी 'निराला' ने संकेत किया है । भारत के ज्ञान और सत्य के आश्रय पर उसकी प्रतिष्ठा की ब्राह्म-समाज में उठाई गई आवाज को वे नई चीज नहीं मानते, 'कारण, यहां समाज के सूक्ष्म चित्र मिलते हैं, साथ ही उस भाषा की शक्ति ललित मधुरता ।' कालिदास की तपोवन वासिनी शकुन्तला का स्वरूप, जो सब का मन मोह लेता है, उसका कारण यह है कि 'कालिदास भारत के स्वतन्त्र काल के कवि थे और भारतीय आदर्श के अनुकूल ही उनकी भाषा मंजी हुई थी और सूक्ष्म चित्र के ध्यान में वे अपने को मिला सकते थे[2] ।' अपने गीतों और कला के सूक्ष्म विवेचन में भी वेदों से ब्रजभाषा तक भाषा के पतन के मनोहर इतिहास अथवा उसकी बढ़ती हुई ह्रासानुशीलता--जिसके द्वारा देश के अपभ्रष्ट जीवन का परिचय मिलता है -- के सम्बन्ध में लिखते हुए उन्होंने कालिदास और श्रीहर्ष को भी लिया है । देश के कालिदास की कला का चमत्कार देखते समय देश का अपभ्रष्ट जीवन प्रकृति द्वारा तैयार हो चुका था । परन्तु 'श्रीहर्ष का समय तो पूर्ण पतन का पूर्व मुहूर्त है, इसलिए ये संस्कृत और ये काव्य जातीय जीवन के नहीं कहे जा सकते, शंकर से लेकर बाद के समस्त भाष्यकार अपभ्रष्ट भाषा-काल के हैं, संस्कृत द्वारा उन्होंने दिग्विजय ही किया है, अपने मत की प्रतिष्ठामात्र की है, जाति की जीवनी शक्ति का वर्धन नहीं-- उस समय की भाषा का उद्धार नहीं[3] ।' नैषध में सती दमयन्ती का नग्न चित्र और यहां पत्नी के वर्णन में कालिदास का 'निम्ननाभि' और 'श्रोणीभार' आदि अश्लील वर्णन[4] प्राचीन प्रवृत्तियों का ही परिचय देते हैं ।

१-साधना, वर्ष २, अंक ४-८, लखनऊ से आचार्य शास्त्री को ५-८-३७ का लिखा पत्र
२-प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०१५७
३- ,, पृ० १६६
४- रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ०२१, प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०२०६

काव्य-दृष्टि से कालिदास के काल को रवीन्द्र ने भी भोग-विलास के उपकरण और काव्यमय -संगीत-शिल्प-कला की चर्चा में सभ्यता की श्रेष्ठता को प्राप्त कहा है। उस समय के उपकरण, बहुल संभोग का रंग कालिदास की काव्य- कला के भीतर से भी बड़ा है, यह मानते हुए उन्होंने लिखा -- "वस्तुतः उनके काव्य के बाहरी अंश पर तत्कालीन शिल्प-कला की काफी प्रभाव है। इस तरह, हम एक दिशा में उस युग के समय के साथ उस युग के कवि का योग या सम्बन्ध स्पष्ट देख सकते हैं।[1]" कालिदास ने अनेक संदर्भों और संकेतों से समसामयिक वास्तु, चित्र और मूर्तिकलाओं की सर्वांगीण विकसित स्थिति का बोध कराया है, इसका उल्लेख डा० भगवतशरण उपाध्याय ने भी किया है[2]। 'कुमार सम्भव' के 'मन्दाकिनी निर्झरशीकराणां वोढा मुहुः कम्पित देवदारुः' आदि के मंदाकिनी निर्झर शीकर और कंपित देवदारु से प्रभावित होने तथा मेघदूत को विरही जनों के लिए लिखा बताकर उसमें विरह के विलाप की कमी और विरही की आकांक्षा की स्थिति का उल्लेख किया है[3]।

जयदेव के 'गीतगोविन्द' से भी 'निराला' का परिचय था, जो संस्कृत काल के बहुत बाद की रचना है। देश की माध्यम संस्कृत होने पर भी इस कृति की रचना के समय प्रादेशिक भाषाएं अपना पूरा विस्तार कर चुकी थीं और वैष्णव कवियों की रचनाओं पर इसका प्रभाव था, यह 'निराला' ने लिखा है[4]। उन्होंने यह भी बताया है कि जयदेव की पदावली में पन्स्य प्रयोगों की बहुलता ब्रजभाषा और अवधी के अनुकूल था[5]। जयदेव को संस्कृत कवियों के साथ न लेकर ब्रजभाषा के कवियों के विवेचन में लेने का कारण भी यही है। 'रस प्रधान कोमल-कान्त-पदावली' गीत गोविन्द की अपेक्षा वैष्णव कवियों की 'भाव प्रधान' वर्णना-चातुरी और यथार्थ साहित्यिकता से भरी' रचनाओं को

१- रवीन्द्र साहित्य,भाग७,पृ०१०७
२- कालिदास के सुभाषित,पृ०२७४
३- रवीन्द्रनाथ के निबन्ध,भाग२,पृ०५८,१४०-१४१
४- गीतिका की भूमिका,पृ०-
५- प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०२०३

'निराला' ने कमजोर कहा है, साथ ही आजकल की अश्लीलता के विचार से वैष्णव कवियों--चण्डीदास और गोविन्ददास(बिहारी)-- के शृंगार को वे अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध मानते हैं। जयदेव की पदावली को वे भागवत की परम्परा में रखते हैं,[+] जिसमें एक ओर गहन वेदान्तिक विचार है और दूसरी ओर गोपियों के शृंगार-वर्णन में आजकल के विचार से अश्लीलता भी है। भक्त और वैष्णव गीतगोविन्द के प्रणेता के शृंगार के लिए उन्होंने 'धीर समीरे यमुना तीरे वसति वने वनमाली' श्लोक दिया है, और विद्यापति को भी सीधे इसी परम्परा में रखा है[१]। जयदेव के 'उरसि मुरारेरुपहित हारे घन इव तरल बलाके। तडिदिव पीते रति विपरीते राजसि सुकृत विपाके।' श्लोक को 'निराला' ने विशेष अर्थ में ले लिया था और वेदान्त तत्त्व में उसे घटाया था[२]।

कला की दृष्टि से 'निराला' ने कालिदास की कला जिसका आधार 'शब्दबल' वर्णन है -- की प्रशंसा की है और यही उनपर आक्षेप का मूल आधार भी है। वर्णों के इस स्कूल में कालिदास को अकेला मानकर, उनकी कला और इन वर्णों की विशिष्टता के सम्बन्ध में 'निराला' लिखते हैं 'शब्दों से रूपचित्रण कालिदास का जितना अच्छा होता है, उतना दुरुस्त बैठता हुआ दूसरों का नहीं, इसीलिए 'उपमा कालिदासस्य' कहा गया है। 'कालिदास की तरह की कोमलता और सौन्दर्य- चित्रण की प्राथमिक कला संस्कृत में उन्हें अन्यत्र नहीं मिलती। कालिदास के रूपचित्रण के उदाहरण के रूप में 'निराला' ने 'प्रसाद और सौन्दर्य' में श्रेष्ठ माना गया मेघदूत(उत्तर मेघ) का श्लोक,'तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी' आदि रखा है[३]। इन वर्णों की दूसरी

१- गीतिका की भूमिका,पृ०१९,प्रबन्ध पद्म,पृ०१३९-१४०

२- साधना,वर्ष १,अंक११-१२,पृ०४३ लखनऊ से ३-४-३६को आचार्य शास्त्री को लिखा पत्र।

३- प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०२०५

+- आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने जयदेव के 'गीतगोविन्द' को पूर्णरूप से भागवत परम्परा का ग्रन्थ नहीं माना है, और इसके दो कारण बताए हैं,-१--भागवत में जयदेव की प्रमुख गोपी राधा अपरिचित है और २--गीत गोविन्द में वसन्त रास है और भागवत में शरद रास। आचार्य द्विवेदी ने गीत गोविन्द की पद्धति दसवीं शताब्दी के कवि क्षेमेन्द्र के 'दशावतार चरित' में गोपियों के भजन में देखी है।
-- हिन्दी साहित्य,पृ०६७,९६७।

विशेषता यह है कि ... उनके उच्चारण में संगीत बड़ा मधुर झंकृत होता है ।" यहां पूर्वमेघ के 'मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां' और 'कुमार संभव' के 'सुगन्धिनि:श्वास-विवृद्ध तृष्णं बिम्बाधरासन्नचरं द्विरेफम्' श्लोकों द्वारा उन्होंने उच्चारण की स्फूर्ति की ओर ध्यान आकृष्ट किया है[1]।

कालिदास की एक अन्य अन्यतम विशेषता, अन्यत्र न मिलने वाली उनकी एकमात्र कला --'जहां अलंकार के धर्मविशेष के लोप से दूसरा सहज अर्थ प्रतिभात है' -- का उल्लेख 'निराला' ने किया है, जिसके उन्होंने अनेक उदाहरण निकाले थे। मेघदूत (उत्तरमेघ) के श्लोक 'यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखरा: पादपा नित्य पुष्पा'+ आदि का अर्थ स्पष्ट करते हुए 'निराला' ने बताया है कि यहां लुप्तोपमा द्वारा स्त्री-पुरुष के संयोग, एक ही पंक्ति में और एक-एक पंक्ति में (शब्द स्वतः प्रमाण है कि कालिदास का यही भाव है) दिखाया गया है। यह संयोग प्रसन्नता जाहिर करने के द्वारा पहले पादप(पुल्लिंग) और नलिनी(स्त्रीलिंग) द्वारा, पहले रूप में, फिर केका(स्त्रीलिंग) और शिखी(पुल्लिंग) द्वारा स्वर में और अन्तत: भाव में, जो और सूक्ष्म हो गया है, दिखाया गया है[2]।

मेघदूत की ही 'सीमन्ते च त्वदुपगमनं यत्र नीपं वधूनाम्' में आचार्य शास्त्री की-- 'वधूनां' के द्वारा सभी फूलों की भिन्न रुचि के अनुसार लगाने की-- दी हुई युक्ति को अच्छा मानते हुए 'निराला' ने इस विरोध का उल्लेख किया है कि " एक ही समय घोर जाड़ा और घोर गरमी नहीं पड़ सकती। स्वाभाविक ऋतु-प्रभाव से धीरे-धीरे खिलने वाले जाड़े के 'लोध्र' और गरमी के 'शिरीष' एक साथ बाग में खिले नहीं मिल सकते।" परन्तु उनकी युक्ति के उत्तर में 'निराला' यह स्वीकार करते हैं कि ऋतु ऋतु का एक ही श्रृंगार सभी स्त्रियां कर सकती हैं।" स्वर्ग में एक समय साथ छहों ऋतुएं होने का जो काल्पनिक आश्रय टीकाकारों और

१-प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०२०३

+-यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखरा: पादपा नित्यपुष्पा हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्य: । केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा नित्यज्योत्स्ना: प्रतिहततमोवृत्तिरम्या: प्रदोषा: ।।३

२- साधना, वर्ष १, अंक ७-८, लखनऊ से आचार्य शास्त्री को ११-९-३५ को लिखा पत्र।

संस्कृत के विद्वानों ने लिखा है, वह 'निराला' की दृष्टि में 'कालिदास की कला को न समझना है -- जैसा कि उन्होंने 'मेघ' में ही लिखा है -- 'दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूल हस्तावलेपान्' (दूसरा अर्थ-रास्ते में दिङ्नाग- जैसे पंडितों के हाथ भी यहां लापरवाही (स्थूल काव्य कला) छोड़ते हुए)[1] इस दूसरे छिपे हुए अर्थ में है सौन्दर्य बढ़ गया है, यह उन्होंने तुलसी की 'जाद सुधा बालकद बालि' आदि पंक्तियों में रावण की उक्ति में अन्तर्विरोध दिखाकर तुलसी के भाव-सौन्दर्य नष्ट करने के उल्लेख के साथ बताया है[2]।

कालिदास की इस प्रशंसा का दूसरा पक्ष वह है जहां 'निराला' ने 'शकुन्तला' वर्णों के आधार पर उनके रूप-चित्रण की सराहना करते हुए उसकी एक दुर्बलता भी यह बताई है कि 'जहां भावजन्य सौन्दर्य है, जो और मधुर-हृदय के और पास तक पहुंचा हुआ है, वहां कालिदास नहीं उठ पाते।' उनके 'तन्वी श्यामा इत्यादि में रूप ही रूप है, भाव नहीं। विधाता की आदि दृष्टि में अंग यष्टि ही सामने आती है। इसके विपरीत भावजन्य सौन्दर्य की श्रेष्ठता के लिए चौरपंचाशिका के अपने प्रिय श्लोक' अद्यापि तां कनकचम्पकदाम गौरीम्' को प्रस्तुत किया है, जिसके वर्ण संगीत में संस्कृत का स्वस्थ रूप है। 'प्रभावगलिता' के अर्थ चमत्कार का प्रभावगलिता विधा के भाव-रूप में बदल जाने का जिसका बराबरी यदा-प्रिया नहीं कर सकती -- उल्लेख कर भावगत श्रेष्ठता का निदर्शन 'निराला' ने किया है[3]।

भिन्न-वर्ण-सौन्दर्य के प्रदर्शन तथा 'समान्वित कला' के विचार से 'निराला' ने जयदेव को लिखा है, जो 'स- म - ब - ल' भारते काम हैं। बंगाली होने के कारण 'व' के उच्चारण की व्यांजनगतत्व से उन्हें क्षम थी, यह भी 'निराला' ने बताया है। शकुन्तल का अभाव सौन्दर्य की कमी का

१- साधना, वर्ष १, अंक ७-८

२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० २०७-२०८

३- ,, पृ० २०५-२०६

कारण नहीं माना जा सकता, 'संगीत विशारद', 'कोमलकान्त पदावली', 'वाग्बन्ध' के जन्मदाता' और सौन्दर्य बोध में किसी श्रेष्ठ कवि से घटकर न रहने वाले जयदेव में उसका साक्षात् दर्शन 'निराला' को मिला है, उनकी 'उन्मदमदनमनोरथपथिक वधुजनजनित विलापे' आदि पंक्तियों से यह स्पष्ट है । उनमें जहाँ कहीं 'श ण ष' वर्णन आए हैं, जैसे 'धीरसमीरे यमुना तीरे वसति वने वनमाली' में, वहाँ वे वर्ज्य हुए हैं । उनका वर्ण संगीत कालिदास से नितान्त भिन्न है । 'वदसि यदि किंचिदपि दन्त रुचि कौमुदी' आदि पदलालित्य में व्यक्त भाव-सौन्दर्य जयदेव में ही प्राप्त होता है, अन्यत्र नहीं -- यह 'निराला' का निश्चित मत है[1]।

'निराला' का कालिदास की कला-विषयक यह विवेचन इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि उनकी कला में जो आलंकारिकता है, कल्पना का अद्भुत विकास है-- वह एक दृष्टि से ब्रजभाषा के रीतिवादी कवियों के समकक्ष है । परन्तु जिस प्रकार जयदेव के 'गीतगोविन्द' की तुलना में वैष्णव कवि कमज़ोर पड़ते हैं, वही अनुपात कालिदास और रीतिवादी कवियों में भी दृष्टिगत होता है । दोष दर्शन वाली रीति उन्होंने जयदेव के प्रति नहीं अपनाई है और वैष्णव कवियों के सदृश उनके शृंगार और सौन्दर्य की संगीतमयी पदावली की प्रशंसा की है और केवल शृंगार के सन्दर्भ में वैष्णव कवियों को उनकी अपेक्षा अधिक शुद्ध कहा है । स्पष्ट है कि जहाँ रवीन्द्र के सदृश प्रशंसित और आलोचित कालिदास उनकी प्रेरणा बने हैं, वहाँ वैष्णव कवियों की भाँति जयदेव का प्रभाव उनपर लगभग शून्यवत् है । स्वयं 'निराला' ने यह स्वीकार किया है कि जयदेव के बाद उनके अपने काव्य के वर्णाधार लिखने का यह मतलब नहीं कि वे जयदेव से प्रभावित हुए हैं[2]।"

कालिदास की शृंगार-साधना, उनका रूप और भोग का वर्णन, जो 'निराला' को प्रिय था, उनका प्रेरणा-स्रोत रहा है । इन्द्रियों, सौन्दर्य बोध अथवा सौन्दर्यशास्त्र एवं इन्द्रियग्राह्य मनोभावों अथवा संवेगों का

१- प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०२०३-२०४

२- ,, पृ० २०५

सर्वोपरि और महान कवि श्री अरविन्द ने कालिदास को कहा है[1]। वे आर्य सभ्यता की भौतिक अथवा पार्थिव निवृत्ति की सूक्ष्म और भव्य अभिव्यक्ति की दृष्टि से इन्द्रियों को सुख देने वाले ऐन्द्रिय कवि कालिदास की प्रशंसा करते हैं[2]। रूप-रस-गंध और स्पर्श के प्रति अपनी आसक्त प्रवृत्ति के कारण ही 'निराला' कालिदास से साम्य रखते हैं, श्रृंगार-सौन्दर्य और वैभव-विलास की दिशा में उनका आदर्श स्वीकार कर उनसे अनायास प्रेरणा लेते हैं। कालिदास के रूप का आदर्श 'प्राप्ष्टराधेव धातु:' 'निराला' ने बताया है[3]। 'पंचवटी-प्रसंग' में शूर्पनखा के शारीरिक सौन्दर्य का जो चित्रांकन 'निराला' ने प्रस्तुत किया है, वहाँ 'निराला' ने भी अंग-यष्टि पर ही ध्यान केन्द्रित किया है। 'कुमार संभव' में प्रस्तुत नवयौवना उमा के सौन्दर्य का जो वर्णन कालिदास ने किया है, उसका भी आभास हमें 'निराला' की शूर्पनखा में मिलता है। जहाँ रूप प्रमुख हो, सौन्दर्य का ऐसा चित्रण 'निराला' में अन्यत्र दुर्लभ ही है। प्रणय के अवसर युक्त चित्र उन्होंने दिए हैं। यौवनागमन और लावण्यमय रूप का चित्रण करते हुए कालिदास ने यौवन के आकर्षक रूप को सूर्य की किरणों के संस्पर्श से मुकुलित शतदल के सदृश कहा है[4]। सौन्दर्य की अभिव्यंजना में 'निराला' ने भी यही उपकरण स्वीकार किए हैं, यह हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं। नव यौवनाकुल और प्रेम-पावन प्रकृति के नूतन संयोग द्वारा उन्होंने प्रिया और प्रियतम के जो सुलेख चित्र 'निराला' ने अंकित किए हैं, निःसन्देह उन चित्रों में अवश्य कालिदास का श्रृंगार-भाव सन्निहित है। पुष्प-युवती और तरुण दल, अथवा प्रस्फुट कलिका और समीर के प्रतीक रूप में परिमल, गीतिका और अनामिका में अवतार है यह स्पष्ट है।

मेघदूत(पूर्वमेघ) में कालिदास ने गंभीरा नदी के चित्रण में श्रृंगार का स्पष्ट संकेत देते हुए लिखा है कि मेघ द्वारा गंभीरा नदी का जल-पान

१- कालिदास,पृ०१६

२- कालिदास,पृ०१२,१४

३- परिमल,पृ०२२४-२२५

४- कुमारसंभवम्,प्रथम सर्ग,श्लोक ३२

करने के उपरान्त जब उसके दोनों तट नाचित क दिखाई देंगे, उस समय जल में झुकी बानीर शाखाएं देखकर ऐसा प्रतीत होगा मानो अपने तट-नितम्बों से सलिल-वस्त्र के स्खलन से लज्जावश गंभीरा नदी बेंत शाखा करों से अपना जल-वस्त्र पकड़े हुए है[1]। गीतिका के गीत 'बैठ ले।' यह छवि रात दिन ' में 'निराला' ने सुमन चुने जाने के भय तरुण किसलयों का भीरु कम्पन, उनके विकसित हो मधुदान करने के लिए व मलिन नयन मूंदने का उल्लेख कर दिया है --

रहा बाढ़ में बही मन्द हरि--
खोले कुछ न कोई जल हरि,
महाराज ने भी लख लघु अरि
रखे पग गिन- गिन-गिन[2]।'

गीतों के सरलार्थ में कुछ का अर्थ 'कमर' के निचले दोनों पार्श्व और 'जलहरि' का पानी दूर बहा दिया हुआ है[3]। भावगत साम्य होने पर भी 'निराला' ने पूर्ण यौवन का नहीं, यौवन -सम्राट का शंकित प्रयाण चित्रित किया है, अत: उनका चित्र कालिदास से साम्य रखकर भी उससे दूर है। समूचे बिम्ब विधान का दाम्पत्य-प्रेम में परिणति की दृष्टि से 'निराला' कालिदास के समकक्ष हैं। कालिदास की भांति 'निराला' ने रोमांच आदि अनुभावों का वर्णन प्राय: नहीं किया है और कालिदास की भांति श्रृंगार का शास्त्र-सम्मत अंकन उनका ध्येय नहीं था। परन्तु फिर भी संस्कृत शैली के आधार पर उन्होंने श्रृंगार का वर्णन किया है। सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति' में 'प्रणय के प्रियंका को डाल-डाल'[4] प्रयोग इसी प्रकार का है। बादल राग में 'जुही की कली' के पवन के सदृश बादल को निर्दय नायक के रूप में चित्रित करते हुए उन्होंने 'धो डिबेर, मुख-फेर बाला के निष्ठुर - पीड़न[5]। लिखा था। गीत कुंज के एक गीत में भी उन्होंने उसी के अनुरूप लिखा--

---

१- कुमार सम्भव, श्लोक ४१
२- गीतिका,पृ०७२,तथा रसिलम्बर३३,पृ०१६३ गीत में यह पद नहीं दिया गया है।
३- गीतिका,पृ०१६
४- अनामिका,पृ०१८
५- परिमल,पृ०१६१

'मालती खिली, कृष्ण मेघ की ।
छायाकुल हो गयी धरा
कर पार उन्हें मधुरतरा
विपुल पल्लवित मनोहरा,
तृणों से मिली ।[1]

चित्रण की दृष्टि से 'निराला' के राम और कालिदास के दिलीप की चित्रलिखित विवशता में अद्भुत साम्य है । 'राम की शक्ति पूजा' में समर में अपनी विजय की ओर से निराश राम के बार बार योजित शर--'जो तेजः पुंज सृष्टि की रक्षा का विचार है, जिनमें निहित पतन घातक संस्कृति अपार' -- स्खलित और खण्डित हो जाते हैं । लांछन को ले शशांक के नभ में अशंक रहने के सदृश अंक में रावण को लिए महाशक्ति का स्मरण राम को आता है, जो उनके मंत्रपूत शरों को संभूल कर निष्फल करती थीं । उस समय राम की स्थिति:

पश्चात् देखने लगीं मुझे, बँध गए हस्त,
फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बँधा मैं हुआ त्रस्त[2] ।'

'रघुवंश' में सिंह से नन्दिनी की रक्षा करने में असमर्थ दिलीप की विवशता भी इसी प्रकार की है । विवश नंदिनी के ऊपर खड़े मृगेन्द्र से रक्षा करने के लिए जब मृगेन्द्रगामी दिलीप तूणीर से शर निकालने के लिए अपना हाथ उठाते हैं, वे चित्रलिखित से रह जाते हैं[3] । कालिदास ने दिलीप की उपमा उस सर्प से दी है, जो मंत्र के प्रभाव से निष्क्रिय हो जाता है और प्रहार करने में असमर्थ अपने ही तेज से भीतर ही भीतर जलने लगता है । वर्णन और भावगत सादृश्य यहाँ मुख्य है, जिसका तात्पर्य 'निराला' पर कालिदास का प्रभाव दिखाना नहीं है ।

उपमाओं के लिए प्रकृति की अजस्र कोष स्वीकार

१- गीत गुंज, द्वितीय संस्करण, पृ०४९

२- अनामिका, पृ०१५४

३- वामेतरस्तस्य करः प्रहर्तुर्नखप्रभाभूषितकंकपत्रे
शक्तांगुलिस्सायक पुंख एव चित्रार्पितारंभ इवावतस्थे ।'

करने की कालिदास की प्रवृत्ति छायावादी काव्य प्रवृत्ति के अनुरूप है । उनकी भाषा संस्कृति में 'शणषठ' वर्णों की प्रधानता भी इसी प्रकार के साम्य का संकेत करती है । इस 'श्यामाश्याम' को 'निराला' ने अपने सम्बन्ध में कभी कालिदास का प्रभाव मानते हैं और कभी कहते थे कि जयदेव के स्थान से वर्ण उनकी कविताओं में दबे हुए हैं । हम देख चुके हैं कि उनकी भाषा संस्कृति में दोनों रूपों का सम्मिश्रण हमें मिलता है । संज्ञाओं से सुन्दर क्रिया-विशेषणों की रचना करने की कालिदास की प्रवृत्ति -- जैसे वसन से 'वसाना' अथवा कुवलय से 'कुवलयित'[1] के दर्शन हमें 'निराला' में भी होते हैं । बाद की रचनाओं में भाषा के तद्भव शब्दों के प्रति आग्रह रखने वाले उनके 'बहार' और 'कलियां'[2] प्रयोग इसी प्रकार के हैं । संस्कृत के शब्दों के प्रति उनका सहज आग्रह 'स्निग्धधु ने कान्तियों के मलिनतामद यथा भ्रमरों'[3] पंक्ति से स्पष्ट है । समास-रचना की प्रवृत्ति 'उत्ताप तापराशिमधुरउपार' अथवा 'लघा-वधारधनागर्जित धार' जैसे प्रयोगों में दर्शनीय है । संस्कृत के धातु अर्थ को ध्यान में रखते हुए 'निराला' ने शब्दों की सिद्धि भी अपने ढंग से की है । 'भारत' और 'भारती' की उनकी व्याख्या इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है ।

कालिदास के मेघदूत, कुमार-संभव और शाकुन्तल ग्रन्थों के विरही-यक्ष, दुष्यन्त-कान्ता शकुन्तला और तपस्विनी उमा 'निराला' की चेतना में अनायास इस प्रकार समाविष्ट हो गए हैं कि उन्होंने इनका प्रयोग सांस्कृतिक प्रतीकों के रूप में किया है । अपने श्रृंगार भाव का परिचय देते हुए[4] उन्होंने माया को विरही यक्ष की कठिन विरह-व्यथा, अथवा 'दुष्यन्त-कान्त-शकुन्तला' कहा है । शकुन्तला को वे संस्कृत साहित्य की आदि श्रृंगार-सृष्टि और तपोवन की तपस्या का मूर्त रूप मानते हैं । यहां 'प्रेम और श्रृंगार जितना ऊंचा है[5] त्याग भी उतना दूर तक समान्तराल रेखा की तरह खिंचा हुआ चला है[6] । 'स्मृति-चुम्बन' की

१- वसने परिधूसरे वसाना' शाकुन्तल और 'कुवलयित गवाक्षां लोचनैरंगनानाम्' -- रघुवंश

२- अर्चना, पृ०५२, आराधना, पृ०४०, बेला, पृ०१२

३- बेला, पृ० २४

४- परिमल, पृ०६१

५- प्रबन्ध पद्म, पृ०६६-६७

६- परिमल, पृ०१६१

परिणति में यौवन के वन की शकुन्तला का उल्लेख कर 'निराला' ने सम्पूर्ण प्रणय व्यापार को व्यक्तिगत भावोच्छ्वास से ऊपर उठा उसे 'संस्कृति की श्रेष्ठतम आयाम' प्रदान किया है[1]। 'बेला' के झपताल में निबद्ध एक गीत में रूप और भाव के माधुर्य नहीं, वरन् मन की विकलता की व्यंजना के लिए 'निराला' लिखते हैं: "विश्व की विकलता अनुपम शकुन्तला रह गई, विस्मृति ऋषि का लगा शाप[2]।"

'गीतिका' के 'रूखी री यह डाल वसन वासन्ती लेगी' होली में 'निराला' ने मधु-व्रत में रत वधू-उमा द्वारा काम को नष्ट कर आनन्द देने वाले स्मर-हर के वरण को चित्रित किया है। इस रचना में आचार्य वाजपेयी ने व्यंजना की भास्वरता देखी है[3]। अन्यत्र भी इसी प्रकार 'निराला' ने पथा पतझार का किंशुक-उर पवन-लहराता अंशुक-जाल[4]।' लिखा है। 'अणिमा' की 'सहस्राब्दि' रचना में उज्जयिनी के वर्णन में 'निराला' ने 'मेघदूत' में वर्णित उज्जयिनी, शिप्रा और महाकाल का उल्लेख किया है[5]। अन्तिम काल की एक रचना में भी इसी प्रकार 'निराला' ने 'यहीं दृष्टि अलका की उत्तम कालिदास जैसे कवि रत्न[6]' महाकवि और उनकी कलाप्रिया की नगरी का स्मरण किया है। कालिदास की समृद्धि और गरिमा का, उनकी कला के श्रृंगार का स्मरण 'निराला' ने 'देवी सरस्वती' रचना[7] में भी किया है। 'प्रेयसी' में क्लासिकल प्रसंगों के बाहुल्य से सारी कविता के टोन को उसी भाव में कालिदासीय भी कुबेरनाथ राय ने कहा है, उस भाव में मिल्टन की प्रत्येक लाइन को होमरिक और वर्जिलियन माना गया है[8]।

१- निराला और नव जागरण, पृ०२५४, डा० रामरतन भटनागर
२- बेला, पृ०६८, देशदूत २४ मार्च ४६
३- 'कवि निराला', पृ० १३२
४- गीतिका, पृ०८०
५- अणिमा, पृ०५[illegible]
६- गीत गुंज-२, पृ०५२
७- नए पत्ते, पृ०७०-७२
८- निराला-स्मृति-ग्रन्थ, पृ०१२७ -सम्पादक, ओंकार शरद

'निराला' ने कालिदास को पढ़ने और उसके प्रभाव के चिन्ह तुलसीदास में स्पष्ट रहने की बात स्वयं स्वीकार की है । यहां 'श्यामल' को प्रकाश की तरह उज्ज्वल और 'समल' को आकाश की तरह नील कहा है । डा० शर्मा इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि 'निराला' को कालिदासीय काव्य नीला दिखाया देता था, पर यहां विवाह में उन्होंने पृथ्वी को आकाश से छोटा देखकर प्रकाश को रंगीनी से छोटा माना । लेकिन उनका सारा दर्शन प्रकाश को श्रेष्ठ और रंगों को उससे घटकर मानता आया था ।'[1] 'निराला' ने 'अर्चना' और 'आराधना' के दो गीतों[2] में सम्पूर्ण विश्व प्रकृति को नीलाभ देखा है । मृत्यु की प्रथम आभा भी इसी प्रकार नीलिमानुरंजित है । प्रसाद को भी नीला रंग बहुत प्रिय था और इसी प्रकार असित कुमार हालदार को भी नीला रंग बहुत प्रिय है । प्रसाद जी और भी कारणवश असित हालदार की स्मरण दिलाते हैं । दोनों ही उच्च वर्ग की संस्कृति के कलाकार हैं । यहाँ मधु और माधव की भरमार है । दोनों ही हमें उन मुगल कलाकारों का स्मरण दिलाते हैं, जिनके चित्रों में कोमलता और सुकुमारता के साथ विलास की झलक थी ।'[3] ज्योति के उपरान्त नील वर्ण की प्रधानता हमें 'निराला' में मिलती है ।

कालिदास का जीवन-दर्शन इन दो शब्दों-- ' आत्म, नियमन और सप्राणता' में व्यक्त किया जा सकता है[4] । श्री अरविन्द ने प्राचीन भारतीय इतिहास का सत्य कालिदास को इसी अर्थ में कहकर उनकी गणना वाल्मीकि और व्यास की परम्परा में की है[5] । 'तपोवन' शीर्षक निबन्ध में रवीन्द्र ने भी 'त्याग द्वारा योग ' उपनिषद् के इस अनुशासन को 'कुमार संभव' की कथा का सार कहा है । वे लिखते हैं --' कवि ने इस काव्य में कहा है,

---

१- निराला की साहित्य साधना, पृ० ३०४

२- अर्चना, पृ०६२, आराधना, पृ०४५

३- नया हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि, पृ०११६, प्रकाशचन्द्र गुप्त

४- मेघदूत की भूमिका, डा० राधाकृष्णन, साहित्य अकादेमी ।

५- कालिदास, पृ०१२

'त्याग के साथ ऐश्वर्य का और तपस्या के साथ प्रेम का मेल होने में ही शौर्य का उद्भव है । उस शौर्य से ही मनुष्य सब प्रकार के परामर्शों से उद्धार पाता है । अर्थात् त्याग और भोग के सामंजस्य में ही पूर्ण शक्ति है । 'कुमार संभव में त्याग की सहायता से तपस्या द्वारा शिव की प्राप्ति संभव बताया गया है, क्योंकि शिव सकल देश और काल के हैं ।[1]' बंगाल के वैष्णव कवियों का शृंगार वर्णना' में 'निराला' ने भी भोग और धर्म का यही अन्योन्याश्रित सम्बन्ध बताया है, जो रवीन्द्र की दृष्टि में कालिदास का आदर्श और संदेश है । कुमार संभव में कालिदास का आदर्श वह शिव है, जो योगी होने के साथ भोगी भी थे । भोग के प्रति महाकवि की यह आस्था अथवा अनुराग उनके युग का प्रभाव था । धर्म के प्रति कालिदास की गहन आस्था नहीं थी, परन्तु सिद्धान्ततः वे वेदान्ती और धर्मानुष्ठान में शिव भक्त थे[2]।' निराला' ने भी यद्यपि भोग को स्वीकार किया है , उनका आदर्श योगी ही है ।' तुलसीदास' में भोग के ऊपर योग की विजय में 'निराला' कालिदास के 'कुमार संभव' से साम्य रखते हैं , परन्तु भोग के चित्रण की प्रवृत्ति की जो प्रधानता कालिदास में उनके युग का प्रभाव बताती है, वहाँ 'निराला' उनसे भिन्न है,क्योंकि भोग का विस्तृत वर्णन कालिदास की भाँति उन्होंने नहीं किया है । सन्यासी के आदर्श मानने की उनकी परिकल्पना मूल में श्रीरामकृष्ण मिशन से उनकी घनिष्ठता की स्थिति है । जीवन और जगत में अवश्य वे कालिदास की भाँति आस्थावान रहे हैं ।' यह कालिदास की महत्ता है कि वह रस: इन्द्रियबोध के साथ मूलतः जीवन के प्रति अनुराग प्रकट करते हैं । और गोचर जगत के समृद्ध जीवन के प्रति यह सघन अनुराग ही 'साहित्य का स्थायी तत्व' है । कालिदास में उपलब्ध यही तत्व रवीन्द्र पर उनके गहरे प्रभाव का कारण है और यही कारण है कि 'तुलसीदास' लिखते समय 'निराला' महाकवि के अध्ययन में डूबे हुए थे ।'

१- रवीन्द्र-साहित्य,भाग७,पृ०११०-१११

२- कालिदास,पृ०१४, श्री अरविन्द ।

"निराला" के लिए जयदेव ताल की दृष्टि से प्रेरणा का स्रोत सिद्ध हुए हैं। रवीन्द्र ने भी "गीतगोविन्द" को अनेक बार पढ़ने का उल्लेख करते हुए बताया है कि "निभृत निकुंज गृहम् गतया निशि रहसि निलीय वसन्तम्" पंक्ति मन में अद्भुत सौन्दर्य का उद्रेक करती थी और छंद की दृष्टि से यही उनके लिए पर्याप्त था। रवीन्द्र ने इस कृति को गद्य के ढंग पर पढ़कर जयदेव के विभिन्न छंदों को अपनी चेष्टा से खोजने के आनन्द का उल्लेख भी किया है।[1] स्पष्ट है कि छंद और कथा की दृष्टियों से जयदेव से रवीन्द्र प्रभावित हुए थे। "निराला" ने कथा नहीं, केवल छंद अथवा ताल की दिशा में ही उनके "गीतगोविन्द" से प्रेरणा ली है।

ताल में नित्य-रुचि रखने वाले "निराला" की दृष्टि में "गीत गोविन्द" की महत्ता का एक कारण, जो उसकी विशिष्टता का सूचक भी है, यह था कि "आज संगीत में मुख्य जितनी तालें प्रचलित हैं, वे प्राय: सभी "गीतगोविन्द" में हैं। रचना संस्कृत में होने के कारण ताल सम्बन्धी एकमात्रा की घट-बढ़ उसमें नहीं -- बिलकुल सोने की तौल है।[2] "कालिदास में वर्णी-संगीत से भिन्न, झपताल के भाव-सौन्दर्य-- जो जयदेव को छोड़कर अन्यत्र नहीं मिलता-- के लिए "निराला" ने "वदसि यदि किंचिदपि दन्तरुचि कौमुदी" आदि श्लोक उद्धृत किया है।[3] गीतिका की भूमिका में १० मात्रा की झपताल में, जिसे ह्रस्व-दीर्घ के अनुसार पढ़ने पर ताल का सत्य-रूप स्पष्ट होता है, खड़ी बोली के आधुनिक कवियों के रचना न करने का उल्लेख "निराला" ने किया है। इस ताल में कई गीत उन्होंने "गीतिका" में दिए हैं।[4] गीतिका में

१- रवीन्द्रनाथ के निबन्ध, भाग २, पृ०५८

२- गीतिका की भूमिका, पृ०८

३- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०२०४ झपताल १० मात्रा विभाजन इस प्रकार संभव है--
व द । सियदि। किञ् । चिदपि । दन् । त रुचि। कौ । मु दी ।।

४- गीतिका की भूमिका, पृ०१४

धम्मार, रूपक, चौताल, तीन ताल और दादरा की रचनाएं भी उन्होंने दी हैं और जो तालें इस संग्रह में समाविष्ट नहीं हुई हैं, उनकी पूर्ति बाद में समय मिलने पर करने का आश्वासन दिया है। प्रचलित कुल तालों से समन्वित, आधुनिक गीतों का संग्रह 'अर्चना' यही पूर्ति है।

जयदेव के 'गीतगोविन्द' में जिन तालों का प्रयोग किया गया है, उनमें सर्वप्रमुख और प्रयुक्त है रूपक। इसके अन्तर्गत उन्होंने यतिताल, प्रतिमण्ठताल और एक ताली ताल को लिया है। इसी प्रकार दूसरा मुख्य ताल आडव ताल है, जिसके अन्तर्गत प्रतिमण्ठताल, अष्टताली ताल और भेद तालों को वे समाविष्ट करते हैं। रूपक और आडव तालों के सभी भेदों में लयगत विभिन्नता हमें मिलती है। रूपक की द्विविध लय हमें क्रमशः प्रथम और चतुर्थ सर्गों[1] में मिलती हैं, जिनमें अन्तर मात्र यह है कि प्रथम सर्ग में प्रथम पंक्ति कुछ अधिक दीर्घ है और पंचम सर्ग में द्वितीय पंक्ति। लयगत सादृश्य अथवा किंचित् अन्तर से आडवताल के भेद प्रतिमठ ताल में निबद्ध पंक्तियां[2] भी यहीं परिगणित हो सकती हैं। ह्रस्व-दीर्घ संगीत के थोड़े से इन तीनों लयों को १० मात्रा वाले तालों में समाविष्ट किया जा सकता है।

'गीतगोविन्द' में व्यवहृत रूपक की दूसरी लय १६ मात्रा की[3] तालों के अनुरूप है। षष्ठ और नवम सर्ग की रूपक ताल में निबद्ध पंक्तियां लय-साम्य की दृष्टि से चतुर्थ सर्ग में प्रयुक्त रूपक के ही एक भेद एकतालीताल[4] की लघु

१- 'प्रलय पयोधिजले धृतवानसि वेदम् ।
विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ॥' -- प्रथम सर्ग
वहति मलयसमीरे मदनमुपनिधाय ।
स्फुटति कुसुमनिकरे विरहिहृदयदलनाय--पंचम सर्ग

२- श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए । कलित ललितवनमाल जय जय देव हरे ।।प्रथमसर्ग

३- पश्यति दिशिदिशि रहसि भवन्तम् । त्वदधरमधुरमधूनि पिबन्तम्।।रूपक, षष्ठ सर्ग
हरिरभिसरति वहति मधुपवने । किमपरमधिकसुखं सखि भवने ।। ,,नवम सर्ग

४- स्तनविनिहितमपि हरिमुदारम् । सा मनुते कृशतनुरिव भारम् ।।एकतालीताल चतुर्थ सर्ग

छन्द से भिन्न नहीं है। सप्तम सर्ग में प्रयुक्त रूपक[1] की लय भी इसी कोटि की है।

रूपक के ही भेद यतिताल में निबद्ध प्रथम सर्ग की और प्रतिमण्ठताल में रचित द्वितीय सर्ग की पंक्तियों[2] की लय १४ मात्रा के तालों जैसे धमार से अनुरूपता रखती है। एकादश सर्ग में व्यवहृत रूपक ताल[3] की दीर्घ पंक्तियां उसी प्रकार की हैं। रूपक की ही भेद एकताली ताल की एक अन्य लय[4] में भी यही १४मात्रा का संगीत मिलता है।

आड्य ताल की लयें विविध हैं, जिनमें अष्टताली ताल और मंठताल आते हैं। प्रतिमठ ताल, लय की दृष्टि से रूपक के भेदों के अन्तर्गत गणेय है। "निराला" ने जयदेव की जिन पंक्तियों में झपताल का भाव-सौन्दर्य देखा था, वहां जयदेव के अनुसार अष्टताली ताल है, जिसमें प्रथम पंक्ति से दूसरी पंक्ति कुछ छोटी है[5]। मंठ-ताल में उसके विपरीत रूप में दूसरी पंक्ति का प्रसार मिलता है[6]।

"निराला" की "गीतिका" में १०, १४ और १६ मात्रा के झपताल धम्मार और तीनताल सब की रचनाएं मिलती हैं, लयों की विविधता के लिए उन्होंने स्वरों के विस्तार पर विशेष बल दिया है, उनके धम्मार और दादरा के सम्बन्ध में यह तथ्य विशेषत: उल्लेखनीय है। पुरानी संगीत परम्परा से इतर इन गीतों की रचना में प्राचीन संगीतज्ञों की भांति घट-बढ़ अनिश्चित नहीं है, उनका क्रम निश्चित है, यह "निराला" ने अपने धम्मार का उदाहरण देकर और

१- अनिल तालकुलव्यनयमैन।
सपसि न सो किसलयशयमैन ।। --रूपक सप्तम सर्ग

२- ललितलवंगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे --यतिताल, प्रथम सर्ग।
शंबरद धर सुधामधुरध्वनि मुखरितमोहनवंशम् -- प्रतिमण्ठताल, द्वितीय सर्ग ।।

३- "राधावदनविलोकनविकसित विविधविकारविभंगम् ।। --रूपक ताल एकादश सर्ग

४- रतिसुखसारे गतमभिसारे मदन मनोहरवेशम् ।। --एकतालीताल, पंचम सर्ग

५- वदसि यदि किंचिदपि दन्तरुचि कौमुदी हरति दरतिमिरमतिघोरम्।
स्फुरदधर सीधवे तव वदनचन्द्रमा रोचयति लोचन चकोरम् ।। अष्टतालीताल, दशम सर्ग।

६- मंजुतर कुंजतल केलिसदने।
प्रविश राधे माधव समीपमिह विलस रतिरभस हसितवदने।। मंठताल, एकादश सर्ग

उसका विवेचन कर स्पष्ट किया है। उसी प्रकार दादरा के सन्दर्भ में भी उन्होंने गीतिका में उसके विविध रूपों की स्थिति का उल्लेख किया है, जिसमें स्वर के स्वरविस्तार द्वारा मात्राओं को पूरा करने की रीति संगीत की दृष्टि से "निराला" की नवीनता अथवा मौलिकता कही जा सकती है। शुद्ध उच्चारण की दृष्टि से भी "निराला" ने प्राचीन गवैयों की कठिनाई स्वीकार की है। गीतिका और अर्चना के गीतों में मुख्यतः लयों की जो विभिन्नता हमें मिलती है, वह निश्चित रूप से "गीतगोविन्द" के प्रयोगों से समानता रखने वाली है। "गीतगोविन्द" में भी तालें कम हैं, परन्तु लय की विविधता से एक ही ताल के कई रूप हो जाते हैं। "निराला" ने जयदेव की कृति के सदृश अपने गीतों में तालों का उल्लेख नहीं किया है, परन्तु उनके शब्द-क्रम और लय द्वारा उनकी ताल के निर्देश की रीति अथवा छंद की विविध लयों की दिशा में जयदेव की, उनके "गीतगोविन्द" की प्रेरणा स्पष्ट है। स्पष्ट है कि पद-बंध अथवा वर्ण-विचार की दृष्टि से "निराला जयदेव से प्रेरणा नहीं लेते। ध्वन्य-प्रयोग की जयदेव की विशेषता का "निराला" द्वारा उल्लेख दोनों की भाषा-नीति के सादृश्य का द्योतक है, परन्तु प्रेरणा की प्रमुख दिशा असंदिग्ध रूप से ताल अथवा छंद ही है।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि अंग्रेजी और बंगला की अपेक्षा संस्कृत और हिन्दी की समृद्ध काव्य-परम्परा के आधार पर "निराला" के काव्य-संस्कारों का निर्माण अथवा उनके काव्य का विकास हुआ है। प्रारम्भ में ही संस्कृत और हिन्दी के काव्य-ग्रन्थों का अध्ययन, प्राचीन परम्परा के प्रति उनकी आस्था का कारण था, जिसे उन्होंने अपनी आलोचनात्मक दृष्टि से परखा और उसमें प्रगतिशील जातीय-तत्वों के विकास के लिए स्वीकार किया। जिस प्रकार विद्रोही होते हुए भी वे घोर धार्मिक थे, उसी प्रकार नवीन युग के क्रान्तिकारी होते हुए भी प्राचीन परम्परा में वे आस्था रखनेवाले थे। उनका भाषा-विषयक विवेचन तथा अपने गीतों के सम्बन्ध में उनका वक्तव्य प्रमाण है कि वे नवीन के विकास के लिए पुरातन का ज्ञान कितना आवश्यक मानते थे।

गीतों में यदि उन्होंने रवीन्द्र और अंग्रेजी संगीत के प्रभाव को स्वीकार कर नवीन युग का साथ दिया है, तो ताल के क्षेत्र में जयदेव का स्मरण कर प्राचीन को छोड़ा भी नहीं। वस्तुतः 'निराला' का विद्रोही दृष्टिकोण ही उनके साहित्य में प्रगति और परम्परा के तत्वों की नियोजना करने वाला है। तुलसी का विरोध न करने पर भी यही कारण है कि तुलसी उनका आदर्श बनकर भी उनकी पूर्ण प्रेरणा नहीं बन सके हैं। समन्वयवादी दृष्टिकोण रखने वाले श्रीरामकृष्णदेव और महात्मा तुलसीदास के प्रति ही 'निराला' को जो सतत अवनत हम देखते हैं, उसके मूल में उनका विद्रोही और सन्यासी मनुष्य-तत्व ही निहित है, जिसने उनके विद्रोह को सतत् गतिमान कर परम्परा से उसका सूत्र भी जोड़ा है।

-0-

पंचम अध्याय

-0-

राष्ट्रीय आन्दोलन, गांधीवाद और समाजवाद : प्रेरणा स्रोत

पंचम अध्याय
-0-

राष्ट्रीय आन्दोलन, गांधीवाद और समाजवाद : प्रेरणा स्रोत

'निराला' के सांस्कृतिक प्रेरणा-स्रोतों पर विचार करने के उपरान्त अब हम उनकी समाज एवं राजनीतिगत प्रेरणाओं पर विचार करेंगे, जिनका सम्बन्ध बाह्य-परिवेश से है । युग की उपज होने के कारण लेखक उसकी घटनाओं का प्रत्यक्ष द्रष्टा होता है, अथवा उसमें सक्रिय भाग लेता है[1]। बाह्य-परिवेश से सम्बन्धित ये प्रेरणाएं अति महत्वपूर्ण हैं । पहले महासमर का अन्त होने पर जब भारत में महाव्याधि फैली थी, और गंगा में लाशें उतराती थीं, 'निराला' ने लिखना शुरू किया था । उनके साहित्यिक-जीवन के युग में स्वाधीनता के लिए छिड़ा राष्ट्रीय आन्दोलन पूर्णरूप से क्रियाशील था । बीसवीं सदी की नवीन अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में विकसित इस स्वाधीनता आन्दोलन की विशेषता थी, 'रूस की समाजवादी क्रान्ति द्वारा विश्व साम्राज्यवादी घेरे का टूटना'[2]। इसके पूर्व जो विविध सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलन हुए थे, उनसे यह तथ्य सामने आ चुका था कि सामाजिक अन्याय के भागी नारी और अछूत मुख्यतः ये दो ही वर्ग थे । पहले सुधारवादी दृष्टिकोण की प्रधानता समाज और राजनीति के क्षेत्र में हम पाते हैं, परन्तु विरोध का स्वर विवेकानन्द के आगमन से सुनाई पड़ता है । उनके आन्दोलन में हमें अन्त्यजों की शक्ति के अभ्युत्थान की भावना विद्यमान मिलती है । राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ रूसी क्रान्ति और समाजवाद की जो चर्चा हो रही थी, वह स्वामी जी के व्यावहारिक वेदान्त के

१- Illusion and Reality Page 19 Gorky II

२-'निराला', पृ० २००-- डा० शर्मा

प्रतिकूल नहीं था और 'निराला' की समाजवादी कल्पना का वेदान्त के उस व्यावहारिक पक्ष से गहरा सम्बन्ध है। गरीबों के उद्धार की विवेकानन्द में प्राप्त भावना में 'निराला' ने विप्लव-राग और जोड़ दिया था, जो वस्तुत: स्वामी जी के व्यावहारिक वेदान्त का ही अग्रिम चरण कहा जा सकता है और यहीं सूत्र 'निराला' के विद्रोही दृष्टिकोण को भी विकसित करता है।

अपनी दार्शनिक रुचि के साथ ही 'निराला' ने सामाजिक रूढ़ियों का सक्रिय विरोध किया और उनकी सहानुभूति सामाजिक और राजनीतिक जीवन की प्रगति के प्रति थी, यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। इसी दृष्टि से दार्शनिक चेतना के साथ यथार्थ अनुभूति के बोध को श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने 'निराला' के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता कहा है[1]।

पहले महासमर के बाद महामारी में अनेक परिवारों का नाश 'निराला' ने देखा था और किसानों और गांवों की खराब हालत का भी उन्हें ज्ञान था। महिषादल में नौकरी करते हुए देशी राज्यों की गरीब प्रजा पर अत्याचार का भी उन्हें अनुभव था। स्वामी जी की वेदान्तिक विचारधारा और सेवा-कार्य से भी उनका परिचय हो चुका था, जिसके केन्द्र में साम्य भाव था। सन् २० में गांधी जी ने जो असहयोग आन्दोलन छेड़ा था, उसमें राष्ट्रीयता और स्वाधीनता की चेतना का प्रसार गांवों तक में हो चुका था और किसानों में जमींदार पुलिस के शोषण एवं अत्याचारों के विरुद्ध खड़े होने का कुछ सामर्थ्य भी आ गया था। महिषादल की नौकरी छोड़कर जब 'निराला' ने गांव का रास्ता लिया, देश में पहला असहयोग आन्दोलन जोर पर था। जीविका का कोई साधन सामने नहीं था, अत: एक सज्जन से यह सुनकर कि महात्मा जी ने यह सिद्ध कर दिया है कि 'चर्खा चलाने से कम-से-कम रोटियां चल सकती हैं'--'निराला' ने गांव के कोरियों से सूत कातना सिखाने को कहा था[2]।

१- 'महाप्राण निराला', पृ०९५, १४६, कादम्बिनी, अक्टूबर ६१, वाचस्पति पाठक का लेख पृ० २५

२- कुल्ली भाट, पृ० ८५-८६

कलकत्ता प्रवास के अपने संस्मरणों में आचार्य शिवपूजन सहाय ने इस बात का उल्लेख किया है कि हृष्ट-पुष्ट भिखारियों के प्रति 'निराला' की सहानुभूति नहीं थी। परन्तु असमर्थ और अपाहिज भिखारियों की दयनीय दशा के लिए वे शासन और समाज की तीव्र आलोचना किया करते थे। देश की आर्थिक समस्या पर विचार करते हुए 'निराला' उन्हें 'उग्रतम साम्यवादी' प्रतीत होते थे। 'मतवाला', जिससे 'निराला' ने अपने साहित्यिक जीवन का वास्तविक शुभारम्भ किया था, की सम्मिलित बैठक में देश, समाज, धर्म और साहित्य सम्बन्धी महत्वपूर्ण समाचारों एवं ज्वलन्त राजनीतिक समस्याओं पर चुभती-चुभती भरी टिप्पणियाँ लिखने का निश्चय होता था[१]। बालकृष्ण भट्ट के 'हिन्दी प्रदीप' का सही उत्तराधिकारी और गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' का योग्य जोड़ीदार 'मतवाला' को डा० शर्मा कहते हैं। सन् २० के स्वाधीनता आन्दोलन के साथ देश में फैलने वाली जागृति का यह प्रतिनिधि था, जिसकी 'राजनीतिक चेतना गांधीवाद की सीमाएं लांघकर देश और समाज की परिस्थितियों में और गहरे पैठती थी[२]।' राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति 'निराला' की धारणा के सम्बन्ध में भी यही कथन सत्य है। 'मतवाला' में आकर वस्तुतः 'निराला' की राष्ट्रीय भावना, और राजनीतिक धारणा जिसका रुझान समाजवादी था-- को और भी पुष्ट आधार मिला था, जो उनकी प्रवृत्ति के अनुकूल समझौता न करने वाला, उग्र और आतंकवादी था। गांधी और नेहरू को 'निराला' राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रधार और उन्नायक तो अवश्य मानते थे, परन्तु इस आन्दोलन और उसके नेताओं की कमजोरियों और सीमाओं से भी वे अनभिज्ञ अतः सन्तुष्ट नहीं थे।

मतवाला के प्रारम्भिक तीन अंकों में 'निराला' की जो रचनाएं प्रकाशित हुई थीं, उनमें राजनीतिक भावों का अभाव नहीं था,

----

१-'वे दिन वे लोग',पृ०८४,८५

२-'निराला की साहित्य-साधना',पृ०८०

'रक्षाबंधन' (पुराने महारथी) इसका एक अपवाद है। 'निराला' नाम से निकली इसी की दूसरी रचना में भारत के वीरवर सपूतों की करतूतों का उल्लेख कर अन्त में उन्होंने लिखा था :--

'कंगालों का कत्ल अहो इस राखी के रंग में छिपा।
भूत,भविष्य,वर्तमान है दीनों का तीनों छिया ।।'[1]

दूसरे अंक में 'पुराने महारथी' की ब्रजभाषा की कुण्डलिया और तीसरे अंक में 'निराला' की 'नर रूप पहचान' कविता में 'निराला' ने स्पष्टरूप से काले और गोरे का उल्लेख किया है। राष्ट्रभाषा की तान सुनाकर ये देश की राजनीतिक चेतना को प्रबुद्ध करते हैं। 'मतवाला' और 'निराला' की सचेत राजनीतिक चेतना की प्रमाण ये प्रारम्भिक रचनाएं निश्चितरूप से हैं। प्रकाशन-क्रम की दृष्टि से उनकी प्रथम रचना 'जन्म भूमि' डा० एल० राय के स्वर में लिखी गयी थी। राष्ट्र-प्रेम की परिचायक उनकी इस रचना में जन्मदात्री जन्मभूमि की भैरव वाणी का आह्वान किया गया है।

'मतवाला' के प्रथम वर्ष के ही क्रमशः दसवें,तेरहवें और अट्ठारहवें अंकों में निकली 'विधवा','भिक्षुक' और 'हमारी बहू' रचनाएं दीनों के प्रति 'निराला' के हृदय की सहज सहानुभूति की अभिव्यक्ति हैं,जिनमें उनकी विद्रोही दृष्टि और क्रान्ति के उस स्वर का अभाव है, जो आगे चलकर उनकी विशिष्टता बन जाती है। रामविलास जी ने इन रचनाओं को 'व्यक्तिवादी' कहा है,क्योंकि इनमें व्यक्ति की करुणा को उकसाया गया है,जिसपर हमें विश्वास संस्कारवश जल्दी होता है और सामाजिक आन्दोलन की ओर हमारा ध्यान कम जाता है[2]। समाज और शासक की रूढ़ियों की आलोचना के इस अभाव की पूर्ति के लिए हमें विशेष प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है।

१- 'मतवाला',प्रथम अंक,२६ अगस्त २३,पृ०१

२- हंस अक्टूबर, ४१,पृ०७४

'विल्लो' में 'निराला' ने कोमल अनुभूतियों और विगत ऐश्वर्य के साथ जीवन-संग्राम की मर्मवाणी गीता और संयोगिता के आह्वान-आत्म-बलिदान का उल्लेख किया है, जिसके द्वारा भविष्य के पुनर्जागरण के संकेतों से युक्त उद्बोधन 'जागो फिर एक बार' की युगल रचनाओं का आभास मिलता है। 'मतवाला' के २३ और ३० अगस्त २४ के अंकों में 'बादल राग' की अन्तिम कविता के प्रकाशन के पूर्व 'स्वाधीनता पर' 'निराला' की दो रचनाएं निकली थीं[2]।

रूसी समाजवादी क्रान्ति के प्रभाव के फलस्वरूप व्यापक परिवर्तन के लिए जनता में क्रान्ति के भावों का स्पष्ट निदर्शन करने वाली 'निराला' की पहली रचना 'बादल राग' की छठी और अन्तिम कविता था[3]। जन-संघर्ष का आभास देने वाली इस रचना में 'विप्लव रव' स्पष्ट है, जिससे छोटे ही शोभा पाते हैं। जीर्ण बाहु और शीर्ण शरीर कृषक अधीर हो विप्लवी बादल को बुलाता है, धनिक तो उसके आतंक से त्रस्त है। यद्यपि 'भिक्षुक' के सदृश यहां भी व्यक्ति ही प्रधान है और कृषक विप्लव में सक्रिय भाग लेता नहीं दृष्टिगत होता, तथापि अंचल के शब्दों में यह 'शायद उस समय की लिखी कविता है जब श्री हरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय भी रूस से लौटकर नहीं आए थे[4]।' यह रचना 'निराला' के राजनीतिक दृष्टिकोण की इस विशेषता को भी प्रत्यक्ष करती है कि वह भारत के स्वाधीनता संग्राम में सन् २० से ही किसानों की भूमिका का महत्त्व समझ रहे थे और राजनीतिक नेताओं की तुलना में उसे ज्यादा स्पष्टता में जनता के सामने रख रहे थे। प्रेमचन्द के समान भारतीय साहित्य के लिए 'निराला' का यही युगान्तरकारी महत्त्व डा०शर्मा ने बताया है[5]। परन्तु प्रेमचन्द ने जहां-शान्तिमय

१- 'अनामिका, पृ०५८
२- 'स्वाधीन, स्वाधीन यह विश्व अथवा है पराधीन' और 'भ्रमर का गुंजार' यह भी स्वाधीन'।
३- मतवाला, २० सितम्बर २४
४- समाज और साहित्य, पृ०१६१
५- निराला और साहित्य साधना, पृ०११५ निराला, पृ०१८६

उपायों को स्वीकार किया है, वहां 'निराला' ने आतंकवाद और क्रांति का पथ लिया है।

जब से प्रगतिशीलता का आन्दोलन चला है, बादल राग की यह छठी कविता 'निराला' की परीक्षा प्रिय हो गया था[1]। फैजाबाद के प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन में 'निराला' ने खुद कहा था कि उस कविता का उल्लेख उन्होंने यह बताने को किया था कि "हिन्दी के कवि राजनीतिज्ञों से और आगे हैं[2]।" अतएव यह आश्चर्य का विषय नहीं कि शासक वर्ग की लोभी प्रवृत्ति को उन्होंने तभी पहचान लिया था, जब अहिंसावादी नेता शासक नहीं हुए थे और इसलिए 'निराला' पूंजीवादी नेताओं के निर्मम आलोचक थे[3]। सन् ३६ में अपने गीतों और कला पर प्रकाश डालते हुए २ अगस्त ३४ के मतवाला में प्रकाशित 'बादल राग' की दूसरी कविता का उदाहरण देकर 'निराला' ने लिखा था कि 'अंतिम पंक्ति का 'विप्लव' शब्द ठाठ बदल देता है। व्यंग्यार्थ सामने आ जाता है', जो 'दूसरे अर्थ से क्रान्तर क्रान्ति (*Revolution*) को याद दिलाता है' और जिसे साहित्यिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक किसी भी तरफ फेरा जा सकता है[4]।

भारत के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर हम सन् २४-२५ में आतंकवाद को उस धारा को जो पहली रूसी क्रान्ति के बाद देशभक्तों के लिए बनाए कानून के कारण गुप्त रूप से कार्य कर रहा था, पुन: सक्रिय देखते हैं। इसका प्रमुख कारण यह था कि देश के सामने स्वाधीनता प्राप्त करने का कोई सक्रिय कार्यक्रम नहीं था, और नवयुवक स्वाधीनता के लिए उतावले थे।

१- हंस, अक्टूबर ४१, पृ०७०-- डा० शर्मा

२- प्रबन्ध प्रतिमा , पृ० १६३

३- विराम चिन्ह, पृ०८८-- डा० शर्मा

४- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० २२२

इसका स्पष्ट आभास सन् २५ में मिला, जब अंग्रेजी में *revolutionary* पत्र निकला, जिसमें रूस की पद्धति पर भारत के लिए सशस्त्र क्रान्ति द्वारा बोल्शेविक सरकार की स्थापना का समर्थन था। सन् २८ में आतंकवाद पुन: गहरे और व्यापक रूप में भड़का था, और संयुक्त प्रान्त, बिहार, बंगाल में क्रान्तिकारी युवक चन्द्रशेखर आजाद के नेतृत्व में संगठित हुए[१]।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सन् २७ के सांप्रदायिक दंगों से स्पष्ट हो गया था कि जब तक हिन्दू और मुसलमानों का राष्ट्रीय दृष्टिकोण एक नहीं होता, समस्या का समाधान दुष्कर है। सन् २७ में हुए नागपुर में हुए कांग्रेस अधिवेशन में गांधी जी के असहयोग आह्वान पर तिलक ने संशय प्रकट किया था। विचारों के इस मतभेद का पूर्वाभास जलियांवाले बाग के हत्याकाण्ड में मिल चुका था। सन् २१ के अन्त में अहमदाबाद के कांग्रेस अधिवेशन में राजनीति में मुसलमानों के सक्रिय सहयोग का भारत की राजनीति पर गहरा असर पड़ा था। बापू के असहयोग आन्दोलन के साथ होने वाले साम्प्रदायिक दंगों की उग्रता का एक प्रमुख कारण यह था कि खिलाफत आन्दोलन ने कांग्रेस की सहायता प्राप्त कर मुसलमानों को असाधारण रूप में संगठित कर दिया था[२]।

'निराला' ने सन् २५ में लिखे 'चरखा' निबन्ध में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का पक्ष लेकर चरखा जैसे व्यापक और महत्वपूर्ण कार्य का विरोध करने के कारण रवीन्द्रनाथ का विरोध और चरखे का समर्थन कर निश्चितरूप से व्यक्ति की अपेक्षा समाज को प्रश्रय दिया है। 'निराला' की समाज-सेवा और व्यक्तिवाद के तीव्र विरोध की भावना को स्पष्ट करने वाले इस लेख को डा० रामविलास शर्मा क्षणिक आवेश नहीं मानते, बल्कि वे उनकी श्रेष्ठ कृतियों को किसी-न-किसी तरह इसी प्रेरणा का फल कहते हैं[३]। मुझे समय नहीं मिला कि

१-भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास, पृ०२५३, २६२--ईन्द्र विद्या वाचस्पति
२- ,, ,, ,, पृ० २३७, २४१ ,,
३- महाकवि निराला, पृ० १२५, संपादक, आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री

समालोचना में गांधी जी की झोली में निकाल कर जनता के सामने रखता' यह लिखकर 'निराला' ने गांधी जी की नीति से अपनी असहमति का संकेत करते हुए भी यह स्पष्ट कर दिया है कि राष्ट्रीय आन्दोलन को उनकी सहानुभूति और समर्थन प्राप्त है। सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों के प्रति उनकी प्रबुद्ध चेतना का यह पुष्ट प्रमाण है।

संवत् १९७९ में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की पत्रिका के तीसरे भाग में 'महाराज शिवा जी का एक नया पत्र' प्रकाशित हुआ था, जिसमें लेखक बाबू जगन्नाथदास बी०ए० रत्नाकर (अयोध्या) ने शिवा जी के पत्र के अतिरिक्त एक अन्य ऐतिहासिक पत्र का भी उल्लेख किया है, जो गुरु गोविन्द सिंह ने बादशाह औरंगजेब को लिखा था। मुगलकालीन धर्म-विषयक कट्टरता के औरंगजेब के समय के प्रसंग को लेकर सन् ३६ में लिखी और मतवाला में निकलीं 'निराला' की ये रचनाएं 'जागो फिर एक बार' और 'महाराज शिवाजी का पत्र' थीं, जिनसे इस संभावना का संकेत मिलता है कि 'निराला' को कदाचित् इस पत्र की जानकारी थी। सम-सामयिक राजनीतिक संकेतों से पूर्ण असहयोग की निष्क्रियता के स्थान पर क्रान्तिकारी संघर्ष का स्वर इन रचनाओं में मुखर है, जिनमें वेदान्त के भाव भी संश्लिष्ट हैं।

'जागो फिर एक बार' की दूसरी रचना में 'निराला' ने राष्ट्र की पराधीनता और निष्क्रियता को लक्ष्य कर उद्बोधन के लिए गुरु गोविन्द सिंह का स्मरण किया है। गांधी जी के सत्य और अहिंसा के मूल सिद्धान्तों और असहयोग के स्थान पर यहां 'निराला' ने 'दुर्जय संग्राम राग' अथवा योगियों की साधना, गीता के कर्मयोग और अद्वैत के ब्रह्म भाव की प्रतिष्ठा की है। 'गीतिका' के एक गीत[1] में भी स्वार्थ-धन मानने वाले स्पर्द्धान्ध-जन और उनके जर्जर गान का उल्लेख कर प्राचीन परम्परा' जीत तुंगा धरा' को श्रेष्ठ मान समाधान के रूप में रखा है।

'महाराज शिवा जी का पत्र' मिर्जा राजा जय सिंह[2] को

१- गीतिका, पृ०४८, चाँद, अक्टूबर, १९३५, वागीश्वरी, झपताल।

२- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ३, पृ०२४७, संवत् १९७९ में प्रकाशित पत्र में नाम 'जय सिंह' है जो बिहारी सतसई में भी आया है।

इसे शिवा जी के पत्र का पद्यात्मक रूप कहा जा सकता है । पूरी रचना में भाव सही होने पर भी अन्तिम अंश की पंक्तियों को सीधे अनुवाद की संज्ञा नहीं दी जा सकती । प्रारम्भिक अंश में कतिपय पंक्तियां ही 'निराला' ने अपनी ओर से जोड़ी हैं । शूद्रों के उद्धार और आपस में फैली विरोधी शक्ति को मूल शक्तियों के एकीभूत होने, साम्राज्य के ध्वंस और दासता के पाश काटने के लिए संघर्ष का आह्वान यहाँ 'निराला' ने किया है । वहाँ हिन्दू, हिन्दोस्तान और हिन्दू धर्म की रक्षा के निमित्त प्रयत्न, मरजाद के लिए आत्मत्याग का निर्देश है । अन्तिम अंश में व्यक्ति के जातिगत विभाग से यवनों के पैर उखड़ने, दिल्ली पस्त होने और साम्राज्य ध्वस्त होने की बात लिखकर हिन्दू-मुस्लिम समस्या के समाधान के रूप में एकता और आत्मत्याग का आदर्श प्रस्तुत किया है । शिवा जी के पत्र में जसवन्त सिंह के लिए धोखे, जयसिंह के लोभों के खेल और मृगतृष्णा, कुमार कन्नाल पर आपत्ति पहुँचाने वाले कुमार सिंह के काम और परिणाम तथा अफजल के परिणाम के प्रसंग 'निराला' ने छोड़ दिए हैं ।

'कुल्ली भाट' में 'निराला' ने कलकत्ते में होने वाले उन साम्प्रदायिक दंगों को देखने और अखबारों में हिन्दू-मुसलमानों पर चलने वाले प्रश्नोत्तरों का उल्लेख किया है, जिनपर मुंशी नवजादिकलाल साहब महादेव बाबू को चार महीने की सख्त सजा मिल चुके थे और छूटने पर 'निराला' ने उनका स्वागत भी किया था[1] ।

मतवाला में जिस समय सम्पूर्ण सामयिक गतिविधि के परिचायक राष्ट्रीयता और साम्यवाद की भावनाओं से पूर्ण लेख निकल रहे थे, 'निराला' साहित्य को क्रान्ति का माध्यम बनाकर लिख रहे थे । स्वामी विवेकानन्द की राष्ट्रीयता, साम्य-भाव और वेदान्त-दर्शन के अनुरूप उन्होंने साहित्य और

१- कुल्ली भाट, पृ०८६

ज्ञान की भूमि पर हिन्दू मुसलमानों की समानता दिखाते हुए संवत् १९८३ में समन्वय के लिए साहित्य की 'समता भूमि' ऐसा लिखा था। सन् २४ में प्रकाशित 'मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार साम्य' ऐसा ही श्रेणी का था। पश्चिमी सभ्यता के अनुसार राष्ट्रीयवादी नेताओं की दिशा को उन्होंने उपहासास्पद कहा और बताया कि मनुष्यता की शिक्षा का अभाव भारत की सबसे बड़ी दुर्बलता है, जिसकी आवश्यकता सुधार और विरोधी भावों को दूर करने के लिए सबसे पहले है।

सन् २८ तक गांधी और स्वराज्य का नाम घर-घर में पहुँच चुका था और देश में क्रान्ति की लहर उठ चुकी थी। सरकार के साथ नेताओं की मंद गति से जनता अपना असहयोग भी प्रकट कर चुकी थी, जिसके फलस्वरूप औपनिवेशिक स्वतन्त्रता का लक्ष्य रखने वाला कांग्रेस का उदारवादी दल मिल-सा गया था। कांग्रेस के अन्दर भी भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता का लक्ष्य रखने वाला एक दूसरा दल तैयार हो रहा था, जिसके नेता जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस थे। सन् २९ इसी दृष्टि से 'युवक भारत' के उत्थान का वर्ष था। लाहौर के कांग्रेस अधिवेशन में अध्यक्ष पद पर नेहरू का निर्वाचन नई पीढ़ी को मार्ग देने का प्रमाण है। मार्च सन् ३१ के अन्त में करांची में होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन में भारत के राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता के अधिकारों की जो घोषणा हुई थी, वह समाजवाद के सिद्धान्तों को लक्ष्य किए था।" इसी बीच अमेरिका से भारत के भ्रमण के लिए आयी मिस मेयो ने अंग्रेज अफसरों के साथ मिलकर भारत के विरुद्ध सामग्री इकट्ठा की और उसे 'मदर इंडिया' नाम से प्रकाशित कराया, जिसे बापू ने 'गटर निरीक्षक' की रिपोर्ट कहा[१]। अंग्रेजों के प्रति भारतवासियों में नफरत और विरोध के भाव बढ़ाने में इससे सहायता मिली।

सन् २९ में लाहौर के कांग्रेस अधिवेशन में देशी राज्यों की प्रजा की उचित की मांग की गयी थी और रियासतों की दमन-नीति पर रोष प्रकट कर उनके प्रति कांग्रेस की ढीली नीति की निन्दा की गयी थी। २० वीं सदी

१- भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास, पृ०२६३-२६४

के मध्य तक देशी राज्यों में दास प्रथा और बेगार-प्रथा प्रचलित थी। उनकी दशा पिछड़ी, दृष्टिकोण सामन्ती और तरीके तानाशाही थे।[१] सन् ३० के प्रारम्भ में उसका अनुभव किया गया कि रियासती प्रजा जग गई है और स्वाधीनता के संघर्ष के लिए तैयार है।

सन् ४१ की एक कहानी "जानकी" में "निराला" ने लिखा है कि कलकत्ता की सेकेंड हैण्ड किताबों की दुकान में अनुवादित रूसी पुस्तकों की खपत देखते हुए मिस मेयो की "वॉल पर चढ़ने वाले पहले आदमी वही थे। उससे यह निश्चय बंध जायेगा कि वह उस साहित्य के प्राचीन सहोदर हैं"[२] लिखकर "निराला" ने कलकत्ता में रहते हुए प्रारम्भिक काल से ही रूस के समाजवाद के प्रति अपना रुझान स्पष्ट किया है। यही कहानी है, जिसमें उन्होंने अपनी कल्पना एक कम्युनिस्ट नेता के रूप में की है। "निराला" ने बताया है कि साम्यवाद के लिए उनके द्वारा किए गए प्रयत्नों को उनके समकालीन सम्पूर्णानन्द समझ सकते हैं।" कांग्रेस सोशलिस्ट के नाम से हमें झेंप आती है" यह "निराला" ने लिखा है जो पहले अपने को कांग्रेसियों का पथ-प्रदर्शक देखते थे।

सन् ३० में नमक कानून भंग करने के लिए जो सविनय अवज्ञा आन्दोलन हुआ था, उससे सरकार और पुलिस के अत्याचार के साथ सत्याग्रह की तीव्रता का परिचय मिल चुका था। संयुक्त प्रान्त में जब उसके बाद किसानों की समस्या विकट रूप में सामने आयी और नेहरू आदि के नेतृत्व में लगान से मुक्ति का आन्दोलन चला तब यह स्पष्ट था कि जनता में स्वाधीनता की चेतना सन् ३० से अधिक है। अहिंसात्मक साधनों का उपयोग करते हुए इस देशव्यापी आन्दोलन में जनता ने सरकार से लोहा लिया था। इसी के बाद बापू ने सविनय अवज्ञा भंग की

१- Discovery of India. Page 268.

२- देवी, पृ० १२६

स्थगित करने का निर्णय लेकर सक्रिय राजनीति से सन्यास लिया और हरिजन समस्या,[1] खद्दर, और चरखे को व्यापक बनाने तथा ग्रामसुधार जैसे रचनात्मक कार्यों पर बल दिया। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी पर लिखे अपने लेख में "निराला" ने पुस्तकालय की योजना और गांवों में भाषण देने का उल्लेख किया है। "चतुरी चमार" में साहित्य की तरह समाज में भी दूर-दूर तक अपनी तारीफ फैलने का उल्लेख "निराला" ने किया है। चतुरी की इच्छा कि उसका बेटा अर्जुनवा कुछ पढ़ जाय और जमींदार से मुकदमा लड़ने का उसका निश्चय, यहां राष्ट्रीय आन्दोलन के फलस्वरूप गांवों में उत्पन्न जागृत चेतना का परिचय मिलता है। "वाजिब-उल-अर्ज" में चतुरी का जूता देना दर्ज है या नहीं, चतुरी से इसका पता लगने की "निराला" के कहने पर उसके मनोविकारों के सम्बन्ध में वे लिखते हैं --" वह एक ऐसे जाल में फंसा है, जिसे वह काटना चाहता है, भीतर से उसका पूरा जोर उमड़ रहा है, पर एक कमजोरी है, जिसमें बार-बार उलझ कर वह रह जाता है।"[2] किसानों पर जमींदार की मिली पहली डिगरी से हो लोगों के घबराने और चतुरी के मदद की आशा न रहने पर भी पैदल दस कोस चलकर उसके मुकदमा लड़ने में जूता और पुर वाली बात अब्दुल अर्ज में दर्ज नहीं है, उसके इस ज्ञान में जागरण के लक्षण मिलते हैं। "चमार दबेंगे, ब्राह्मण दबायेंगे" इन ब्राह्मण संस्कारों की जड़ मारना सहज साध्य नहीं, इसका अनुभव भी "निराला" को अपने चिरंजीव और अर्जुन के प्रसंग द्वारा हो गया था। "निराला" ने बताया है कि उनका गांव पुरवा डिवीजन में काम में सबसे आगे था, यद्यपि उनके गांव की कांग्रेस का जिले के साथ कोई ताल्लुक नहीं था। आन्दोलन में प्रतिक्रिया होने पर जमींदारों के दावा करने और "रियाया को बिना किसी रियायत" के दबाना शुरू करने पर "निराला" गांव के नेताओं के चाहने पर उनकी मदद करने गए थे। स्वाधीनता आन्दोलन की और किसानों की मूलभूत कमजोरियों का सम्यक् ज्ञान होना इसीलिए "निराला" के लिए अस्वाभाविक नहीं था।

१- भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास, पृ० ३०६

२- चतुरी चमार, पृ०६

सन् ३७ में 'कुल्ली भाट' लिखते हुए निराला ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन समाप्त होने पर अछूतोद्धार की समस्या के साथ राजनीति और सुधार में कुल्ली की पूर्ण परिणति का उल्लेख कर बताया है कि आन्दोलन का केन्द्र उस समय रायबरेली था और नमक कानून दलमऊ में तोड़ा जाने वाला था। कुल्ली से पुलिस के गोली चलाने के इरादे की खबर सुनकर कार्यकर्ता बरेली चले गए थे, ताकि पुलिस को तकलीफ न हो।' अदालत जाने वाले वकीलों, पुलिस के नौकरों, सरकारी अफसरों, पंडों, पुरोहितों, जमींदारों और ताल्लुकेदारों से घृणा करने लगे हैं।[1]' यह लिखकर 'निराला' ने किसानों और अछूतों में फैलने वाली जागरण की लहर की ओर संकेत किया है।

आन्दोलन के सम्बन्ध में 'निराला' ने अपनी विरक्ति ही बताई है। कुल्ली के प्रश्न करने पर वे कहते हैं --' किससे क्या होता है, क्या मिलता है, क्या जाता है, यह मैं नहीं जानता, इसलिए मानता भी नहीं, कुछ मेरी भी सुनी सुनाई, पढ़ी-पढ़ाई बातें हैं, किया करता हूं, उन्हीं में कुछ नमक-मिर्च अपनी समझ से मिलाकर।[2]' जनता की कमजोरियों के साथ राजनीतिक नेताओं की असलियत भी वे पहचान गए थे, तभी कुल्ली से 'एक चोट बस कर मजाक' करने की इच्छा से वे अछूत पाठशाला की मदद करने के लिए उनसे महात्मा जी और पं० नेहरू को पत्र लिखने को कहते हैं। कुल्ली के उत्तर से यह स्पष्ट है कि देश और उसके नेताओं की वास्तविक स्थिति का उसे पूरा ज्ञान है। कुल्ली जानते हैं कि' आदमी आदमी के लिए जरा भी सहनशील नहीं' -- हिन्दोस्तान की गिरी दशा का यही कारण है।[3]

'निराला' यह मानते हैं कि महात्मा जी ने अन्त्यजों के लिए बहुत कुछ किया है,[4] परन्तु उनके सम्बन्ध में साथ ही अपनी शंका भी उन्होंने उपस्थित की है। एक ब्राह्मण और एक शूद्र के विवाह की संभावना बताकर बापू

१- कुल्ली भाट, पृ० ८९-९२

२- ,, पृ० ९२

३- ,, पृ० १०१, १०५-१०६

४- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १७४

अगर ब्राह्मण का अर्थ शूद्र नहीं मानते तब वे ब्राह्मण का अर्थ नहीं समझ सके हैं, यह 'निराला' का विचार है । उनका प्रश्न है : " शूद्रों और अछूतों के प्रति भी महात्मा जी की सहानुभूति मौखिक ही नहीं है, इसका क्या प्रमाण है ? यहीं बन्दरों की मुसघुड़ा की अक्षय बता 'निराला' ने बापू के अनुयायियों पर कटाक्ष किया है[1]। अन्त्यजों के उद्धार का उदाहरण देकर इसी के अनुरूप श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने भी अनाचार और धर्म पर आस्था रखने वाले गांधीवाद को ऐतिहासिक आदर्शवाद कहा है, जो नितान्त अव्यावहारिक और असामयिक था[2]। सन् ३३-३४ में लिखे अपने अनेक लेखों में 'निराला' ने देश के धनी नेताओं की वास्तविकता को जनता के सामने रखा है, साथ ही समाज में प्रचलित रूढ़ियों का विरोध कर क्रान्ति के लिए युवकों का आह्वान किया है । 'अप्सरा' उपन्यास में 'निराला' ने चंदन द्वारा किसानों के संगठन उसके विप्लवात्मक पुस्तकें पढ़ने और लखनऊ के सरकारी खजाने में डाका पड़ने के शक में गिरफ्तार होने का उल्लेख किया है । चंदन के प्रति लेखक की सहानुभूति उसकी प्रवृत्ति का परिचय देती है । 'शैतान की सूरत' विजयपुर के कुँवर साहब प्रताप सिंह के प्रसंग में रियासती जीवन की झलक मिलती है । कनक के प्रति राजकुमार के पहले घृणा भाव अथवा तारा और अन्य ग्रामीण स्त्रियों का उसके प्रति उपेक्षा का भाव, हिन्दू समाज की संस्कारगत गुलामी का परिचायक है । अवश्य यहाँ 'निराला' ने देश-सेवा और ब्रह्मचर्य के व्रत को पीछे छोड़ दिया है । उनका राजकुमार साहित्य-सेवा का व्रत लेता है, जिसे 'निराला' ने नाटक-समस्या के साहित्यिक क्रांति का आह्वान करते हुए मनुष्यता के आधार पर राष्ट्रभाषा के सच्चे सेवक की भावना कहा है ।

सन् ३० के आन्दोलन की कमजोरियों और उसकी असफलता की कहानी 'अलका' में है । किसानों के जीवन पर प्रकाश डालने वाले इस उपन्यास में रियाया की तरह रहने वाले मामूली जमींदार पं० स्नेहशंकर जमींदार विषयक 'निराला' की आदर्श कल्पना को स्थापित करते हैं । उनके गाँव में जमींदारी का प्रबन्ध किसानों की कमेटी करती है और अपनी पुस्तकों की आमदनी से कभी-कभी पंडित जी किसानों

१- चाबुक, पृ० ८४,८७

२- महाप्राण 'निराला', पृ० १०३

के शिक्षा विभाग की मदद भी करते हैं[1]। न्याय और दुःख मुक्ति के वास्तविक उपाय एवं शिक्षा की कोई स्पष्ट रूपरेखा यहां 'निराला' ने प्रस्तुत नहीं की है।

देश की वास्तविक दशा, स्वतन्त्रता के कार्यकर्ताओं के दोषों के अनुकरण की प्रवृत्ति और सब की समृद्धि के स्थान पर अपनी प्रसिद्धि के लिए उनकी तत्परता का उल्लेख कर स्नेहशंकर जी देश की स्वतन्त्रता को मात्र राजनीतिक प्रगति न मानकर भिन्न विषय मानते हैं[2]। सभी विषयों की संकलित ज्ञानराशि के भाव को नेता की परिभाषा मानकर नेताओं की अपेक्षा 'बादलराग' में प्रतिष्ठित आधार किसान की महानता का प्रतिपादन उन्होंने किया है। किसानों की शिक्षा के प्रबन्ध की आवश्यकता भी इसीलिए है। यहीं हम उन्हें शक्ति के संयम में दुःख और साधना के कारण ब्राह्मण शक्ति को क्षत्रिय से बड़ा बताते भी देखते हैं[3]। गांधी जी के असहयोग आन्दोलन की निष्क्रियता से 'निराला' की असहमति और उस समय की स्थिति पं० स्नेहशंकर के इन शब्दों में व्यक्त है --" जेल में व्यर्थ जीवन व्यतीत होता है। जनता मुंह फैलाए संवाद पत्रों में स्वतन्त्रता की राह देखती है[4]।"

इसी प्रकार 'तमाम भारतवर्ष' को 'अपना मकान' मानकर विजय के कांग्रेस में काम करने के प्रस्ताव रखने पर अजित का कथन --"कांग्रेस का हाल नस पूछो मत। यहां जो महाशय श्रीकृष्ण प्रसाद हैं, वह दोनों तरफ रंगते हैं, ऐसे आप हैं।" कांग्रेस की नीति पर प्रकाश डालता है। वह कांग्रेस से स्वतंत्र रहकर देहातों में काम करने का प्रस्ताव रखता है, रायबरेली की किसान-सभा में उसने एक व्याख्यान भी दिया था[5]।

अलका का सातवां अध्याय[6] स्वराज के सम्बन्ध में किसानों के विचार और उनकी कमजोरियों पर लेखक का आलोचनात्मक विवेचन है। मंझू जी

१- अलका, पृ० ३२-३३
२- ,, पृ० ४३-४४
३- ,, पृ० ४६-४६
४- ,, पृ० ४६
५- ,, पृ० ५६-५७
६- ,, पृ० ५८-६७

कांग्रेस नेताओं के समान ही जमींदार से मिला हुआ किसान-नेता है, दूसरों को समझाना जिसकी आदत है और जो गांव वालों को शहर की खबरें सुनाता है, छुछुआ के सुराज के सम्बन्ध में पूछने पर वह सुराज का अर्थ बताता है-- किसानों का राजा। किसानों के राज में जमींदार और पटवारी का क्या होगा, वे अपना हक कैसे छोड़ेंगे, छुछुआ की तरह मंहगू को भी यह नहीं मालूम, पर वह समझाता है-- 'गंधी महात्मा' का प्रताप ऐसा है कि उनके हाथ बंध जायेंगे और बोल बंद हो जायेगा, तब वे किसानों के तलवे चाटेंगे।' किसानों की कमजोरियों का ज्ञान रखने वाला लखू इस चमत्कारवाद से अप्रभावित, यथार्थ स्थिति बताते हुए कहता है--'अभी शेर हैं, जमींदार के सामने कुत्ते बन जायेंगे।' गांव का नेतृत्व करने वाला बीरन पासी भी मंहगू की भोलभाली समझता है और उसकी खबर भी लेता है, परन्तु जमींदार के सिपाही जब छुछुआ को पकड़कर कृपानाथ के डेरे की ओर घसीटते हैं, घर का और बीरन भी स्थिति की उपेक्षा करता है। यही कमजोरी हम भाई को ललकारने वाले लखू में भी देखते हैं, जब वह जमींदार के यहाँ छुछुआ की कृपाकांक्षी दृष्टि की उपेक्षा कर भीरु-भाव से जमींदार को प्रणाम कर स्वार्थवश झूठ बोलता है। उसकी इस प्रवृत्ति और नीति को छुछुआ भी समझता है।

छुछुआ की मार के उपरान्त पासियों की सलाह से 'विद्रोह के लिए मानी बिना दाम के, लगान न भरने के लिए' महाजन के कर्जदार गांव के अधिकांश किसान तैयार हो गए थे। विजय के शिक्षा और संगठन का मर्म किसानों को समझाने पर बीरन पासी सबसे महादेव के नाम पर कसम रखने-को साने को कहता है, गांव की धार्मिक अन्ध - प्रवृत्ति यहाँ स्पष्ट है। सामाजिक रूढ़िवादिता का परिचय विजय और अजित को ठहराने वाले ब्राह्मण के हृदय में उनकी जाति के प्रति शंका में मिलता है। डिप्टी साहब के आगमन के प्रसंग में 'निराला' ने बेगार प्रथा और किसानों की संस्कारगत कमजोरी ' डर ' पर प्रकाश डाला है। निर्दोष छुछुआ की प्रतिशोध की तैयारी यद्यपि उसका 'विजय' का प्रथम चरण है, तथापि विजय के संगठित शिक्षा-क्रम के प्रयत्नों का से घबराकर जमींदारों और महाजनों के दीन जनों की सामाजिक और व्यावहारिक कमजोरियों से फायदा उठाने का निश्चय कर

गरीब किसानों पर बाकी लगान का दावा दायर करने और किसानों के उनके जाल में फंस जाना, विजय के विरुद्ध बुआ की गवाही उनकी कमजोरी का ही चित्रण है। यही कमजोरी 'निराला' ने 'चतुरी चमार' में भी दिखाई है, जो आंदोलनों की असफलता और सुधार न हो सकने का मूलभूत कारण है। किसानों की नम्रता ही उनकी शक्ति की क्षीणता का कारण है, वे दुःख कहने से घबराते हैं और सहते हुए मर जाना पसन्द करते हैं, यही उनके पतन का कारण है[1]। जिल के इस विचार में 'निराला' ने गांवों की अवनति और पिछड़ेपन का कारण बताया है।

'अलका' में 'निराला' ने कुलियों के संगठन और सुधार का उल्लेख भी किया है। प्रभाकर नाम से विजय ही शहर में फर्म- मालिकों के खिलाफ कुलियों को उभाड़ता है और डिप्टी कमिश्नर ज्ञानप्रकाश के अच्छी नौकरी का लोभ देने पर अपनी अर्थसम्बन्धी विचारधारा के अनुरूप उसे अस्वीकार करता है। उसके स्वार्थपरता की निन्दा और कार्य की महत्ता के प्रतिपादन में नेताओं पर भी प्रहार है, जिनका रुख किसानों के सुधार का और वस्तुतः नहीं हुआ है[2]। उपन्यास के अन्त में अजित विजय को गांव में किसानों ह का उसे बुलाने का संदेश देता है।

अगस्त सन् ३३ की सुधा में प्रकाशित 'निराला' की कहानी 'आवारा'[3], गद्य-साहित्य की अभिनव दिशा उस यथार्थवाद का प्रथम संकेत है, जिसका प्रारम्भ देवी और 'चतुरी चमार' के प्रकाशन के साथ होता है। 'निराला' का यह यथार्थवाद समझौता न करने वाला था, उसकी विशेषता संघर्ष है और वास्तविक प्रेरणा-स्रोत ग्रामीण जीवन और ज्ञात उसका अनुभव है। भिक्षुक में व्यक्त कवि की सहज सहानुभूति में यहां विद्रोह। भावना का समावेश हुए पाते हैं। कथा का नायक बंकिम 'आवारा' है। गांव की हंसती हुई

१- अलका, पृ० १५२

२- ,, पृ० १७०-१७२

३- लिली, पृ० ५८ 'श्यामा'

बाहरी प्रकृति से तो उसे प्रेम है, परन्तु रूढ़ियों पर चलती हुई लोगों की भीतर की प्रकृति से तद्रूप घृणा । वहाँ का जीवन जैसे मशीन के चाकों की तरह दूसरे ताप से चल रहा हो, स्वयं लोह-खंड की तरह निर्जीव, निष्पन्द । इसलिए वहाँ उसका हृदय नहीं मिलता, सभी के लिए हृदय से वह विदेशी बन गया है[1] ।

कथा में बुआ के प्रसंग में जमींदार के अत्याचार और दुनियादारी का, किसान की प्रकृति-- जो अपने दुःख की बात बड़े करुणा साहित्यिक ढंग से कहते हैं, यदि कोई सहृदय श्रोता मिल जाय-- और उसकी दयनीय दशा, इन दो पक्षों पर प्रकाश पड़ा है । "अर्थ" लेख में जिस प्रकार अर्थ की महत्ता उसके चरित्र की सेवा का कारण होने से बताई गयी है, उसी प्रकार यहाँ बंकिम गाँव के कसाई जमींदार मुंशी दयाराम को समझाना चाहता है कि गरीब किसानों को किस तरह प्यार करना धर्म कहलाने वालों का धर्म होता है[2]।" मनुष्यता की स्थिति पर यहाँ "निराला" ने ब्राह्मण और लोध के सामाजिक स्तरों के अन्तर का लोप भी दिखाया है । गांव की रूढ़िवादिता को लक्ष्य कर "निराला" ने वहाँ के लोगों के स्वभाव अत्याचार और उसके प्रतिकार के अवरुद्ध मार्ग का उल्लेख किया है । कथा के अन्त में बंकिम के पिता की सम्पत्ति उसकी बहन के पुत्र को मिली बताकर "निराला" ने समाज का प्रतिकार दिखाया है ।

इसके पहले ही "निराला" "देवी" और "चतुरी चमार" लिख चुके थे । बंकिम की मनुष्यता को समाज की दृष्टि से वे केवल "आवारा" कह सके थे, पर यहाँ उन्होंने पगली-गूँगी स्त्री को "देवी" बनाकर पूजा है[3] । स्वामी विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त में यहाँ "निराला" की विद्रोही भावना जुड़कर उसको विकसित करती है । नरक को स्वर्ग बनाने के प्रयास में पेट के लाले पड़ने और दुनिया के दूर होने के उल्लेख के साथ "निराला" ने सामाजिक मर्यादा और बड़प्पन पर

१- लिली, पृ० ६१

२- ,, पृ० ६६

३- "चतुरी चमार", पृ० १८

व्यंग्य किया है। उन्होंने यह भी लिखा है कि लोगों की दृष्टि में जो सुरापान है, लोगों की समझ की सच्ची समझ होने के लिए ही वे उसे लिखते हैं। प्रकृति की मारों से लड़ती 'पगली' को देखते ही उनके बड़प्पन वाले भाव उसी में समा जाते हैं और उनपर फिर क्षुद्रपन सवार हो जाता है। उनकी बड़प्पन वाली भावना को पगली पूरा पूरा परास्त कर देती है। 'अलका' में जो 'निराला' ने बुआ की दीन दशा को जिम्मेवार जमींदार को ठहराया था, पगली के परिवर्तन का कारण वे समाज को ही मानते हैं[1]। नेता के जुलूस में बच्चे के कुचलने पर ज्वालामयी दृष्टि से उसके जनता को देखने, रामायणी समाज की कथा में लोगों के शास्त्रार्थ से उसके निर्विकार बैठे रहने, पल्टन के प्रदर्शन में विद्यार्थियों को देखकर उसके हँसने अथवा बदमाशों के पैसे छीनकर ले जाने पर चुपचाप उसके रोने या फूलने आदि प्रसंगों में राजनीति, समाज, धर्म और शासन के प्रति पगली का यह मौन ही उसकी निर्मम आलोचना है। 'निराला' का पगली से सामान्य स्तर पर आदान-प्रदान होता है। कथा के अन्त में होटल के मैनेजर और नौकर संगम के प्रसंग में मित्र भाव से लेखक को देखकर और पैसे लेकर मैनेजर के भाग भागने पर संगम की हंसी मनुष्यता और समाज पर गहरा और कटु व्यंग्य है।

जीवन के साहस से युक्त 'देवी' के सदृश उनकी दूसरी रचना 'चतुरी चमार' है। गाँव की जनता और जीवन से 'निराला' के घनिष्ठ परिचय का प्रमाण यह रचना है, जिसका उल्लेख पहले ही चुका है[2]। 'सफलता' की आभा में भी 'निराला' ने वही महाशक्ति प्रत्यक्ष की है, जो देवी में थी। बंकिम की तरह इस कथा का नरेन्द्र भी तन के धर्म-अधर्म को पार कर दूर निकला हुआ है, पर वह मन के धर्म से श्रद्धा और अधर्म से घृणा करने वाला है। यहाँ 'निराला' ने साहित्य क्षेत्र के ऊँचे लेखक प्रकाशकों और सम्पादकों को, जो साहित्य का उद्धार साहित्याकारों

१- चतुरी चमार, पृ० ४०-४४

२- ,, पृ० ५१

से ज्यादा समझने का दावा करते हैं, अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाया है। 'अर्थ' में भी उन्होंने लिखा था कि राजकुमार ने अपना पहला उपन्यास मुफ्त छपने को दिया था[1]। नरेन्द्र को हम कलकत्ता में 5 रुपये फार्म बंगला के रद्दी उपन्यासों का अनुवाद करते देखते हैं। अर्थ की इच्छा से उत्पन्न उसके अन्तर्द्वन्द्व में बड़प्पन और छुटपन का वही भाव है, जो देवी में मिलता है। वह भी छोटा होकर बड़ा होने की युक्ति सोचता है और गांव लौट आता है। उपदेश का गुरुत्व भूलकर जब वह मनुष्य के प्रति मनुष्य का समभाव प्रदर्शित करता है, दुनिया को ठोकर मारना सीख चुकता है--बंकिम के सदृश वह भी आवारा समझा जाता है।

'निरुपमा' का नायक कृष्णकुमार भी मनुष्यता की रक्षा में अपनी तत्परता के कारण आवारा बंकिम और नरेन्द्र की श्रेणी में आता है। समाज से मिली ठोकरें उसे समाज की ही कमजोरी का ज्ञान करा मुकाबले के लिए समर्थ बनाती हैं। सरस्वती साहित्य समुद्र के प्रकाशक के मोपासां के अनुवाद के चार रुपया फार्म देने तथा पं० रामखेलावन के सात रुपये घंटे की पढ़ाई का कार्य आदि दूसरों की स्वार्थपरता के समक्ष 'अपराध' रखकर लंदन का डी०लिट्० प्राचीन सनातन धर्म के विपरीत भारत के सही वर्ण-निर्माण की शिक्षा देता हुआ जूता पालिश करने का चमार का काम करता है और उसे भारत का सच्चा रूप समझता है[2]। जाति प्रथा के कारण शहर और गांव के सामाजिक मर्यादा में बड़े, यथार्थ धर्म की रक्षा करने वाले लोगों की रूढ़िवादिता का प्रहार उसपर भी होता है, परन्तु निरुपमा क्योंकि मालिक हैं 'गांव के राजा' हैं और 'राजा में भगवान का अंश रहता है' इस प्रकार से वे मुक्त रहते हैं। उपन्यास का समापन भी इसी भाव की विज्ञप्ति के साथ होता है, जिससे 'निराला' असन्तुष्ट नहीं हो, यह बात नहीं[3]।

निरुपमा में हमें संस्कारगत वही दुर्बलताएं मिलती हैं, जो चतुरी आदि में थीं। गांव वालों की मूर्खता और जमींदार के धर्म 'अत्याचार' का

१- लिली, पृ० १०७

२- निरुपमा, पृ० २४-२५, ३३, ३४, ४०

३- ,, पृ० ११३, १२४-१२५

यथार्थ ज्ञान पाकर भी वह बार-बार अपनी संस्कृति से आप परास्त हो जाती है, और इसीलिए कुमार बाबू की माँ सावित्री देवी का निमंत्रण भी स्वीकार नहीं कर पाती है, जो उस धीर महिला के लिए बर्दाश्त से बाहर होता है[1]। उसके यही हिन्दू संस्कार उसे जकड़ लेते हैं, जब रामचन्द्र गाँव छोड़ने का संदेश लेकर आता है, पर उसकी दृष्टि रामचन्द्र से बंधी रहती है[2]। बंकिम की तरह मनुष्यता के नाते वह समझती है कि जमींदार का पहला कर्तव्य पीड़ित की रक्षा करना है और अपने मन की दुर्बलता पर उसे ग्लानि होती है। "तुलसीदास की तरह उसका मन भी संस्कारों की सतह को पार कर देश के जीवन में व्याप्त अन्धकार का अनुभव करता है और यौरप की साम्य-भाव की शिक्षा का वह मन से अनुमोदन करती है। इसीलिए वैधव्य की सृष्टि करने वाले समाज के त्याग को उचित समझ वह कुमार के यहाँ जाती है[3], और उसके अनुरूप कार्य करने में समर्थ होती है।

ऐतिहासिक रोमांस के रूप में लिखे गए उपन्यास "प्रभावती" की कथा "आज जयचंद्र कान्यकुब्जेश्वर सम्राट के समय का" है, जिसके साथ राजनीति, समाज और धर्म का विवेचन भी आया है[4]। सामाजिक वैषम्य का प्रदर्शन करते हुए "निराला" ने उस युग का जो परिचय दिया है, वह "भक्त और भगवान" में व्यक्त उनकी भावधारा की व्याख्या ही है। वे लिखते हैं--"वह और ही युग था। एक ओर गाँव में गरीब किसान छप्परों के नीचे, दूसरी ओर दुर्ग में महाराज धन-धान्य और हीरे-मोतियों से भरे प्रासादों में फिर भी उन्हीं के पास फैसले के लिए-- न्याय के लिए जाना और उन्हें भगवान का रूप मानना पड़ता है।" अन्यथा" राजा अपनी अपूर्व भगवद्भक्ति के प्रभाव के रूप में उसे साकार से निराकार तत्व में लीन कर देता था। उसी से वेतन पाने न पाने वाले दरिद्र सभी देशवासी उसके सिपाही थे।

१- निरुपमा, पृ० ९८, १०६-१०७, ११०

२- ,, पृ० ११६-११७

३- ,, पृ० १२७-१३१, १४३-४४

४- प्रभावती का निवेदन

राजभक्ति के प्रदर्शन में उन्हें लड़ना पड़ता था ।" और किसानों को भी हल की मूठ छोड़कर भागवद्धर्म का पालन करना पड़ता था[१]।" राजधर्म की सब समय की एक सी राजनीति का परिचय देते हुए "निराला" लिखते हैं --" राजा या राज्य की ऐश्वर्य-राशि का भोग करने वाले कभी वृहत् अंश साधारण की भलाई के लिए नहीं छोड़ सकते ।" यहाँ व्यक्तिवाद भी है, क्योंकि शक्ति के विकास के साथ ही मनुष्य दूसरे अशक्तों से भिन्न हो जाता है । उस समय साधारण जनों की आस्था से यह भिन्नता अक्षुण्य थी, उसका उल्लेख कर "निराला" ने बताया कि जीव में वर्णाश्रम धर्म की धारणा ही इसी का प्रमाण थी[२]। "निराला" ने यह बताया है कि शक्ति में छोटा होकर बड़े से लड़ना राजनीति नहीं-- बड़े की हर बात में साथ रहने पर ही सिद्धि हो सकती है, उसकी बात में ताल या बेताल का निर्णय नहीं किया जा सकता ।"राजनीति, विराजमान होने की पद्धति ऐसी ही है । हमेशा रही, हमेशा रहेगी[३]।"

भारत के राजाओं के पारस्परिक विरोध और उनकी अपनी ही सीमा को स्वाधीनता की हद मानने की कमजोरी ही भारत की बिगड़ी राजनीति का मूल कारण था, उसके सत्पर अध्ययन से मुहम्मद गौरी को विजय की आशा बंध रही थी[४]। प्रतिशोध संरक्षा के लिए सक्षम महाराज पृथ्वीराज की दो कमजोरियाँ "यमुना" ने बताई हैं, एक तो वे राजनीति विशारद नहीं थे और दूसरे उनमें रूपलालसा बहुत थी । परन्तु सम्पूर्ण दोष उनका भी नहीं है । क्षत्रियों का बढ़ा हुआ स्पर्द्धा-भाव ही उन्हें बढ़ाकर नष्ट करने वाला कारण होगा, यह प्राकृतिक सत्य यमुना को सत्य जान पड़ता है । क्षत्रिय धर्म की रक्षा कदापि नहीं कर सकेंगे, क्योंकि "साधारण जातियाँ इनके तथा ब्राह्मणों के घृणा भावों से पीड़ित हैं । ये आपस में कटकर क्षीण हो जायेंगे, तब जो शक्ति बड़ी हुई देख पड़ती है, वह विजय प्राप्त करेगी[५]।"

१- प्रभावती, पृ०४८-४६

२- ,, पृ० ४६

३- ,, पृ० ७२

४- ,, पृ० ५०-५१ ,प्रबन्ध प्रतिमा,पृ० १७७

५- ,, पृ० ४७- ४८

मुसलमानों की विजय का कारण उनकी एकता है-- यह "निराला" "शिवाजी के पत्र" में भी बता चुके थे ।

अपने पति वीरसिंह से, जो "सन्यासी रूप महावीर" थे, देश में व्याप्त विरोध-पृथ्वीराज की वीरता पर कई राज्य की हर राजकुमारी के मुग्ध होने पर जो और बढ़ा-- की सूचना पाकर यमुना ने "वीरपूजा" में भी बड़प्पन का अभिमान मर जाने का उल्लेख किया है । उसे महाभारत में पद्मावती का चरित्र इसीलिए प्रिय था कि उन्होंने कर्ण को केवल वीर समझकर वरा था । आज वीरत्व की पहचान न होकर वंश का परिचय मिलता है ।" ये वरे हुए वीर भी वर कर कीर्ति को वरती हैं, जो स्त्री है ।[1] यह "निराला" का आदर्श नहीं था ।

यमुना के आदर्श पर चलती हुई प्रभावती की उचित उपाय से दुखों को दूर करने का व्रत लेती है, क्योंकि " उस अर्थ-गृध्नता में बोध नहीं, जिससे भूखे अन्न पावें, यही व्यवस्था स्थिर होती है ।"[2] क्रान्तिकारियों की पद्धति का अनुसरण कर प्रभावती बलवन्त सिंह का वध किया हुआ कर लूटती है, ग्रामीणों में शिक्षा के प्रचार और सम्बद्ध होकर सच्ची शक्ति से देश को प्रबुद्ध करने का उपाय सोचती है[3]। शिक्षा, साम्य और क्रान्ति के तीनों "निराला" द्वारा प्रतिपादित सूत्र हमें प्रभावती की विचारधारा और कर्म में मिलते हैं ।

प्रभावती में व्यक्त अपनी इन्हीं मान्यताओं को "निराला" ने तुलसीदास में काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है । "प्रभावती" में उन्होंने दिशाओं को अंधेरे से ढका देखा था, अंधेरा, जिसने सच्चे वीरों का इतिहास-- सैनिकों की कीर्ति सेनापति और राज्य के अधिकार में जाती है---इर्द-गिर्द की जनता कुछ दिन नाम जपकर भूल जाती है ।" इस चिरन्तन अंधेरे का मर्म समझकर यमुना

१- प्रभावती, पृ० ८४-८५

२- ,, पृ० ११३

३- ,, पृ० १३३-१३४

और वीर सिंह "अंधेरे में रहकर देश को प्रकाशित करना चाहते हैं, जहाँ तक सम्भावना उनके द्वारा पहुँचे।" अंधेरे के मित्र, "निराला" की दृष्टि में दुर्लभ और महान हैं[1]। "तुलसीदास" में चित्रित भारतीय सांस्कृतिक संध्या में भी शिशु०मण्डल समरसूर्य है। तुलसी का जागरण ऐसे ही समय होता है और नभोदेश को पार कर जब उनका मन ऊर्ध्व देश में पहुँचता है, भारत के देश-काल का सम्यक् ज्ञान उन्हें होता है। मध्यकालीन समाज और राजनीति अथवा विराजमान होने के सम्बन्ध में प्रभावती में जो कुछ "निराला" ने विस्तार से लिखा था, वहाँ सार रूप में विद्यमान है[2], जिसके साथ तुलसी को प्रकृत पाठशाला में हुआ आत्म साक्षात्कार भी मिल गया है।" "पार्थिव स्वर्ग" के पीछा का अंधकार के पार तुलसी को यह सत्य मिला था, वह रंक यहाँ जो हुआ भूप, निश्चय रे। "क्योंकि उसके " और और चाहने पर साधारण को ठौर कहाँ रह जाता है? जीवन और जग के जय के यही तरीके उन्होंने प्रभावती में भी बताए हैं।

"दान"[3] में पाप और शाप के प्रश्नों में उलझा कवि समझता है कि आज के समाज में "बड़ी दया का उदाहरण" पैसा ही एक उपाय है। श्रीमन्नारायण जपने वाले विप्रवर के भिक्षुकों को भूल बढ़ते कपियों के साथ पुए देते देखके "निराला" ने "धन्य, श्रेष्ठ मानव !" कहकर मानव से श्रेष्ठ धर्म के इस संस्कार के प्रति अपना स्वाभाविक विद्रोह व्यक्त किया है[4]। "सरोज स्मृति" में भी "निराला" ने लिखा है कि अर्थागमोपाय जानकर भी आर्थिक पक्ष पर अनर्थ देखकर उन्होंने स्वार्थ समर में हारना स्वीकार किया है। सामाजिक कुसंस्कारों के प्रति अपने मन के विद्रोह को व्यक्त करते हुए ही उन्होंने सामाजिक योग के नियम तोड़ कन्या सरोज का आमूल

१- प्रभावती, पृ० ६२-६३

२- तुलसीदास, छंद सं० २७-३०

३- अनामिका, पृ० ??

४- ,, पृ० १२१

नवल विवाह किया था । सरोज के प्रयाण से उत्पन्न अपनी अक्षमता का उनको ज्ञान समाज के पूंजीवादी संस्कारों की विजय का ज्ञान था ; उनके अपने नैतिक मूल्यों की बर्बरता के अभिशाप में बदल जाने का ज्ञान था । परन्तु यह ज्ञान "निराला" के लिए नया नहीं था । यहाँ "निराला" पूंजीवादी संस्कृति के शिकार में चतुरी या पंगली ही नहीं, स्वयं अपने को देखते हैं । "निराला" की इस हालत से यह स्पष्ट है कि किसी भी संवेदनशील व्यक्ति के लिए "निराला" के समान महान हृदय दुर्लभ है, किन्तु भारत से त्रस्त देश में यह वरदान अभिशाप बन जाता है[1] । वास्तव में "निराला" का यह नैतिक मूल्य "भले ही पूंजीवादी वर्ग के लिए तुच्छ हो, तमाम भारतीय जनता के लिए यह अमूल्य है[2] ।" "जनता का जन-ताका ज्ञान" इसीलिए "निराला" की दृष्टि में "सच है", क्योंकि अच्छा कल्याण वह अथच है । यहाँ भी हार में नया हार तोजने में बार-बार हारने[3] का उल्लेख कर उन्होंने बताया है कि "नहीं फूल जीवन अविकच है--- यह सच है ।" जीवन में संघर्ष के लिए यह सत्य उनका सम्बल था ।

"वनबेला"[4] में तुलसीदास का कवि बार-बार प्रलय का दृश्य भरता सांध्य गगन; उसके नीचे अदृश्य होता देश देखता है, और विरक्त होकर अपनी पराजय और व्यर्थ जीवन पर व विचार करता है । "पैसा एक उपायकरण" की मानों बिल्कुल व्याख्या करते हुए "निराला" ने धन पर एकाधिकार रखने वाले राजपुत्रों और विशेषकर लक्षपति कुमारों की उदार साम्यवादी नीति, उनकी जन-सेवा और उनके प्रति जनता की अंध श्रद्धा का सच्चा स्वरूप प्रस्तुत किया है । उनके मन में भी राजपुत्र अथवा लक्षपति कुमार होने का विचार आता है, परन्तु तभी जहाँ लोगों का ध्यान नहीं जाता, वहाँ "वन्यगान" बनकर खिली उपवन बेला कवि को लाज से नम्र कर देती है ।

१- साहित्य धारा, पृ०२३, -- प्रकाशचन्द्र गुप्त
२- विराम चिन्ह, पृ०६८-- डा० रामविलास शर्मा
३- अनामिका, पृ० ४४
४- ,, पृ० ८५

सर्वांग देते हुए वह कवि को "केवल आधा सोना बेला का जीवन में" महा मंत्र देती है। जहाँ मान है, वहाँ बड़े-छोटे का भेद-भाव रहता है, पर जहाँ ज्ञान है, वहाँ सब समान है और "उनकी आँखों की आभा से विश्वेश स्वर्ग"। प्रखर उपल प्रहार होने पर भी बेला के मुँह पर नाचने के सत्य और सौन्दर्य की उपलब्धि ही कवि के विरोध करने और सहने का वह सम्बल है, जो दूर रहता था। "निराला" की समाजवादी विचारणा में वेदान्त का सन्निवेश भी यहाँ परिलक्षित होता है।

लगभग तीन वर्ष पहले सन् ३४ के प्रारम्भ में ही एक यमुना के किनारे खड़ी फूलों की शोभा देख रही "निराला" की "निरुपमा" भी यही सोच रही थी : "उनकी प्रकृति उनका कैसा विकास करती है। ये कितने कोमल हैं। कुछ प्रकृति की सम्पूर्ण कठोरता उपद्रव और अत्याचार बर्दाश्त करते हैं। उनके स्वभाव से मनुष्य क्या सीखता है, केवल सौन्दर्य के भोग के लिए उनके पास आता है।"[1] फूलों के स्वभाव से "निराला" ने जो सीखा, वह उन्होंने "वनबेला" में दे दिया था। आधा सोकर ही वह "नरगिस"[2] की मन्द सुगन्ध से अभिभूत होते हैं और धरा के सौन्दर्य को स्वर्ग कहते हैं। सभ्यता और संस्कृति के नए मानवीय रूप सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति[3] कवि में प्रिया के लिए सिंहासन त्यागकर भू पर उतरने से मिली प्रसन्नता में भी "निराला" सत्य को ही प्रत्यक्ष करते हैं। "निराला" की यह रचना बाह्य संसार के प्रति उनकी जागरूक चेतना का प्रमाण है।

प्रकृति के अतिरिक्त समाज की ओर देखने पर नत और अधम अछूतों से भी उन्हें यही शिक्षा मिलती है। "वनबेला" की तरह वे भी ऐसे ही स्थान में रहते हैं, जहाँ किसी का ध्यान नहीं जाता। नतमस्तक समाज को अपनी सेवा और सम्मान देकर वे भी अहंकार के नाश और समाज के प्रहार सहकर अपार धैर्य का पाठ पढ़ाते हैं। "निराला" ने कुल्ली और उनकी अछूत पाठशाला को याद कर कुल्ली का

१- निरुपमा, पृ० २३, सुधा, १६ जनवरी ३४, पृ० ६५६, निरुपमा के दो अध्याय इस अंक में प्रकाशित।

२- अनामिका, पृ० १६०

३- अनामिका, पृ० ९८

का जीवन चरित लिखा । उनके जीवन को समझने वाला एक ही व्यक्ति 'गोर्की' 'निराला' ने बताया है, पर गोर्की में भी एक कमजोरी थी;वह जीवन की मुद्रा को जितना देखता था, सारे जीवन को नहीं ।" 'निराला' ने लगभग उसी समय गोर्की को पढ़ा था , गोर्की जिन्होंने मजदूर और किसानों को उनकी काम करने की लगन के कारण सच्चा वीर समझा था, उनकी काम करने की गतिविधि जानने वाला समझा था, और वे जानते थे कि उनका एक ही ध्येय है--- समस्त मनुष्य जाति के कल्याण के लिए काम करना[1] ।" उपदेश नहीं, चित्रण की विशेषता द्वारा 'कुल्ली भाट' में 'निराला' ने 'महापुरुषों' की नीति और कार्य प्रणाली तथा कुल्ली की साधारणता में स्वयं अपनी कथा कही है । प्रेमचन्द और प्रसाद जी के सदृश कुल्ली से भी अन्तिम समय में 'निराला' को एक ऐसे सत्य की उपलब्धि हुई थी कारण, "मनुष्य अपने समझे हुए जीवन की समझ ऐसे ही परिवर्तन के साथ पाता और देता है[2] ।"

कुल्ली की अछूत पाठशाला देखकर 'निराला' सोचते हैं-- "इनकी ओर कभी किसी ने नहीं देखा । ये पुश्त-दर-पुश्त से सम्मान देकर नतमस्तक ही संसार से चले गये हैं ।" प्रतिक्रियास्वरूप वे लिखते हैं--" अधिक न सोच सका । मालूम दिया, जो कुछ पढ़ा है, कुछ नहीं; जो कुछ किया है, व्यर्थ है,' जो कुछ सोचा है, स्वप्न ।" समाज ने जिन्हें नत और अधम बनाया है, उनकी "बिना चौपायों की वाणी", बिना दिखाव की वह संस्कृति प्राण का पर्दा-पर्दा पार कर गयी ।" लज्जित होकर 'निराला' स्वीकार करते हैं : " ओफ । कितना मोह है । मैं ईश्वर , सौन्दर्य,वैभव और विलास का कवि हूं । -- फिर क्रान्तिकारी[3] ।"

सन् २८ के अन्त में प्रकाशित एक गीत में दुर्बल नालों पर पर भी प्रतिपल जन के गौरव, वे उज्ज्वल सबल कूलों को टलमल करते और सकल अंचल

१- समाज और साहित्य,पृ० १२० अंचल

२-'कुल्ली भाट', पृ० १३१

३- ,, पृ० ९९-१००

सोकर कल-अक्षलमें गुसि भरते चित्रित कर "निराला" ने "बादल राग" में व्यक्त दर्शन की ही पुनरावृत्ति की है। "कुल्ली भाट" की रचना के बहुत पहले ही वे यहाँ लिख चुके थे --

" मिला तुम्हें, सच है अपार धन,
पाया कृश उसने वैसा तन ।
क्या तुम निर्मल, वह अपावन ?
सोचो भी, समझो ।"[1]

गीतिका का "बाल रैसी मत करो"[2] गीत भी इसी प्रकार का है। इसी कृति, की एक अन्य रचना में "निराला" ने देश के शत-शत वर्षों का मग पार कर भी प्राणों के सार्थक न होने की बात लिखी है। उन्होंने बताया कि इन वर्षों में सुख को छिनने वाला भेद बढ़ा है, जागरण को भेदने वाला तम बढ़ा है और दशाओं से निशि के निर्वेदन ठग आए हैं। निरन्तर बढ़ते कोलाहल में सम्बल के लुटने, शक्तिहीन तन की निश्चलता और ऐसे समय भी ज्ञान से मिलने वाले धन के निश्चेतन न होने का उल्लेख किया है। इसी ज्ञान से जीवन अंधकार हर साधने का आग्रह "निराला" का है[3]। सामाजिक यथार्थ की प्रखर अनुभूति के साथ अदृश्य शक्ति पर "निराला" की दृढ़ आस्था, उनके समाजवाद का आधार वेदान्त है, इस विषय की असंदिग्धता का परिचय है।

सन् ३६ की एक सत्य घटना पर आधारित "कला की रूपरेखा"[4] कहानी में "निराला" ने एक मद्रासी का उल्लेख किया, जो लखनऊ कांग्रेस में स्वयंसेवक था। कांग्रेस खत्म होने पर यही व्यक्ति बैसर बाग में टहलते "निराला" के पास आया था और रेल के किराये के अभाव में पैदल घर जाने की बात

१- गीतिका, पृ० १२

२- ,, पृ० ६७

३- ,, पृ० ८१

४- सुकुल की बीबी, पृ० ६५

उसने कही । "निराला" के कांग्रेस की मदद के सम्बन्ध में कुछ करने पर उसने बताया, कांग्रेस का यह नियम नहीं है ।" "कुल्ली" की मृत्यु पर "निराला" को भी कांग्रेस के उसी नियम का शिकार होना पड़ा था, पर वे जानते थे कि जिसे कांग्रेस योग्य समझती है, उसे इतना देती है कि दूसरों को पता नहीं चलता[1]।

कुल्ली के अतिरिक्त "निराला" ने अपने मित्र बलभद्र दीक्षित पढ़ीस; जो कासगंज राज्य में काम करते थे पर मुलाजिमों के दाव पेंच से वहाँ से अलग हो गये थे ; के भी तरबूजों की खेती करने और अछूतों को अपनी ओर से पाठशाला चलाकर पढ़ाने का उल्लेख किया है । ब्राह्मण होते हुए भी ब्राह्मणेतर सब को साथ जोड़ने में संकुचित नहीं होते थे[2]। डा० रामविलास ने भी "निराला" पुस्तक में लिखा है--"प्रेमचन्द और बलभद्र दीक्षित के अलावा हिन्दी में कोई ऐसा साहित्यकार नहीं हुआ जो गांवों की दीन जनता के इतना निकट रहा हो,-- क्रान्तिकारी ढंग से रहा हो-- जैसे निराला[3]।"

वास्तव में सन् ३५ में ही एक और रूस का मार्क्सवादी स्वप्न पूरा होने और दूसरी और साम्राज्यवादी इटली के एबीसीनिया पर आक्रमण करने से भारत की जनता में समाजवाद से सहानुभूति और साम्राज्यवाद से घृणा के भावों का उदय स्वाभाविक था । इसके साथ ही बापू ने भी हरिजनों को अपना कर सामाजिक क्रान्ति को बल दिया था । कांग्रेस के नेताओं पर पूंजीपतियों के प्रभाव का भी हिन्दी के लेखकों को प्रत्यक्ष ज्ञान हो रहा था, जिनकी समझौते की नीति शोषण की प्रवृत्ति से रहित नहीं थी । सत्याग्रह के स्थगित, अत: आन्दोलन के असफल होने से कांग्रेस और राष्ट्रीय विचारधारा के लोगों का झुकाव धारा-सभा के कार्यक्रमों की ओर हुआ । मजदूर और किसानों की जागृति ने भी ~~कांग्रेस-में~~ कौंसिल प्रवेश के कार्य

१- कुल्ली भाट, पृ० १२५-१२६

२- माधुरी, फरवरी, ४३

३- "निराला", पृ० २०६-२०७

को प्रोत्साहन दिया था । गया कांग्रेस में कौंसिल प्रवेश का समर्थन किया गया, क्योंकि वह भी सरकार के माया जाल को तोड़ने का एक उपाय था । सन् १६३७ तक कांग्रेस की विचारधारा में काफी परिवर्तन आ चुका था और गांधी जी के अनुयायियों का दृष्टिकोण बदल चुका था । सन् ३६ में सुभाष बोसके अध्यक्ष चुने जाने पर कांग्रेस की अन्त: कलह सुभाष के त्यागपत्र देने डा० राजेन्द्र प्रसाद के अध्यक्ष बनने और कार्य समिति में सभी पुराने सदस्यों का समावेश, स्थिति का सही परिचय इससे मिलता है । उग्रदल के समाजवादी सम्पूर्णानन्द ने भी मंत्रिमण्डल बनाने का विरोध किया था, पर बाद में वह मंत्रिमण्डल में शामिल कर लिए गए थे । जनता का नेताओं को एक की निगाह से देखना इसीलिए स्वाभाविक था ।

यह उल्लेखनीय है कि कांग्रेसी नेताओं की भाषा विषयक नीति भी उनके राष्ट्र- प्रेम की आलोचना का एक प्रमुख कारण था । अकेले बापू ही कांग्रेस के भीतर और बाहर हिन्दी के समर्थक थे, परन्तु कांग्रेसी नेताओं के समक्ष वे भी विवश थे । भाषा की यह समस्या सन २० के पहले असहयोग आन्दोलन से ही सामने आयी हुई थी । 'समन्वय' में संवत् १६८० में ही 'निराला' ने 'भाषा की गति और हिन्दी की शैली' लेख में व्यापकता के लिहाज से राष्ट्रभाषा का पद हिन्दी को मिलने का उल्लेख किया है । हिन्दी-उर्दू के झगड़े को काफी दिन नहीं हुए बलाकर 'निराला' ने हिन्दुस्तानी के प्रति व अपनी असहमति यहीं स्पष्ट कर दी है । दिल्ली के आस पास की बोली को भी 'निराला' प्रतिमान मानने को तैयार नहीं थे, क्योंकि साहित्य की दृष्टि से उसपर बंगाल, गुजरात और महाराष्ट्र का प्रभाव अधिक है[1] । प्रान्तीयता का आरोप भी इसीलिए अनुचित है । जो हिन्दी राष्ट्रभाषा होगी उसे 'निराला' किसी प्रान्त की मातृभाषा नहीं मानते[2] । इसी दृष्टि से फैजाबाद के सम्मेलन में वे युक्तप्रान्त का नाम बदलने के प्रस्ताव के विरुद्ध थे[3] ।

१- चयन, पृ० १६-२१

२- ,, पृ० २५

३- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १६४

इसी समय उन्होंने पश्चिमी राजनीति, विज्ञान, सभा-नीति और सामाजिक सुधार आदि को अपना लक्ष्य बनाकर देश की परिस्थिति को पलटने का विचार रखने वाले लोगों का उल्लेख कर लिखा --" इसमें सन्देह नहीं, राजनीति इस समय की स्वाधीन वृत्ति कहलाने के कारण अधिकांश मनुष्यों की स्वाधीनता की चिन्ता राजनीति और परिधि के भीतर ही चक्कर काट रही है[1]।" समाधान के रूप में यहाँ उन्होंने वेदान्त दर्शन को ही प्रस्तुत किया है।

सन् ३० के कलकत्ता के हिन्दी साहित्य सम्मेलन में ही "निराला" यह भली भाँति समझ गए थे कि "हिन्दी कुछ साहित्यिकों के हाथों की पुतली है -- वह भक्तों के हृदय की सप्राण देवी नहीं।" सम्मेलनों में शरीक न होने का कारण उन्होंने सम्मेलनों की दुर्दशा, वहाँ साहित्य का अपमान और प्रभावित अपरिणामदर्शी राजनीतिज्ञों का प्राधान्य बताया[2]।

साहित्य में राजनीतिज्ञों की प्रधानता "निराला" के लिए अप्रिय और अपमानजनक थी। फैजाबाद के प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन में राजनीतिज्ञों का प्राधान्य उन्हें खटका था[3]। सम्पूर्णानन्द के कवियों को राजनीतिज्ञों का साथ देने की बात पर "निराला" ने हिन्दी के कवियों को राजनीतिज्ञों से आगे बताया, क्योंकि वे फौलोअर नहीं औरीजिनल हैं। उनका विचार था कि राजनीति दायरे में रह सकती है, क्योंकि यहाँ स्वार्थ-साधना है, साहित्य में इसके विपरीत मनुष्यमात्र का कल्याण भाव है।" अपनी "बादल राग" की छठी कविता सुनाकर "निराला" ने बताया कि सन् २० से ही साहित्य के राजनीति से आगे होने का प्रमाण उन्हें मिल रहा है[4]।

टण्डन जी से "निराला" विशेष रूप से नाराज़ थे, क्योंकि वे हिन्दी के होकर भी राजनीतिज्ञों के साथ थे। उन्हें "निराला" ने १६ आने में

१- चयन, पृ० १४८

२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १८३, १८६

३- ,, पृ० १८६

४- ,, पृ० १६१-१६२

अठन्नी भला आदमी कहा । बापू को लक्ष्य कर उन्होंने कहा कि बापू जैसों की कौड़ी की कीमत की बात भी अनमोल होगी और उनकी अनमोल बात भी तीन कौड़ी की होगी । यहाँ 'निराला' ने वर्धा के हिन्दू-मुस्लिम सहभोज प्रस्ताव का स्मरण कर यह भी कहा था कि यदि राजनीतिज्ञ हिन्दुओं में मुर्गी खाने का प्रचार करते तो हिन्दू-मुस्लिम यूनिटी मजबूत हो गयी होती ।' लोगों ने सुन लिया । लेकिन मतलब वैसा ही समझें, जैसा टण्डन जी विरोध में समझे थे।[1] सन् ४१ में प्रकाशित 'बापू तुम मुर्गी खाते यदि' कविता भी इसी प्रकार के व्यंग्य से युक्त और कांग्रेस की राजनीति और नेतृत्व पर प्रहार करने वाली है । यहाँ उन्होंने बापू के प्रति जनता की, हिन्दी के कवि और लेखकों की और अन्य नेताओं की अंध-निष्ठा का प्रदर्शन किया है ।

सन् ४१ की अपनी इस 'प्रतिनिधि रचना'[2] के सम्बन्ध में 'निराला' ने श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय से कहा था कि कविता लिखते समय उनके सामने व्यक्ति न होकर समाज रहता है, इसीलिए उन्होंने यह कविता किसी संग्रह में नहीं दी । व्यक्तिगत व्यंग्य और आक्षेप को 'निराला' कवि का नहीं भांडों का काम कहते थे । उन्होंने स्वीकार किया है कि स्तुति अथवा व्यंग्य न लिखकर देश की राजनीतिक प्रगति से अपना असन्तोष व्यक्त कर उन्होंने उसकी पोल का ढोल बजाया है[3]।

गांधीजी से बातचीत में 'निराला' ने यह स्वीकार किया है कि गुलामी को शिकस्त देने की आवाज देश में सबसे बुलन्द गांधी जी की है । उन्होंने बताया कि उनका जीवन केवल 'बाहरी स्वतन्त्रता की लड़ाई का जीवन' है और उनकी 'कुल क्रियाएं एक सापेक्षता लिए हुए हैं,' वे जो स्वतन्त्रता के लिए :-

----

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १६६

२- निराला की साहित्य-साधना, पृ० ३८२ -- डा० रामविलास शर्मा

३- महाप्राण 'निराला', पृ० १४६

लागू होती है, वैसे ही महात्मा जी के व्यक्तित्व निर्माण के लिए।" राष्ट्रभाषा हिन्दी का उदाहरण लेकर "निराला" ने माना कि यह आवाज बापू ने उठाई है, परन्तु तिलक के मुकाबले में सर उठाने वाले गांधी हिन्दी के प्रश्न पर स्वयं बदल गए। बापू के नेतृत्व पर प्रकाश डालते हुए "निराला" लिखते हैं--" नेता को कुछ काम भी करना पड़ता है, सहानुभूति पाने के लिए या लोकप्रियता के लिए।" इसी नेतृत्व की दृष्टि से उन्होंने मद्रास में हिन्दी का प्रचार किया था। उस समय यदि उर्दू या हिन्दुस्तानी का ख्याल उन्हें होता तो वे यह नहीं करते, क्योंकि बगल में हैदराबाद है, जहां उर्दू है। "निराला" ने उन लोगों से " जो यह कहते हैं पंजाब में फारसी-अरबी-बहुल हिन्दुस्तानी के लिए युक्तप्रान्त में खिचड़ी-शैली, बिहार में कुछ अधिक संस्कृत, बंगाल वगैरह में प्रतिशत संस्कृत शब्द "यह पूछा है कि उनकी निगाह के सामने नेतृत्व करने के सिवा ज़बान की सूरत संवारने का भी कोई ध्यान है?" "निराला" का विचार है कि गांधी जी ने अपनी भाषा-संबंधी राजनीति से हिन्दी भाषी जनता की भावनाजन्य स्वतन्त्रता बात की बात में मार दी।" लोग लट्ठ की तरह बजने लगे, हिन्दी राष्ट्रभाषा है, संपादक हो, लेखक। वस्तु और विषय की यही पराधीनता है। गांधी जी की यही स्वाधीनता[1]।"

बापू ने इंदौर में "हिन्दी के साथ हिन्दुस्तानी एक लफ़्ज और जोड़ा था" इस ओर ध्यान आकृष्ट कर "निराला" ने बताया है कि बापू खिलाफत आन्दोलन में मुसलमानों का साथ दे चुके थे, वे खिचड़ी शैली के पक्षपाती थे और यह काम आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी बहुत पहले ही कर चुके थे। हिन्दी में कौन रवीन्द्रनाथ है? आदि यही बापू ने कहा था और लखनऊ कांग्रेस में भी यही बात दोहरायी।

गांधीजी से बातचीत में "निराला" ने उनके इसी भाषण का उत्तर देते हुए हिन्दी वालों की रूढ़िग्रस्तता-- जो अरूप ही

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १८-१९

समझते हैं, सत्य नहीं -- का उल्लेख कर, देश की स्वतन्त्रता के लिए समझ की स्वतन्त्रता को जरूरी बताया और उनसे हिन्दी की कुछ चीजें सुनने को कहा। बापू की गुजराती साहित्य से अपनी अनभिज्ञता और हिन्दी न जानने की स्वीकृति पर "निराला" ने उनसे पूछा कि फिर उन्हें क्या हक है कि वे कहें हिन्दी में कौन रवीन्द्रनाथ है? हिन्दी और बंगला की चीजें सुनाने ~~में कौन रवीन्द्रनाथ है~~ ? ~~हिन्दी और बंगला की चीजें सुनाने~~ को जब आधा घंटा समय भी बापू के पास "निराला" को नहीं मिला, तब वे हैरान होकर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति को देखते रहे जो राजनीतिक रूप से देश के नेताओं को रास्ता बतलाते हैं, बेमतलब चरखा तकली चलाते हैं; प्रार्थना में मुर्दे गाने सुनते हैं, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति होकर भी हिन्दी के कवि को आधे घंटे का समय नहीं दे सकते, अपरिणामदर्शी की तरह जो जी में आता है, खुली सभा में कह जाते हैं, सामने बगलें झांकते हैं।[1]

सन् ३० के अपने लेख में भी "निराला" ने बापू की यू०पी० वालों की भाषा को ठीक नहीं कहकर हिन्दी के व्याकरण की निन्दा करने का उल्लेख किया है। "निराला" ने उनके वक्तव्य का दूसरा पक्ष सामने रखकर बताया है कि जो ठीक भाषा लिखते हैं, उनका गांधी जी को पता नहीं है, व्याकरण के दोष साहित्यकारों को भी मालूम हैं, पर भाषा व्याकरण की नहीं, वरन् व्याकरण भाषा का अनुगामी है।[2]

नेताओं की भाषा विषयक नीति की दृष्टि से जवाहरलाल भी "निराला" का आलोच्य विषय बने हैं। काशी में रत्नाकर रसिक मण्डल की ओर से आचार्य शुक्ल के नेहरू को मानपत्र देने पर नेहरू ने हिन्दी साहित्य की उन्नति पर जोर दिया,[3] हिन्दी में दरबारी ढंग की कविता होने का उल्लेख किया, दूसरी

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० २५-२६

२- चाबुक, पृ० ४८

३- विविध प्रसंग, भाग२, पृ० २२३

भाषाओं की ३-४ सौ पुस्तकें अनूदित कराना स्वराज के बाद सरकार का फर्ज बताया, और प्रान्तीय भाषाओं का माहात्म्य कीर्तन किया[१]।"

'सुधा' में 'निराला' ने लिखा, राष्ट्र के इतने प्रसिद्ध पुरुष राष्ट्रभाषा का कितना ज्ञान रखते हैं, इसका एक पुष्ट प्रमाण समाचारपत्रों से प्राप्त हुआ। 'निराला' ने बताया कि राष्ट्र के निर्माणोद्देश्य में पंडित जी की तल्लीनता राष्ट्रभाषा अथवा राष्ट्र के लिए उसकी शिक्षा की आवश्यकता के प्रति उपेक्षा का कारण है। राष्ट्र के लिए निकली पण्डित जी की प्रतिभा अगर राष्ट्रभाषा के रूप में कुछ पुस्तकों के रूप में निर्गत हो, तब 'निराला' के विचार से 'साहित्यिक अच्छी तरह समझ जायेंगे, पुन: पंडित जी को भी मालूम हो जायेगा, जिन्हें वह कुछ देना चाहते हैं, उन्हीं से प्राप्त करने की गुंजाइश है, और राष्ट्र के मैदान में वह अपने को उनसे कितने आगे समझते हैं, राष्ट्रभाषा के मैदान में वे उनसे और दूर तक पहुँचे हुए हैं या नहीं।" प्रान्तीय साहित्य के संबंध में 'निराला' ने बताया कि बंगाल साहित्य-प्रान्त में सबसे ऊँचा है। बंगाली के साथ गुजराती और मराठी के अनुवाद भी हिन्दी में हुए हैं और "विलायत से कल तक का अनुवाद हिन्दी में है। फिर भी पंडित जी स्वराज्य सरकार द्वारा यह अनुवाद कार्य कराने के लिए मस्तिष्क में विशद भावना पाले हुए हैं।" अपमान से बचने के लिए साहित्यिकों से 'निराला' ने अन्त में इस दार्शनिक सत्य की रक्षा का निवेदन किया है: " जो दूसरों को बड़ा मानता है, वह दूसरे से छोटा समझा जाता है[२]।"

जिन दिनों प्रेमचन्द 'हंस' में भारतीय साहित्य के संगठन और उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारतीय साहित्य संघ की स्थापना की आवश्यकता

१- सुधा, दिसम्बर, ३३, पृ०७४३
२- ,, ,, ,, पृ०७४४

पर विचार कर रहे थे, इसी विषय पर नेहरू का एक लेख 'प्रताप' में निकला। अपने लेख के प्रारम्भ में नेहरू जी ने हिन्दी के नवीन साहित्य की दरिद्रता के विषय में लिखा कि ऐतिहासिक और भौगोलिक कारणों से, पहले बंगाल और उसके बाद महाराष्ट्र और गुजरात ने पश्चिम से आयी जागृति को ग्रहण किया। प्रेमचन्द ने उनके इस विचार से अपनी सहमति प्रकट करते हुए बताया कि संसार की उन्नत भाषाओं की तुलना में भारत की उन्नत समझी जाने वाली भाषाएं भी नगण्य हैं। इसका मुख्य कारण उन्होंने देश के कर्णधारों का अंग्रेजी मोह और अभ्यास तथा अपनी भाषाओं के प्रति उनकी हेय और उदासीन दृष्टि है। एक दूसरा कारण प्रान्तीय भाषाओं के आदान-प्रदान की कमी भी था। नेहरू ने हिन्दी और उर्दू को एक शरीर के दो चेहरे कहकर प्रान्तीय भाषाओं को छोटी बहन बताया, साथ ही भारतीय-साहित्य-संघ में अपनी भाषा न होने पर भी अंग्रेजी को जगह देने की सिफारिश की थी, क्योंकि देश के जीवन में इस 'सौतेली भाषा' का बड़ा हिस्सा है। प्रेमचन्द ने संघ की या संस्था की मदद अंग्रेजी के लिए अनावश्यक बता उसे 'पटरानी भाषा' और अन्य भाषाओं को उसकी 'दया की भिखारिणी' कहा। नेताओं की अपनी मातृभाषा की अनभिज्ञता पर, समाज में नेता और जनता की दूरी के कारण समाज की दीनदशा; अपनी अयोग्यता और अनभिज्ञता पर लज्जित न होने पर उन्होंने दुःख प्रकट किया[१]।

'हमारा-साहित्य' शीर्षक से 'विशाल भारत' में भी पं०जवाहरलाल नेहरू का एक नोट निकला था, जिसमें हिन्दी की प्रगति पर अपना विश्वास, परन्तु पुस्तकें पढ़ने पर निराशा और प्रगति की जांच के लिए पिछले ३०-३५ वर्षों में निकली हिन्दी पुस्तकों की सूची प्रकाशित करने का सुझाव उन्होंने रखा था। प्रेमचन्द ने हिन्दी की प्रगति पर नेहरू के विश्वास पर आश्चर्य प्रकट कर पूछा कि जब अंग्रेजी की थोड़ी सामर्थ्य आते ही हिन्दी तुच्छ और ग्रामीणों की भाषा समझी जाती है, तब हिन्दी में ऊंचे दर्जे के साहित्य के निर्माण की आशा कैसे रखी जा सकती है? उन्होंने बताया कि जिस समाज में साहित्य का तिरस्कार गौरव समझा जाता है और साहित्य

१- विविध प्रसंग, भाग ३, पृ० १०५-१०६

की स्थिति नहीं के बराबर है, 'यहां जो कुछ हो रहा है वही गनीमत है ।' उन्होंने लिखा--' ऐसे अरसिक समाज में उच्चकोटि का साहित्य क़यामत तक न आयेगा[1] ।'

प्रेमचन्द की ही तरह 'निराला' ने भी अपने 'काव्य साहित्य' निबन्ध में उग्र जी का उल्लेख कर कि वे भी कालिदास होते, यदि 'आपका समाज अंग्रेजों की तरह शिक्षा तथा सभ्यता की उतनी ही सीढ़ियां तय किए होता ।' स्वार्थपंथी साहित्यिक नेताओं की खबर ली है[2]। प्रेमचन्द विषयक अपने एक लेख में भी 'निराला' ने राजनीतिक नेताओं के मान और साहित्यिक नेताओं के अभिशाप का उल्लेख किया था, जिसके कारण 'हिन्दी महारानी होकर अपनी प्रान्तीय सखियों की भी दासी है ।' राजनीति के सम्मुख साहित्य की श्रेष्ठता यदि 'निराला' ने साधना का महत्व स्वीकार किया, हेकी का नहीं[3] ।

हिन्दुस्तानी का प्रश्न लेकर ही 'निराला' ने नेहरू जी से पूछा था कि हिन्दुस्तानी का प्रचार वह अधिकांश जनों को खुश करने के लिए भले ही करें, परन्तु साहित्य में उसका क्या रूप होगा, क्या बता सकेंगे ? 'निराला' ने उन्हें बताया कि साहित्य की दृष्टि से हिन्दुस्तानी पर विचार करने पर हम देखते हैं कि उसकी पहुंच जीवन के 'साधारण मकहमे' तक ही है । राजनीति में भी वह बिना अन्य भाषाओं के शब्दों के सहारे लंगड़ी ही रहेगी[4] । समाज की रूढ़िवादिता का उल्लेख करने पर जब नेहरू जी ने सुकिरात से टालस्टाय तक के प्रोग्रेसिव रूप का नाम लिया, प्रेमचन्द की तरह ही उनसे 'निराला' ने भी पूछा था --' लेकिन क्या हिन्दुस्तान की दशा वैसी ही समझते हैं संस्कृति, हिन्दू मुसलिम मनोवृत्तियां क्या वैसे ही वर्ग-युद्ध से दुरुस्त होंगी?' वेदान्त और साहित्य की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए 'निराला' ने समस्या के समाधान का आधार उन्हीं को माना । सार्वभौमिक सुधार की दृष्टि से क्रम की

१- विविध प्रसंग, भाग३, पृ० ८०-८१, जनवरी ३६
२- वही, पृ० ५३, ६१
३-'हिन्दी के गर्व और गौरव प्रेमचन्द जी', भारत १अक्टूबर ३६, कलम का सिपाही, पृ०६४७-६४८--अमृतराय
४- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०३०

व्याख्या में ही 'निराला' का साम्यवाद भी स्पष्ट है[1]।

अपने पहले के प्रतिवाद को दोहराते हुए 'निराला' ने पण्डित जी के हिन्दी ज्ञान की अनभिज्ञता पर दुःख प्रकट किया है, और सुभाषचन्द्र बोस का उदाहरण सामने रखकर बताया कि दूसरे प्रान्त में राजनीतिक व्यक्ति ऐसे नहीं हैं। हिन्दी की प्रगति बताकर 'निराला' जी ने उसकी कमजोरी और शहजोरी दोनों की सच्ची जानकारी पण्डित जी को होने पर भाषा को बल मिलने का उल्लेख किया। 'निराला' ने लिखा " एक तो हिन्दी के साहित्यिक साधारण श्रेणी के लोग हैं, एक हाथ से भार भेलते, दूसरे से लिखते हुए; दूसरे आप जैसे बड़े-बड़े व्यक्तियों को मैदान में वे मुखालफत करते देखते हैं।" साहित्य और साहित्यकारों के लिए यह कम दुर्भाग्य की बात नहीं है, क्योंकि इससे जनता और साहित्यकार के बीच का अन्तर बढ़ता है, जनता तरफदारी करने के कारण नेताओं को अपना और साहित्यिक को गैर समझती है। 'निराला' ने यहां फिर लिखा कि हिन्दी लिखने के लिए कलम हाथ में लेते ही इस बात का स्वतः "फैसला हो जायेगा कि बड़े से बड़ा प्रसिद्ध राजनीतिक एक जानकार साहित्यिक के मुकाबले कितने पानी में ठहरता है[2]।" सन् ३९ में जब जर्मनी ने पोलैण्ड पर आक्रमण किया, भारत की राजनीति का स्वरूप बदला। सरकार के युद्ध में भारतीयों के योगदान के निश्चय का प्रतिवाद कांग्रेस से भी बढ़कर जनता ने किया। गांधी जी सहायता के विरुद्ध तो थे, परन्तु विरोधात्मक कार्य या सत्याग्रह उनकी अहिंसा के विरुद्ध पड़ता था। इसके विपरीत नेहरू निष्क्रियता को निस्सार मानते थे। सन् १९३९ में कांग्रेस की नीति का खोखलापन स्पष्ट था, जिसमें परिवर्तन आवश्यक था। उस समय देश के नेता थके हुए थे[3]। उस समय देश का राष्ट्रीय जीवन अस्त व्यस्त था, और हिन्दू मुस्लिम और देशी राज्यों

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ३१

२- ,, पृ० ३२-३३

३- दि हिस्ट्री आफ इण्डिया

दो समस्याएं मुख्य थीं । आठ-चार वर्षों तक समझौते और विरोध की नीति का पल्ला लेकर जनता और सरकार का काम चला । सन् ४१ में स्थूल रूप से कांग्रेस के सामने हिंसा और अहिंसा की समस्या थी । जापान की विजय से सन् ४२ में क्रिप्स की जो बातचीत चली, वह व्यर्थ था, क्योंकि सरकार की नीति विभाजन की थी । जापान के भारत पर आक्रमण की भी संभावना थी । बापू ने यह सुझाया कि स्वाधीनता के लिए आन्दोलन शुरू करने का यही समय है । बापू के इस वक्तव्य के अनुकूल प्रतिक्रिया जनता पर हुई, पर उसका झुकाव क्रान्ति की ओर था । सन् १९४२ की राज्यक्रांति जनता का खुले और व्यापक संघर्ष की शुरुआत थी, जो तीन वर्षों तक चला । गांधी जी की गिरफ्तारी से संघर्ष का स्वरूप शान्तिमय न रहकर विस्फोटक हो गया और सन् ४३ के समाप्त होते-होते सारा देश ज्वालामुखी बन गया । इस आन्दोलन की दो विशेषताएं थीं अंडरग्राउन्ड की प्रवृत्ति तथा महिलाओं और छात्रों का सक्रिय सहयोग ।[1]

सुभाष बोस के नेतृत्व में राष्ट्रीय सेना भी स्वाधीनता के लिए क्रान्ति के मार्ग का अनुसरण करती प्रयत्न कर रही थी । उन्होंने एक अस्थायी सरकार भी बनायी, जिसे जर्मनी, इटली और जापान ने मान्यता दी । इसका पहला कार्य अमेरिका और इंगलैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा थी । ४४ के अन्त में जापान के निर्बल पड़ने से और ४५ में हिरोशिमा पर बम गिरने पर जापान को भागना पड़ा। अब तक अंग्रेजों का प्रयत्न भारत को पराधीन रखने का ही था ।

सन् ३९ के लगभग ही 'निराला' ने गंगाप्रसाद पाण्डेय से कहा था कि यहां के नेता गांधीवाद की संडास से बाहर सांस लेना ही नहीं चाहते । सुभाष बाबू ने स्वच्छ बात कही तो उन्हें जहन्नुम भेज दिया गया । यहां उन्होंने कम्युनिस्टों से कुछ आशा रखने के साथ यह भी कहा कि कम्युनिस्ट इसे 'जनयुद्ध' बताकर अप्रत्यक्ष रूप से रूस की और प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों की उल्टी सहायता कर रहे हैं ।[2]

वास्तव में 'कफन' और 'पूस की रात' से काफी आगे और पंत के अभिजात रूमानवाद से एकदम विरोधी दिशा में 'निराला' की प्रगतिशीलता

१- भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास, पृ० ३६५, ३६८

२- 'महाप्राण निराला', पृ० १६८

विकसित हो रहा था[1]। रूपाभ में निकले 'हिन्दुस्तानी भाषा' के उपन्यास 'चमेली'[2] में 'निराला' ने अपने बाप को भी न छोड़ने वाली पुलिस की नहीं, पर जमींदार और मजूरी करने वाले दुःखी रियाया की कथा का विषय बनाया है। गांव वालों की भीरु प्रवृत्ति और ठाकुर-जमींदारों के प्रभुत्व और जुल्म का वर्णन यहां 'निराला' ने किया है। गांव के समाज के एक मुखिया पंडा शिव[illegible] हैं, जिनका पेशा वकालत है। झूठी गवाही देना, झूठ तमस्सुक लिखना-लिखवाना, मुकदमा लड़ाना-लड़वाना, अधिक सूद पर रुपया कर्ज देकर ब्याज खाना रहा आते हैं। धर्म का एक रूप यह भी था जिसपर गांव वालों की दान भक्ति थी।

आचार्य वाजपेयी ने 'निराला' की इस समय की रचनाओं को 'कुरूप जीवन स्थिति' के चित्र कहा है, परन्तु ये रचनाएं प्रमाण हैं कि 'निराला' जीवन के यथार्थ से घबड़ाने वाले नहीं, उसे स्वीकार करने वाले कवि थे। यह भी उल्लेखनीय है कि 'निराला' की यह प्रवृत्ति 'कुकुरमुत्ता' में ही प्रमुख है, उसके आगे नहीं बढ़ी है।

गीतों में 'निराला' साधारण जीवन की सहज अभिव्यक्ति दे रहे थे। उन्होंने धूलि-धूसरों के वरण का और मरण से जीवन का वर मांगा है। अभिमान संशय के दूर होने 'वर्ण आश्रम गत महामय का उल्लेख किया है[3]। 'उद्बोधन' और [illegible] रचनाओं में ~~'निराला' में~~ 'निराला' ने प्राचीन उदात्त स्वर को साधा है और आज का मनोभाव और रूपरेखा ग्राम अथवा विश्व जीवन से साम्य मात्र रखना बताया है; यही एकमात्र सत्य है। कालिदास के आर्य धर्म से तथागत के निर्वाण तक के इतिहास पर दृष्टि डालकर उन्होंने मुसलमानों के काल में वर्ण धर्म का बाँध टूटने और [illegible] की निरन्तर बढ़ती शक्ति के कारण प्रकृति द्वारा प्राथमिक अधिकार की पूर्ति का उल्लेख किया है[4]।

१- 'निराला की साहित्य साधना', पृ० ३५२

२- रूपाभ, फरवरी ३६, पृ० १६-२६

३- ,, ,, ,, पृ० २३-२७

४- अणिमा, पृ० १२

५- ,, पृ० ४३

६- ,, पृ० ३५

'मास्को डायलॉग्ज़'[1] में 'निराला' ने एक सोशलिस्ट नेता गिडवानी पर व्यंग्य किया है। सुभाषचन्द्र से अपनी मुलाकात, बड़े भाई का साला बनवाने, समाज के बड़े आदमियों को मुर्ख करकर उनको फंसाने की बात वे करते हैं और अपना नया उपन्यास दिखाते हैं, जो प्रभाव और धन वृद्धि के लिए लिखा गया है।

हिन्दुस्तानी जबान में 'निराला' ने 'आधुनिक ढंग की हास्य प्रधान रचना 'कुकुरमुत्ता' लिखी, जिसे वे अपनी 'तुलसीदास' रचना की कोटि की समझते थे[2]। उनकी दृष्टि में जीवन का यथार्थ लिए वह मात्र भाषा-विचार सभी दृष्टियों से आज की सबसे सुन्दर कविता थी। 'हंस' के मई ४१ के अंक में जब इस रचना का शुरू वाला हिस्सा छपा, 'निराला' ने फुटनोट में यह लिखकर कि 'जानकारी के उद्धरण आगे और मुस्कराकर सलाम करते हैं समझ को, समाज को, कृष्ण को। फिर कविता कहानी बन जाती है[3]। यह स्पष्ट कर दिया था कि 'अपनी सभी अतिशयोक्तियों और विचित्रताओं के बावजूद वे सब पर हंस रहे थे, वेदान्त पर, समाजवाद पर, कांग्रेसी नेताओं पर, छायावाद पर, अपनी समस्त पुरानी मान्यताओं पर[4]।' पर इस कठोर अट्टहास के पीछे अवश्य कोई कारुण कथा छिपी है[5]।

गंदे में स्वतः उगा, पहाड़ी से सिर उठा ऐंठकर बोलने वाला कुकुरमुत्ता स्वयं भी व्यंग्य के दायरे से बाहर नहीं है। यद्यपि जन्मना उसका सफेदी को रोता है, कलम हाथ में लेते ही जोश को न रोकने वाले प्रोग्रेसिव भी उससे रस लेते हैं, फिर भी यह लगता है कि लेखकों में लंठ जैसे खुशनसीब वह है। मालिन की लड़की गोली की तरह वह कान बिना पकड़े ऐंठना जानता है। 'निराला'

१- कुकुरमुत्ता, पृ०४५
२- सम्मेलन पत्रिका, श्रद्धांजलि अंक, पृ०३६५, २६-६-४१को कुंवर सुरेशसिंह को लिखा पत्र।
३- महाप्राण निराला, पृ० २५१
४- हंस मई ४१, पृ०७६४
५- निराला की साहित्य साधना, पृ० ३८१-- डा० शर्मा
६- साहित्य धारा, पृ०९६ -- प्रकाशचन्द्र गुप्त

ने गोली को डिक्टेटर, बहार को उसका मुसाहिब फालोअर, दुम हिलाते टेरियर को आधुनिक पोएट और कानी बांदी को बहन की सौतन कैपिटलिस्ट वाइफ बनाया है। अन्त में सब के साथ कुकुरमुत्ता की नवाब की इच्छा, माली के कुकुरमुत्ता खत्म होने और उगाए न जाने की सूचना तथा नवाब के गुस्से के कांपने का उल्लेख 'निराला' ने किया है। इस पुस्तक की 'जियाफ़त' में ही उन्होंने लिखा था --"न हम पैरों पड़े, न वह, मिहनत की कमाई हम भी खायें और वह भी।"

अगस्त ४१ के 'हंस'[1] में प्रकाशित 'खजोहरा' में 'निराला' ने काले बादलों को 'हाईकोर्ट के वकील मतवाले' कहा है, जो सूखे धान देखकर नहीं तरसते, पर जहाँ जरूरत नहीं, वहाँ कहकहा लगाकर टूट पड़ते हैं। इसी प्रकार 'स्फटिक शिला'[2] में भी 'निराला' ने जमींदार की हवेली के पास से गाड़ी के बढ़ाने और बखरे के पास की खटिया से गाली देती एक काली नारी को निकलते चित्रित किया है, जिसका समाज से मन मैला है, राम जी के राज से वह चोट खाई हुई है, जिनसे शूद्रों को कुछ नहीं मिला, यह 'निराला' ने देखा था। इसी प्रकार 'खेल'[3] रचना में जेठ की दुपहर में एक लड़का तोलता दिल कि बढ़कर पकरिये पर बोलता है और समझाता है कि यह भूत है, जमदूत है, जो बिना घर का उसे गर घर न दो।' 'नए पत्ते' में भूत और जमदूत शब्द समाज के लिए आए हैं, जिनसे यह 'अब हमारा घर भी दे डालो' कहता है[4]।

सन् ४१ में लिखे 'बिल्लेसुर बकरिहा' में 'निराला' ने ग्रामीण किसान की अपराजेय शक्ति को मूर्तिमान किया है। 'अलका' में बकरियों का कारबार करने वाले जिन दीन ब्राह्मणों का उल्लेख आया है, उन्हीं की जीवन-कथा यहाँ 'निराला' ने कही है। 'सविनय कानून भंग' करते हुए बिना टिकट

१- हंस, अगस्त'४१ पृ०११०६
२- नए पत्ते, पृ० ४१-४२
३- कुकुरमुत्ता, पृ० ६४
४- नए पत्ते, पृ० ३६

वर्तमान पहुँचने वाले बिल्लेसुर प्रगतिशील हैं, उनकी कूर्निश करने की पुरानी आदत थी और जिन्होंने कभी अपना कुछ न छोड़ा था, जैसे तैराक हो।' चुपचाप ज़िन्दगी की किताब पढ़ते बिल्लेसुर किसी भी वैज्ञानिक से बढ़कर नास्तिक थे[1]।

सत्तीदीन की स्त्री जब यथार्थवादी लेखक की तरह मनुष्य शक्ति की पक्षपातिनी बनती है और बिल्लेसुर जमींदार की गुलामी बेहतर सोच गांव आ जाते हैं उस समय 'दुश्मनों के गढ़ में रहते' बिल्लेसुर भी 'कुत्तों' की तरह ही सोचते थे, क्योंकि एक दूसरे के लिए मनुष्य खड़ा नहीं होता' पर अन्तर कुछ नहीं मिलता है। 'निराला' लिखते हैं -- 'हमारे सुकरात के ज़बान न थी, पर इनकी फिलासफी लचर न थी; सिर्फ कोई इनकी सुनता न था; इसी भी भूलभुलैया से बाहर निकलने की बात नहीं दिखी, इसलिए यह भटकता रहा[2]।' आदमी के इन्साफ और मदद का प्रत्यक्ष परिचय उन्हें विधवा को मार डालने के प्रसंग में मिलता है, जब भगवान की शक्ति पर विश्वास खोकर अपनी शक्ति का भरोसा रखकर ज़िन्दगी की लड़ाई लड़ते हैं। चतुरी के विपरीत बिल्लेसुर हैं, जो 'दुःख का मुंह देखते-देखते उसकी डरावनी सूरतको बार-बार चुनौती दे चुके थे। कभी हार नहीं खाई[3]।' शकरकंद और चना-मटर बोकर बकरे का घाटा पूरा करते हैं, ब्याह के प्रसंग में त्रिलोचन का कुछ पता लगाते हैं। जमींदार का उनके घर आने का मतलब लोग यह लगाते हैं कि उनके हाथ कारूं का खजाना लगा है। ऐसी बातचीत जितनी बढ़ती है बिल्लेसुर के सामने लोगों की आंख उतनी ही झुकती गयी। अपने धनी होने का राज़ बिल्लेसुर तुरन्त ही नहीं खुलने देते - कथा के अन्त में लेखक की सूचना है। 'प्रगतिशील साहित्य के इस नमूने' के अन्त को लेखक ने समाप्त होकर भी 'लटकता हुआ' कहा है, जिससे पाठक को एक धक्का-सा लगता है। पर दिल को ताकत पहुंचती है, बढ़कर ही विवेचन की[4]।' 'निराला' की यह रचना प्रमाण है कि उनकी यथार्थवादी दृष्टि गांव को छलकपट भी देखती है, वह विद्रोही है, अतः रामराज का स्वप्न नहीं देखती।

१- बिल्लेसुर बकरिहा, पृ०१७

२- ,, पृ०४३

३- ,, पृ० ५१

४- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ११ फरवरी ६२, 'निराला स्मृति अंक' --कांति वर्मा के लेख से उद्धृत पुस्तक के द्वितीय संस्करण में भी भूमिका है।

'नए पत्ते' की रचनाएं एक हद तक कुकुरमुत्ता की परम्परा में ही आती है। यहां कवि के विद्रोह की रेखाएं नए रूप में विकसित हैं। देश के निश्चल और दिशाहीन जीवन, उसके अवसाद और विवशता को यथार्थ रूप में प्रकट करते हुए 'निराला' ने अपनी स्वैमेधिता और स्वैउपहासिता परन्तु विद्रोही दृष्टि का परिचय दिया है। राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास और परिणति को लक्ष्य कर उसपर मानो टिप्पणी करते हुए 'निराला' ने 'आंख आंख का कांटा हो गई'[1] लिखा। तारे गिनते रहे भी इसी प्रकार की दूसरी टिप्पणी है जहां बांस के नीचे पड़ी जनता कलतीह हुई।' माल के दलाल ये वैश्य देश के हो गये हैं लहरों से बदल कर जो बानिज की राह ली देते हैं।[2] यहां नेहरू की तरह ही 'निराला' भी देश के आर्थिक संकट का कारण पश्चिम पर आधारित नेताओं की स्वार्थपूर्ण आर्थिक नीति को मानते हैं। अगली रचना में भी दुनिया के चोली बदलने, उसके धोखा, छल, मतलब गए की आंख फेरने और 'थोड़ों के पेट में बहुत को आना पड़ा' ऐसी माया जाल का और उसी रामराज का उल्लेख 'निराला' ने किया है, जहां--

'बानिज के राज ने लक्ष्मी को हर लिया।
टापू में ले चलकर रखा और कैद किया।।'[3]

राज की रखवाली में भी उसकी जनता पर चली समाज की जादू ही काम करता है, जहां धोखे से भरा धर्म का बढ़ावा रहता है और धर्म-सभ्यता के नाम पर लोहा बजने पर जनता ही उसमें हथकियां लेती है।[4] इसी प्रकार की रचनाएं 'खुशखबरी' और दगा की भी है।[5]

'मलमाला' में ऐसे काले और गोरों का उल्लेख कर 'निराला' ने राजनीतिक संकेत दिए थे, देश के स्वाधीनता आन्दोलन में भी मस्त

१- नए पत्ते, पृ० २० , १४ फरवरी ४६ के देशदूत में 'कांटा' शीर्षक से प्रकाशित १४ पंक्तियों के नीचे नोट 'कांटा' नामका अप्रकाशित वृहत्काव्य पुस्तक से' नए पत्ते में केवल पांच पंक्तियां ही मिलती है।

२---,,---पृ०-३२-३४

पृ०

२- नए पत्ते, पृ० ३३-३४

३- ,, पृ० २२-२३

४- ,, पृ० २४

५- ,, पृ० २६,२८

वर्ग। शब्दावली नेताओं और संघर्ष करती जनता के लिए भी प्रयुक्त है[१]। जो जीवन में संग्राम करते हुए चले हैं, वह अमर होकर भी मरते हुए चलते हैं, यह विधान कवि की समझ के परे है। पर वे जो जीते हुए भी लोग से हारते हुए चलते हैं, उन्हें शाप मिला है कि ये बड़े आदमी कहलाते हुए कांपते डरते हुए चले।" उनकी प्रतीक देते हुए हैं। "निराला" ने अपनी समाजवादी कल्पना को मूर्त करने के लिए लिखा--"बड़े हाथ रोको, न लूटो रोटी के कारण[२]।"

सहस्राब्दि की तरह "चर्खा चला" रचना भारत के ऐतिहासिक विकास पर कवि का दृष्टिपात है। वेदों का चर्खा चलने पर जाति का चार भागों में बंटना यही रामराज है। वाल्मीकि, कृष्ण और बलराम का धरती की लड़की सीता और उसके गीत, गोवर्धन पूजा और पशुओं को दिए मान तथा हल का हथियार और हरी-भरी खेती का उल्लेख कर कवि का निष्कर्ष है --"यहाँ तक पहुँचते अभी दुनिया को देर है।"

ग्रामीण कृषकों की संस्कारगत कमजोरी की अपेक्षा यहाँ हम उनका व्यापक और सक्रिय संघर्ष पाते हैं। कंधे पर लट्ठ डाले जमींदार का सिपाही डिप्टी साहब के चंदा लगाने की खबर द लेकर जब जाता है, करुणा से बंधु बेसिहर को देखकर कुंए का झाँकना,[३] देवों के सदृश समाज पर कटु व्यंग्य का ही एक रूप है। छलांग मारता चला गया" उसी प्रकार की दूसरी रचना है। जहाँ किसान अधिकार के लिए आगे बढ़ता है, जमींदार के सिपाही अपनी लाठी का लोहा बंधा मूला पेड़ के तने पर रखकर डट-डटकर देखता है-- और "किसान" आदमी जैसे कमान बन जाता है। उसके सामाजिक और राजनीतिक सहारे टूट जाते हैं, लोग धर्म-कर्म-जाल पर खेलते हैं[४]। जागृति की चेतना के साथ "निराला" ने जनता की, ग्रामवासियों

१- बेला, पृ० ८० आया मज़ा कि लाखों आँखों से दम घुटा है,
पटली है बैठने को, गोरे भी सांकले से ।

२- बेला, पृ० ६४, ६५ ।

३- नए पत्ते, पृ० ५४-५५

४- ,, पृ० ८५

भेद कुल खुल जाए वह सूरत हमारे दिल में है ।
देश को मिल जाए जो पूंजी तुम्हारी मिल में है ।"[1]

समाज के सिर उठाने से राज बदलने का रहस्य बताते हुए ही "निराला" ने बेला में लिखा --

"खुला भेद, विजयी कहाए हुए जे,
लहू दूसरे का पिये जा रहे हैं ।"[2]

सहज चाल वह उधर चलने को कहते हैं, जहाँ छिपा हुआ उधर जाय और चांदी की हँसी हँसने वाले अपने आप फंस जाये । "कांटे से कांटा कढ़ाओ" की नीति उन्होंने जनता के जातीय देश के लिए ही अपनायी, जिससे अमीरों की हवेली किसानों की पाठशाला-- और देश की सम्पत्ति बनेगी[3]। समाजवाद की सार्थक कल्पना "निराला" बेला की इस रचना में करते हैं । सामाजिक अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाकर "निराला" ने अपमान को मान और अभिशाप को वरदान बनाकर अपने गर्व और शक्ति का परिचय दिया है । वे स्वयं अपने को इस युग का प्रहलाद कहते हैं । इ सोलों में शासन का भौतिक बल राई-नोन उतारकर जला देने और खुलकर विद्रोह करने की बात भी उन्होंने कही है[4]।

बंगाल के दुर्भिक्ष के समय जब महादेवी जी ने पीड़ित बंगाल के सहायतार्थ "बंग दर्शन " निकाला, "अपनी बात" कहते हुए उन्होंने लिखा था -- हमारा मन्त्रिमण्डल भी जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व न कर सका, अन्यथा स्थिति के इस सीमा तक पहुंचने में अवश्य ही बाधा पड़ती[5] ।" पृष्ठ पांच पर "निराला" की रचना "पांचक" प्रकाशित हुई । यहाँ "निराला" ने लिखा था --

"आदमी हमारा तभी तरा है,
दूसरे के हाथ जब उतरा है ।"

१- नए पत्ते, पृ० ६७

२- बेला, पृ० ६०

३- ,, पृ० ७०,८०,८२

४- महाप्राण निराला ,पृ० २४६ -- गंगाप्रसाद पाण्डेय

५- बंगदर्शन, १९४३-४४, पृ० ४

'मंहगू महगा रहा' में 'निराला' ने नकली नेताओं का चित्र खींचा है। मनबोधा के लक्षापति कुमार और उनका साम्यवाद यहाँ भी दर्शनीय है। पंडित जी एक बड़े भारी नेता हैं, जो गांव में मोटर पर व्याख्यान देने आते हैं, बड़े बाप के बेटे हैं, 'बीसियों पर्तों के अन्दर खुले हुए।' यह एक एक पर्त बड़े बड़े विलायती लोगों की है। जमींदार, मिलों के मुनाफा खाने वाले उनके अभिन्न मित्र हैं, किसानों और मजदूरों के भी वे सगे हैं और समझौते की नीति के समर्थक हैं। उनकी आंख पर वही पानी और स्वर पर संवारक्स का है। गांव के किसानों और कुलियों को जमींदार का वाहन और शहर वालों की कोठियों के नौकर और महाजनों का दबैल 'निराला' ने कहा है। ऐसे लोगों में पंडित जी भाषण देने आते हैं। गांव में पुस और जमींदार के डंडों से बचने के लिए लोगों का अपनाया एक रास्ता सभाओं में जाना भी है। पंडित जी व कांग्रेस के चुनाव पर बोलते हुए आजादी में एक साल और है, यह बताते हैं। जेल हो आने वाले कांग्रेस के उम्मीदवार जमींदार भी बोलते हैं, और सभा विसर्जित होती है। नेताओं की सच्चाई के सम्बन्ध में मंहगू से लकुआ के पूछने पर मंहगू उसे कांग्रेस की पोल,वास्तविकता समझाता है। नेताओं की स्वार्थपरता का उल्लेख कर वह बताता है कि जब ये नेता त्याग के लिए कभी कमर बांधेंगे, तब हमारे वास्तविक हितैषी सामने आएंगे, जिनके नाम कभी अखबार में भी नहीं छपते, क्योंकि अखबार भी व्यापारियों की ही सम्पत्ति है। नेताओं की संकुचित प्रवृत्ति ही उसकी प्रतिज्ञा में कभी न बदलूंगा, इतना मंहगा दूंगा।' का प्रमुख कारण है। सन् ३० के ही 'निराला' के लेख प्रमाण हैं कि नेताओं की इस वास्तविकता को उन्होंने तभी समझ लिया था।[1]

राष्ट्रीय आन्दोलन में जवाहरलाल के नेतृत्व की लक्ष्य कर 'निराला' ने एक कजरी लिखी थी।[2] जवाहरलाल पर 'निराला' एक कविता सम्

१- नए पत्ते, पृ० ६९

२- बेला, पृ० ४६ काले काले बादल छाए,
न आए वीर जवाहरलाल।

४३ में ही लिख चुके थे, जिसमें किशोर काल देश के चक्र से पण्डित जी से वक्र गति आ मिलने का उल्लेख है, जब कवि उन्हें गीता की आवृत्ति का सुनाता है। निराला के कविता के अन्त में लिखा--

"मैं हूं कवि आज,
धन्य नेता है जवाहरलाल।"[1]

सन् ४६ के क्रान्तिकारी आन्दोलन में विद्यार्थियों की बहादुरी पर "होली"[2] लिखकर "निराला" ने उनके देश प्रेम का सम्मान किया है, उन्हें देश के सुख और शान्ति का वास्तविक प्रतीक माना है।

वास्तव में सन् ४५ में इंगलैण्ड के राजनीतिक क्षेत्र में भारी परिवर्तन उस समय आया जब साम्राज्यवादी चर्चिल की हार हुई। मजदूर दल की विजय से भारत के प्रति इंगलैण्ड की नीति भी बदली। एटली ने मार्च में भारत की पूर्ण स्वाधीनता मिलने की ओर संकेत किया। परन्तु जो सदस्य राजनीतिक स्वाधीनता की योजना बनाए आए थे, उनका प्रयास निष्फल रहा। इसपर कैबिनट ने जो योजना अपनी ओर से घोषित की, उसका स्वागत अवश्य हुआ, परन्तु मुस्लिम लीग और कांग्रेस में समझौते न होने पर अपनी ओर से १४ सदस्य चुनने की घोषणा वैवल ने की। श्री नेहरू आदि ने कार्यकारिणी के सदस्य की हैसियत से शपथ ली। इसी बीच सन् ४७ में एटली ने घोषणा की कि जून ४८ से पहले ही अंग्रेज भारत छोड़ देंगे। इस धारणा से हलचल हुई। वाइसराय कीकार्यकारिणी में वित्त और प्रसार विभाग का पद मुसलमानों को मिला था, अतः कठिनाई सामने आई। सन् ४७ में एटली ने पंजाब और बंगाल के विभाजन के साथ स्वाधीनता मिलने की घोषणा की, सहमत न होकर भी लीग और कांग्रेस इस निर्णय को स्वीकार करने के लिए बाध्य थे।

स्वदेशी आन्दोलन के सम्बन्ध में "निराला" की पकड़ "चोटी की पकड़" थी। बीसवीं सदी के प्रारम्भिक काल में भारत का चित्रांकन करते

१- देशदूत, २१ नवम्बर ४३, पृ० ० ३

२- बेला, पृ० ४७

की विवशता को भी आंका है, प्रगति को अवरुद्ध करने वाले तत्वों का उल्लेख किया है "अलका" में तो बुधुआ को स्वराज का अर्थ नहीं मालूम था, यहां गांधीवादी कांग्रेसमैन जब गांधीवाद समझाता है, जमींदार के गोड़इत के दोनाली से गोली चलाने भीड़ के भागने पर कांस्टेबल के ललकारने पर भी झींगुर डटकर यह पेंच समझाता है कि किसान सभा होने के कारण जमींदार गोली चलवाता है[1]। "डिप्टी साहब आए" कविता में भी गोड़इत से बचलू अहीर को खबर मिलने पर वह उसे धमकार, डरकर देखता है। बीसक सेर दूध की मांग सुनकर वह गोड़इत को सुनाकर डिप्टी साहब के आगमन का कारण जानने की बात कहता है। उसके गोड़इत से तुम भी कुछ कहोगे ? पूछने पर वह पैर रोपकर अपने को मालिक का सच्चा सेवक कहता है। जमकर बचलू भी उस बदमाश को देखता है और क्रोध में भरकर तानकर नाक पर घूंसा मारता है। सभी साथी उसे मिलकर मारते हैं और सत्य कहने के लिए तुल जाते हैं। थानेदार के सिपाही दाम देकर माल ले जाते हैं और सारा गांव लक्षिमन के भाग का सच्ची गवाही देता है[2] अलका के किसानों से भिन्न ये किसान विद्रोह की शक्ति से युक्त हैं।

देश की जनता के सामने "निराला" ने प्रगति-पथ प्रशस्त का आदर्श रखा है। सच्चा इतिहास, दिशा-भ्रम बदलने से ही बनेगा, इसीलिए वे धनी के ज्ञान होने को धनी का धाम त्यागने की बात करते हैं। उन्होंने लिखा--

"सेठ होने को किसी की गठरियां लेकर न चल,
नाम है अपमान के मनुजाय तू जब तक न कर।

मिल मालिकों और व्यापारियों को लक्ष्यकर वे कहते हैं --"भूल सुलझा मत विदेशी देश के खातिर जमा।"[3] पूंजीपतियों की स्वार्थपरता, जनता की दृष्टि की ओट में नहीं है। वह जानती है --

---

१- नए पत्ते, पृ० ५६-५७

२- [illegible] पृ० [illegible] ८७

३- बेला, पृ० ६५, ६८

हुए "निराला" ने बताया है कि लार्ड कर्जन का बंग भंग, जमींदारों को उनके चिरस्थायी स्वत्व के अधिकार से वंचना की रूप्य समझा चुका था। स्वदेशी आन्दोलन में जमींदारों की सक्रियता उनके स्वार्थ को धक्का लगने के कारण थी और उन्होंने साथ की पीठ बचाकर किया था। सामने आग में कूद जाने के लिए युवक समाज था। प्रेरणा देने वाले थे राजनैतिक वकील और बैरिस्टर।" "निराला" की यथार्थवादी आलोचक दृष्टि ने देख लिया था कि "स्वत्व के स्वार्थ में धार्मिक भावना ने ही जनता का रुख घेरा है।" स्वदेशी आन्दोलन का आधार भी स्वत्व ही था, जिससे जमींदारों के आश्रित किसानों को फायदा नहीं था। शूद्रों को भी उससे सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिली थी। उसका कारण बताते हुए "निराला" लिखते हैं --

"मुख्य बात यह है कि परिस्थितियों की अनुकूलता के बिना उचित राष्ट्रीय संगठन नहीं हो सकता। हिंसात्मक जो भावना स्वतन्त्रता की कुंजी के रूप से प्रचारित हुई, वह संगठनात्मक राष्ट्रीय महत्व कम रखती थी। गांधी जी का असहयोग उसी की प्रतिक्रिया है पर उसकी एकता की जड़ें और गहरी पहुँची थीं।"[1] क्रांति,संघर्ष और समाजवाद यही एक रास्ता "निराला" को दीख रहा था, यह कवि ने स्वयं स्वीकार किया है[2]। उनका विचार था कि राजनीतिक दुरवस्थाओं की स्वस्थ प्रतिक्रिया विद्रोह को प्रेरित करना है[3]।

हिन्दू और मुसलमानों की प्रवृत्तियों पर भी "निराला" ने यहाँ प्रकाश डाला है। राजा राजेन्द्रप्रताप सिंह का मुसलमान कौचमैन अली हिन्दुओं को गुलाम से बढ़कर नहीं समझता है। मुसलमानों की हार का कारण वह हिन्दुओं की बेइमानी समझता है। "सरकार का साथ देने से मूर्खों मरने वाले मूर्खों नहीं मरेंगे" -- सिद्धान्त अपनाकर वह चुपचाप काम करने वाला है। सरकार ने

१- चोटी की पकड़,पृ० १२-१३

२- निराला की साहित्य साधना,पृ० ४२२

३- महाप्राण निराला , पृ० ३३१

भारत का विभाजन मुसलमानों के फायदे के लिए किया है, वह यह मानता है[1]। उसके दूसरा और रजाक़ गानेवाला है, जो अंग्रेजी जानता है, संवाद-पत्र पढ़ता है, दूर निष्कर्ष तक आसानी से पहुँच जाता है, संपादक की टिप्पणी पर टिप्पणी लगा सकता है[2]।" उनके सर्वथा विपरीत बलशंकर, हिन्दुओं की धर्मान्धता का प्रतीक है, जो जाति पर मरने वाले हैं।

राज्य की क्रिया के ढंग, उसके नारकीय नाटक, षड्यन्त्र और अत्याचार के सम्बन्ध में 'निराला' ने बताया है कि " अत्याचार से बचने की पुकार ही अत्याचार को न्यौता भेजता है।" जमींदार की कृपा अकारण न होकर 'मुनाफे' की निगाह से होती है, साधारण उत्पात या प्रतिकार पर किया उसका कोप भी असाधारण परिणाम वाला होता है, राज्य में उसके प्रायः दुश्चरित्र, लोभी, निकम्मे और दगाबाज़ लोगों का जाल फैला रहता है, और पुलिस भी उनके साथ रहती है[3]।

रईसों की विवशता का प्रतीक दिलावर सिंह है। वह जानता है कि लुभाने वाली जितनी चीजें हैं, सभी खून से रंगी हुई हैं, राजसी ठाठ के धनिकों का" असली सूरत कुछ और है। यह स्वर्ग दिखता हुआ दृश्य नरक है। ये राजे-महाराजे राक्षस। ये देवी देवता पत्थर के, काठ के, मिट्टी के[4]।"

स्वदेशी का सक्रिय कार्य-कर्ता प्रभाकर है, जिसने सूत, चरखा, करघा, कपड़े और ग्रामीण वस्तुओं के प्रचलन का बीड़ा उठाया है। उसका विचार है कि स्वदेशी में आज के धनिक और श्रमिक जैसी समस्या नहीं है, परन्तु आन्दोलन को असफल बनाने के लिए यह समस्या लगायी गयी था। रूस के जन-आन्दोलन की खबरों से वह परिचित था और जानता था कि जमींदार और मुसलमान स्वदेशी के तरफदार है। 'निराला' ने स्थिति स्पष्ट कर लिखा है "

१- चोटी की पकड़, पृ०१६-१७, २८
२- ,, पृ० ३७
३- ,, पृ० ४६,४६
४- ,, पृ० ५७-५८

'देश-प्रेम हुआ था । रोशनी परिश्रम का आनिज ।" परन्तु प्रभाकर विवेकानन्द का
काम करने वाला प्रभाकर राजनीति में इसी का प्रतीक
त्यागी से प्रभावित था, आदर्श समझकर था ।"[1] अर्थ-शास्त्र का विवेचन करते हुए
भी वह रानी साहबा को समझाता है : "राज्य और राजस्व बिगड़ा हुआ है ।
यह प्रकार कभी हमारा उत्थान नहीं हो सकता । जाति की नसों में राजनीतिक
खून दौड़ाकर एक राजनीतिक जातीयता लाने में कितना श्रम चाहिए, इसका आप
अनुमान लगा सकती हैं -- मैं आपका ऐसा ही सेवक हूं ।"[2] 'नए पत्ते' में जो सूत्र
'निराला' ने दिए हैं, उन्हीं की मानो व्याख्या करते हुए वह मुन्नी बांदी को भी
समझाता है कि जमींदार की जमींदारी उसी के पास रहने में फायदा नहीं है, पर
फायदा अपने आदमियों के साथ रहने में है । दूसरे बहका सकते हैं परन्तु 'बाजी हाथ
में आने पर, हम सूद जाने की सूरत निकाल लेंगे ।"[3]

जमींदार को बंधा जाता है, जो जमींदार है जड़ समेत
उखाड़कर फेंक दिए जाने की धमकी सुन चुका है, प्रभाकर कहता है कि मिलों का
मुकाबला एक मुश्किल काम है, क्योंकि मिल वाले जमींदारों की तरह इस आन्दोलन
में शरीक नहीं हैं और सरकार की उनकी तरफदारी प्राप्त है । ये लोग बलात है-
जो विघ्न डालने वाले हैं--'देश के गधों से ईश्वर ही पार लगा सकता है'[4]।

राष्ट्रीय आन्दोलन के सम्बन्ध में 'निराला' की विचार-
धारा का यह अति विशद विवेचन है, उसमें सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक आदि
सभी पहलुओं पर उन्होंने दृष्टि डाली है । स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन की
आवश्यकता समझ समर्थन उन्होंने किया है, परन्तु उसकी सीमाओं और दुर्बलताओं
का भी उन्हें ज्ञान था । स्वदेशी आन्दोलन की आदर्श समाजवादी कल्पना उनके
मानस में कैसी थी, यह प्रभाकर के विचारों में मूर्त हुई है, वेदान्त का आधार जहाँ
उसने ग्रहण किया है ।

१- चोटी की पकड़, पृ० १३१-१३२
२- ,, पृ० १५१
३- ,, पृ० १४६-१५०
४- ,, पृ० १६६

सन् ४६ के बाद 'निराला' की रचनाओं का संग्रह 'अर्चना' सन् ५० में निकला। इस लम्बे अन्तराल का कारण पूछने पर गंगाप्रसाद पाण्डेय से उन्होंने कहा था कि आज जागरण के गीत गाना राष्ट्रद्रोह समझा जाता है और उनके पीछे पुलिस लगी रहती है[1]। कांग्रेस का कच्चा चिट्ठा कंठस्थ किए 'निराला' की अन्यमनस्कता आश्चर्यजनक नहीं थी। स्वराज के बाद भी जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रमुखता नहीं मिली, 'निराला' निराश हुए थे। स्नेही जी जब उनसे मिलने गए थे, 'निराला' ने उनसे कहा : " देखो, मरना चाहता हूं और लोग मुझे मरने भी नहीं देते। मैं किसके लिए जीऊं ? आज भाषा और साहित्य राजनीति के अस्त्र-शस्त्र बन गए हैं और हिन्दी की जो दुर्दशा हो रही है, उसे मैं अब और नहीं देख सकता। अंग्रेजी ही आज सर्वप्रिय भाषा बन गई है--जनता समझे या न समझे[2]।"

'चोटी की पकड़' के दिलावर सिंह के सदृश ही 'निराला' ने कलामंदिर में आकर भारत और विलायत का अन्तर बताते हुए कहा था। सत्संग में जहां पहले वे रहते थे, वहां आलीशान कोठी, पंखा, बिजली, मोटर सब थी, वही विलायत है, और दारागंज में अब जहां वे रहते हैं, वहां का मामूली मकान, सोने का तख्त, ताड़ का पंखा और लालटेन, यही भारत है[3]।

'अर्चना' के गीत 'समन्वय' वाली भूमिका का स्पर्श करते हैं, परन्तु कवि की यथार्थवादी दृष्टि यहां भी खुली हुई है, कदाचित् इसीलिए 'अर्चना' के रहस्यवाद के यथार्थवाद की पीठ से दिखते डा० नामवर सिंह कहते हैं[4]। संसार यहां काम के उसी जाल से आच्छन्न उन्हें दिखता है, जिससे दिलावर सिंह मुक्ति चाहता था। यहां उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि लोग यहां जन को खाकर जाते हैं[5]। अनिवार बढ़ता अंधकार यहां भी 'निराला' देखते हैं[6], सत्य की और हमारी

१- महाप्राण निराला, पृ० ३३१
२- वे दिन वे लोग, पृ०८१
३- निराला का निरालापन, पृ०६५ -- उमाशंकर सिंह
४- इतिहास और आलोचना, पृ० १०५
५- अर्चना, पृ० २३
६- ,, पृ० ५६-५७

ध्यान आकृष्ट कर उन्होंने लिखा --

'भूख प्यास सत्य,
होंठ सूख रहे हैं और ।'

वास्तविक स्थिति यह है 'सत्य में झूठ' खुदरा भरा संसार[1] ।' 'बेला' और 'नए पत्ते' की जनता ही उन्हें अब भी दीख रही थी, जो स्वतन्त्र होकर अभी तक परतन्त्र है। यहाँ वे लिखते हैं --'चोट खाकर राह चलते होश के भी होश छूटे ।' 'निराला' ने काल को आते देखा, संसार के हार कर उसे ज़हर से मरते देखा है, जहाँ लोगों का सही परिचय नहीं मिलता है । मन को ठगने और धन को लूटने की वही नीति उन्हें अब भी दिख रही थी जो सन् ४६ में 'बेला' और 'नए पत्ते' लिखते समय उन्होंने देखा था[2] । अभी भी उनकी एक ही टेक थी --

'पथ पर बेमौत न मर,
श्रम कर, तू विश्रम कर[3] ।'

पुन: पुराना स्वर साधकर उन्होंने स्वार्थी समर के विजेताओं को लक्ष्य कर माँ से नर को नरक त्रास से वारने की प्रार्थना की है । 'बनबेला' और 'नर्गिस' को याद कर अब भी उन्होंने 'स्वर्ग धरा के कर तुम धारो ।' लिखा है[4] ।

ज्वाला पाकर दु:ख के झुलस जाने, जेठ में सावन होने वाले पावन मन की अभिव्यक्ति होने पर भी 'आराधना' समाज और व्यक्ति की वास्तविकता से असंपृक्त नहीं है -- पतझड़ के वन-उपवन से समान जीवन की दुखती रग का भी कवि ने स्पर्श किया है । तभी उन्होंने 'शुद्ध सत्व से क्षीण-क्षीण यह काष्ठा से रहित शरीर भरो है[5] ।' लिखा है ।

सन् ४६ में लिये हुए के उधरने के कथन के सदृश सन् ५२ में भी उन्होंने लिखा --

----

१- अर्चना, पृ० २४, ६१

२- ,, पृ० ७५-७६

३- ,, पृ० १०८

४- ,, पृ० ११८, १२४

५- आराधना, पृ० २, १०, २२, २४

खेल के खेल के पैमाने क्या ?

आर केमाने माने क्या ?

\+ \+

पूरा कब है जब छा बटा

रुपया न रहा तो आने क्या ?'[1]

मंहगू की तरह ही वे यहाँ भी समझाते हैं कि अब भी उठने वाले ही कुछ और हैं और ऐसे वैसे ही सिरमौर हैं[2]। एक अन्य गीत में भी उन्होंने बताया है कि उर की भावना बंद होने पर ऊपर की आशा व्यर्थ है, सीधी राह चलने और अपने जीवन पालने की कामना इसीलिए उनकी है। 'भग्नतन, रुग्ण मन, जीवन विषण्ण वन' गीत भी आज की यथार्थ स्थिति की अभिव्यक्ति है। सत्य, कल्पना हो रहा है, इसके लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं है[3]। वे स्पष्ट देख रहे थे --

'ऊँट-बैल का साथ हुआ है,

कुत्ता पकड़े हुए जुआ है

यह संसार सभी बदला है,

फिर भी नीर वही गदला है[4]।'

स्वतन्त्रता के बाद देश की गतिविधि पर 'निराला' की टिप्पणी यह थी कि 'मानव जहाँ बैल और घोड़ा है।' वहाँ निज आधुनिक की दृष्टि में 'अन्य भाव का यह जोड़ा है[5]।' गांव में रामराज की, सुराज की कल्पना[6] को पूर्ण कर उन्होंने लिखा 'बान छूटता है दूसरी लेकर, कुल का राज छूटता है[7]।'

'आराधना' की परम्परा का ही विकास 'गीतगुंज' में भी हुआ है। जीवन में आनन्द की कामना के साथ यहाँ भी उन्होंने लिखा है--

---

१- आराधना, पृ०३०

२- ,, पृ० ३२

३- ,, पृ० ४३,४७,५२,६५

४- ,, पृ० ७२

,, पृ० ७३

'किए उपाय सैकड़ों तन के
मन के, वरण किए सज्जन के,
व्यर्थ प्रार्थना औषध अब है,
पंजर-पिंजर करके ।'[1]

मधुर मृत्यु का अभिनन्दन करते हुए 'निराला' ने बदला कहने,जग के लिए नए जीवन, नई कला और नए ज्ञान का उल्लेख किया है, जहां वैज्ञानिक साधन सब के लिए हैं । रोध से मन के बंधने और बोध से समझौता होने का भी उन्होंने उल्लेख किया है[2] ।

बादल को लक्ष्य कर 'निराला' ने अपने अन्तिम काल की एक रचना में नई शक्ति और अनुरक्ति जगाने, विकृत भाव की भक्ति भगाने,साहित्य और विज्ञान की उत्पादन में सहायक होने की, जीवन की व्यथा के विनाश और जीवन का सम्बल न रहने की बात उन्होंने लिखी है । रूस के सारे साज धारण में ज्ञान को भरने का उल्लेख भी इसी प्रकार का है[3] ।

शीत की गहरी विभावरी में 'निराला' ने किसान के शस्य की और माथे पर कुकुहाते कुकर का चित्र खींचा है । किसान के खुलकर रुलाई रोने, देवा के बाकी न रहने, कर्म और धर्म की हत्या करके दुहरी मार मारने की भी उन्होंने उल्लेख किया है[4] । जन-जीवन के प्रति उनकी जागरूक सहानुभूति का प्रमाण उनका ४३ वां गीत है, जहां 'निस्सम्बल के वरण' की बात वे करते हैं । सत्य की सात नाशमूल जागतिक व्यापार के दूर होने की बात और संसार की नई गति का उल्लेख करना भी वे भूले नहीं है । शिव के ताण्डव और उनके अरुण निनाद में नाश की संहारिणी बजती 'निराला' ने सुनी है[5] ।

अपनी समस्त पुरानी मान्यताओं , जिनकी सत्यता का प्रमाण जीवन में उन्हें आज भी मिल रहा था, दृष्टिपात करते हुए उनको दोहराते

१-गीतगुंज,२,पृ०३५
२- ,, पृ० ३२,५३
३- सांध्य काकली,गीत३२ और ३५
४- ,, ,, ४०
५- ,, ,, ४७-४८

की मजबूरी, मरदों के हाथों और उनकी आंख के नीचे हुए अपमानों जो सैकड़ों बिच्छुओं के डंक मारने से ज्यादा जलन वाले और जहरीले हैं-- की याद कर उसे तमाम लांछनों को चुपचाप सर उठाए तैयार होने और वक्त पर उनकी जड़ काटने की सलाह देता है[1]।

देश में राजनीतिक संस्थाओं के पुष्ट होने के पहले जब सरकार के यहाँ रियाया का प्रतिनिधि जमींदार ही रहता था, वह समय 'निराला' ने लिया है। चापलूसी का अड्डा, जमींदार के मकान में मनोहर को वही कमजोरी मिलती है, जो अलका के सुधुआ में, चतुरी में अथवा 'चोटी की पकड़' के दिलावर सिंह में है। मनोहर समझता है कि आदमी जानबूझकर कमजोरी का शिकार बना हुआ है[2]। जमींदार के सिपाही विजय सिंह का व्यवहार मनोहर की परत हुई हिम्मत को बगावत में बदलने वाला है। इन्द्रमन लोध मनोहर का समर्थन करने पर मनशरवन 'सूद बिना जूता के सीधा न होना' कहकर जब उसे मारने उठते हैं, मनोहर के सामने उसकी हिम्मत परत हो जाती है। दाण में शर्मा बदला दिलाकर 'निराला' ने अपने स्वप्न की पूर्ति की है[3]।

वेदान्त पर आधारित 'निराला' की समाजवादी कल्पना मनोहर के विचारों और कर्मों में मूर्त हुई है। मनोहर जब काशी जाता है, "द्विजों के द्रुहत्य से उसका रोआं-रोआं लपट की ऑच हो रहा था।" उनको जलाने अथवा जाति में नई जान डालने में पाठशाला या उत्तर जनों से उसे कोई सहायता नहीं मिलती है, क्योंकि वहां प्राचीन भावना विद्यमान थी, और जहाँ नए भाव थे वहां शिक्षा के लिए कोई नहीं था। 'निराला' ने अलका की तरह यहाँ भी बताया है कि स्कूली शिक्षा और सरकारी नौकरी से जाति का संस्कार सम्भव नहीं, वहाँ गुलामी ही है। मनोहर छिप कर काम करने का निश्चय करता है, क्योंकि द्विज

१- काले कारनामे, पृ० २०
२- ,, पृ० २३
३- ,, पृ० २७

विरोध करेंगे यह उसे मालूम था । शूद्रों को वैश्य रूप और दिल में ब्राह्मण से भी उच्च समझकर `इस प्रचलन के घाव उसको लगे थे, उससे बचाव का यही रूप उसने निकाला ।` विवेकानन्द की विचार प्रणाली के सदृश संस्कृत के अध्ययन से सामाजिक क्रम के उत्थान को मनोहर भी संभव समझता है[1]। मनोहर के इस कार्य की सामाजिक प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में `निराला` लिखते हैं --` ब्राह्मण काम खाकर रह जाते थे । उनके समर्थक क्षत्रिय और वैश्य सुन लेते थे, पराधीनता की दोहाई देकर कुछ रह जाते थे[2]।` परन्तु काशी के धनिक[3] वैश्य जो ब्राह्मणत्व के हकदार थे, भीतर से शूद्रों के संस्कृत अध्ययन के समर्थक थे । प्राचीन प्रथा में अरक्षित रानी विमला भी गुप्त रूपसे आर्थिक दान देकर मनोहर की सहायता करती है ।

बिल्लेसुर के समान यहाँ भी `निराला` ने बताया है कि गाँव के धनी वर्ग की आमदनी का उपाय ग्रामीण जनों की स्थिति और व्यवसाय की पूरी जानकारी रखना है[4]। सरकारी मजूरी और धार्मिक प्रतिक्रिया से बंधे पहलवान रामसिंह को फंसाने की कथा में हमें इसका परिचय मिलता है । जमींदारों के हथकंडे जानने वाला चौकीदार भालादीन और सम्मान में उभरते हुए भी जमींदार श्रेणी की चाल ऐसा देखने वाले मिश्र जी के रिपोर्ट करवाने के लिए जाते समय मिश्र जी की स्थिति का जो वर्णन `निराला` ने किया है, उससे सरकार की नीति और प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है । `निराला` ने लिखा है कि वह भी `अपनी ढाई चावलों की खिचड़ी पकाते रहे । वह सरकार के आदमी हैं; उसपर उनके फख्र भी हैं । उनकी मरजाद का एक बाल भी नहीं टूट सकता । यह सरकार हिन्दोस्तान में इसीलिए है[5] और इसी डरें से चलाकर बाघ और बकरी को एक घाट पर पानी पिलाती है ।` मिश्र जी यह भी जानते हैं कि बैर बढ़ने से ही सरकार और जमींदार का फायदा है, जमींदार का पंजा किसी को जल्दी नहीं छोड़ता[6]।

१- काले कारनामे, पृ० ८०-८१

२- ,, पृ० ८४-८६

३- ,, पृ० ,, ,,

४- ,, पृ० ५०-५१

५- ,, पृ० ६०

६- ,, पृ० ६६-६७

थाने और सरकार की सच्चाई के सम्बन्ध में चोरी न होना और होना दोनों के साकार का धर्म बताना, जमींदारों के बड़प्पन की साख चलने और विलायत की नोबिलिटी का देश पर सिक्का रहने का उल्लेख भारत की स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश डालने वाला है।[1] थानेदार के हाकिम को समझाने और मिश्रजी के वकील को हाकिम का समझाना कि सरकार के खिलाफ चलकर लोगों को उभाड़ना सरकारी तरीकों को बदलना है -- भी व उसी प्रकार का प्रसंग है, जहाँ मामूली रियाया के इतनी आज़ादी देना ठीक नहीं समझा गया है[2]। मिश्र जी का कथन कि वे सरकार को मानते हैं पर सरकार के मुलाजिम की गैर कानूनी कार्रवाइयों को मानना उनसे न होगा -- चतुरी के सदृश उनकी जागरूक चेतना का प्रमाण है; पहलवान का चालान होना, गाँव वालों की कमजोर प्रवृत्ति का परिचायक है।

उपन्यास के अन्त में मनोहर के सम्बन्ध में उसके पिता से गाँव वालों के कथन में "काउलराग" की समाजवादी कल्पना को ही हम प्रत्यक्ष करते हैं। किसानों की दृष्टि में मनोहर ब्राह्मणों की तरह सर फोड़ता नहीं, ऊँचा करता है।" वह वज्र है जो सर फोड़कर टूटे, वह हमारी पुकार है, हमारे आँसू से टपक कर भाप बनकर उड़ गया है, कभी खुशी की, बारिश लायेगा।" स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अपनी समाजवादी कल्पना को साकार "निराला" ने नहीं देखा, वह स्वप्न ही बनी रही।

निष्कर्षतः अन्त में हम कह सकते हैं कि "निराला" ने राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रधार गाँधी और नेहरू को स्वीकार तो किया, परन्तु वे इस आन्दोलन की सीमाओं और उसके नेताओं की कमजोरियों से भी परिचित अतएव असन्तुष्ट थे। प्रेमचन्द के समान उन्होंने भी साम्राज्यवाद और रूढ़िवाद के विरुद्ध व्यापक सामाजिक परिवर्तन की आवाज उठाई। किसानों और मजदूरों, भारत की गरीब जनता के संघर्ष की साहित्य में अभिव्यक्ति उनकी क्रान्तिकारी

१- काले कारनामे, पृ०८६

२- ,, पृ० ६५-६७

चेतना की परिचायक थी । प्रेमचन्द और 'निराला' दोनों की राष्ट्रीयता का लक्ष्य समाजवाद था, अन्तर केवल इतना था कि प्रेमचन्द का झुकाव जहाँ गांधीवाद और अहिंसा की ओर था, वहाँ 'निराला' ने अहिंसा की निष्क्रियता और समझौते के विरुद्ध क्रान्ति और वेदान्त का आधार ग्रहण किया है । राजनीति की अपेक्षा साहित्य की महत्ता और राष्ट्रभाषा के प्रश्न के सम्बन्ध में भी उनमें मतैक्य था । 'निराला' का साहित्य समझौते नहीं, क्रान्ति के आधार पर समाजवाद का स्वप्न देखने वाला था, जिसमें युग-धर्म और के साथ उनकी साधना भी समाहित है ।

-0-

षष्ठ अध्याय

--0--

विरोधी आलोचना

षष्ठ अध्याय

-0-

विरोधी आलोचना

'निराला' के प्रेरणा स्रोतों में उनके विरोध में लिखी गयी विविध आलोचनाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है, यद्यपि ये प्रेरणाएं मुख्यतः आलोचनात्मक पक्ष में देखी जा सकती हैं। समाज और राजनीति विषयक प्रेरणाओं के सदृश साहित्यगत इस प्रेरणा का सम्बन्ध भी युग के साहित्यिक बाह्य परिवेश से ही है। कारण, 'निराला' के विरोध का दूसरों द्वारा प्रारब्ध यह अभियान सर्वथा असंगठित नहीं था। 'निराला' के कलाकार के अहं और उनके विद्रोही दृष्टिकोण से भी यदि प्रेरणा का यह सूत्र जोड़ा जा सकता है, इसका सीधा सम्बन्ध मूल आन्तरिक प्रेरणा अथवा व्यक्तित्व से जुड़ जाता है; व्यक्तित्व, जो परिवार, समाज और युग के बाह्य परिवेश से सर्वथा असम्पृक्त नहीं।

साहित्य में 'निराला' की प्रतिष्ठा करने वाला पत्र 'मतवाला' था। उनके विरोध का कारण भी इस प्रकार बना कि 'मतवाला' में कविता के साथ उनके 'निराला' आलोचना भी लिखते थे। उनकी 'कसौटी' पर खरा उतरना अथवा 'चाबुक' के प्रहार से बच निकलना आसान नहीं था। हिन्दी की नयी छायावादी कविता और व्याकरण की दृष्टि से भाषा के विभिन्न प्रयोगों पर 'निराला' की दृष्टि विशेष थी। यही वह भूमि थी, जहां से 'निराला' का विरोध उनके यश-विस्तार के साथ प्रारम्भ हुआ।

यहां यह स्मरणीय है कि 'मतवाला' के प्रकाशन के पूर्व ही 'निराला' की प्रथम पुस्तक 'अनामिका'[१] मुंशी जी और सेठ महादेव प्रसाद के प्रयास से निकल चुकी थी, जिसकी भूमिका में सेठ जी का दावा हिन्दी के पथ

१- डा० रामरतन भटनागर से साभार प्राप्त

साहित्य में एक अभूतपूर्व नई शैली के समावेश का था । समन्वय में भी इस अनामिका की जो आलोचना प्रकाशित हुई, उसमें आलोचक ने मुक्त छन्द की सराहना भी की थी । यहां यह भी उल्लेखनीय है कि 'मतवाला' में मई २४ में 'निराला' ने हिन्दी की नई कविता का समर्थन करते हुए एक लेख 'कविवर सुमित्रानन्दन[1] पन्त' पर लिखा था । इसके पहले 'मतवाला' के २६ मार्च के अंक में पन्त जी की कविता 'स्याही की बूंद' निकल चुकी थी । २४ मई के 'मतवाला' में निकला रवीन्द्र और बिहारी पर 'निराला' का तुलनात्मक लेख भी नए साहित्य का समर्थन करने वाला था । पन्त जी पर लिखे लेख में 'निराला' की यह धारणा स्पष्ट थी कि 'छोटे मोटे कवियों' और उनकी गढ़ी हुई कविताओं' के विपरीत 'प्रकृति का चमत्कार' होने वाले कवि - सराहनीय हैं, हिन्दी खड़ी बोली कविता में 'स्वाभाविक कवि का अभाव' पंत जी द्वारा पूरा हुआ । 'हिन्दी का गौरव कुसुम' कहकर पन्त जी का अभिनन्दन यहां 'निराला' ने किया है और लिखा है --'खड़ी बोली में प्रथम सफल कविता आप ही कर रहे हैं ।' नए कवि के प्रति 'निराला' की इस अवस्था में पुराने कवियों के प्रति अनादर की तो नहीं, परन्तु उनके कवि-कर्म की श्रेष्ठता के प्रति अवहेलना की व्यंजना अवश्य थी । 'निराला' के विरोध विषयक विवेचन में इसी दृष्टि से इस लेख की भूमिका उपेक्षणीय ही नहीं है ।

'मतवाला' के लिए लिखते हुए 'निराला' अपने 'चाबुक से मुख्यरूपेण 'माधुरी' 'सरस्वती', 'प्रभा' और 'शारदा' पत्रिकाओं की खबर ले रहे थे । इन पत्रिकाओं द्वारा तो नहीं, परन्तु प्रयाग, बेलवेडियर प्रेस से निकलने वाला 'मनोरमा' पत्रिका ने सर्वप्रथम अपनी तीसरी संख्या के सम्पादकीय वक्तव्य[2] 'हिन्दी कविता साहित्य की गति' में 'निराला' और उनकी कविता को याद किया । 'निराला' के मुक्तछन्द को लेकर इससे पुराने आदमियों के घबराने और नए ढंग के लेखकों के मात खाने का उल्लेख यहां किया गया है । नए ढंग की कविता के उदाहरणार्थ 'निराला' की 'सिर्फ एक उन्माद' रचना को लिया गया है । आलोचना का यथेष्ट विस्तार

१- मतवाला, ३मई, १६२४, पृ०६५६

२- मनोरमा जून २४, पृ०२०७-२०८
सम्पादक- महावीर प्रसाद मालवीय 'वीर'
गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' ।

प्रकट न होने , अतः भाषा-शैली-भाव में क्रान्ति उत्पन्न करने की चेष्टा पर हर्ष प्रकट कर भी सम्पादकों ने परिवर्तनप्रिय नए कवियों की रचनाओं के आदर के चिरस्थायित्व के सम्बन्ध में अपना भय प्रकट किया है । कारण यह है कि जिन दिशाओं से यह नूतन लालिमा दृष्टिगोचर हो रही है, वह काली और ओछी की है ।

'सामयिक साहित्यावलोकन' करते हुए मनोरमा के इसी अंक में पत्र-पत्रिकाओं की चर्चा में 'मतवाला' का नाम भी आया है । 'समदर्शी' ने हास्य के रूप में समाचार देने और अपनी सम्मति प्रकाशित करने वाले इस साप्ताहिक पत्र की आवश्यकता को स्वीकार किया है, परन्तु वे यह लिखना भी नहीं भूले हैं कि प्रथम पृष्ठ पर छपने वाली कविताओं के एक ही ढंग से हमें अब ऊब मालूम होती है । कभी-कभी पत्र की अश्लीलता से हमें कष्ट भी हुआ है ।[1] 'मतवाला' के मुखपृष्ठ पर निरन्तर 'निराला' की कविताएं ही छपा करती थीं अतएव संकेत की स्पष्टता असंदिग्ध है । इसी प्रकार बाद के अंक[2] के 'कुछ इधर-उधर की' स्तम्भ में प्रकाशित 'विजय' की 'भंग की मौज' में मतवाला की 'उद्दण्डता असभ्य कथन' का अनोखा आला, कापुरुष जनों से 'मृषावाद' करने वाला, उसे छेड़छाड़ करने वाले के विरुद्ध उसे निन्दा नदी बहाने वाला कहा गया है । रचना का 'भरत-वाक्य' है--

'टांग तोड़ने में कविता की, मैं ही सुभट निराला हूं ।
मित्र सदा मैं भंग-रंग में, मग्न हुआ मतवाला हूं ।'

'मतवाला' और 'निराला' दोनों की प्रतिष्ठा के विचार से मुंशी नवजादिकलाल ने मनोरमा के आक्षेपों का उत्तर 'अंध परम्परा' लेख से दिया, जो मतवाला के पचासवें अंक[2] में छपा । मुंशी जी ने लोगों के अज्ञान और स्वाभाविक कवि की मौलिकता का उल्लेख और 'निराला' की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए

१-'मनोरमा', अगस्त २४, पृ० ४८४
२-'मतवाला', ६ अगस्त, २४, पृ० ६७३

बताया कि मैं स्वाभाविक काव्य के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ हूँ ,' उनकी कवितायें उस हिन्दी की सम्पत्ति हैं जो हिन्दी राष्ट्रभाषा होगी ।' 'निराला' के भावों की अप्रान्तीयता और उच्चता; 'संयत और व्याकरणसम्मत भाषा' और छन्दों में प्राप्त मौलिक उद्भावना शक्ति' का उल्लेख भी इसी दृष्टि से हुआ था । मनोरमा सम्पादकों के बंगला और अंग्रेजी के प्रभाव के आरोप के सम्बन्ध में मुंशी जी का उनसे निवेदन 'एक ही उदाहरण अपने ~~कविता-में-साम्य-दिखलाने~~' वाक्य की पुष्टि में ' रखने और 'बंगला की कविता और निराला जी की कविता में साम्य दिखला' देने का था । हिन्दी संसार से भी उसके लाभ के लिए उन्होंने निराला की मौलिकता में सप्रमाण त्रुटि दिखलाने का अनुरोध किया था और 'निराला' को मौलिक और युगप्रवर्तक कवि कहा ।

'मतवाला' के इसी अंक में 'निराला' छायावाद के समर्थन में अपने 'चाबुक' से कर्मान्द के सम्पादक नारायणानन्द सरस्वती की खबर ले रहे थे ।'निराला' और रवीन्द्र के भाव साम्य पर विस्तृत लेख की सूचना का पत्र जब 'प्रभा ' सम्पादक का पहुंचा, तब भी 'निराला' अपनी मौलिकता की ओर से आश्वस्त ही थे, मुंशी जी के विचार और अनुरोध पर ही मतवाला में उन्होंने अपना भावसाम्य विषयक स्पष्टीकरण प्रकाशित कराया था[१] ।

अपनी कविता की मौलिकता और अमौलिकता के सम्बन्ध में ३० अगस्त २४ के मतवाला की ५३ वीं संख्या में लिखे हुए 'मौलिक' कविताओं का नामोल्लेख निष्प्रयोजन समझा । सम्पादक के नाम अपने पत्र में 'सूर्यकान्त ' ने केवल उन्हीं कविताओं का उल्लेख किया था, जिन्हें उन्होंने 'पहले डाक्टर टैगोर की कवितायें पढ़ लेने पर , दो भिन्न रूपों के चित्रण में सादृश्य देखने के अभिप्राय से लिखा था ।'क्यों हंसती हो, कहां देश है' रचना को 'जीवन देवता' के भावों पर लिखी बताकर 'निराला' ने उनके उद्देश्य की भिन्नता का संकेत दिया ।'तट पर'

१-'निराला की साहित्य-साधना' ,पृ० ६७-६८--- डा० रामविलास शर्मा

और 'ज्येष्ठ' में क्रमशः महाकवि की चार-पांच लाइनें और कुछ भाव आने तथा 'प्रिय' से और 'क्षमा-प्रार्थना' में डाक्टर टैगोर के ही भाव अधिक होने का उल्लेख 'निराला' ने किया है । प्रथम अनामिका की 'लज्जिता' और 'कवीन्द्र' में निकली एक कविता को क्रमशः रवीन्द्र का अनुवाद कहने अथवा उसमें उनके काव्य की छाया पाने की बात भी उनकी समझ में नहीं आती । अन्य कविताओं में भी रवीन्द्र के भावों की स्थिति की सम्भावना स्वीकार करते हुए 'निराला' ने 'इस सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखने की इच्छा' परन्तु किसी विशेष कारण से आज यहीं तक' लिखने का उल्लेख किया है ।

१ सितम्बर २४ की प्रभा में एक टिप्पणी प्रकाशित हुई 'निराला' बनाम 'रवीन्द्र'[1] । विषय था मनोरमा के संपादकों की टिप्पणी का गत अगस्त के 'मतवाला' में नवजादिक लाल का जवाब। भाषा-भाव परिवर्तन के सम्बन्ध में उल्लिखित तथ्यों से 'प्रभा' मुंशी जी से सहमत थी परन्तु उत्कट इच्छा होते हुए भी वह मुंशी जी के उस अंश से सहमत नहीं हो सकी थी, जहां उन्होंने बंगला से 'निराला' का साम्य अथवा उनकी मौलिकता में त्रुटि दिखलाने का निवेदन किया था और उनके 'राष्ट्रभाषा हिन्दी के महाकवि' होने का दावा किया था । 'प्रभा' का यह अनुमान था -- जिसके ठीक न होने की सम्भावना भी स्वीकृत है-- कि श्रीयुत नवजादिकलाल जी ने उपर्युक्त वाक्य आवेश एवं श्रद्धातिरेक में लिख डाले थे ।

प्रभा के सितम्बर के अंक में ही श्रीयुत 'भावुक' का लिखा 'भावों की भिड़न्त'[2] लेख प्रकाशित हुआ । यहां 'निराला' की उन्हीं रचनाओं को लिया गया था, जो उन्होंने रवीन्द्रनाथ के भावों अथवा काव्य के आधार पर लिखी थी । २ फरवरी और ३ मई २४ के मतवाला के अंकों में प्रकाशित 'निराला' की

१- 'प्रभा' १ सितम्बर २४, पृ० २३५-२३६

२- डा० रामविलास शर्मा से प्राप्त सूचना के आधार पर

बट पर' और क्यों हंसता हो? कहां देश है।' रचनाओं के अन्त में उनके रवीन्द्र की रचनाओं के आधार पर रचित होने का उल्लेख नहीं था। इसी का लाभ उठाकर भावुक ने 'बंगला के विश्व विख्यात कवि श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर' और 'कलकतिया' 'मतवाला' के शब्दों में ~~न~~ हिन्दी के युगप्रवर्तक' श्री सूर्यकान्त जी त्रिपाठी 'निराला' के भावसाम्य और उसको छिपाने के लिए आए कतिपय भेदों का संकेत कर मुंशी जी के 'मौलिकता' के दावे का उत्तर दिया था। लेख के प्रारम्भ में भाव-साम्य के अनेक प्रकारों और उसके प्रति लोगों के विभिन्न दृष्टिकोणों की भी चर्चा की गयी थी। रवीन्द्र और सूर्यकान्त के नामों के अर्थ-साम्य की ओर भी लेखक ने संकेत किया था और 'निराला' की अन्य रचनाओं के रवीन्द्र से टकराने के अन्वेषण की ओर ध्यान भी आकृष्ट किया था।'नवीन' ने लेखक के साथ दिए अपने संपादकीय नोट में मुंशी जी के मौलिकता के दावे और चुनौती को अच्छा न कहकर उनसे लेख का जवाब मांगा था। 'निराला' के वास्तविक विरोध का सूत्रपात करने वाले इस लेख के वास्तविक लेखक का नाम पता लगाने के अनेक प्रयास हुए। डा० शर्मा ने इस अपवाद का उल्लेख किया है कि यह लेख चिरगांव के मुंशी अजमेरी ने लिखा था।' पर लेख में ~~चित्र~~ विद्या का प्रमाद था, वह मुंशी अजमेरी के पास न थी।' लेख में अनुप्रासों की 'देखने लायक छटा' से डा० शर्मा को 'छठाव' 'भारत भारती' और 'भगवान भारतवर्ष में गूंजे हमारी भारती' का स्मरण हो आता है। लेखक का हास्य और व्यंग्य का हुनर उनका मर्मभेदी परन्तु शालीन व्यंग्य और संस्कृत -बंगला-उर्दू काव्य का पांडित्य, इनका उल्लेख भी डा० शर्मा ने अपनी पुष्टि के लिए किया है।[1]

मतवाला के १३ सितम्बर २४ के अंक में 'भावुक' के लेख के उत्तर में मुंशी जी का 'निराला बनाम रवीन्द्र' लेख छपा। भावुक द्वारा प्रस्तुत मौलिकता' के अर्थ को कसौटी मानकर 'मतवाला' 'निराला' का पचास से अधिक मौलिक कविताएं देकर यह प्रस्ताव मुंशी जी ने रखा।'प्रभा' ने पहले मुंशी जी में जो आवेश और अहातिरेक देखा था, वहां मुंशी जी ने प्रभा संपादक में आवेश की स्थिति रिक्त की। 'निराला' की मौलिकता के सम्बन्ध में अपने ज्ञान और विचारों के

१- 'निराला की साहित्य साधना,पृ० १०४

अभिमतों का, 'निराला' का संस्कृत और बंगला में कविता करने और अंग्रेजी में उनके अधिकार का उल्लेख किया। और उसके प्रमाण भी दिए। उसके बाद उन्होंने रवीन्द्र और 'निराला' की रचनाओं में सादृश्य का कारण, हिन्दी और बंगला में सादृश्य देखने का 'निराला' का उद्देश्य बताया, जिसके मूल में हिन्दी के प्रति बंगालियों का उपेक्षा भाव उन्होंने ~~बतलाया, जिसके मूल~~ विद्यमान कहा। 'निराला' की मौलिकता का पुन: दावा करते हुए मुंशी जी ने लेख समाप्त किया था।

मुंशी जी के यह स्पष्टीकरण प्रकाशित होने के बाद भी, 'मतवाला' और 'निराला' की प्रतिष्ठा को जो धक्का 'प्रभा' के लेख से लगा था, उसमें विशेष अन्तर नहीं आया। स्वयं 'मतवाला' ने ही उसके बाद २० सितम्बर और २६ सितम्बर २४ के अंकों में 'निराला' की बादल राग की अन्तिम और 'दान' शब्द दो कविताएं छापीं। 'निराला' और मतवाला पर आक्षेप प्रारम्भ करने वाली 'मनोरमा' पत्रिका ने 'चोरी की सफाई' में हाल पैदाताल, अमौसे जी और पागल आफिस का उल्लेख किया। नाति और आपद्धर्म की दुहाई देकर 'मनोरमा' ने चौरकर्म के भण्डाफोड़ के समय कवि-प्रशंसा को अनुचित नहीं कहा। यही नहीं, 'मनोरमा' के लगभग प्रत्येक अंक में 'फौआरे की छींट' और स्फाघ अन्य स्तम्भों में मतवाला पर उसकी विशेष कृपा-दृष्टि का परिचय मिलता है।

'मतवाला' में जब 'निराला' की कविताएं पुन: प्रकाशित होने लगीं, 'मनोरमा' ने इस युगान्तरकारी कवि के पुन: 'मतवाला' के मुख पृष्ठ पर आसन जमा लेने की सूचना के साथ उनके विश्वकीर्ति में फेल होने और मनहूसों के भण्डाफोड़ करने की घटनाओं को भी याद की और उनके यात्रा सोचकर काम में हाथ डालने का उल्लेख किया। 'मतवाला' के 'माधुरी' के पीछे पड़ने, उसके ज्ञान गौरव का गान करने और अन्तिम समय आने, उसका ज्ञान किरकिरी और शैला मिट्टी में मिलने आदि की सूचनाएं मनोरमा की 'फौआरे की छींट' में निकलती रहती थीं।

१- मनोरमा, अक्टूबर २४, पृ० १७२
२- ,, फरवरी २६, पृ० ५६३
३- ,, मार्च २६, पृ० ७०१-७०२

'मनोरमा' के मार्च २७ के सम्पादकीय वक्तव्य 'हिन्दी में हास्य रस के पत्र' में 'मतवाला' और 'मौजी' का उल्लेख हुआ है, जहाँ 'मनोरमा' का अपना हुआ स्वर सुनाई पड़ता है। उसके व्यंग्य हिन्दी में सारे स्थान, प्रकृत और स्पष्ट भाषा के लिए उसकी प्रसिद्धि और उग्र की कहानियों की प्रशंसा के उपरान्त कविताओं के सम्बन्ध में आगे लिखा गया है कि कविताएं अब मतवाला में 'मोस्ट पुअर क्लास' निकलती हैं; उनमें तमाम कूड़ा-करकट भरा रहता है। 'पता नहीं, 'निराला' जी अब इसमें कविता क्यों नहीं लिखते। उन्हें लिखना चाहिए।' संपादक ने इस ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है कि 'समालोचना भी अब दुरुस्त नहीं निकलती, पता नहीं क्यों।'[1]

'निराला' विषयक इस विवाद के साथ ही साहित्य-क्षेत्र में छायावाद विषयक जो विवेचन हो रहा था, उससे भी 'निराला' ने अपना असन्तोष व्यक्त किया और अपने लेखों में आधुनिक काव्य-धारा पर प्रकाश डाला। इस दृष्टि से आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और पं० पद्मसिंह शर्मा 'निराला' के विशेष आलोच्य अथवा प्रेरक रहे हैं। छायावाद पर मुकुटधर पाण्डेय का जो पहला लेख सन् २० में प्रकाशित हुआ था,[2] उसमें भी छायावादी कवि की असाधारण और अन्तरंग दृष्टि और कविता की अस्पष्टता का उल्लेख है। इस लेख में पाण्डेय जी ने छायावाद को 'भावराज्य की वस्तु' बताकर भाषा के भाव प्रकाशन का गौण साधन कहा है, जिसके सौन्दर्य की रक्षा भी की गई है। अपनी कविता के लिए विषयवस्तु बड़ी दूर-दूर से लाने और यहाँ छायावाद में आत्मिकता तथा धर्म भावुकता' का मेल होने का उल्लेख भी उन्होंने किया है।[3] छायावाद को निस्संकोच 'चरम पंथी' कहकर उसकी नींव आप 'शिल्प तत्व और मनुष्यों के मनस्तत्व के अलंघनीय नियमों' पर रखी बताते हैं। छायावाद की अस्पष्टता के आदर्श की प्रतिष्ठा न होने को उन्होंने यथार्थ में अपरिहार्य और न्यायसंगत कहा है और छायावाद की भावुकता को वे उसका 'एकमात्र गर्व' उसके 'पंगु जीवन की निर्भर यष्टि' कहते हैं।[4] निष्कर्ष रूप में छायावाद का समर्थन करते हुए पाण्डेय जी ने उसे

१- मनोरमा, मार्च २७, पृ० ७६४

२- श्री शारदा, १६ जुलाई, १३ सितम्बर, १८ नवम्बर और १८ दिसम्बर के अंक।

३- श्रीशारदा, १३ सितम्बर, २०, पृ० ४०-४५।

४- श्री शारदा ११ नवम्बर २०, पृ० ९८-१००

'काव्य कला का अपूर्व निदर्शन' और आध्यात्मिक साहित्य की अभिवृद्धि करने वाला कहा। इसी दृष्टि से छायावाद का प्रचार वांछनीय बताकर उन्होंने लिखा --" यह आंतरिक गूढ़ भावों के प्रकाशन की एक नवीन और विलक्षण रीति है।"[1]

छायावाद नाम के सम्बन्ध में पाण्डेय जी ने बताया कि मिस्टिसिज्म के पर्यायवाची शब्द द्विवेदी जी और बख्शी जी ने पूछने पर उन्होंने क्रम से 'अध्यात्मवाद' और भावुकतावाद' सुझाए थे, जो उन्हें ठीक नहीं लगे। उन्होंने बताया कि बंगाल के किसी आलोचक ने मिस्टिक शैली की आलोचना करते हुए अस्पष्टता, छायाप्रियता, वाग्वैचित्र्य, आपात अस्पष्टता आदि उसके लक्षण बताते हुए उसकी छायावादिता का भी उल्लेख किया था। इसी अन्तिम लक्षण से प्रेरणा ग्रहण कर उन्होंने 'छायावाद' शब्द बनाया, क्योंकि उनकी समझ से नई शैली के काव्य में भाव नहीं, भावों की छाया मिलती थी। छायावाद से उनका अभिप्राय अभिव्यक्ति की शैली या प्रणाली से ही था। उन्होंने बताया कि बंगला में मिस्टिसिज्म के लिए छायावाद शब्द का प्रयोग नहीं होता है, और 'गीतांजलि' के प्रकाशन से पहले ही उस नई शैली की कविता का सूत्रपात हो चुका था, जो बंगला से कहीं अधिक अंग्रेजी के सम्पर्क का परिणाम था।[2]

संवत् १९८३ में श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने नए कवियों का परिचय[3] देते हुए एक संकलन निकाला। 'भारतीय पुरयपटी' के भावों के परिवर्तन के साथ, 'निराला' के 'प्रगल्भ प्रेम' की प्रारम्भिक पंक्तियों को उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर उन्होंने 'कविता के अलंकार और पिंगल की आवश्यक उलटफेर' का उल्लेख करते हुए नयी कविता का स्वागत किया, जिसे देखने और समझने के लिए 'निराला' के शब्दों में 'अपराजिता -सी कोमल श्याम पुतलियों' वाली दो आंखों के साथ अन्तर्दृष्टि की भी आवश्यकता का निर्देश उन्होंने किया था।

मई सन् २७ की 'सरस्वती' में प्रकाशित अपने लेख में आचार्य द्विवेदी ने छायावादी काव्य के अर्थ और उद्देश्य के सम्बन्ध में प्रश्न कर उसका रहस्य

१- श्री शारदा, ११ दिसम्बर २०, पृ० १३८-४०

२- स्मृतियाँ और कृतियाँ, पृ० ११६ शान्तिप्रिय द्विवेदी

३- परिचय, पृ० ३-४

जानने के लिए बंगला काव्य के अध्ययन की सलाह दी[1]। उनके अनुसार छायावादी कवि अपनी ही मनस्तुष्टि के लिए कविता लिखते थे, अत: उनके प्रकाशन की कोई आवश्यकता नहीं थी। पन्त जी के पल्लव की ओर स्पष्ट संकेत कर आचार्य द्विवेदी ने इन गूढार्थ विहारी कवियों के काव्यग्रन्थों के प्रकाशन में आडम्बर देख, जिसके मूल में उनकी अपनी कविता में 'काव्योचित गुण' का अभाव होने की धारणा का संकेत करते हुए उन्होंने अपने इस संदेह को निराधार स्वयं स्वीकार की है[2]। मनोरमा के समान उन्होंने भी इन कवियों के 'अनोखे अनोखे उपमानों की लांगूल' लगाकर अनाप-शनाप लिखने की बात कही थी। छायावाद और समस्यापूर्ति से हिन्दी कविता को पहुंच रही हानि के सम्बन्ध में बाबू श्यामसुन्दरदास की सम्मति उद्धृत कर लेख समाप्त किया गया है[3]।

सुधा में भी छायावाद और 'निराला' पर आक्षेप हुए, जिनमें मनोरमा और प्रभा की स्थापनाओं की पुनरावृत्ति ही की गयी थी। हिन्दी लेखकों के बंगला प्रेम का भयानक परिणाम बताते हुए सुधा में बंगाली कवि के भावों को चुराकर कवि-शिरोमणि बनने और छायावादियों के स्वार्थ और साहित्यद्रोह का उल्लेख किया गया। भायाभाषी ने 'निराला' की अप्रकाशित काव्य पुस्तक 'रेखा' के नाम पर आक्षेप कर लिखा -- 'यह बेमेल, गतिहीन, स्वच्छन्द छन्दों में छलपागमना हिन्दी कविता की भावी की रेखा खींचना चाहते हैं'। 'सुधा' में ही आचार्य शुक्ल का 'पाखण्ड प्रतिषेध' छपा, जिसमें उन्होंने अपनी 'कल्पहीन कोरी शब्द की उड़ान' देखने के लिए छायावादी कवियों को 'लोक जीवन समझो' आने को कहा। भां-भांग पद और ओछी अनुवादों के अनाड़ीपन का उल्लेख कर आपने बताया कि ऐसे भावों का भोग मतवाला में है। अक्टूबर २७ की 'सुधा' की सम्पादकीय में सुधा के छायावाद के विरुद्ध न होने की सम्मति छपी और रवीन्द्र को उनका आदर्श अथवा पथप्रदर्शक यहां भी कहा गया[4]। इस सम्पादकीय के पहले ही 'माधुरी' के दिसम्बर के अंक में 'निराला' की वृहद आलोचना 'पंत और पल्लव' का पहला अंश निकल चुका था, यह ध्यान देने की बात है।

१- सञ्चयन, पृ० ५६-५७
२- ,, पृ० ५८-६१
३- ,, पृ० १०३
४- ,, पृ० ३५०

आचार्य द्विवेदी और शुक्ल जी के साथ 'विशाल भारत' के सम्पादक श्री बनारसीदास ने भी छायावाद के विरोध का सुसंगठित अभियान शुरू किया था, घासलेटी साहित्य का विवाद इसके साथ था। चतुर्वेदी जी ने जुलाई सन् २८ के अंक में साहित्य सम्मेलन के सभापति पद से दिए पं० पद्मसिंह शर्मा के भाषण के कुछ अंश छापे। शर्मा जी ने माखनलाल चतुर्वेदी की छायावादी कविताओं को प्रिय बतलाकर केवल उन छायावादी पदों से अपना विरोध प्रकट किया, जिनमें 'कविता का प्रायः अभाव रहता है। नवीनता का समर्थन करते हुए शर्मा जी ने रहस्यवाद से अपने प्रेम की चर्चा की पर उच्चकोटि के रहस्यवाद का अभाव भी बताया। पन्त जी की 'वीणा' और 'पल्लव' कृतियों की प्रशंसा कर नए कवियों की रुचि और पसन्द को उन्हीं पर छोड़ दिया, परन्तु प्राचीन काव्य पर उनके आक्षेप के अत्याचार को अपराधसाहस का उल्लेख करना भी वे नहीं भूले। अकबर के शब्दों में उन्होंने नौजवानों से 'अपने बुजुर्गों का अदब' सीखने की प्रार्थना की। घासलेटी साहित्य पर अपनी सम्मति प्रकट करते हुए शर्मा जी ने हिन्दी गद्य में उपयोगी और आवश्यक साहित्य रचना पर संतोष व्यक्त किया और कुरुचि एवं अनाचार का प्रचार करने वाले तत्त्वों को निन्दनीय कहा, भले ही उनका उद्देश्य अनाचार और दुराचार का मूलोच्छेद हो। साहित्य में गन्दगी का रोग फैलने के कारण उन्होंने देश के नेताओं को उनके समाज-रक्षा के कर्तव्य का ध्यान दिलाया। यहां पर 'विशाल भारत' ने ७ जुलाई के 'मतवाला' में व्यक्त विचारों का स्वागत किया, जिसमें पद्मसिंह जी के विचारों से अपनी सहमति प्रकट करते हुए 'मतवाला' ने नेताओं की अपेक्षा लेखकों के स्वतः इस प्रश्न पर विचार करने का उल्लेख किया था।[1]

सन् २८ में ही आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने सत्समालोचना विषय पर लिखते हुए एक अपरिचित सज्जन के पत्र का उल्लेख आलोचकों की दूषित अभिलाषा का घोर अनर्थ दिखाने को किया है। उक्त सज्जन ने वाजपेयी जी के निराला पर शैली का प्रभाव देखने और भाव साम्य को चोरी न कहने का हवाला देते हुए लिखा था --" मैंने बड़े प्रयास के उपरान्त शैली के साथ 'निराला' जी के भावसाम्य का एक उदाहरण पाया है - क्या इतने ही से उनपर भावापहरण नहीं होता। क्या आप इस विषय में कुछ सहायता कर सकेंगे? ..."[2] यह पत्र उन काल .

१- विशाल भारत, जुलाई २८, पृ०१३१-१३२
२- साहित्य समालोचक भाग ३, संख्या ९, १६२८, पृ०२६१

की कटु स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश डालता है, जिसके द्वारा 'निराला' के विरोध का परिज्ञान भी होता है।

छायावाद और 'निराला' के व्यापक विरोध के बीच मई सन् २६ में पन्त जी का काव्य संग्रह 'पल्लव' प्रकाशित हुआ, जिससे 'निराला' के विरोध का दूसरा प्रकरण सम्बद्ध है। इसके प्रवेश में प्राचीन हिन्दी काव्य पर पंत का आक्षेप छायावाद के विरोध को बल पहुंचाने वाला था। प्रवेश में श्री पन्त जी ने अपने 'मित्र हिन्दी के भावुक सहृदय कवि निराला' जी के छन्दों को भी आलोच्य विषय बनाया है।[1] इसके पहले विशेषण और पर्याय प्रधान संस्कृत के वर्णिक छंदों अथवा के आलाप-प्रधान अतः अनर्गल संगीत और उसका असर मात्रिक छंदों की क्षमता से हिन्दी के संगीत को 'केवल मात्रिक छन्दों हो। में अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सम्पूर्णता प्राप्त और सौन्दर्य की रक्षा कर सकता है, की भिन्नता का विवेचन है।[2] सवैया और कवित्त को पन्त जी हिन्दी कविता के अनुपयुक्त मानते हैं और विशेषतः कवित्त छंद तो उन्हें 'ऐसा जान पड़ता है, हिन्दी का औरस जात नहीं, पोष्य पुत्र है।' इसे वे हेलापोषित (colloquial) छंद और इसके राग के 'व्यंजन प्रधान' कहते हैं।[2] इसके बाद उन्होंने अतुकान्त कविता और हिन्दी में 'अन्त्यानुप्रास हीन कविता के लिए 'रोला' छंद की विशेष उपयुक्तता का उल्लेख किया है।[3]

मुक्त काव्य के सम्बन्ध में यहां पन्त जी ने बताया है कि सन् २१ में उनका 'उच्छ्वास' निकलने पर निगम जी ने इसे 'बांसुरी सदा का महाकाव्य कहा और उसमें स्वच्छंद छंद देखा, जिसका सौभाग्य अथवा दुर्भाग्यवश सर्वत्र छटा आज दिखाई देती है। स्वच्छन्द छंद का 'ध्वनि अथवा लय' का आधार भाव और भाषा के सामंजस्य की उसकी विशेषता और उसकी क्षमता में अंगों के गठन (solidity of expression) की और विशेष ध्यान रखने की

१- पल्लव का प्रवेश, पृ० ३१

२- ,, पृ०३५, ३७

३- ,, पृ०४१-४२

और विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता का उल्लेख कर पन्त जी ने लिखा --"अन्य छन्दों की तरह मुक्त काव्य भी हिन्दी के ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक संगीत की लय पर ही सफल हो सकता है[1]।"

अपनी भूमिका के उपरान्त 'निराला' जी और उनके छंदों का अवतरण होता है। पन्त जी ने हिन्दी के ह्रस्व दीर्घ मात्रिक संगीत पर चलने वाले उनके छंदों को तो ठीक कहा है; परन्तु 'बंगला की तरह अपार-मात्रिक-राग' पर चलने वाले उनके कुछ छंदों का राग हिन्दी के लिए अस्वाभाविक हो जाता है, यह उनकी निश्चित धारणा है। अपने मत की पुष्टि के लिए पन्त जी ने रवीन्द्र की 'शाजाहान' कविता की पंक्तियां और 'निराला' की 'अनामिका' से 'पंचवटी प्रसंग' और 'अधिवास' के छंद उद्धृत किए हैं। 'निराला' के पहले छंद के चरण अपार मात्रिक राग की गति पर चलने के कारण राग की गति भंग करते हैं, जब कि दूसरे के ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक राग की गति पर चलने के कारण हिन्दी के उच्चारण संगीत के अनुकूल हैं[2] -- यह पन्त जी ने दिखाया है।

पल्लव के प्रवेश में पन्त जी ने जो कुछ लिखा था, उसका उद्देश्य वास्तव में 'निराला' का विरोध करना नहीं था। वह तो मुक्त काव्य के सम्बन्ध में पन्त जी के अपने विचार थे, ऐसे विचार जो 'निराला' की विचारधारा के सर्वथा विपरीत पड़ते थे। पल्लव के प्रवेश के उस अंश का अवश्य 'निराला' पर गहरा असर पड़ा था, जहां उन्होंने मुक्त काव्य के प्रवर्तन का श्रेय खुद स्वीकार किया था, अथवा जहां वर्णिक मुक्त छन्द को बंगला के अपार-मात्रिक आधार पर लिखा बताया और रवीन्द्र का उदाहरण देकर एक हद तक प्रकारान्तर से 'मनोरमा' और 'प्रभा' की स्थापनाओं की ही संवर्धना की थी। 'मतवाला' में पन्त जी पर लिखते समय ही उनके दोषों के रूप 'निराला' के सामने आ चुके थे, और भावों की विकृति के बाद नवीन जी की इसका संकेत भी उन्होंने दिया था[3]। स्वयं पन्त जी के

---

[1]- पल्लव का प्रवेश, पृ० ४४-४५

[2]- ,, पृ० ४६-४८

[3]- प्रबन्ध पद्म, पृ० १६७

पत्र से 'निराला' को यह मालूम हो गया था कि पन्त जी ने अपनी कविताओं की उनके द्वारा बतलाई अशुद्धियां ठीक कर ली थीं, और शान्तिप्रिय द्विवेदी के पत्र से उन्हें यह सूचना भी यथासमय मिल चुकी थी कि 'पल्लव' की भूमिका में पन्त जी ने उनकी शैली की 'विचारणीय' आलोचना की है।[1] 'निराला' ने पन्त द्वारा अपने प्रति किए गये इस अन्याय का प्रतिकार लगभग एक-डेढ़ वर्ष बाद सन् १९२७-२८ में 'पन्त और पल्लव' लिखकर किया। अवधि का यह अन्तराल पन्त के प्रति 'निराला' के स्नेह और स्पर्द्धा विरोध के मिश्रित भावों के साथ अपनी आलोचना के प्रति उनकी विरक्ति नहीं, न्यायप्रिय प्रबुद्धता का द्योतक है।

अपने विस्तृत विवेचन के अन्तर्गत इस आलोचना का उद्देश्य बताते हुए अथवा अपनी सफाई देते हुए 'निराला' ने लिखा है कि उनका मतलब पन्त जी पर 'अकारण आक्रमण' करना नहीं। जिस विषय पर दूसरों की समालोचना में उन्होंने अत्युक्ति है, अत्युक्ति को उस विषय का साहित्य में अनुल्लिखित रह जाना बुरा जानकर ही 'निराला' ने उसका उल्लेख यहां किया है।[2] आलोचना के लगभग अन्त में 'निराला' ने पन्त का विरोध कर अप्रिय सत्य लिखने पर हार्दिक दुःख प्रकट किया, वे जानते थे कि 'एक मार्जित सुहृद' पर उन्होंने तलवार चलाई है। यहां वे यह लिखना भी नहीं भूले हैं कि साहित्य में कमजोरियों का स्पष्ट उल्लेख अनुचित होने के कारण उन्हें बहुत सी बातों को दबा रखना पड़ा। 'मित्र के नाते पन्त जी के पल्लव में उनकी कविता पर कुछ लिखने से पहले उनसे सलाह लेने के औचित्य की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है, क्योंकि उस सलाह से उनके व्यक्तित्व को किस तरह नीचा देखना पड़ता है' यह तो वे अब तक सोचकर भी नहीं समझ सके। पन्त को कमजोर सिद्ध करने के अपराध के लिए क्षमा याचना करते हुए 'निराला' ने लिखा कि 'उनके अपराध की गुरुता' को सिर्फ इसलिए सहन नहीं कर सके कि 'प्रतिभा के युद्ध में उन्होंने बेकसूर 'निराला' को मारा, और अपने सम्बन्ध में सब कुछ भी गए।' यह सब उन्हें निहायत अनुचित अन्याय' के रूप में दिखाई पड़ा। पन्त के मित्र उनकी आलोचना करना चाहते हैं,

---

१-निराला की साहित्य साधना, पृ०१२६, १-५-२६ को पंत का प्रयाग से निराला को लिखा पत्र, पृ०१३४, निराला को शान्तिप्रिय द्विवेदी का १-४-२६ को लिखा पत्र।
२-प्रबन्ध प्रतिमा पद्म, पृ० १२६-२७

इसके बाद 'निराला' ने 'पल्लव के प्रवेश' में विचारित विषयों पर लिखने की चेष्टा की है। कवित्त छंद को लेकर 'निराला' ने बताया कि 'करोड़ों मनुष्यों के जातीय छंद को लेकर ~~'निराला' ने बताया कि 'करोड़ों मनुष्यों के जातीय छंद को~~-उनके प्राणों की जातीय शक्ति को पराजय कहना' पन्त जी की दूरदर्शिता का परिचायक है। इसका कारण 'निराला' को पन्त जी के स्वभाव के स्त्रीत्व जो उनकी मौलिकता भी है[1] में मिला, जो कवित्त जैसे पुरुषत्व-प्रधान काव्य के समझने में बाधक हुआ। कवित्त की एक अन्यतम विशेषता 'निराला' ने यह बताई है कि 'निर्गुण आत्मा की तरह यह पुरुष भी बनता है और स्त्री भी।' इसके पुरुषत्व का प्रसार जीताल में और सुकोमल स्त्री रूप (तीन ताल) में मिलता है 'भाप तथा छंद में भी कुछ मात्राएं लेकर इसका स्त्री रूप चल सकता है'।

'निराला' के शब्दों में पन्त का मुक्त काव्य-विवेचन उनके 'स्वच्छन्द छन्द के प्रवर्तन की लिप्सा' को बहुत अच्छी तरह प्रकट करने वाला है। पन्त जी ने अपने पल्लव की अधिकांश रचनाओं को इस छन्द में लिखा बताया है। उनका यह कथन 'निराला' की दृष्टि में गीतिकाव्य और स्वच्छन्द छन्द के भेद और उनकी विशेषता विषयक अज्ञान का प्रमाण है[2]। पन्त के स्वच्छन्द छन्द का आधार ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक संगीत को मानने को 'निराला' ने बहुत बड़ा भ्रम कहा है, क्योंकि स्वच्छन्द छन्द की सृष्टि कवित्त छन्द से हुई है, उसमें *art of reading* है, और वह व्यंजन-प्रधान है। उनकी 'पंचवटी प्रसंग' के छन्द की स्त्रीत्व के छन्द से समता दिखाने की चेष्टा को 'निराला' उनके पूर्व कार्यों का संस्कार जन्य फल कहते हैं, वस्तुतः कवित्त छन्द के महत्व को अस्वीकार करने के कारण वह 'छन्द की स्वच्छन्दता' को समझने में वे असमर्थ रहे हैं[3]।

स्पष्ट है कि 'उच्छ्वास' में प्रयुक्त जिस छन्द को पन्त जी स्वच्छन्द छन्द कहते हैं, 'निराला' की मुक्त छंद विषयक विचारणा के अनुसार

१- प्रबन्ध पद्म, पृ० १८८-१८९

२- ,, पृ०१२४

३- ,, पृ० १२५-१२७

उसे मुक्त अथवा स्वच्छन्द छन्द तो कदापि नहीं कहा जा सकता, उनके मुक्तगीत अथवा विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास की श्रेणी में अवश्य रखे सम्मिलित किया जा सकता है, जो ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक संगीत पर चलता है । यहाँ भी पन्त जी की अपेक्षा अपनी सहजनिष्ठ दृश्य स्वतन्त्रता का उल्लेख 'निराला' ने स्वयं ही परिमल की भूमिका में किया है[1] । 'उच्छ्वास' जिसमें मात्रा की गणना भी शास्त्रीय विधि के अनुसार जाती है। 'मिलो'[2] और 'अधिवास' की तुलना करने पर यह अन्तर स्पष्ट हो जाता है । 'निराला' का यही मुक्त गीत वास्तव में अलमस्ती मित्राक्षर छंद है, जिसके वास्तविक निर्माता रवीन्द्रनाथ होने के कारण उसे 'बँगला छन्द' भी कहा गया है' उसकी पंक्तियों में स्वर की तरह प्रसरणशीलता[3] व ह्रस्व-दीर्घ बंधन होने पर भी अन्त में तुक की अवहेलना नहीं की जाती ।'

'निराला' और पन्त के मुक्त छन्द विषयक विवेचन अथवा धारणाओं के अन्तर का एक प्रमुख कारण यह है कि 'निराला' आधार रूप में कवित्त छन्द को स्वीकार करते हैं, और पन्त जी रोलाछन्द को । पन्त जी मुक्त काव्य में भिन्न-भिन्न गति वाले चरणों को साथ-साथ रखना उचित नहीं समझते । गति बदलने के पूर्व विराम देने की आवश्यकता बताकर उन्होंने पल्लव की अधिकांश रचनाओं को इसी छन्द में लिखा कहा है । परिवर्तन को उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर उन्होंने स्पष्ट किया कि जहाँ भावना का क्रिया-कम्पन और उत्थान-पतन है, कल्पना उद्वेलित और प्रसारित है, वहाँ रोला छंद आया है, अन्यत्र १६ मात्रा का छंद । रोला को वे अन्त्यानुप्रास हीन कविता के लिए विशेष उपयुक्त पहले ही स्वीकार कर चुके थे[4] । पन्त जी का यह वक्तव्य उनके मुक्त छन्द के सम्बन्ध में 'निराला' की धारणा की सत्यता का स्वतः ही प्रमाण है । 'परिवर्तन' में छन्द का जो रूप है, वहाँ कवित्त की तरह 'रोला' का मुक्त रूप नहीं है । अन्यथा

१-परिमल की भूमिका, पृ० ४८-४६

२-विशाल भारत मई४६--'हिन्दी कविता का आधुनिक जीवन, पृ०६३५

३- निराला काव्य पर बंगला प्रभाव, पृ०१३२-- डा० चन्द्रनाथ चौधरी

४-पल्लव का प्रवेश, पृ०४२,४६

इसकी नाटकीय विशेषता देखी जा सकती है कि पन्त जी के उसे नाटकीय रूप दे सकने की और उनका ध्यान शान्तिप्रिय द्विवेदी को आकृष्ट न करना पड़ता[1]। पन्त का मुक्त छन्द को रूढ़िपोषित कहना और उसे व्यंजन प्रधान बताना अवश्य निराला के अनुकूल था, और यही एकमात्र स्थल है जहाँ उनका मुक्त छन्द विषयक धारणा में सादृश्य हम पाते हैं।

पन्त और उनके पल्लव विषयक अपने बृहद् विवेचन में 'निराला' ने अपने और पन्त जी की दृष्टि का जो इतिहास प्रस्तुत किया है, वह पन्त जी की स्वच्छन्द छन्द के प्रवर्तन की लिप्सा के साथ विरोध में पड़ता है। 'जुही की कली' और 'अधिवास' के रचना-काल के सम्बन्ध में दिए 'निराला' के वक्तव्य के औचित्य पर शंका की जा सकती है, परन्तु इतिहास की दृष्टि से दिया 'निराला' का यह वक्तव्य कि पन्त जी को प्यार करने के आठ महीने पहले से हिन्दी जनता की आँख की किरकिरी हो चुके थे; पन्त जी को लोगों ने अच्छी तरह तभी जाना जब शायद २४ की सरस्वती के फरवरी वाले अंक में 'मौन निमन्त्रण' से लगातार उनकी रचनाएं निकलने लगीं और वे स्वयं आठ महीने पहले से 'मतवाला' के मुखपृष्ठ पर आ रहे थे, पन्त जी का उच्छ्वास सिर्फ छपा था, जनता के पास पहुँचा था या नहीं, कहा नहीं जा सकता और उनकी कृतियों से पहले गुप्त जी का उर्मिला वीरांगना काव्य सरस्वती में निकल चुका था[2], अवश्य सन्दिग्धता से मुक्त ही है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में प्रसाद और पन्त के उपरान्त 'निराला' का उल्लेख किया है, जिससे काव्य क्षेत्र में उनसे पहले पन्त के प्रवेश का संशय संभव है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने तो पन्त जी का आविर्भाव 'निराला' के कुछ पूर्व निश्चित रूप से माना है[3]।

पन्त जी के खड़ी बोली और ब्रजभाषा के विवेचन से भी 'निराला' ने अपनी असहमति बता, 'सत्य विवेचन' की दृष्टि से इस विषय पर

१- ज्योति विहग, पृ०१३० दिसम्बर१७ का लेख

२- कवि निराला, पृ०३० -- आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

३- विशाल भारत, मार्च ३२ --'निराला जी की कविता', पृ०३५५

विस्तार से विचार किया है । लेख के अन्तिम अंश में पन्त जी की कविताओं के निबाह में सार्थकता की कमी, परन्तु सौन्दर्य चित्रण और 'आर्ट के विवेचन' में उनकी कमाल 'निराला' ने दिखाया है । पन्त जी की मौलिकता उनकी सहृदय दृष्टि और रुचि के अनुसार शब्दों में किए उनके परिवर्तन और नवीन युग की इस प्रतिभा की भी 'निराला' ने यथेष्ठ प्रशंसा की है, उन्हें वे कुशाग्र बुद्धि और नाजुक अंदाज़ कवि कहते हैं[1]। पन्त की सबसे जबरदस्त कौशल है अपने विषय को अनेक उपमाओं से सँवार कर मधुर और कोमल बनाना, रूपक और अलंकार बाँधना उनके बाएं हाथ का खेल है । यह भी 'निराला' ने बताया है[2]। 'निराला' के इस प्रशंसा वाले अंश में भी उनकी दोष-दर्शन की नीति का एकान्त अभाव हम नहीं पाते हैं ।

लेख के अन्तिम अंश में 'निराला' ने उन लोगों की भी निन्दा की है, जो 'केवल गिराने में व दूसरों की सहायता के लिए उत्सुक' रहते हैं । हिन्दी साहित्य में ऐसे रत्न के भी जौहरी नहीं हैं, इस पर दुःख प्रकट कर वे लिखते हैं -' पत्रों के सम्पादकों और वृद्ध साहित्यिकों को हास्य-क्रूर वक्र दृष्टि से ईश्वर साहित्य की रक्षा करे । ये लोग तीन पुश्त तक दांव चुकाने की हिंसा धारण कर सकते हैं[3]।'

' पंत और पल्लव' के बाद 'निराला' के लेखों में पंत का उल्लेख प्रायः आया करता था, जिनमें उनका स्वर बदला नहीं है, अर्थात् दोष दर्शन और प्रशंसा दोनों साथ ही चले हैं; प्रशस्ति के भीतर भी उनका आलोचक छुपा रहा है ।'परिवर्तन' को उन्होंने निस्संकोच किसी भी बड़े कवि की कृति से मैत्री करने में समर्थ बताया था; पद्म सिंह जी के सामने ही उसे रखा,[4] 'पल्लव का उल्लेख कर उसे मंगलाप्रसाद पारितोषिक न मिलने का कारण उन्होंने आलोचकों की योग्यता बताया था[5], सन् ३४ में भी 'प्रतिभाशाली सुकुमार कवि'

१- प्रबन्ध पद्म, पृ० १६०-६१
२- ,, पृ० १७८
३- ,, पृ० १७५
४- ,, पृ० १६५, प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १६७
५- चयन पृ० ५०

पन्त और उनके अनुपम 'ज्योत्स्ना' को उन्होंने नाटक समस्या में याद किया; काव्य और विचार का उत्कृष्ट सामन्जस्य बता दोषों का ओर से आंख मूंदकर उन्होंने 'ज्योत्स्ना' की धवल रूप-राशि को प्रिय-दृष्टि से देखकर उन्हें पसन्द है, यह बताया है[1]। पन्त-निराला विवाद का दूसरा महत्वपूर्ण अंश सन् ३६ में उनके 'मेरे गीत और कला' के प्रकाशन से सम्बद्ध है।

'पल्लव' के प्रवेश में "'निराला' पंत के आलोच्य थे"

'वीणा' की भूमिका में पन्त जी ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को उनके आक्षेपों का उत्तर दिया है। हिन्दी संसार के छिद्रान्वेषी मुषक दृष्टि वाले उद्भट समालोचक और 'वारि' विचार के प्रेमियों के कठोर आख्यान' के साथ उन्होंने 'निज कवित्त केहि लाग न नीका' किंवदन्ती को भी याद किया और अपने कवि को निर्भय बताया[2]। इसके उपरान्त पन्त जी ने स्पष्टरूप से आचार्य प्रवर का उल्लेख कर विस्तार से उनके प्रश्नों का उत्तर दिया है। 'सुकवि किंकर' के लेख का स्मरण करते हुए उन्होंने उसे पढ़कर 'कंठा-स' उपनाम रखने की अपनी इच्छा और अपने अन्य मिष्टिका मित्रों की तरह तटस्थ न रहने का और चाणक्य की प्रवृत्ति के लोगों के डर दिखाने का उल्लेख किया है। सुकवि किंकर महोदय से न्याय की मांग कर उन्होंने प्रश्न किया है "सहज ही में, अपने आप ही जाने वाली इस छायावाद की कविता को छोड़कर एकदम पुच्छ विषाणहीन पशु बन जाना कहां तक बुद्धिमानी है।" उन्होंने बताया कि सब सोच-समझकर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि एकान्त: शायद उन्हें तो कुछ न कुछ लिखना ही पड़ेगा, नहीं तो हिन्दी में 'उच्चकोटि की सुन्दर, सरस कविता लिखेगा कौन?'[3]

शान्तिप्रिय द्विवेदी ने 'निराला' के रहस्य की बात सुनाई। 'वीणा' की भूमिका में पन्त जी ने द्विवेदी जी के 'सरस्वती' वाले लेख की अच्छी चुटकी ली थी। इंडियन प्रेस वालों ने इसीलिए उसका वितरण बन्द करा, आपत्तिजनक अंश निकाल कर पुन: बाजार में भेजा।' शायद इसी रंग में

१-प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०४८
२-वीणा, विज्ञापन, पृ०१, २५अगस्त २७
३-गद्य-पथ, पृ०४४-४५

पन्त जी ने 'सरस्वती' में लिखना बन्द कर दिया है। वे उदासीन हो गये हैं।[1] सन् २७ में सरस्वती के केवल जुलाई के अंक में पन्त जी की एक कविता 'इन्द्रधनुष' प्रकाशित हुई। इसके बाद अप्रैल सन् ३३ में पुन: उनकी कविता 'लहरों का गीत' लम्बे अन्तराल के उपरान्त 'सरस्वती' के में निकली।

पन्त और पल्लव लिखते समय 'निराला' ने भी साहित्य की मंच पर महावीर के प्रहरण-कौशल-प्रदर्शन का स्मरण किया है। लंका-दहन का रूपक बाँधकर 'निराला' ने आचार्य के क्रोध का स्वाभाविक कारण बताया है, उनका दुख और भिन्न की अंध मोह। उन्होंने इस अग्नि के निरन्तर बढ़ने, उसे विभीषण के रूप में रामनाम अंकित न मिलने पर साहित्य के लंका काण्ड का पड़ न जमने और भविष्य में हिन्दी साहित्य की रामायण न लिखी जाने की आशा के सुदृढ़ होने का उल्लेख भी किया है, परन्तु इस अग्नि संयोग से 'निराला' ने हिन्दी कविता की सीता के उद्धार का श्रीगणेश हुआ समझा और इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि 'न अब तक किसी कविराय ने स्याही के समुद्र में लांगुल अनल की ज्वाला प्रशमित की, न उनके विरोधियों ने ही 'तैल बोरि पट बाँधि पुनि' की कल-कंठ ध्वनि थामी की।'[2]

'हिन्दी कविता साहित्य की प्रगति' पर विचार करते हुए मार्च २८ की सुधा के अंक में 'निराला' ने खड़ी बोली के कवियों के कविता में 'गिटकिरियाँ और तान भरने' और ब्रजभाषा भक्तों के सम्बद्ध होकर रण घोषणा करने, 'किसके चमत्कार में लालित्य अधिक है', इसकी जांच न चलने का उल्लेख किया है खड़ी बोली की दास्य-मुक्ति के परिचय के लिए उन्होंने अपनी प्रतिभा के ज्वर से जर्जर निन्दोक्तियों द्वारा समाज को प्रबुद्ध करने वाले कवियों को लिया है। खड़ी बोली को सर्वाधिक मधुर करने का श्रेय उन्होंने 'राष्ट्र के अष्टमर्म कवियों को दिया, जिनकी प्रतिभा के प्रखर प्रवाह से शब्दों के गले में 'आलिंगन' करने की शक्ति न रही, निष्कर्ष यह कि इस गौरव-गान में 'स्पर्धा और कर्कशता ही रही, प्राणों की प्रसन्न पूर्णता नहीं' यहाँ सहृदयता की कमी और शक्ति का विकास अधिक था। 'निराला' के शब्दों में 'गारियार बैल से छल

१- निराला की साहित्य साधना, पृ०१५२--डा० रामविलास शर्मा

२- प्रबन्ध पद्म, पृ०११०-१११

चलवाने की चेष्टा की तरह ही खड़ी बोली के शब्दों से कविता की जमीन पर संचरण का गुरुकार्य कराया गया है।[1]

हिन्दी के उत्तरदायी लेखक और सम्पादक गणों के छायावादी काव्य समझ में न आने के आक्षेप के उत्तर में 'निराला' ने बताया कि 'कमजोरी कहाँ पर है।' हिन्दी में छायावाद समझने वाले और उसका समर्थन करने वाले भी हैं, स्वयं 'निराला' उन कविताओं को भाषा साहित्य के विकास के विचार से अधिक विकसित रूप मानते हैं।[2] उन सम्पादकों और लेखकों को 'निराला' ने विस्तृत उत्तर दिया 'साहित्य की नवीन प्रगति' पर लिखकर। कथा-वाचन की शैली में प्रारम्भ में खड़ी बोली की प्राचीन ठाठ की कविता को छायावाद के मियादी बुखार से पीड़ित, उसके बचने की कठिनाई 'सुकवि किंकर' वैद्यराज भी जवाब दे चुके, आचार्य देव के गम्भीर भाव से मकरध्वज लेकर आने, आश्वस्त हो मुस्कराने, पुनः सबके अपने-अपने घर की राह पकड़ने पर जनता के विश्वास कि छायावाद का भूत हिन्दी कविता को ले गया का उल्लेख 'निराला' ने किया है। ऐसी संदिग्ध परिस्थिति में कुछ लोगों के आगे आकर किसी प्रगति में उल्टे-सीधे बढ़ चलने के सन्दर्भ में 'निराला' ने 'विशाल भारत' के संपादक और पं० रामचन्द्र शुक्ल का नाम लिया है। उन्होंने बताया कि मौलिकता के विचार से चतुर्वेदी जी ने 'छायावाद' और 'घासलेट' की कल्पना निकाली थी, अब छायावाद के बारे में विशाल भारत के निष्कर्ष देखने शेष हैं। यहाँ चतुर्वेदी जी की हैरानी देखकर 'निराला' ने उन्हें महात्मा जी से छायावाद पर एक खण्डनात्मक लेख लिखाने की सलाह दी है।

आचार्य शुक्ल को 'निराला' ने चतुर्वेदी जी की सहायता के लिए 'धुरी' धारण करने वाला कहा है।'सुधा' में प्रकाशित उनकी अभयवाणी 'पाखण्ड प्रतिषेध' के दो छन्द उद्धृत कर निराला ने साहित्य में इस तरह की आवाज़ प्रचार आदि की अक्षमता और गंवारपन का परिचायक कहा, उसे स्वीकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं। निराला गेय में शुक्ल जी के उत्तर

१- चयन, पृ०७३,८०

२- प्रबन्ध पद्म, पृ०२७-८

देने को तैयार हैं, क्योंकि पद में इस प्रकार का व्यवहार है, वे अनभिज्ञ हैं । शुक्ल जी के शब्दों में ही 'निराला' ने उनसे काव्य मजबूत कक करके लोक-जीवन-सम्पन्न आने को कहा । 'पाखण्ड प्रतिषेध' के चौथे पद के अन्तिम चरण कक में १६ के स्थान पर १६ अक्षर अथवा यतिभंग दोष दिखलाकर 'निराला' ने शुक्ल जी के काव्य को अपना शिष्यत्व स्वीकार करते दिखाया है[१]। शुक्ल जी के लोक और उनकी रहस्यवादी कामनाओं के विवेचन की आलोचना करते हुए 'निराला' ने लिखा कि शुक्ल जी ने स्नेह की 'उज्ज्वल कवित्व शक्ति' को उसी तरह छिपाने की कोशिश की है, जिस पर वे अपनी 'महोच्च विज्ञता' छिपाया करते हैं । 'निराला' ने वेदान्त की भाव भूमि पर सिद्ध किया कि वह अपने समय का युग प्रवर्तक था[२] ।

शुक्ल जी के बाद 'निराला' ने पद्मसिंह शर्मा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति पद से दिए गए उनके भाषण को लिया है । नवयुवकों की रचनाओं और तत्सम्बन्धी सामग्री पर विशेषरूप से विचार करने का श्रम 'निराला' के विचार से, शर्मा जी ने दो कारणों से नहीं किया है । एक तो शायद इसलिए कि ये लोग अंग्रेजी और हिन्दी आदि के विद्वान हैं और शर्मा जी संस्कृत-फारसी हिन्दी आदि के तथा विचारों का मतभेद ध्यान न देने का एक दूसरा कारण हो सकता है । अकबर और हाली की उक्तियों से उनकी शिक्षा देने का प्रयास उन्हीं के वर्तमान साहित्य के धारा की ढकी मर्यादा को प्रकाशित करने वाला है । नवीन रचनाओं में पैरे में पाई से भी कम रहस्यवाद लिखने के शर्मा जी के उल्लेख के सम्बन्ध में 'निराला' ने दुःख प्रकट किया कि वह पाई भर की पूंजी भी उनके भाषण में नहीं थी, अन्यथा वे भी समझते कि शर्मा जी ने पाई को पाई ही समझा है या नहीं ? अकबर के उद्धरण के उत्तर में 'निराला' ने उनके सम्मुख तुलसी का 'पिता तज्यो प्रह्लाद' आदि पद प्रस्तुत किया[३] ।

यहाँ 'निराला' ने विद्वान और काव्य-मर्मज्ञ शर्मा जी के

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०१६०-१६१

२- ,, पृ० १६२-६ १६३

३- ,, पृ० १६५-१६६

प्रति अपनी यथेष्ट श्रद्धा और सेवा-भाव के प्रदर्शन के साथ उनको प्रसन्न करने और उनके प्रतिकूल लिखकर दुःखी होने की बात भी लिखी है। 'पल्लव' और वीणा पर उनके कटाक्ष का कारण 'निराला' ने उनका शायद पल्लव की केवल भूमिका ही पढ़ना और ब्रजभाषा के प्रति उनका विशेष प्रेम, बताया है। 'परिवर्तन' की पंक्तियाँ शर्मा जी ने नहीं देखी होंगी, लिखकर 'निराला' ने उसका समर्थन किया है[१]। लेख के अन्त में लक्ष्मी और उसके वाहन उल्लू का तथा वाणी के वाहन राजहंस, जिनके लिए 'भारतीयैव नव चंदनाय' कहा गया है का दृष्टान्त रखकर 'निराला' ने अपनी दुनियादारी वाले बड़े भाई शुक्लजी की अपनी गुरुता का आग्रह करने पर उनका अदब करने से अपने आपको मस्तक बचाने का उल्लेख किया है, क्योंकि चंदन भले ही हो, हम भारवाही होने से बहुत घबराते हैं[२]।'

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में 'रहस्यवाद' पर बोलते हुए भी 'निराला' ने रहस्यवाद और छायावाद की मूल धाराओं को समझाने के लिए अध्ययन और मनन की आवश्यकता का उल्लेख कर प्रोफेसर श्रेणी के लोगों पर व्यंग्य किया था; चतुर साहित्यिकों के अज्ञान से उत्पन्न अन्धविश्वास से हानि होना बताया था[३]।

'निराला' का पंत और पल्लव आलोचना जब माधुरी में निकल रहा था, सुधा के अप्रैल २८ के अंक में पं० हेमचन्द्र जोशी और इलाचन्द्र जोशी का 'साहित्य कला और विरह' लेख निकला। सुधा के दिसम्बर अंक में 'निराला' ने 'कला के विरह में जोशी बन्धु' लिखकर उपर्युक्त लेख की विवेचना की, जिसे उनके विरोध का तीसरा प्रकरण कहा जा सकता है साहित्य क्षेत्र में अपने व्यापक विरोध और आचार्यों की अपने हाथों अपनी नाक काटकर दूसरों का सगुन बिगाड़ने का साहित्य-सेवा करने की शिक्षा का उल्लेख 'निराला' ने इससे पहले किया है। अपने खिलाफ 'आवाज का झंडा' खड़ा करने वाले स्वाधीन चेता

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० २६७

२- ,, पृ० २६९-२७०

३- चाबुक, पृ० ३७-३८
प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० २५८-२६६

महापुरुषों में उन्होंने 'वृद्ध संपाती और समागत लंगूर दल' लिखकर आचार्य द्विवेदी को याद किया है[1]। जोशी बन्धुओं ने 'निराला' का ध्यान विशेष आकृष्ट किया, क्योंकि हेमचन्द्र जोशी 'मारवाड़ी अग्रवाल' के संपादक-काल में प्रेमचन्द की कला-रहित कृतियों की आलोचना कर चुके थे और इलाचन्द्र जोशी ने 'माडर्न रिव्यू' में लिखे लेखों में कला की आवाज उठाई थी[2]।

अतः भूमिका के पश्चात् 'निराला' की पहली स्थापना यह है कि जोशी बन्धु 'विकासवाद' में डार्विन पंथी हैं, उन्हें भारतीय सृष्टि तत्त्व का ककहरा भी नहीं मालूम। 'निराला' ने सृष्टि के अनादि और उसका विकास ज्ञान से होने का उल्लेख कर बताया कि अन्य अभिव्यक्तियों की भांति कला में भी सत्-असत् देव और असुर भावों का मिश्रण रहता है। 'कला कला के लिए' सिद्धान्त से अपनी असहमति प्रकट कर 'निराला' ने लिखा कि अपनी मर्जी के अनुसार लिखना महमूद मियां का अपने बकरे के पूंछ की तरफ से जिबह करने की तरह है[3]।

जोशी बन्धुओं के वेदान्त ज्ञान की परीक्षा भी 'निराला' ने की है। उनके वाक्य 'जब आनन्द के कम्पन ने अव्यक्त को विद्ध करके व्यक्त प्रकृति को परिस्फुटित किया, तब सृष्टि के रोम-रोम में विरह का भाव व्याप्त था।' का विभाजन करके उसका यथार्थ आशय समझाते हुए 'निराला' ने उपनिषद् की उक्ति अव्यक्त स्वयं व्यक्त हुआ है-- बताकर उनके सृष्टि तत्त्व की निरर्थकता स्पष्ट की है। जोशी बंधुओं के विरह भाव की व्याप्ति की कल्पना तो 'निराला' के शब्दों में और गज़ब ढा रही है-- इस कुल भाषण के बाद एक 'छू:' जोड़ देने की आवश्यकता थी, बस, बना-बनाया सांप का मन्त्र था। निष्कर्ष यह कि या तो जोशी बन्धु हिन्दी में भावों की अभिव्यक्ति का तरीका नहीं जानते, अथवा जो वे लिखना चाहते हैं, उसे खुद ही नहीं समझते और उनके इस अज्ञान का फल पाठकों पर भी पड़ता है[4]।"

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १३६
२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १३७-१३८
३- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १३८-१४०, १४२
४- ,, पृ० १४४-१४५

पं० रामचन्द्र और इलाचन्द्र जोशी की यह मान्यता कि दृष्टि जन्य विरह के भाव द्वारा आनन्द का अनुभव सनातन नारीत्व भाव के कारण ही सम्भव है और जिसे उन्होंने सीता के पाताल प्रवेश द्वारा समझाया है, 'निराला' की दृष्टि में खुराफात के सिवा और कुछ नहीं ।' उनके शब्दशास्त्र और प्रकाशन के ढंग के सम्बन्ध में 'निराला' ने आगे लिखा है । रामायण के यथार्थ सत्य पर प्रकाश डालते हुए 'निराला' ने जोशी बन्धुओं द्वारा तुलसी की अपेक्षा रवीन्द्र के गुरुत्व का आभास देने वाले तद्विषयक उल्लेख को उनके अज्ञान का प्रमाण माना है । अन्त में इन दोनों के प्रति अपने कटु शब्दों के प्रयोग के लिए विशेष दुःख प्रकट करते हुए 'निराला' ने लिखा कि उन्हें दुःख इसलिए नहीं है कि अपराध के उत्तर में उन्हें यह अपराध करना पड़ा है , आवेश के अज्ञान में नहीं,और उन बन्धुओं के अज्ञान का इतना बड़ा आडम्बर उनकी प्रसन्न प्रकृति को असह्य हो रहा था[१]।

'परिमल' के प्रकाशन के अवसर पर 'निराला' ने उसकी भूमिका में तात्कालिक परिस्थितियों का परिचय देते हुए लिखा था कि इस युग के प्रतिभाशाली अल्पवयस्क साहित्यिक प्राचीन गुरुडम के स्वच्छन्द साम्राज्य में आवृत करने के लिए शासन दण्ड पा रहे हैं, साहित्य क्षेत्र में प्रशंसा और आलोचना के आदान-प्रदान चलते हैं;साहित्यिकों में दलबन्दी के भाव हैं और साहित्य में गुलामी प्रथा की ही पुष्टि हो रही है[२]।

छायावाद के विरोधी आचार्यों को 'निराला' ने निरन्तर अपने निबन्धों में याद किया है । अगस्त २६ के माधुरी के अंक में खड़ी बोली के कवि और कविता' पर लिखते हुए उन्होंने खड़ी बोली की कविता में प्राण प्रतिष्ठा करने का श्रेय आचार्य द्विवेदी को दिया और भाषा की प्राथमिक दशा के महत्व की पुष्टि में उनकी कुछ पंक्तियां भी उद्धृत कीं । इन पंक्तियों में आए 'महाना' शब्द को पकड़ कर 'निराला' ने अन्तिम वर्ण को दीर्घ बनाने के उद्देश्य से आचार्य प्रवर के ब्रजभाषा की शरण लेने और तुक के विचार से 'महाना' की

१- प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०१५४

२- परिमल की भूमिका,पृ०७-८

३- [illegible]

विजय दिखाकर लिखा --"दोष तो सिर्फ छायावादियों के शब्द-विकार के पकड़े जाते हैं।" एक अन्य उदाहरण में अन्तिम पंक्ति में एक मात्रा कम दिखाकर 'निराला' ने आचार्य द्विवेदी के छन्द शास्त्र के आचार्य ठहरने का उल्लेख किया है[1]।

ऐसा लेख में 'निराला' ने पं० रामचन्द्र शुक्ल का उल्लेख कर उन्हें कवि से ज्यादा 'बहु पाठक विद्वान' माना है। शब्दों की तौल और अलंकारों के निर्वाह में उनकी असमर्थता के साथ 'निराला' ने सोदाहरण बताया, 'कवित्त छन्द में यह चूक हो जाती है, यही उनकी विशेषता है।' उन्होंने शुक्ल जी के कवि लेख और उनकी दार्शनिक कविताओं की भी आलोचना की है[2]। कदाचित् पाखण्ड प्रतिषेध से चुके नहीं थे। 'सुधा' में इनपर एक कविता भी उन्होंने लिखी थी।

पं० रूपनारायण के सम्बन्ध में उनके मौलिक कविता कम लिखने और अनुवाद कार्य को लक्ष्य कर 'निराला' ने लिखा था 'अब भी हिन्दी अपने सरस हृदय कवियों का भरण पोषण नहीं कर सकती। कदाचित् यही कारण है कि कविता के क्षेत्र में अधिक काम करने का हौसला नहीं रहा, यह बंगला की उत्तम पुस्तकों का अनुवाद करने लग गये[3]।' 'मतवाला' में प्रकाशित 'चलता हुआ पुर्जा' में इनके अनुवाद कार्य की जांच 'निराला' कर चुके थे[4]।

नवम्बर २९ की 'सुधा' में 'निराला' ने 'मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार-साम्य' दिखाते हुए एक लेख लिखा था। उक्त लेख में मिर्जा गालिब के एक शेर का 'निराला' द्वारा अर्थ का अनर्थ हुआ है, इस ओर कानपुर के 'मनस्वी' पत्र में श्री रमाशंकर अवस्थी ने ध्यान आकृष्ट किया। फरवरी ३० की 'सुधा' में मनस्वी को उत्तर देते हुए 'निराला' ने बताया कि अर्थ सीधा करने की दृष्टि से उन्होंने गालिब के शेर का भावार्थ लिया था; इसके साथ ही

१- चयन, पृ०४०-४२ ३२
२- ,, पृ०४०-४२
३- ,, पृ०४३
४-चाबुक, पृ०४३, मतवाला १८ जून २४, पृ०८५४

कथामत को प्रधान मानने का उद्देश्य सूरदास की पंक्तियों में रस। भाव का साम्य दिखाना भी था । अवस्थी जी और उनकी फिलासफी पर व्यंग्य करते हुए 'निराला' ने उन्हें भूंकने के साथ काटना सीखने की सलाह दी और ' मैं मुर्गियां नहीं हलाल करता फिरता । लिखकर सूचित किया कि वह लेख उन जैसों के लिए नहीं लिखा गया था, क्योंकि मैं भैंस के आगे बीन मैं नहीं बजाते । 'निराला' ने पूछा था कि क्या उनके अन्दर के आलोक में जितनी आग है, उसके सहने की ताब अवस्थी जी में है ? इसी सम्बन्ध में यहां 'निराला' की स्पष्ट घोषणा थी : "मैं अगर हिन्दी के मैदान से खदेड़ा हुआ मनुष्य हूं, तो राष्ट्रभाषा के प्रवर्तक के समय प्रादेशिक महारथियों के मुकाबले में अपार स्वातन्त्र्य शिक्षा के बल पर मनुष्य हृदय का भेद करने वाला दूसरा और है कौन ?"[1]

'निराला' विषयक विरोधी आलोचना का एक महत्वपूर्ण प्रकरण 'विशाल-भारत' और उसके सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के साथ जुड़ा हुआ है । विशाल-भारत ने सन् २८ के लगभग मध्य में 'घासलेट विरोधी आन्दोलन' प्रारम्भ किया था, जिसका उपसंहार दिसम्बर २६ के अंक में हुआ । चतुर्वेदी जी ने उपसंहार के प्रारम्भिक नोट में आन्दोलन का नेतृत्व छोड़ने के निश्चय की सूचना के साथ उन्हें यदि कहीं-कहीं व्यक्तिगत बातें लिखनी पड़ीं उसके लिए पाठकों से क्षमायाचना भी है । इस प्रकार 'निराला' का जो विरोध आप करने वाले थे, उसकी भूमिका आपने बांधी ।

आन्दोलन के सूत्रपात के सम्बन्ध में चतुर्वेदी जी ने सूचित किया कि 'विशाल-भारत' में आने से पहले जब वे 'आर्यमित्र' के सम्पादकीय विभाग में थे, जुलाई २७ में उन्होंने 'दिल्ली का दलाल' पुस्तक पढ़ी और तभी इस प्रकार की पुस्तकों के विरुद्ध कुछ लिखने का विचार उनके मन में आया था । उन्होंने श्रीयुत सुन्दरलाल और गिडवानी जी से ऐसी पुस्तकों को दिखाकर उनका रिव्यू कर उनके विरुद्ध आन्दोलन चलाने की बात कही, जिस पर गिडवानी जी ने

१- चयन, पृ०१७५-१७६

उन्हें सम्मत्यर्थ पुस्तकें आने पर ही उनकी आलोचना करने की सलाह दी थी। इस स्पष्टीकरण की धारणा को बताते हुए चतुर्वेदी जी ने 'साहित्य-समालोचक' में प्रकाशित 'निराला' के लेख के उस अंश की ओर संकेत किया, जहाँ उनका नाम लिया गया था[1]।

चतुर्वेदी जी ने 'निराला' के सम्बन्ध में लिखते हुए बताया कि छायावाद की कल्पना को उनके सर मढ़ने को 'निराला' के विचार से बढ़कर दूसरा प्रमाण उनकी बेसमझी का नहीं हो सकता। उन्होंने बताया कि उस आन्दोलन का आरम्भ 'विशाल भारत' के विज्ञापन के लिए कहाँ हुआ था, उससे 'विशाल भारत' का कुछ विज्ञापन हुआ ज़रूर। यह दूसरी बात है। उसके साथ ही आन्दोलन के कारण अपने पत्र के विरोधियों की संख्या बढ़ने और ग्राहकों की संख्या कम होने का उल्लेख भी उन्होंने किया है। चतुर्वेदी जी ने अपने सम्बन्ध में विरोधियों द्वारा फैलाई दूसरी गलत फहमी था, उनका दकियानूसी ख्याल का होना और स्कूलों में दुराचार आदि के विरुद्ध आन्दोलन करने का विरोधी होना। आन्दोलन प्रारम्भ करने के उद्देश्य के लिए उन्होंने मई २८ के अंक की संपादकीय टिप्पणी 'जलती भी सद्गमय' बड़े के कुछ अंश उद्धृत किए। 'मतवाला' में 'पर्दे में पाप' धारावाहिक कहानी के बन्द होने और 'हिन्दू पंच' के 'व्यभिचार मंदिर' की अन्तिम नमस्कार करने का उल्लेख भी चतुर्वेदी जी ने किया है[2]।

'निराला' ने चतुर्वेदी जी के महात्मा जी से छायावाद पर खण्डनात्मक लेख लिखवाने की राय दी थी, चतुर्वेदी जी ने बापु को 'मतवाला' का अंश भेजकर उसके ढंग से उनकी अभिज्ञता तथा उद्देश्य पर आक्षेप की सूचना दी[3]। प्रेमचन्द को वे पहले ही अपने १५ नवम्बर के पत्र के आन्दोलन को समाप्त करने की सूचना दे चुके थे, और इस विषय में उनकी सम्मति भी मांगी थी। पत्र में चतुर्वेदी जी ने लिखा था --' मैंने सुना था कि 'आपने 'भारत' में मेरे समर्थन में एक चिट्ठी

१- विशाल भारत, दिसम्बर २६, पृ० ८१७

२- ,, ,, ,, पृ० ८१८

३- ,, ,, ,, पृ० ८२४

लिखा था । क्या उसकी प्रतिलिपि आपके पास है ? मैंने रख छोड़ा था, पर वह खो गई । "आन्दोलन के प्रति प्रेमचन्द की सहानुभूति पर विश्वास और 'प्रताप', 'कर्मवीर' जैसे राष्ट्रीय पत्रों के भी 'बिल्कुल ignore करने पर चतुर्वेदी जी ने खेद भी पत्र में प्रकट किया था[1] ।

नवम्बर सन् ३८ की माधुरी में प्रकाशित 'काव्य साहित्य' लेख में हिन्दी के नए साहित्य का समर्थन, आलोचकों की योग्यता और साहित्यिक स्पर्धियों के आफत ढहाने की प्रवृत्ति का विवेचन करते हुए मुख्यतः आचार्य शुक्ल और बनारसीदास चतुर्वेदी पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है । विचार, केवल काव्य का उचित लिखकर 'निराला' ने कवियों पर लगाए गए स्वदेशाग्यता के आरोप को याद कर बताया कि प्रायः अधिकांश आलोचक भी अपने ही विवर के व्याघ्र बने बैठे रहते हैं, अपनी ही दिशा के ऊँट बनकर चलते हैं[2] । "आलोचकों की कृपा से बचने वाले भाग्यवान कवि संसार में कम बताकर 'निराला' ने प्रसाद की सहानुभूतिरहित, आक्रामक आलोचनाओं का स्मरण कर लिखा कि समालोचक वृत्ति की दुर्दशा कर अपना ठाठ बाँधकर कभी भी टिक नहीं सकता । पं० रामचन्द्र शुक्ल ऐसे ही दुर्वासा समालोचक हैं, जिनका अहंकार और हठ, छायावादी कवियों से उनकी अपार घृणा 'काव्य में रहस्यवाद' पुस्तक से स्पष्ट है[3] ।

कृति का मुख्य गुण रोचकता बताकर आगे 'निराला' 'उग्र' के चित्रों को हिन्दी समाज का परिचायक कहकर उनका समर्थन करते हुए बर्नार्ड शा, डी०एल० राय का उल्लेख करने वाले उनके समालोचकों को यहाँ 'अर्थ की [illegible]' में न रहकर चीन या विलायत जाने की सलाह दी[4] । ब्रजभाषा-प्रेमियों की अकारण हिन्दी की नवीन कृतियों को नीचा दिखाने की रुचि से साहित्य का अपकार होता है, उनका उद्देश्य केवल मनोरंजन होता है, अतः उन्हें साहित्य के व्यापक मैदान से हटा देना चाहिए, 'निराला' ने अपना यह अभिमत प्रकट किया है[5] ।

१- चिट्ठी-पत्री, भाग२,पृ०७२, संपादक-अमृतराय .
२- चयन,पृ०४६-५०
३- ,, पृ०५२-५३
४- ,, पृ०५३-५४
५- ,, पृ० ५८

भारतीय साहित्य में संस्कृति की दुहाई देने वालों को सम्बोधित कर उन्होंने लिखा-"नस-नस में शराफत भरी, हजार वर्ष से सलाम ठोंकते-ठोंकते नाक में दम हो गया, जभी संस्कृति लिए फिरते हैं।" साहित्यिक सुधारपंथी भी ऐसे ही हैं, जो कुछ न लिख पाने के कारण 'दूसरों की कृति पर हमला करके स्वयं महालेखक बन जाना चाहते हैं। परन्तु प्रचार और प्रोपेगेण्डा से साहित्य मंजिलों दूर है। इसी सन्दर्भ में बनारसीदास चतुर्वेदी के प्रसाद पर भाषा-क्लिष्टता के दोषारोपण का स्मरण कर 'निराला' ने लिखा कि मैं इस दोष को उनकी मर्यादा के योग्य तभी मानने को तैयार हूँ, जब मैं डी०एल०राय के ऐतिहासिक नाटकों की भाषा के सम्बन्ध में भी ऐसा ही नोट 'माडर्न रिव्यू' में छपा देखूँ। आलोचकों से प्रसाद के इस अभिशाप को 'निराला' बहुत बड़ा साहित्यिक अन्याय मानते हैं, तथा उन्हें लिखना पड़ा है कि 'आलोचकों ने अपने को जितना बड़ा समझदार समझ लिया है, यदि कुछ हद तक 'प्रसाद' जी को भी उसी कोटि में रखते; तो इतनी बड़ी त्रुटि न होती।[1]"

छायावाद का सर्वाधिक और सक्रिय विरोध करने में 'सरस्वती' सबसे आगे थी। 'निराला' अपने लेखों में निरन्तर आचार्यों और दिग्गजों को उत्तर दे रहे थे; इस कार्य में 'भारत' और 'जागरण' का सम्पादन करते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी और शिवपूजन सहाय भी उन्हें सहयोग दे रहे थे। आचार्य वाजपेयी ने पहले ही छायावाद का मज़ाक उड़ाने वाले आचार्य शुक्ल के जवाब में छायावाद पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में 'निराला' के व्याख्यान का ठाठ बाँधा था। वहाँ उपाध्याय जी के उठकर चले जाने पर उन्होंने स्वयं सभापति का आसन ग्रहण कर अपने भाषण में छायावाद को 'विद्रोहात्मक काव्यधारा' बताकर सूक्ष्म उत्थान के रूप में उसकी व्याख्या की थी।[2] 'भारत' में आपने हिन्दी कवियों की कुण्डलियाँ निकालीं; प्रेमचन्द और मैथिलीशरण जी की

१- चयन, पृ० ६७-६८

२- चाबुक, पृ० ३७-३८

आलोचना की[1], और इसके साथ ही 'विशाल भारत' के योग्य सम्पादक की योग्यता के भी अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए। 'जागरण' में 'निराला' तो नहीं, पर यदा-कदा छायावाद के आक्रामकों पर तीक्ष्ण प्रहार होता था। 'बेढब बनारसी' का 'चतुर्वेदी जी का विवाह' एक ऐसा ही तीखा व्यंग्य था।

चतुर्वेदी जी ने 'साहित्य देवियों' का आदर्श बताते हुए अपने मित्र मारवाड़ी कार्यकर्ता से मिली हिन्दी के किसी कवि की चरित्रहीनता की सूचना, जिसमें कवियों के लिए सब प्रकार के अनुभवों की आवश्यकता बताई गई थी, का उल्लेख किया। चतुर्वेदी जी के संकेत को 'निराला' ने 'जागरण' पर निकली अपनी 'चरित्र' विषयक टिप्पणी में स्पष्ट कर दिया। चरित्र और नैतिक आदि शब्दों के अर्थ और नंगापन छिपाने की शालीनता कहने के खोखलेपन के साथ 'निराला' ने भारतीय संस्कृति के कर्णधारों के अनुसार दूर तक समाज में फैली अपनी तारीफ का भी उल्लेख किया। अपने सत्य कथन की शालीनता का प्रमाण समझ उन्होंने चतुर्वेदी जी को लक्ष्य कर उनकी अपनी चरित्रहीनता की एक बात सरेबाजार कह आने पर भी नेता बने रहने की बात कही; और अपने कवि को 'निरपराध' बताया। 'सुधा' में 'निराला' ने 'चरित्र' पर जो टिप्पणी प्रकाशित कराई थी, उसमें विषय का विवेचन उन्होंने दार्शनिक स्तर पर किया था। यहाँ 'निराला' ने सूक्ष्मरूप से संसार देखने की चरित्रहीनता सिद्ध कर उसकी आवश्यकता संसार के बोध के लिए बताई।

'सरस्वती' में छायावाद के साथ 'निराला' पर आक्रमण करने वाला पहला लेख चन्द्रमौली पाण्डेय ने लिखा[2]। छायावादी कवियों को उन्होंने विलक्षण रचना करने वाला 'विश्वामित्र' कहा, पाखण्ड की उपासना न चल पड़े इसलिए उसका विरोध करने को कहा। 'निराला' की 'जुही की कली' और 'संध्यासुन्दरी' आदि का उल्लेख कर उनमें प्रकृति-चित्रण के बदले उन्मत्त यौवन का उद्दाम विलास दिखाया और उसके कवि को एक कामातुर जीव बताया। छायावादी

१- चाबुक, पृ० ४०

२- 'सरस्वती' कुमार ३१

कवियों को उन्होंने भाषा,छंद-अलंकार का जड़ काटने वाला कहा और निष्कर्ष निकाला : ' अन्य साहित्यों के चयन से वे हिन्दी साहित्य को जीवन मुक्त बनाना चाहते हैं ।'

अगले महीने 'माधुरी' में डा० इलाचन्द्र जोशी का लेख 'अप्रिय सत्य साहित्य परिचय'[1] निकला । प्रो० भट्ट जी के विचार उनके विचारों से मिलते हैं, बताकर जोशी जी ने 'सड़े गंदे स्वयंभू साहित्यिकों को 'कूप मंडूकों के सदृश बताया है । अपनी भूमिका के बाद 'निराला' को याद कर वे अपनी असली बात पर आते हैं कि 'जब धींगा धींगी तथा 'तुम हो कामुक चूड़ामणि पर मैं हूं कामुक केसरिवंत' के समय में मुंह खोलने डर लगता है ।' यही कारण है कि हिन्दी के कई विद्वान आज के असंतुलनवाद में साहित्य का विनाश देखकर भी चुप हैं कुछ अपनी कल्पित होने के मानसिक विकार से हमारे वर्तमान उत्थान पगले छायावादी साहित्य की उपेक्षा करते हैं और 'वैताशुं प्रधान' पाठक अभी इतने शिक्षित नहीं कि अपना मत रख सकें । जोशी जी की इस सम्बन्ध में दृढ़ सम्मति यह है कि हिन्दी के कवि जहां पहुंचते हैं,वहां भूल भुलैया है, मृगतृष्णा है, और है तामसिक आत्म-विभ्रम ।' जोशी बन्धुओं पर लिखे अपने लेख में 'निराला' ने उल्लू के सूर्य का प्रकाश न देख पाने का उल्लेख किया था ; जोशी जी ने वहां धूल से ~~देख पाने का उल्लेख किया था , जोशी जी ने वहां धूल से~~ सूर्य के न छिपने और पारखी के कांच और हीरे की तरह सूरज और मिट्टी के तेल की बत्ती का भेद जानने की बात लिखी है ।

लेख के अन्त में सागर के किनारे बैठकर सीपी पाने और मोती खोने का उल्लेख कर पन्त जी को याद कर उन्होंने लिखा --" ऊपर सुना यह है कि छायावादियों का प्रत्येक बरसाती मेढक बोलपुर शान्तिनिकेतन की बावड़ी के तट पर डुबकी मार कर,'मूक वेदना' से छटपटाकर, अपने ,अजान देश के 'बंधु के' मौनैव निमन्त्रण से व्याकुल होकर अपनी हृदय-वीणा के टूटे तारों की झंकारों (क्षमा कीजिएगा, मेरा मतलब टर्र-टर्र से है) से अछूते गानों का राग अलापकर--

---

१- माधुरी,अगस्त ३१,पृ०३६-४३ ता० २६-६-३९६०

सब एकसाथ अनन्त में चुपचाप बिसराकर तन्मय होना चाहते हैं ।'

भारत में वर्तमान धर्म लिखकर 'निराला' ने डा० जोशी को अपने रहस्यवाद और छायावाद के ज्ञान का परिचय दिया । इसके पहले भी गुणदोषमय सृष्टि तत्व का भारत में ज्ञान है, विकास बताकर 'निराला' ने प्रह्लाद और सीता के पाताल प्रवेश की कथाओं के रूपकों में सत्य की स्थिति देखी थी । वर्तमान धर्म उनका इसी प्रकार का दूसरा अधिक व्यापक प्रयत्न था । अपने रहस्यवाद ज्ञान का परिचय देते हुए यहाँ 'निराला' ने सुर और असुर भावों का आरोप वर्ण के अनुसार जोशी बन्धुओं पर किया प्रयाग और अल्मोड़ा किया और उसके बनाने वाले तथा सरस्वती के रूपक का सत्य समझकर उनसे वे पूछते हैं अब हे कवि, कहो, असुर बड़ा है या सुर ? माता कहती है, मेरे दोनों लड़के हैं, दोनों बराबर दोनों बर्र-बर्र,टर्र-टर्र । कहाँ, मेढक, कौन मेढक है, हम या तुम ?'[1]

'रंगीला में ऐसी शैली में 'निराला' ने 'कृष्ण' जी का विवाह' लिखा और साहित्य की नयी धारा के विरोधी और सुधारपंथी नेताओं पर व्यंग्य किया । एक अन्य के लेख में उन्होंने चतुर्वेदी जी को लक्ष्य कर काव्य की कल्पना की दुम कहकर लिखा," अपने अपने मित्रों को देखकर पं० बनारसीदास जी जैसे सत्य समालोचक खूब उछले, खूब कूदे पर यह विवाह में आधे का स्वांग ही रहा ।"[2] 'निराला' की यही कल्पना हमें 'मेरे गीत और कला' के प्रारम्भ ~~मातृभक्ति~~ में भी मिलती है, जहां उन्होंने काव्य के चतुष्पद तत्वों में पूंछ का प्रकार की चतुर्वेदी जी के पूरा करने और उनके पूंछ के महत्व सबसे ज्यादा सिद्ध करने का उल्लेख किया है ।[3]

इसी समय 'सरस्वती' में चन्द्रबली सिंह ने 'निराला' की कहानी कला की आलोचना की जिसका प्रतिवाद 'निराला' ने भारत' में प्रकाशित कराया । चन्द्रबली सिंह ने पुनः उसका उत्तर देते हुए 'निराला' को कहानी-कला से नितान्त अनभिज्ञ सिद्ध किया ।

१- प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०७६
२- निराला की साहित्य साधना,पृ०१६८-१६६
३- प्रबन्ध प्रतिमा,पृ० १६८

'सरस्वती' के 'विचार विमर्श' स्तम्भ में चन्द्रबली पाण्डेय का एक नोट 'बाबा जी की शिशु शलाका'[१] निकला । कोष्ठकों में यह सूचना था, गया कि यह चर्चा २९ जून के भारत में प्रकाशित 'निराला' के प्रतिवाद में 'पांडे शिशु' को दी 'चुनौती, धमकी या सीख' के औचित्य के सम्बन्ध में था । अपना तात्पर्य अथवा मुख्यमन्त्र स्पष्ट करते हुए पाण्डेय जी ने बताया कि 'निराला' के प्रतिकूल सद्भावना रखकर लिखना असम्भव है और 'निराला' भी क्योंकि मित्रों के ही 'मजबूर' करने पर ही लिख रहे हैं, अतः उसे भी सनातन नहीं कहा जा सकता। पाण्डेय जी ने इस बात पर दुःख प्रकट किया था कि 'निराला' की केवल वही आलोचना (यदि कहा जा सकता है) खलती है जो उनार होता है अन्यथा वे 'सरस्वती' सम्पादक से ऐसी आलोचनाएं छापने के सम्बन्ध में प्रश्न न करते । पाण्डेय जी ने लिखा --" सच बात तो यह है कि 'निराला' जी उस गर्हित प्रतिष्ठा के भूखे हैं जो किसी के पतन से किसी को प्राप्त होती है । उनकी जहां कहीं उस प्रतिष्ठा में कुछ बाधा देख पड़ी, तिलमिला उठे और अपने आप ही अपना हरिभजन करने लगे । क्या इसी को सद्भावना कहते हैं ? क्या यही अन्तःकरण की प्रेरणा है ? 'निराला' के प्रतिवाद को उनके सतर्क को देखने का प्रमाण मानकर उन्होंने व्यंग्य किया," कौन कहता है कि 'निराला' जी आंख मूंदकर नहीं लिखते ?' अकाल (अखण्ड) आकाश को देखकर भी 'निराला' जी की अकल दुरुस्त नहीं हुई ।'

१- सरस्वती, अगस्त ३२, पृ०२०२-२०५

पाण्डेय जी के ये सारे आरोप 'विशाल भारत' के संपादक चतुर्वेदी जी द्वारा किए गए 'निराला' के उग्र विरोध के सम्मुख नगण्य थे, जो उन्होंने वर्तमान धर्म को लेकर किया था, और जो 'निराला' की विरोधी आलोचना का एक महत्वपूर्ण अंश भी था। अक्टूबर सन् ३२ के 'विशाल भारत' में कलासौदास जी ने साहित्यिक सन्निपात[1] शीर्षक से 'भारत' में प्रकाशित 'निराला' का वर्तमान धर्म बिना लेख अथवा लेखक के नाम के प्रकाशित किया। इसके पहले का इतिहास बताते हुए उन्होंने लिखा कि आठ-दस महीने पहले दिनभर का काम कर एक दिन जब वे हार-थके अन्तिम प्रूफ देखने के लिए बैठे हुए थे, सम्पादकीय डाक में आए एक पत्र में सम्पादकीय लेख के साथ महत्वपूर्ण स्थान पर छपा हुआ एक लेख 'वर्तमान धर्म' उन्होंने देखा। लेख के ऊपर एक सुप्रसिद्ध हिन्दी लेखक का नाम था। लेख पढ़ना शुरू किया तो उनकी अक्ल चकराई और कुछ समझ में भी नहीं आया। सहायक सम्पादक की भी यह गति हुई। हिन्दी के अनेक प्रतिष्ठित लेखक और पत्रकार जिनको यह लेख सुनाया गया, इसका अर्थ नहीं लगा सके। ठीक-ठीक अर्थ के लिए पच्चीस रुपये के पुरस्कार की घोषणा करने पर भी उन्हें निराश होना पड़ा। आज पुनः हिन्दी जनता के सम्मुख इस लेख को उपस्थित कर गम्भीरतापूर्वक चतुर्वेदी जी उसका अर्थ पूछते हैं। लोगों की निष्पक्ष राय जानने के लिए पत्र और लेखक का नाम अभी रोकने पर आगे चलकर प्रकट कर देने के आश्वासन के साथ चतुर्वेदी जी ने 'निराला' का लेख उद्धृत किया। लेख पढ़कर उठने वाले नाना प्रकार के प्रश्नों में से दस प्रश्न आपने प्रस्तुत किए और हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखकों और कवियों से नम्रतापूर्वक इन गुत्थियों को सुलझाने का निवेदन किया। उनकी सम्मति की वे उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा करेंगे, यह भी लिखा।

'विशाल भारत' की अगली संख्या[2] में सम्मतियों के पहले सम्पादक ने अपने नोट में यह सूचित किया कि 'वर्तमान धर्म' नामक ऊटपटांग लेख का नाम 'भारत' सम्पादक वाजपेयी जी ने प्रकट कर दिया, इसलिए वे भी लिख दे रहे हैं। हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्य सेवियों की 'सम्मति का सारांश' चतुर्वेदी जी ने

१- विशाल भारत, अक्टूबर ३२, पृ०४८२-४८५

२- ,, नवम्बर३२, पृ०७०९-७१७

प्रतिष्ठित विद्वान का लेख सुनकर 'खिलखिलाकर हंसना' । लेख को समझने के लिए आपने अपने लेख अथवा संपादक को तीन पैरे का कोई न लिखकर जो पच्चीस रुपये की घोषणा कर दी यह भी किसी सन्निपात का लक्षण नहीं कहा जा सकता ।' वाजपेयी जी ने लेख की अनेक प्रतिष्ठित और लेखकों को उनके सुनाने को भी सन्निपात न होकर उनकी प्रोपैगेण्डा वृत्ति का प्रसाद कहा है ।

'भारत' में 'निराला' का वर्तमान धर्म प्रकाशित होने के कारण वाजपेयी जी ने उसके सम्बन्ध में उठने वाली शंकाओं का समाधान करने की जिम्मेदारी निभाई है । 'लेखक को यदि कुछ लिखना अभीष्ट होगा तो वह अन्यत्र लिखेगा' लिखकर वाजपेयी जी ने इस सम्बन्ध में 'निराला' के कोई पत्र व्यवहार न होने का उल्लेख किया है । उन्होंने 'निराला' के 'वर्तमान धर्म' की एक-एक पंक्ति को बुद्धिग्राह्य कहा जिसपर आवश्यकता होने पर पुरा भाष्य लिखा जा सकता है । 'वर्तमान धर्म' का अभिप्राय वाजपेयी जी ने यह बताया कि जब डा० हेमचन्द्र जोशी के लेख का उत्तर देने को कोई नहीं उठता, तब हिन्दी के आत्म सम्मान के सबसे बड़े रक्षक होने के कारण 'निराला' जी ने अपना बल संभाला' जोशी जी को उन्हीं के शब्दों में जवाब 'निराला' ने [illegible] नहीं दिया था, क्योंकि उन्हें जोशी जी को यह समझाना था कि आधुनिक कविता पर उनका व्यंग्य उनकी नासमझी है ।' उनकी नासमझी को 'निराला' जी ने रहस्यवाद की समझदारी (दार्शनिकता) दिखाकर प्रकट किया ।' यह वाजपेयी जी ने स्पष्ट किया ।

'वर्तमान धर्म का सार बताते हुए वाजपेयी जी ने लिखा कि 'निराला' ने 'पौराणिक आख्यानों का संकेतात्मक अर्थ बतलाते हुए अथवा आधुनिक घटनाओं की रुचिर बुद्धिग्राह्य व्याख्या करते हुए यह दिखाया है कि सृष्टि के नाना रूपों के प्रवाहित अखण्ड आत्मधारा को प्राप्त करना चाहिए । छोटे-बड़े नीच-ऊँच का बाह्य भेद मायावी है, तत्व को ग्रहण करना चाहिए, अन्तर्मुखी आत्ममुखी दृष्टि से ही कल्याण होगा । यही आत्म धर्म ही वर्तमान धर्म है जिससे वर्तमान समाज के विकट संघर्ष का भी अन्त होगा और सृष्टि का कल्याण होगा ।

चतुर्वेदी जी का भी मार्ग और सुगम करने के लिए वाजपेयी जी ने इसके बाद उनकी शंकाओं का समाधान भी किया है। अन्त में उन्होंने लिखा 'हिन्दी के विद्वानों ने इसका निर्णय कर लिया है और अब इस लेख के बाद हिन्दी की जनता भी कर लेगी। बारी हो गयी, कभी पधारी, सैकड़ों प्रश्न सम्पादक जी के दिमाग में उठेंगे। आशा है, वे इन हिन्दी के विद्वानों का मनोरंजन भी करेंगे।'[1]

'विशाल भारत' के अगले यानी दिसम्बर के अंक में[2] श्री विश्वम्भरनाथ जिज्जा, सम्पादक 'उदय' की शिकायत, कि उनके पाँच सौ रुपये इनाम का जिक्र पिछले अंक में क्यों नहीं किया गया; और बलिया के एक सज्जन के २५) के नवीन पुरस्कार की घोषणा की सूचना थी। चतुर्वेदी जी ने इसके बाद वर्तमान धर्म और 'निराला' जी का पीछा छोड़ देने का उल्लेख किया, क्योंकि 'जब 'निराला' जी उत्तर नहीं दे रहे थे तो सब लोगों का उन पर टूट पड़ना अन्याय है, अत्याचार है।' 'निराला' से उनकी व्यक्तिगत लड़ाई नहीं है, बल्कि 'निराला' ने ही 'माधुरी' और 'भारत' में सर्वाधिक बार उनके विरुद्ध लिखा था, उन्होंने तो उनकी अ उपेक्षा का गत मार्च में लम्बा प्रशंसात्मक लेख[2] अपने पत्र में प्रकाशित कराया था, आदि लिखकर चतुर्वेदी जी ने बताया कि उनकी प्रवृत्ति बदला लेने की नहीं था। उन्होंने यह भी बताया कि स्वयं 'वर्तमान-धर्म' लेख को दस महीने पहले कम्पोज़ कराकर डिस्ट्रीब्यूट करा दिया गया था। पं० पद्मसिंह शर्मा ने उन्हें उनकी सहनशीलता के लिए डाँटा था और कई मित्र नाराज़ हो गए थे।

'निराला' के उल्लेख के उपरान्त चतुर्वेदी जी ने वाजपेयी जी के अत्याचारों की लम्बी सूची दी, जिन्होंने 'मौके बे मौके' उनके खिलाफ लिखने का दृढ़ निश्चय ही कर लिया था।' वाजपेयी जी ने कम से कम १०-१२ बार उन पर आक्षेप किए और कराए होंगे, जिनसे काफी मानसिक पीड़ा पहुँचने पर भी चतुर्वेदी जी ने उनका उत्तर नहीं दिया। उनके साधारण जनता में सद्भावों का प्रचार करने के लिए प्रकाशकों से कम मूल्य की पुस्तक छापने के प्रस्ताव पर भारत के उनका विरोध करने, भारत में कला भवन की प्रशंसा भर में निकले लेख में 'विशाल-

---

१- विशाल भारत, दिसम्बर ३२, पृ०-६२०-०८

२- ,, मार्च ३२ 'निराला जी की कविता, पृ० ३५०-५२ लेखक शान्तिप्रिय द्विवेदी

भारत' की अप्रासंगिक ढंग पर निन्दा करने, प्रेमचन्द के आत्मकथांक निकालने के अपराध के साथ उनकी भी साथ में धर लपेटने, गणेशशंकर विद्यार्थी के स्व० मन्नालाल दयाल के संस्मरणों को 'विशाल भारत' के अस्वीकार करने पर 'भारत' के ऊपर आक्षेप करने और इसी प्रकार स्व० पं० रामचन्द्र लाल जी शर्मा विषयक पद्मसिंह शर्मा के संस्मरणों में आए बाबू श्यामसुन्दरदास पर किए आक्षेपों में भी चतुर्वेदी जी को साथ धर घसीटने आदि प्रसंगों का उल्लेख चतुर्वेदी जी ने किया है।

इसके बाद 'भारत' के सहयोगियों का इतिहास बताते हुए चतुर्वेदी जी लिखते हैं कि 'साहित्य सेवी और साहित्य चर्चा' शीर्षक विभाग में सम्पूर्णानन्द के विषय में लिखा उनका स्केच श्री रामनाथ लाल सुमन की ठीक नहीं जंचा और 'भारत' में उन्होंने चतुर्वेदी जी की सम्पादक कार्य के लिए नालायक सिद्ध किया। उनके पहले श्री शिवशेखर द्विवेदी उनके विरुद्ध पाँच-सात लेख भारत में छपवा चुके थे। इन सब की उपेक्षा चतुर्वेदी जी ने की थी। यहां इस इतिहास को बताने का प्रयोजन पाठकों को यह सूचित करना है कि असह्य उत्तेजना मिलने पर ही उन्होंने उत्तर देने का विचार किया; परन्तु फिर भी मनुष्यता को सम्पादन कार्य से ऊंचा समझने का उल्लेख कर उन्होंने लिखा --" जब निराला जी पर चारों ओर से आक्रमण होने लगे हैं और वे चुपचाप सहन कर रहे हैं, हमारा कर्तव्य यही है कि अब उनके विषय में एक शब्द भी न लिखें।" यहां जागरण पर 'निराला' के चरित्र पर आक्षेप करने वाले लेख के सम्बन्ध में खेद प्रकट कर उन्होंने इस प्रवृत्ति को सर्वथा निन्दनीय कहा और चरित्र पर आक्षेप को शिष्टता के विरुद्ध माना।

ऊटपटांग धर्म जिसके तीन अध्याय --भूत, वर्तमान और भावी थे धर्म थे -- का प्रकाशन स्थगित करने की सूचना के साथ उन्होंने यह भी लिखा कि अगर वाजपेयी जी इस सम्पूर्ण पुस्तक की टीका कर देते, तो यह पुस्तक हिन्दू विश्वविद्यालय के एम० ए० कोर्स में नियत हो सकती थी। सन्निपात की छटक में उन्होंने प्रसाद की 'आकाशदीप' को पढ़ने का आदेश दिया, जिसमें कहीं-कहीं सन्निपात की छटक स्पष्टतया दीख पड़ती है। चतुर्वेदी जी ने बताया कि फ़रवरी २६ के 'विशाल भारत' में प्रकाशित आकाशदीप की विस्तृत आलोचना में उन्होंने -

'ज्योतिष्मती' नामक प्रसाद की एक कथा उद्धृत कर उसकी सूझी बतलाने की प्रार्थना की थी। उस समय तो नहीं, पर अब इतने दिन बाद 'हिन्दुस्तानी' तिमाहिका में यह सूझी जनता के सामने रखी है।

तारीफ सन्निपाती चतुर्वेदी जी की दृष्टि में श्री शिवशेखर द्विवेदी थे। २१ नवम्बर 'आज' में प्रकाशित 'काव्य साहित्य की प्रगति' पर दो प्रारम्भिक पैरा उद्धृत कर चतुर्वेदी जी ने अधिकांश पाठकों के उसे न समझ सकने का उल्लेख कर आज के सम्पादकीय स्टाफ से उसका अर्थ पूछा है। उन्होंने लिखा -- 'अगर इस प्रकार की ऊंटपटांग बातें, जिनका प्रसंग दस हजार में से ९९९९ आदमी न समझ सकें, साहित्यिक सन्निपात नहीं तो वे क्या हैं?'

'सन्निपात का शमन' शीर्षक से इस विवेचन के उपरान्त चतुर्वेदी जी ने श्री जगन्नाथ चतुर्वेदी का पत्र छापा है। लोकमान्य की कतरन, में साहित्यिक सन्निपात लेख देखकर जगन्नाथ जी ने चतुर्वेदी जी के मत का समर्थन करते हुए हिन्दी साहित्य में धन्वन्तरियों का अभाव बताया। उन्होंने कुछ दोष संपादकों की अकर्मण्यता और सहनशीलता को भी दिया। चतुर्वेदी जी को आपने सन्निपात के निदान के बाद उसकी चिकित्सा भी कर डालने की सलाह दी। बाबू बालमुकुन्द गुप्त और पं० पद्मसिंह जी का नुस्खा बताकर उन्होंने अन्त में पूछा -- 'आज्ञा हो तो औजार ठीक करूं।'

दिसम्बर सन् ३२ की 'सुधा' में 'निराला' ने हिन्दी के साहित्यिकों और साहित्य प्रेमियों से यह निवेदन किया कि वे इस आन्दोलन के सम्बन्ध में दोनों पक्षों की युक्तियां और उनके चित्र जानने के बाद ही कुछ फैसला करें। 'भारत' में प्रकाशित उनके 'वर्तमान धर्म' की हंसी उड़ाने और उनके विरुद्ध आन्दोलन शुरू करने के उद्देश्य से ही चतुर्वेदी जी ने 'साहित्यिक सन्निपात' लिखा, यह 'निराला' ने बताया और यहीं टीका से युक्त अपने लेख छपने में देर होने की सम्भावना के विचार से 'वर्तमान धर्म' की शब्द-शब्द टीका करके उसका अर्थ समझाने की सूचना भी उन्होंने दी। 'विशाल भारत' में उनका यह लेख छपने के बाद स्पष्ट हो जायगा कि सन्निपात ग्रस्त वास्तव में कौन है 'निराला' या

'विशाल भारत' के सम्पादक या उनके सम्मतिदाता गण ।

'निराला' ने बाजपेयी जी की काई न गलने वाले ग्रन्थ का हवाला देकर चतुर्वेदी जी की प्रोपेगेंडा की प्रवृत्ति सामने रखी । वास्तविकता प्रकट करते हुए उन्होंने बताया कि 'रंगीला' को छोड़कर कलकत्ते से शायद आने से उन्हें 'विशाल भारत' नहीं मिला । पुरस्कार की सूचना से भी वे अनभिज्ञ थे । 'भारत' में 'वर्तमान धर्म' के प्रकाशन के साथ वे चार-पांच बार चतुर्वेदी जी से भी मिले थे, पर उन्होंने कभी इसके अर्थ के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा । आक्षेप करते समय भी उन्होंने 'निराला' का नाम न लेकर भी आक्षेप वाला फाम उन्हें भेजा था । 'निराला' ने अर्थ का अपहरण प्रोपेगण्डा को उनका उद्देश्य बताते हुए जो पत्र लिखा था और उनसे सन्निपात की व्युत्पत्ति पूछकर शर्मों के साथ वाले अंक में पत्र छापने को कहा था, उसके बारे में 'निराला' ने यह सूचना दी कि न तो चतुर्वेदी जी ने उनका पत्र छापा, और न 'निराला' को लिखे अपने पत्र में सन्निपात की व्युत्पत्ति ही बताई 'वर्तमान धर्म' का उत्तर जल्द भेजने का आग्रह जरूर उनके पत्र में था, जिसे छापने को वे तैयार थे । 'निराला' का विचार है अब तक चुप थे ।

सम्मतिदाताओं की योग्यता के प्रति अपने असंतोष का स्पष्ट संकेत कर 'निराला' ने बताया कि चतुर्वेदी जी ने लेख पर केवल राय मांगी है, लेख के विषयों को बिलकुल उड़ा दिया है ।' दो विकल्प बताते हुए उन्होंने लिखा कि या तो जनता को उनके ज्ञान की आवश्यकता नहीं है अथवा उनका ज्ञान चतुर्वेदी जी और उनके सम्मतिदाताओं के लिए भोजन मात्र की तरह आसान' है । 'निराला' ने दो ही प्रश्नों का उत्तर उनसे मांगा-- गणेश जी हाथी के आकार के होकर चूहे पर कैसे चलते थे और दूसरे प्रश्न का सम्बन्ध कृष्ण के कालिया को नाथने से सम्बद्ध था । चतुर्वेदी जी को लक्ष्य कर 'निराला' ने लिखा --" समझाइये या अपने प्रपितामहों की अकल पर भी प्रोपेगेण्डा शुरू कीजिए । तब मैं भी समझूं-- कि आप समझदार हैं, आदमी हैं[१] ।"

१- संग्रह,पृ०१२३-१२६

'निराला' के इस वक्तव्य के अन्त में 'सुधा' संपादक ने अपने नोट में सूचित किया है कि पहले अपना लेख 'निराला' ने 'सुधा' में भेजा था, पर उनके कहने से 'निराला' ने लेख 'विशाल भारत' में भेजना स्वीकार कर लिया था। अगर ज़रूरत समझेंगे तो विवाद के सम्बन्ध में संपादक अपने विचार आगामी किसी संख्या में पाठकों के सामने रखेंगे, यह भी सूचना भी संपादक ने दी थी।[1]

'वर्तमान धर्म' पर 'निराला' की टीका न 'विशाल भारत' में निकली और न 'सुधा' में, अन्त में वह 'माधुरी' में प्रकाशित हुई। प्रारम्भ में वाजपेयी जी की ही तरह 'निराला'[2] ने भी लेख का इतिहास बताया, डा० जोशी का अपनी ओर संकेत और स्पष्ट किया और अपने रहस्यवाद ज्ञान का परिचय देते हुए उन्हें उत्तर दिया। आर्य साहित्य का मूल रहस्यवाद बताकर उन्होंने रूपकों का सत्य प्रत्यक्ष किया, पौराणिक छाया या रूपकों के परे जो सत्य है, उसे रहस्यवादी या छायावादियों का लक्ष्य बताया; परन्तु उनका वाद 'छाया' न होकर 'सत्य' था अतः वे 'सत्यवादी' है, यह भी 'निराला' ने लिखा।[3]

'सुधा' में प्रकाशित वक्तव्य को पुनः दोहराते हुए 'निराला' ने चतुर्वेदी जी के 'साहित्यिक सन्निपात' के सारे खण्ड में अपना उत्तर न देने की आलोचना के सम्बन्ध में चतुर्वेदी जी की पुनः लिखे अपने ४-१०-३२ के पत्र का उल्लेख किया। इसके बाद 'निराला' ने १७-१०-३२ के दैनिक 'लोकमान्य' में चतुर्वेदी जी के ऊपर पुनः आक्षेप करते, उनके बाभारी का निदान और इलाज करने का वक्त आने पर लोगों के हिन्दी साहित्य को विधवा साला का घर समझने आदि ऊटपटांग लिख मारने का उल्लेख किया था। 'निराला' ने पद्मसिंह शर्मा की उक्ति का उल्लेख किया, विशाल भारत' के अगहन अंक में वियोगी जी के

१- माधुरी, फरवरी, मार्च और जुलाई १६३३ के अंक

२- सुधा, दिसम्बर३२, पृ० ८४२

३- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०५६

पुरस्कार की सूचना और डा० नरीअदास द्वारा उनका ज्ञान और दावा करने की असंगति की ओर ध्यान आकृष्ट किया। वे 'निराला' 'सन्निपात' तो नहीं कहते, पर यह बात उनकी समझ में नहीं आती। चतुर्वेदी जी की प्रोपेगैण्डा पर वे फिर कभी लिखेंगे, यह भी 'निराला' ने यहाँ लिखा[1]।

'निराला' ने गौड़ जी, जगन्नाथ प्रसाद जी और चतुर्वेदी जी को कश्यप के गहरे डोज की गहराई दिखाई और टीका के निर्णय के लिए सर्वप्रथम 'समन्वय' सम्पादक स्वामी माधवानन्द का नाम लिया। इसके बाद प्रो० आद्याप्रसाद ठाकुर, पं० रामचन्द्र शुक्ल, श्रीयुत वासुदेवशरण अग्रवाल, श्री सत्याचरण वर्मा और पं० उमाशंकर बाजपेयी आदि को लेख का मर्म समझाने में समर्थ बताया[2]। टीका के उपरान्त लेख के अन्त में 'निराला' ने चतुर्वेदी जी से डा० नरीअदास से भाषी धर्म का अर्थ सिखाने या कुछ सिखने की बात कही है और विश्वास व्यक्त किया है कि मनुष्य होने के नाते वे मनुष्यता का उसूल ज़रूर पूरा करेंगे[3]।

लेख के अन्त में 'निराला' ने यह नोट दिया था--
'इस लेख के परवर्ती वैदिक उद्धरणों की सहायता पं० रामचन्द्र जी शुक्ल एम०ए०, एल०एल०बी० महोदय से मुझे प्राप्त हुई और पं० आद्याप्रसाद जी ठाकुर एम०ए०, काव्यतीर्थ महोदय ने पुस्तकालय में पुस्तकें देने की सुविधा कर देने की उदारता दिखायी, इसके लिए उभय विद्वानों का मैं कृतज्ञ हूं। मैंने लेख की पुष्टि में अनेक उद्धरण एकत्र किए थे, पर विस्तार-भय से उनका उपयोग नहीं कर सका। विषय को समझने वाले विद्वान समझेंगे, इसकी पुष्टि के लिए हमारे वेद और शास्त्र तथा ऊपर विश्व दर्शन कितने प्रशस्त हैं[4]।'

चतुर्वेदी जी की प्रोपेगैण्डा वृत्ति पर फिर कभी लिखने का अपना निश्चय 'निराला' ने बरसात की छुआ में पूरा किया। चतुर्वेदी जी ने

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ५८-५९

२- ,, पृ० ६१-६२

३- ,, पृ० ८२

४- माधुरी, जुलाई ३३, पृ० ७४१

उग्र का जो विरोध किया था, उसके सम्बन्ध में 'निराला' ने उनसे पूछा कि किस साहित्यिक में इतने गुण हैं, उन्होंने उसके खिलाफ ज्यादा लिखा या तारीफ में।" उसके बाद अपने विरुद्ध छेड़े आन्दोलन का उल्लेख करते हुए उनके रहस्यवाद के रास्ते पर चलने वालों के विरुद्ध अकड़ कर खड़े होने, जो रहस्यवाद का 'र' भी नहीं जानते उनकी सम्मतियां छापने एक भले-चंगे मनुष्य को पागल बना डालने और 'कीर्तिरक्षा लक्ष' करने पर उनके काले कारनामे" के बारे में 'निराला' ने लिखा। 'विशाल भारत' को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ पत्र और उसके सम्पादक को हिन्दी में सब सम्पादकों से अधिक उत्तरदायी बता 'निराला' चतुर्वेदी जी से पूछते हैं कि उन्होंने 'श्रीयुत श्रीनाथ सिंह जी के अपूर्ण लेख का तो छूटते ही जवाब दिया, और जनता के मस्तिष्क से भ्रम का भी निराकरण कर दिया, पर 'निराला' जी के संबंध में उन्हें अभी तक कुछ लिखने की फुर्सत क्यों नहीं हुई, जब कि उत्तर पूरा पा चुके? उन्होंने उसके उत्तर पर किसी पुरस्कार की भी तो घोषणा की थी।" वर्तमान धर्म को लेकर चलने वाला विवाद इसके साथ ही समाप्त होता है।

'सरस्वती' जिसने छायावाद और उसके कवियों का निरन्तर विरोध किया था, उसी में 'निराला' के सन् ३१ में प्रकाशित पहले उपन्यास 'अप्सरा' की प्रशंसात्मक आलोचना श्री सूर्यनारायण दीक्षित ने की। सन् ३१ में तो नहीं, पर सन् ३३ में 'अप्सरा' का विवेचन साहित्य-क्षेत्र में होने लगा था। 'सुधा' के जुलाई अंक में श्री नलिनविलोचन शर्मा ने 'निराला' और उनकी अप्सरा की सराहना की; और 'अप्सरा' की आलोचना अब तक नहीं हुई, इस पर खेद भी प्रकट किया। उन्होंने यह स्वीकार किया कि समालोचक गण 'निराला' की क्रान्तिकारी हरकतों से रुष्ट रहते हैं, परन्तु फिर भी इतनी उपेक्षा की तो उन्हें स्वप्न में भी आशा नहीं थी। शर्मा जी ने कविता में 'हरिऔध' की तरह प्रेमचन्द को आउट आफ डेट बताया; 'निराला' के पन्त और पल्लव' तथा वर्तमान धर्म की ओर प्रसाद की क्लिष्ट भाषा की तुलना में उनके पात्रों की स्वाभाविक भाषा की' तथा उग्र के नाम की अपेक्षा, उनके आदर्शवाद की प्रशंसा की थी।

'हंस' में प्रकाशित 'श्री निराला' की अप्सरा' विषयक-

तीसरा लेख श्री जगमोहन गुप्त का था । लगभग प्रारम्भ में ही 'निराला' को सम्बोधित कर लेखक की स्थापना थी : " निराला जी महाराज, उपन्यास लिखना ग़ज़ल छंद लिखने के समान नहीं है कि नेत्र बंद किए और कोष की पंक्तियाँ लुढ़काने लगे । उपन्यास लिखने के लिए सार्वभौमिक ज्ञान (general knowledge) की आवश्यकता है ।'अप्सरा' के कथानक को असंभवता, अस्वच्छता, अस्पष्टता तथा भद्दी भूलों से भरा हुआ' बताकर लेखक ने 'निराला' की 'निरंकुशता' का उल्लेख किया । उपन्यास की भाषा के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा कि भाषा-व्याकरण बोल-चाल आदि के हिसाब से 'ख अशुद्ध, अस्वच्छ तथा शिथिल' है । 'अप्सरा' को आरम्भ से अन्त तक 'थर्ड क्लास की पुस्तक' बताकर अन्त में आलोचक ने प्रकाशक को भी नहीं छोड़ा है । उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया कि भार्गव जी ने ऐसी भद्दी और उपन्यास का नाम बदनाम करने वाली पुस्तक कैसे प्रकाशित की । भार्गव जी से ऐसी 'निकम्मी' पुस्तकें निकालने और 'सुधा' में उनकी प्रशंसा में लम्बे-चौड़े विज्ञापन और लेख निकालते रहने पर गंगा पुस्तक माला की 'साख' गिरने का उल्लेख कर उन्होंने उन्हें सावधान किया था ।

१ अक्टूबर ३३ की सुधा में कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने 'अप्सरा' पर लेख लिखा । उनके अनुसार 'निराला' के चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, विचारों की उच्चता-महत्ता और प्लाट का प्रेमचन्द की 'रंगभूमि' से तुलनात्मक अध्ययन करने पर युग का अन्तर स्पष्ट दीख पड़ता है । प्रेमचन्द का युग बीत जाने और 'निराला' के उपन्यास के चार सौ पृष्ठों को प्रेमचन्द के दस हजार पन्नों से श्रेष्ठतर बताकर उनके और उनके शिष्ट समुदाय के प्रवंचनापूर्ण प्रचार को हास्यास्पद कहा । उन्होंने यह भी समझाया कि 'निराला' ऐसे समर्थ लेखक पर 'कलम चलाना' उन जैसे अबोधों का काम' नहीं है ।

लगभग पांच छह महीने बाद 'हंस' फरवरी ३४ के अंक में श्री चन्द्रशेखर तिवारी जी ने ' निराला' की अलका पर लिखते हुए बताया कि उनके पहले उपन्यास की जितनी आलोचनाएं हुई उनमें केवल कमजोरियों को दिखाया गया था, अच्छाइयां एक में भी नहीं दिखाई गई । 'सुधा' में निकली एक आलोचना

अवश्य उसका अपवाद है जिसको हम आलोचना कह भी तो नहीं सकते ।' उन्होंने बताया कि 'अप्सरा के आलोचकों का प्रबल इच्छा थी -- 'निराला' जी को दबा देना' पर 'निराला जी पर इन समालोचकों का रत्ती भर भी प्रभाव न पड़ा' क्योंकि उपन्यास क्षेत्र में आने से पहले कविता क्षेत्र में उन्हें काफी अनुभव प्राप्त हो चुका था। वे अचल रहे, अलका उनके आत्मविश्वास का ही फल है, जिसमें वे अप्सरा से अधिक सफल हुए ' यह तिवारी जी की धारणा थी । अलका में भाषा चरित्र-चित्रण, कथानक आदि के दोषों के उल्लेख के साथ हंस में निकली 'अप्सरा' की पहली आलोचना को ध्यान में रखकर शायद उन्होंने लिखा --' अलका की घटनाओं तथा २२० पृष्ठों में सामंजस्य है ।'

'सुधा' के फरवरी ३४ के अंक में 'निराला' की 'देवी' फिर मई में 'चतुरी चमार' और जुलाई के अंक में 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' कहानियां प्रकाशित हुई थीं ।'चतुरी चमार' में उन्होंने साहित्य के साथ समाज में फैलने वाली तारीफ के बारे में लिखा था ,'देवी' के प्रारम्भ में साहित्य के शक्ति संचालन के लिए अपने चक्रव्यूह तैयार करने और उसका फल उल्टा होने का, अपनी कद्र न होने और पेट के लाले पड़ने का उल्लेख उन्होंने किया है। साहित्य के नरक को स्वर्ग बनाने के प्रयास में मिली बदनामी, लोगों की सच्ची समझ के लिए अपने खुराफात लिखने और भारतीय संस्कृति को बिगाड़ने की कोशिश कर अपने बिगड़ने की बात उन्होंने की है[१]। तीसरी कहानी में लोगों के कथन कि ऐसा लिखा जाय कि एक मतलब हो, उसी समय समझ में आ जाए और अपढ़ लोग भी समझें-- से ही प्रारम्भ होती है । इसके पहले १ अगस्त सन् ३३ में प्रकाशित उनकी 'आवारा' कहानी में बाद की इन रचनाओं का पूर्वाभास हमें मिलता है । इसी कहानी के शीर्षक की परम्परा में आगे उन्होंने पगली को 'देवी' कहा था । 'आवारा' के सम्बन्ध में अगस्त के दूसरे अंक में ठाकुर श्रीनाथ सिंह का यह सम्मति प्रकाशित हुई -

---

१-'चतुरी चमार',पृ०२८-३९

'निराला' जी ने 'आवारा' जैसी कहानी लिखकर उन लोगों को ठीक ही उत्तर दिया है, जो यह कहते हैं कि 'निराला' जी सर्व साधारण के समझ में आने वाली चीज़ नहीं लिखते । यह लखनऊ में हों तो (मेरी ओर से) उन्हें ऐसी सुन्दर कहानी के लिए बधाई दीजिए ।"

चतुर्वेदी जी ने इन रचनाओं पर ध्यान न देकर अपने पत्र में साहित्य जन साधारण के लिए लिखा जाना चाहिए -- साहित्यकारों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया । 'सुधा' में भी कला का उत्कर्ष जन-साधारण के हित के लिए बताया गया ।'सुधा' में लिखते हुए निराला ने प्रश्न किया कि यदि श्रमिक जनता के पक्ष पर ही जोर देना आवश्यक है तो क्या आप कह सकते हैं कि हिन्दी के आधुनिक कलाकारों की इधर ध्यान नहीं गया ?' उन्होंने चतुर्वेदी जी को सूचित किया कि यह धारा नए युग के प्रारम्भ से ही हिन्दी में बह रही है ।

'निराला' के विरोध का एक बड़ा प्रकरण 'अभ्युदय' में प्रकाशित श्री ज्योतिप्रसाद 'निर्मल' के लेखों से सम्बद्ध है । विरोधी आलोचना का यह अभियान सन् ३४ के मध्य में प्रारम्भ हुआ । 'निर्मल' ने 'निराला' पर घृणित व्यक्तिगत आक्षेप किए थे, उनका यह विरोध 'पंत और पल्लव' की परम्परा का विकास न होकर 'साहित्यिक सन्निपात' की श्रेणी का था । जैसे छायावाद विषयक विरोध की भांति यहां भी हमेशा की तरह पंत नहीं, प्रसाद और 'निराला' कोप के भाजन थे । 'निर्मल' ने पंत को छायावाद का सर्वश्रेष्ठ कवि कहा, उनकी कविताएं चतुर्वेदी जी जैसे काव्य मर्मज्ञ समझ लेते हैं, ऐसे पंत की लोकप्रियता का प्रमाण माना और उनकी कविताओं को सार्थक और भावपूर्ण कहा, 'सन्निपाती नहीं'।

'निर्मल' के अनुसार प्रसाद कुशल व्यवसायी और विकट लिक्खाड़ थे और उनके सहयोगी उनका प्रचार करने वाले थे । डा० एल०राय के नाटकों से प्रसाद के नाटकों की समता का उल्लेख कर आपने, श्रीनाथसिंह से प्राप्त इस सूचना का कि किसी समीक्षक ने प्रसाद को 'कम्युनलिस्ट' साम्प्रदायवादी' कहा है, समर्थन किया । साथ ही प्रसाद को उन्होंने प्रोपेगण्डा का इच्छुक बताया ।

'निराला', 'निर्मल' की दृष्टि में हिन्दी के अच्छे कवियों में से थे, जिनकी ख्याति बादल राग अलापने से थी। निर्मल ने मुंशी नवजादिकलाल की यह सम्मति उद्धृत की कि सेठ जी को 'निराला' की रचनाएं समझ में नहीं आती थीं, स्वयं वे भी उन्हें नहीं समझते थे, पर कहते थे कि उन्हें समझ में आती थीं। नवयुवक साहित्यिक को प्रोत्साहन देने के विचार से ही 'निराला' को उन्होंने 'मतवाला' में छापा था। निराला के विषय में 'निर्मल' ने सम्मतियां भी प्रकाशित कीं, जिनमें से अधिकांश 'साहित्यिक सन्निपात' की सम्मतियों की श्रेणी की अथवा अद्यावधि अप्रकाशित और अलिखित थीं। 'निराला' को उन्होंने 'उच्छृंखल व्यक्ति' और गुरुजन का पक्षपाती कहा। वे कोठा जानते हैं, दर्शन शास्त्र और संगीत में दखल रखते हैं, बताकर उनकी रचनाओं को क्लिष्ट कहा। 'निराला' के साने सुनकर भी पन्त के चुप रहने और 'निराला' के 'सब तरह की अपने स्वभावानुसार फूहड़ बातें' भी कह जाने का उल्लेख किया। निर्मल जी का विचार था कि अपने कठिन काव्य का आशय वे स्वयं ही अर्थ नहीं कर सकते।' 'निराला' हिन्दी का अपमान नहीं सहते और उसके हित के लिए खरी खोटी सुनाते हैं, मानकर बताया कि " ऐसे अवसर पर जो कुछ वे लिखते हैं, मानकर-बताया ~~कि-ऐसे-अवसर-पर-जो~~ वे वर्तमान धर्म 'नामक लेख ही के कोटि के होते हैं।'

'निराला' की 'पंत और पल्लव' की पंत पर रवीन्द्र के प्रभाव विषयक आलोचना के उत्तर में 'निर्मल' जी ने भावों की भिड़न्त लेख याद किया, जिसमें लेखक ने 'इनके 'बादल राग' आदि कविताओं का रवीन्द्र बाबू की कविता से ज्यों का त्यों साम्य दिखलाया था' रूपनारायण पाण्डेय ने 'सुकवि' से और पं० जगदम्बाप्रसाद हितैषी ने 'कंठ कवियों' की जूठी पत्तलें समेट कर' लिखकर उसी समय 'निराला' का मनोरंजन करने और पद्मसिंह जी के 'निराला को 'अहम्मन्यता की मूर्ति' उपाधि से विभूषित करने का उल्लेख भी किया।

'निराला' ने भगवतीचरण वर्मा के हाथ अमरौधा भिगो रखने का संदेश 'निर्मल' को भिजवाया और 'समालोचना या प्रोपेगण्डा' शीर्षक से 'अभ्युदय' के लिए उत्तर लिखा। समालोचना और प्रोपेगण्डा का अन्तर स्पष्ट करते हुए निर्मल द्वारा की गई पन्त की प्रशंसा के सम्मुख उन्होंने अपनी की प्रशंसा भी घटकर ठहरती' बताई। पन्त जी की लोकप्रियता का कारण 'निराला' की

दृष्टि में उनके प्रशंसकों का काव्य-विषयक अज्ञान और सौन्दर्य-सम्बन्धी दूरदर्शिता का अभाव था । प्रसाद और अपने सम्बन्ध में उन्होंने लेख के पहले ही सूचना दे दी थी कि प्रसाद जी का हिस्सा पन्द्रह आने रत्ती है, और मेरा पन्द्रह आने ग्यारह रत्ती निन्नानबे बटे सौ पाई । 'पंत आलोचना सहन नहीं कर सकते,' इसलिए, ज्यादा डेढ़ दो वर्षों के अन्दर कई प्रहार मिलने पर भी ''निराला' ने चुपचाप अपमान बर्दाश्त किया, यह लिखकर 'निराला' ने अपने बर्दाश्त करने की अवधि के अन्त काल के साथ पंत की जो आलोचना वे आगे करने वाले थे, उसकी सूचना दी ।

'निराला' ने बताया कि वे बराबर पंत से बात बचाकर चले हैं । उन्होंने पंत जी के दाग नहीं, उनकी सफाई देखना ही प्रिय समझा, अपना अस्तित्व भूलकर 'ज्योत्स्ना' की भूमिका लिखी । पंत की उचित आलोचना पंत और पल्लव' पल्लव के प्रवेश में पंत जी के उनके सम्बन्ध में गलतियां करने के बाद लिखी और उसे पुस्तकाकार तभी छपवाया जब 'पल्लव' के दूसरे संस्करण में भी उनका हिस्सा ज्यों का त्यों छपा देखा था, यह भी 'निराला' ने स्पष्ट किया । पंत की सर्वश्रेष्ठता को अपने कम सहायता न पहुंचाने का और अगर वास्तव में पंत उन्हें सर्वश्रेष्ठ जंचते तो उनके पहले समर्थक उनके खुद होने का उल्लेख किया, क्योंकि 'ऐसी सर्वश्रेष्ठत्व का भार मस्तिष्क को और हल्का करता है ।' पंत जी की आलोचना करने में अपनी कला के उपयोग और उनकी आलोचना के पंत जी के प प्रशंसकों की समझ में आ जाने पर उनके प्रकाश के मंद होने पर 'निराला' ने दुःख प्रकट किया । आगे उन्होंने लिखा --" पहले जब-जब मुझे नीचा दिखाया गया, मैं यह सोच-सोचकर चुप रहा कि मेरी आलोचना की चोट भक्तों से पहले उनके भगवान पर होती है । पर अब मेरी भी इच्छा तमाशा देखने की है, जरा देखूं पंतजी के प्रशंसकों की कलाबाजी कितनी ऊंची उड़ान लेती है ।'

'पल्लव' पर लिखते समय 'निराला' ने पंत जी की कुछ पंक्तियों को रवीन्द्र की 'निर्झरेर स्वप्न-भंग' के समान बताकर भाव और सौन्दर्य की दृष्टि से पंत जी की कला की विवेचना की । उसी कसौटी पर यहां उन्होंने 'गुंजन' की पंक्तियों पर रुककर गयी कलो' आदि की परीक्षा की है ।

व्याख्या करते हुए 'निराला' ने समझाया कि पंत जी का वर्णन प्राकृत न होकर अस्वाभाविक है, उसमें उपदेश और नैतिकता की भरमार है, उनके शब्दों और बिम्बों के माधुर्य और सौन्दर्य के पीछे विचार अथवा तथ्य का अभाव है ।

मुंशी जी और मतवाला के सम्बन्ध में 'निराला' ने लिखा कि मुंशी जी की जो सम्मति 'निर्मल' ने उद्धृत की थी, वह 'सोलहों आने झूठ है ।' 'निराला' को विश्वास नहीं, मुंशी जी ऐसा कहेंगे ।' सेठ जी के सम्बन्ध में 'निराला' ने लिखा कि 'मतवाला' के दूसरे वर्ष के पहले अंक में छपा वक्तव्य देखने पर स्थिति स्पष्ट हो जायगी । सेठ जी, मतवाला में 'निराला' के आने से पहले भी उनके प्रशंसक रहे हैं, इसके प्रमाण में उन्होंने शिवपूजनसहाय से सेठ जी के 'अधिवास' लेकर 'माधुरी' में भेजने और 'मतवाला' का मोटो खुद लिखने का उल्लेख किया । 'अनामिका' में लिखी सेठ जी की भूमिका का भी उन्होंने प्रमाण रूप में उल्लेख किया ।

'भावों की भिड़न्त' में 'बादल राग' का उल्लेख आने के सम्बन्ध में 'निराला' ने बताया कि बादल राग में 'किसी का भाव बाहर से नहीं लिया गया' है । भावों की भिड़न्त के पहले 'मतवाला' में प्रकाशित अपने पत्र की बातें भी उन्होंने दोहरायीं; कला के विकास के लिए भाव-साम्य की आवश्यकता बताकर अपनी कविताओं में रूप की छटा' को मौलिक बताया ।

पं० पद्मसिंह शर्मा और उनकी अहम्मन्यता विषयक सम्मति के बारे में 'निराला' ने शर्मा जी के हिन्दुस्तानी एकेडमी में आने के समय उनके बुलाने पर नन्ददुलारे वाजपेयी जी के साथ उनसे मिलने जाने, उनके न मिलने पर दोपहर को वापस लौटने की घटना का उल्लेख कर लिखा, ' यह मामूली अहम्मन्यता न थी ।' अन्त में 'निराला' ने 'आलोचक जी से प्रश्न किया --"छायावाद के सर्वश्रेष्ठ कवि की कविता से कैसी भावपूर्ण रही ? सन्निपातिनी हुई या नहीं ?"

'श्री 'निर्मल' ने जवाब में 'निराला' की काव्य-कहानी का दूध-पानी अलग करने का निश्चय किया । सबसे पहले भगवती बाबू से मिले संदेश— पर व्यंग्य से अपनी प्रसन्नता व्यक्त की कि " अब 'निराला जी जूता भी पहनने लगे

पंत की शालीनता का निदर्शन करते हुए उन्होंने लिखा कि 'निराला' ने हमेशा पंत को गिराने के लिए लेख लिखे हैं, उनकी 'गुंजन' की पंक्तियों की व्याख्या 'वर्तमान धर्म' की तरह बेबुनियाद है, 'ज्योत्स्ना' की भूमिका उन्होंने जबर्दस्ती लिखी है, जिसका विरोध पंत ने अपने शील के कारण नहीं किया था । उसके बाद 'निराला' के काव्य के सम्बन्ध में लिखते हुए उन्होंने बताया कि उनका काव्य कर्कश और दुरूह है; वे दार्शनिकता की आड़ में काव्य का नगाड़ा बजाते हैं, वे पार बनाते हैं, उनमें नहीं पड़ता; और इधर जो गीत उन्होंने लिखे हैं, वे तो और भी ऊबड़-खाबड़ हैं । 'निर्मल' जी ने यह भी बताया कि 'भावों की भिड़न्त' के बाद वे नकली छंद 'परिमल' में नहीं दिये । आचार्य शुक्ल के 'निराला' के गद्य काव्य के लिए यह कहाँ का गया है ? पूछने का उल्लेख भी यहाँ था ।

मुंशी जी और 'मतवाला' के प्रसंग पर 'निर्मल' ने पुनः लिखा कि 'निराला' ने मुंशी जी से अपने सम्बन्ध में सम्पादकीय लिखने के लिए बार-बार जिद की थी और फिर स्वयं लेख लिखकर उसे मुंशी जी के नाम से छपवाया था । 'भावों की भिड़न्त' निकलने पर नवीन जी के जवाब के लिए मुंशी जी को तार देने और उसे रुकवाने के लिए 'निराला' के कानपुर जाकर निराश वापस लौटने की सच्चाई के विषय में 'निराला' से उन्होंने प्रश्न किया था । उन्होंने लिखा --"यदि 'निराला' जी में हिम्मत हो तो सब उक्त बातों की सत्यता जाहिर करें ।" शिवपूजन सहाय को भला परन्तु असहाय कहकर निर्मल ने उनके भी 'निराला' की दस फीसदी कविताएँ न समझने की बात लिखी और अगर समझते हों तो 'परिमल' की तीन चौथाई कविताओं की व्याख्या करने की चुनौती दी । 'निराला' को अन्तिम चुनौती देते हुए उन्होंने जवाब माँगा और गाली गलौज से उनके काव्य साहित्य की परख बन्द न होने का उल्लेख किया ।

मतवाला मुंशी जी और अपने सम्बन्ध में दिये गए निर्मल के वक्तव्य के सम्बन्ध में 'निराला' मुंशी जी से पत्र-व्यवहार कर यह सूचना पा चुके थे कि इस सम्बन्ध में निर्मल ने सब झूठ लिखा है । उनकी कोई बात लेख छपने से

पहले निर्मल के साथ नहीं हुई है । 'निर्मल' के आक्षेपों के उदार स्वरों की सराहना कर 'निराला' ने उनके मुंशी जी के पत्र को झूठ समझने की सम्भावना को लक्ष्य कर मुंशी जी के हस्ताक्षर मिलाकर सत्यता की जांच करने को लिखा । 'निराला' ने पूछा कि यदि 'गुंजन' की पंक्तियों का उनका किया अर्थ बेबुनियाद था तो 'निर्मल' ने अपना विशद अर्थ क्यों नहीं लिखा ? 'ज्योत्स्ना' की विज्ञप्ति के सम्बन्ध में सूचना दी कि दुलारेलाल भार्गव की उपस्थिति में उन्होंने उसे लिखने से इनकार किया था, इसका प्रमाण स्वयं पंत जी से मिल जायेगा । पंत जी का उनसे कुछ छिपाना स्वयं पंत जी की सहृदयता का सूचक है मानकर 'निराला' ने लिखा -- 'लोगों को मेरा 'टोन' अच्छा नहीं लगा, शायद इसलिए कि मैंने गुलाब के नीचे कांटों का जिक्र किया था । पर 'लीडर' और 'अभ्युदय' में जो आलोचनाएं निकली हैं, उनमें तो कांटे ही ऊपर हो रहे हैं । केवड़ा के जैसे सूंघते ही नाक छिदता है । मैंने तो उन्हें गुलाब के नीचे रखा था ।'

'प्रभा' का लेख कानपुर जाकर छपवाने के विषय में 'निराला' ने लिखा कि 'मतवाला' में उनका पत्र प्रकाशित होने के बाद इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी । अवध में जो सेटलमेण्ट सन् २४ में हुआ था, उसके सिलसिले में वे कानपुर होकर गांव गए थे । उन्होंने बताया कि कानपुर में विद्यार्थी जी के समय तक वे बराबर नवीन जी से मिलते रहे थे, यह हो सकता है कि नवीन जी से मिलने पर यह पहला मौका रहा हो यों कानपुर जाने में उनका खास उद्देश्य त्रिवेदी जी से मिलना था । मुंशी जी को इस विषय में पूरी जानकारी थी, क्योंकि वे उनसे ४०) लेकर चले थे, मतवाला की कैशबुक में यह रकम अब भी दर्ज होगी, यह 'निराला' ने लिखा । नवीन जी से अपनी भेंट और बातचीत के सम्बन्ध में 'निराला' ने बताया कि आक्षेप के बाद वाले 'प्रभा' के अंक के लिए नवीन जी ने उनकी तारीफ में जो नोट लिखा था, वह उन्होंने देखा था और उसके 'केवल प्रशंसात्मक' होने और संपादकीय मैटर पढ़ने के कारण नवीन जी से उसे निकाल देने का अनुरोध किया था । 'प्रभा' का आक्षेप वाला अंक निकलने के बाद 'निराला' कलकत्ते से चले थे इसका प्रमाण देने को भी वे प्रस्तुत थे ।

'निराला' के कुछ लेख लिखकर मुंशी जी के नाम से छपवाने के प्रश्न का उत्तर मुंशी जी से मिलने का उल्लेख कर 'निराला' ने पूछा कि 'निर्मल' ने ऐसा किस आधार पर लिखा था ?

'निराला' ने कलकत्ते में दिए और डा० सुनीतिकुमार द्वारा प्रशंसित अपने भाषण का उल्लेख कर बताया कि उसमें भी उन्होंने अपना उदारता का ज्ञान रखकर युग प्रवर्तक का श्रेय गुप्त जी 'प्रेमचन्द प्रसादद्वय पंत को दिया था। इस कथन की सत्यता का प्रमाण बनारसीदास जी से मिल सकता है। 'निराला' ने लिखा कि जब उनका एक बटा दस साहित्य समझा गया है, तब ये हाल है, तो पूरा समझ में आने पर तो हिन्दी का विशेषतः कवि और लेखकों का हालत बड़ी खराब हो जायगी। अपनी जन्मभूमि बंगाल का उल्लेख कर उन्होंने यदि युक्तप्रान्त की नाक की चिन्ता हो तो सचेत होने की चेतावनी दी।

पन्त और उनके काव्य के सम्बन्ध में 'निराला' ने 'निर्मल' से उनकी 'जलद पट से' आदि पंक्तियां समझाने को कहा। पंत गुंजन में कुछ गिर गए हैं, इसका प्रमाण निर्मल ने 'निराला' से मांगा था। 'निराला' ने उनकी बातें निष्प्रमाण बताकर पूछा था कि क्या इसका भी प्रमाण उन्हीं से लिया जायेगा? मिश्रबंधु विनोद के पृष्ठ ३३२ पर पंत जी के 'कैवल पल्लव' में 'साहित्यिक गौरव का चमकता' हुआ उदाहरण दिखलाने के उल्लेख का उद्धृत कर 'निराला' ने 'कैवल' का अर्थ पूछा। मिश्रबंधुओं के पास मंगलाप्रसाद पारितोषिक के लिए गुंजन के जाने और मिश्रबंधुओं से उसका जवाब स्वयं आकर पूछने के लिए कहने की सूचना 'निराला' ने निर्मल को दी।

'निराला' को उत्तर देते हुए श्री निर्मल ने लिखा कि 'निराला' ने उनके प्रश्नों का उत्तर न देकर स्वयं अपनी प्रशंसा की है। मिश्रबंधु विनोद का 'निराला' द्वारा किया उल्लेख उनके अनुसार मिश्रबंधुओं के स्वयं लिखने पर ही विश्वस्त माना जा सकता है। निर्मल ने प्रश्न किया कि जब 'निराला' पंत जी से प्रतिद्वंद्विता का भाव रखते हैं, तब मित्रता का दावा क्यों करते हैं ? 'निराला' के मानापहरण करने की प्रवृत्ति और उनकी कविता की दुरुहता निर्मल के अनुसार अकाट्य तथ्य थे। मुंशी जी से प्राप्त रचनाओं के सत्य होने की दुहाई भी

निर्मल ने दी थी । 'निर्मल' के इस उत्तर के से विवाद का समापन हुआ । 'अभ्युदय' संपादक ने पंत-प्रसाद और लोकप्रियता के निर्णय के लिए वोट लेने का प्रस्ताव किया । इस विवाद से हिन्दी के संसार को हुए हानि-लाभ के लिए डा० रामविलास शर्मा ने 'निर्मल' और अभ्युदय संपादक दोनों को ही जिम्मेदार ठहराया है।[1]

इस विवाद का परिणाम 'सुधा' में प्रकाशित 'साहित्य तथा हमारे लेखकों का संकट' टिप्पणी से ज्ञात होता है, जिसमें हिन्दी के प्रतिभाशाली कवियों और लेखकों के ऊबकर लिखना बन्द करने की सूचना प्रकाशित की गयी थी । यहाँ लिखा गया था कि 'यों भी उनसे जितनी आशा की जाती थी, उतनी नहीं पूरी हुई, कारण उनकी रचना बिकी नहीं, इसलिए प्रकाशक को दूसरी कृति लेने की हिम्मत नहीं हुई, न अच्छा दाम मिलने के कारण, अच्छा निबन्ध निर्वाह न हो सकने की वजह उन्होंने कुछ लिखा ।' प्रेमचन्द सन् २८ में ही 'हिन्दुस्तान के साहित्यिक जीवन की हालत सोचने लायक' कह चुके थे । जनता का सहयोग और पाठक न मिलने की शिकायत के साथ 'निराला' की तरह उन्होंने भी लिखा था 'मगर न जाने क्या बात है कि मेरी किताबें तारीफ तो बहुत पाती हैं, मगर बिकती नहीं ।' ६ जुलाई ३६ को अश्क को ऐसा आशय का पत्र उन्होंने लिखा था 'किताबें नहीं बिकतीं । पब्लिशर कोई नयी नयी किताब छापते नहीं । कलम पर जिन्दा रहना मुश्किल हो रहा है । बस किसी अखबार में जान देने के सिवा और कोई रास्ता नज़र नहीं आता ।'[2]

'निर्मल' से यह विवाद होने से पहले 'निराला' ने दुलारेलाल भार्गव की 'दोहावली' के मंगलाचरण के 'अर्थ-अलंकार' मई ३० की सुधा में प्रकाशित कराए थे । शब्दों के अधिकार की साधना समझने की आवश्यकता बताकर एक ही दोहे में समस्त रस अलंकारों की भाव भूमि के सादृश्य अथवा भिन्नता में एकता का निदर्शन उन्होंने किया था । उन्हें यह भी मालूम

१- निराला की साहित्य साधना, पृ० २३५

२- चिट्ठी-पत्री-२, पृ० २०५, २४२

था कि लोग ऊपर हँसेंगे,' पर वे भला होंगे, जो आग को पानी और पानी को आग बनते हुए देखकर भी नहीं मानते ।' अन्त में ऊपर सभी रसों और अलंकारों की सिद्धि करते समय अपने कथन की विस्तारपूर्वक व्याख्या करने का उल्लेख भी उन्होंने किया था[1]।

'दुलारे दोहावली' को देव पुरस्कार के लिए भेजे जाने पर बनारसीदास जी ने कविता की भाषा खड़ी बोली बताकर ब्रजभाषा रचना को काव्य की संज्ञा के अयोग्य ठहराया । 'निराला' के छः अर्थ को लक्ष्य कर सन् ३४ में जब हिन्दी कविता प्राचीन शब्दगत खिलवाड़ छोड़कर भाव जगत में आ गई है, उसे 'बौड़मपन' की संज्ञा देकर हास्यास्पद बताया । चतुर्वेदी जी ने व्यसन का एक उद्धरण भी दिया और भार्गव जी के एक दोहे का मजाक उड़ाया था ।

'माधुरी' में उमाशंकर वाजपेयी ने यह और ध्यान दिया कि चतुर्वेदी जी ने 'निराला' के विरुद्ध जो प्रोपेगण्डा किया था, उसमें 'सुधा' ने 'निराला' का साथ दिया था , क्योंकि द्वेषवश उन्होंने भार्गव जी की दोहावली का विरोध किया है । सितम्बर ३५ की 'माधुरी' में उन्हीं को लक्ष्य के 'निराला' ने 'मित्र के प्रति' कविता लिखी थी , जिसमें ब्रजभाषा-काव्य प्रेमियों के साथ डा० जोशी के अर्र-बर्र और टर्र-टर्र को भी 'निराला' ने याद किया था और रचना के अन्त में स्पष्ट संकेत किया था कि भारती के उर में हार पहनाने वाले वही थे । निकष में चतुरसेन शास्त्री ने और भी कटु आक्षेप करते हुए हिन्दी और उसके कुछ साहित्यिकों के विरुद्ध लिखने की चतुर्वेदी जी की प्रोपेगण्डा प्रवृत्ति की आलोचना की । वाजपेयी जी और शास्त्री जी की अशिष्टता पर खेद प्रकट कर चतुर्वेदी जी ने अपनी भूल स्वीकार की और पुनः व्यसन को उद्धृत किया[2] ।

१- चयन,पृ०१३७,१४०

२- निराला की साहित्य साधना,पृ० २८६-२८७,६०

सन् ३४ के अन्त में 'दुलारे दोहावली' पर लिखते हुए उन्होंने सन् ३५ के बीअपन' की ओर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया। इन्दौर की 'वीणा' से 'निराला' का अर्थ अर्थान्तर' लेख उद्धृत कर उन्होंने हिन्दी साहित्य के धनी धोरियों से पूछा था कि' ये अर्थ है या अनर्थ'? क्या हिन्दी के किसी जिम्मेदार लेखक या संपादक ने इस बीअपन के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई है?' 'निराला' के लेख के अन्त में दी टिप्पणी याद कर उन्होंने इस बात को ध्यान देने योग्य कहा कि इस पुस्तक की प्रथम आवृत्ति की विज्ञप्ति 'निराला' की लिखी होने के कारण उनके अर्थ 'उपेक्षा की दृष्टि' से नहीं देखे जा सकते।

'हिन्दी कविता का प्रवाह किस ओर है?' बताते हुए चतुर्वेदी जी ने अपनी पहले लिखी टिप्पणी को याद कर पुनः उन महानुभावों के 'अकल के दिवालियापन' का उल्लेख किया जिसके द्वारा सहज बुद्धि का अपमान भी होता है और जो मुक्त आकाश में विचरती कविता-अप्सरा के बजाय 'अलंकारों से लदी, प्राचीन पर्दे में बंद दासी रोग से पीड़ित नायिका मन का दर्शन कराने को उत्सुक है।' उन्होंने खेद प्रकट किया कि हिन्दी कविता के वर्तमान युग के प्रवर्तक माने जाने वाले महानुभावों ने भी दुलारे दोहावली को सर्टिफिकेट देते समय इस बात को बिल्कुल नजरन्दाज कर दिया है, केवल मैथिलीशरण गुप्त ने इसको स्पष्ट परम्परा की निदर्शन कहकर भी उससे आगे बढ़ने की आशा की है, यह बताया। पुरस्कार देने अथवा कृति में गृहीत परिपाटी की समयानुकूलता के प्रश्नों को उपेक्षणीय कहकर उन्होंने 'शाब्दिक खिलवाड़ों और नायिका भेद अलंकारों को अनुचित' महत्त्व देने के समयानुकूलता को महत्त्वपूर्ण बताया और सर्टिफिकेट देने में व्यस्त कवि-समुदाय से इन प्रश्नों का उत्तर पाने की अपनी बहुत कम आशा को व्यक्त किया।[1]

अगले अंक में श्री शालिग्राम शास्त्री का लेख सन् १९३४ का बीअपन' प्रकाशित हुआ। 'दुलारे दोहावली के 'निराला' सा विकट भाष्यकार' मिलने के उसके सौभाग्य को उसके 'भाग्य भाग दुर्भाग्य का सूचक कहा।

१- विशाल भारत, जनवरी ३५, पृ०१०९-१०३

५: अर्थों से चतुर्वेदी जी के घबराने का उल्लेख कर उन्होंने लिखा 'मालूम नहीं चौबे जी कितने लोटे भांग चढ़ाते हैं कि पोथी में से चूहे निकलते देखकर डर गए।' पोथी में से निकले ''गोरखधंधे' को देखकर शास्त्री जी को 'कोई आश्चर्य' नहीं हुआ। उन्होंने दोहे के आठ और अर्थ प्रस्तुत किए और 'वकील निराला जी के 'अर्थशास्त्र के साधारण ज्ञान' के बल पर नए नए अर्थ निकाल कर पूरा दुलारे सहस्र नाम' बनाने की सलाह पाठकगणों को दी।

~~चतुर्वेदी-जी-के-लिखे~~ फरवरी के 'विशाल भारत' में उमाशंकर बाजपेयी 'उमेश' ने चतुर्वेदी को लिखे अपने पत्र में उनके अशालीन व्यवहार पर प्रकाश डाला। लेखक ने हिन्दी के एक 'जिम्मेदार' लेखक को 'ओछा' की उपाधि देने और मुझे प्रमाणित करने की उनकी चेष्टा, औरों को अशिष्ट कहने वाले चतुर्वेदी जी की अशिष्टता और उससे हुए 'निराला' के अपमान का उल्लेख किया[1]।

'सुधा' का सम्पादकीय -'काशियों की प्रान्तीयता'[2] लिखते हुए 'निराला' ने मार्च में हिन्दी में एक दूसरे को गिराने का मजा हासिल करने का उल्लेख करते हुए चौबे जी को याद कर लिखा कि 'विश्वामित्र संपादक के साहित्यिक चौराकी चोरी न कहकर चौबे जी उनका 'भरोसा' करते हैं कि रवीन्द्रनाथ ने चोरी की।' पर चौबे जी को, जिन्हें अंग्रेजी का शुद्ध अनुवाद करने का ज्ञान भी नहीं, मालूम नहीं कि दूसरों के घर का कितना माल रवीन्द्रनाथ के हाथ लगा है।' 'निराला' ने चौबे जी के अंग्रेजी ज्ञान के सम्बन्ध में 'लेख आगे प्रकाशित होगा' सूचना भी फुटनोट में दी थी।

मई के अंक में 'निराला' ने उनके अंग्रेजी ज्ञान पर प्रकाश डाला। 'दुलारे दोहावली' के सम्बन्ध में अपने ऊपर किए गए आक्षेपों का उल्लेख कर 'निराला' ने दिखाया कि 'अंग्रेजी की टांग तोड़ने वाले पंडित बनारसीदास जी चतुर्वेदी उस लेख में किस तरह 'बीजापन' की सार्थकता सिद्ध कर रहे हैं। 'चतुर्वेदी जी के साधारण हिन्दी ज्ञान की हँसी उड़ाते हुए यहाँ

१- विशाल भारत, फरवरी ३५, पृ०२२८

२- सुधा, मार्च १९३५, पृ०१७७

'निराला' ने आलोचकों के सम्बन्ध में अपना हा लिखा है कि चतुर्वेदी जी जिसे 'धोका' कहते हैं, वह वास्तव में 'टीका और अर्थ प्रदर्शन' की प्राचीन रीति है। उसका उत्तरदायित्व वे नहीं समझ सकते। दोहे को 'अर्थ गौरव' से पूर्ण और अपने 'नवीन प्रतिभा के पक्ष' में होने का उल्लेख कर 'निराला' ने यह भी बताया कि ये अर्थ किसी गुरु के अपार ज्ञान के नहीं, उनकी अपनी अक्षमता या क्षमता के प्रमाण हैं। "दूसरों के तिलों को पेर कर भारत के स्नेह तेल को तैलाक्त करने का अभिप्राय किसका है, यह उनकी अपेक्षा 'विशाल भारत' के संपादक भली भांति जानते हैं, लिखकर हिन्दी के साहित्यिक और पाठक गणों के 'विशाल भारत' के अभिप्राय और उसके संपादक की योग्यता को न समझ पाने पर 'निराला' ने अफसोस प्रकट किया। आगे वे लिखते हैं -- "रही बात चतुर्वेदी जी की 'उपेक्षा की दृष्टि' की सो ऐसी दृष्टियों का तापमान मुझे साल में गर्मियों के दिनों से ज्यादा पता मालूम होता रहता है। वह अपने प्रोपेगण्डा की होंगे, मैं जानता हूं, मेरी कृतियों का क्या भाग है?"

जनता के पक्ष से लड़ने वाले चतुर्वेदी जी ने जनता से सम्मति देने का अधिकार छीनने पर साहित्य की केवल वाद विवाद की वस्तु बन जायेगा, यह समझाने के लिए स्पर्नि का जो उद्धरण दिया था, 'निराला' ने उसकी आलोचना की। उद्धरण में आए *public* शब्द जिसका अर्थ चौबे जी की दृष्टि में जनता छोड़ और दूसरा हो ही नहीं सकता- पर लिखकर उनका अज्ञान 'निराला' ने प्रकाशित किया।

'निराला' ने अपने लेख में यह भी बताया कि वे चाटुकार भी 'बिहारी दोहावली' की उचित आलोचना नहीं कर सके, क्योंकि वह पुरस्कार प्रतियोगिता में भेजा जा चुका था। दोहों का अर्थ उन्होंने १०० दोहों वाली प्रथम आवृत्ति के समय लिखा था जब पुरस्कार के लिए उसके जाने का प्रश्न ही नहीं उठा था। उन अर्थों में असाहित्यिक अथवा अपमानजनक कुछ भी नहीं था, बल्कि 'निराला' ने 'विशाल भारत' के विविध अर्थ छापकर अपनी विशालता का परिचय देने का निर्णय पाठकों पर छोड़ा है, उत्तरदायी पद पर रहकर भी चतुर्वेदी जी के

बेठीक ठीक अशिष्टता दिखाते चले जाने पर दुःख प्रकट किया है, इस अशिष्टता को पाठकों का चुपचाप सहन करना उनकी दृष्टि में साहित्य क्षेत्र में अधर्म का परिचायक है। शास्त्री जी के लेख की गंदगी को छोड़कर साहित्यिक बातों को लेते हुए 'निराला' ने बताया कि उन्होंने साहित्यिकों के विषयों में टांग अड़ाने की अपनी अनधिकार चेष्टा ठीक समझा है। कारण 'विषय में टांग नहीं अड़ाई जाती, दखल दिया जाता है।' उनके द्वारा प्रस्तुत दोहे के अर्थ को उनके संस्कृत ज्ञान का परिचायक कहा और उसी आधार पर पंक्तियों और शिष्टाचार के फासले का भी उल्लेख किया।

लेख के अन्त में 'निराला' ने फुटनोट में यह सूचना दी कि यह लेख तीन चार महीने पहले का लिखा हुआ है। तब 'दुलारेदोहावली' का निर्णय प्रकाशित न हुआ था। यह लेख के मध्य स्थल से खंडित है। 'अभ्युदय' में छपने के लिए भेजा था, पर संपादक न थे, सहायक ने तीन सप्ताह रखकर वापस कर दिया था। फिर मेरे पास पड़ा रहा।'

सन् ३६ में जब 'निराला' ने हिन्दी में आलोचकों का अभाव देखकर स्वयं अपनी कला के विवेचन में लेखनी उठाई 'एक वृहद् विवेचन' में उन्होंने पंत को ग्रहण किया और उसका उद्देश्य केवल कला का स्पष्टीकरण बताया, 'पंत जी की बुराई नहीं'। यहां भी उनकी स्पष्ट स्थापना थी कि पंत जी और हिन्दी दोनों के मुखों की ओर देखने पर हिन्दी का मुख देखना ही उन्हें 'अच्छा लगा'। उनके प्रति अधिकांश साहित्यिकों की विमुखता का कारण भी यही था कि उन्होंने 'सदैव हिन्दी का मुख देखा है।'

'वर्ण विचार द्वारा काव्य-कला का रूप-निर्णय' करते हुए उन्होंने पंत के 'शणव' 'वर्णों के आधार की आलोचना करते हुए यह स्पष्ट कर दिया था कि वे पंत जी को 'एमीनेन्ट' कवि नहीं मानते थे। 'पंत और पल्लव' में व्यक्त स्थापना यहां भी दोहराते हुए तीन उदाहरणों द्वारा 'निराला' ने

१-प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०२१५,२०४

बताया कि 'सावन' के गीतों से पंत जी की शब्द लालित्य वाली कला खुलती है 'उनकी भाषा 'सरल होकर कवितावत् अधिक सुन्दर, प्राणों के अधिक पास' आती है।[1]

जून ३६ को 'माधुरी' में प्रकाशित इस विवेचना के दूसरे अंश में 'निराला' ने अपनी 'जूही की कली' का उद्धरण और व्याख्या प्रस्तुत कर यह दिखलाने और 'चेष्टा' की है कि ठीक-ठीक चित्रण होने पर उपदेश किस तरह उसके भीतर छिपे रहते हैं और कला का विकसित रूप स्वयं किस तरह उपदेश बन जाता है।' अपनी रचना द्वारा कला की परिणति अथवा उसके पूर्ण रूप के प्रदर्शन के विरोध में उन्होंने 'चिड़ी कला' के लिए 'गुंजन की कविता' 'चांदनी' को लिया है, जिसपर उनके मित्र ने *very good* (अति उत्तम) लिख रखा था। अपने इन मित्र डा० रामरतन भटनागर से 'निराला' ने पंत के चित्रों का उल्लेख किया था।[2] यहां उन्होंने अपना निष्कर्ष बताया कि यथार्थ में पंत जी की कला बहुत ही कम पड़ी है, अर्थात् उनकी अधिकांश रचनाओं में हर बंद अपना अलग राग अलापता है और जिन रचनाओं में सम्बद्धता मिलती है, वह उच्चकोटि की नहीं है। परन्तु 'निराला' यह भी स्वीकार करते हैं कि कहीं-कहीं उनके चित्र सुन्दर हैं।[3]'

'माधुरी' के जुलाई के अंक में 'निराला' ने गुंजन के प्रथम गीत 'तप रे मधुर मधुर मन।' को लेकर इसके भाव से अपनी असहमति प्रकट की है और यहां 'कला का पतन' देखा है, जिसका उल्लेख वे पल्लव की आलोचना करते समय कर चुके थे। उनकी दृष्टि में इसका कारण था 'दर्शन के साथ साहित्य, भाव प्रकाशन, प्रतिपाद्य विषयों का 'कमजोर' पड़ना। पंत की यह रचना पढ़ने के बाद 'दर्शन साम्य' के अनुसार रचित अपने गीत 'अपलक मन' की व्याख्या कर उन्होंने दिखाया है कि 'कला विकसित होकर रूप में आकर भी गिरी नहीं।'[4]

१-प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०२०८-२१०, माधुरी मार्च ३६

२- निराला और नवजागरण, पृ०१४६

३- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०२१७-२१८

४- ,, पृ०२२६-२२८, प्रबन्ध पद्म, पृ०१७०-१७१

इस विवेचना के अन्त में 'निराला' ने यह स्पष्ट कर दिया था कि पंत के सम्बन्ध में अपने विचारों से दूसरों का समर्थन मैं नहीं चाहता; मैं तो केवल इतना ही चाहता हूँ कि जो कुछ मैं लिख रहा हूँ, वह दूसरों की धारणा में आ जाए।[1] फिर अगर उनकी धारणा न बदली तो यह साहित्य की धारणा होगी, सत्य होगा।[1] अपने दोषों के सम्बन्ध में तो मैं लिख ही चुके थे कि अगर कोई युक्तियों के साथ सप्रमाण लिखेंगे तो उसे मैं समझने की कोशिश करूँगा और सत्य मालूम देने पर उन्हें मान भी लूँ। कारण, उनकी कविकाठ का नहीं जिसके झुकने पर उन्हें टूटने का डर हो।[1]

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी जिन्होंने 'पल्लव' के प्रकाशन के बाद 'निराला' से 'पल्लव के छन्दजाल' का पर्दाफाश करने को कहा था, पर इस ओर 'निराला' को तत्पर न पाकर स्वयं पंत जी की 'निराला' की आलोचना के विषय की सूचना दी थी, और उसमें 'निराला' से पंत की हस्तलाघवता के नमूने माँगकर उनके सहयोग की अपेक्षा की थी।[2] अब 'भारत' में लिखकर पंत जी का समर्थन कर रहे थे। उन्होंने 'निराला' को 'मनमौजी' बताकर लिखा कि 'निराला' द्वारा पंत की आलोचित पंक्तियाँ ही अन्यत्र उनके द्वारा प्रशंसित हैं। शान्तिप्रिय जी की इस स्थापना का प्रमाण 'निराला' के उपर्युक्त लेखों में कहीं भी प्राप्त नहीं होता, संभव है, ऐसे उल्लेख उनकी मित्र मण्डली तक ही सीमित हों। दृष्टव्य है 'निराला' ने पंत जी के 'परिवर्तन' की प्रशंसा की है और इसके बाद वे उच्छ्वास एवं आंसू का स्थान मानते हैं। 'मौन निमंत्रण' और 'जननी' श्याम की वंशी' आदि कविताओं की सराहना के प्रमाण भी उनके लेखों में मिलते हैं।

शान्तिप्रिय जी की 'निराला' को कोई चिन्ता नहीं, उन्हें उत्तर देते हुए 'निराला' ने यह स्पष्ट कर दिया था। पर आदमी की नादानी देखकर वह 'समझाने लगते हैं।' मेरे गीत और कला' में उद्धृत पंक्तियाँ

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०२२८-२०४

२- निराला की साहित्य साधना, पृ०१३८

और प्रश्नों की पुनरावृत्ति करते हुए उन्होंने शान्तिप्रिय के सम्बन्ध में लिखा --
'पंत की रुई धुनकने वाली धुनही लेकर ये तीरन्दाज़ बने फिरते थे शांतिप्रिय
द्विवेदी । कायदे का एक भी तीर है या सब चूके हैं, ये भी देखें और 'भारत'
के पाठक भी ।'

शान्तिप्रिय जी ने पंत से भी 'निराला' की आलोचना पर
सम्मति प्रकट करने का अनुरोध किया । 'निराला' से भी पल्लव के प्रकाशन के बाद
ऐसा ही आग्रह उन्होंने किया था । 'निराला' ने तो उन्हें सम्मति नहीं भेजी
थी, परन्तु पंत ने उन्हें अपनी सम्मति भेज दी, जिसे 'भारत' में अपने नोटके
साथ उन्होंने प्रकाशित कराया । पंत जी ने 'निराला' की आलोचना को
विनाशात्मक कहा था, जो उनके विकास में सहायक नहीं । 'पल्लव' और 'वीणा'
की भूमिका में 'कुरुचि' को स्वीकार कर उन्होंने भी 'निराला' के लिए शांति-
प्रिय जी की उक्ति 'मनमौजी आवेगी' का समर्थन किया और लिखा --"यदि मैं
'निराला' जी पर अन्याय नहीं कर रहा हूं तो पहली बात जो मुझे उनकी
आलोचनाओं में मिलती है, वह है उनका मेरे प्रति स्पर्द्धा का भाव । (जिस स्पर्द्धा
में शिष्टता की कमी है ।)

स्वयं पंत द्वारा 'पल्लव' में व्याख्यायित पंक्तियों की
तुलना रवीन्द्र के 'निर्झरेर स्वप्न भंग' से कर 'निराला' ने सौन्दर्य के नन्दन वन
के निर्गन्ध पुष्प पंत के हाथ लगने का उल्लेख पल्लव की आलोचना लिखते समय किया
था, यही मान्यता उनकी अपनी थी । रवीन्द्र की रचना में तो कला के रूपक
सुन्दर निर्वाह है, पर पंत जी का 'पर्सोनिफिकेशन' दूषित है, यह लिखकर
'निराला' ने मेरे गीत और कला' में उद्धृत पंक्तियों और प्रश्नों को पुनः प्रस्तुत-
किया ।

वर्ण विचार के सम्बन्धमेंअवश्य उनका निश्चय यह था
कि 'श्यामल' प्रकाश की तरह उज्ज्वल है और 'सजल' आकाश की तरह नील ।
अपने इस कथन का विरोध करते हुए उन्होंने अपने गीतों को 'सजल' प्रधान
और ज्योति से युक्त कहा है, जहां रंग कम हैं । इसके विपरीत पंत जी में
'श्यामल' की अधिकता के कारण रंग अधिक मिलते हैं । पन्त जी ने उनमें जिस

स्पर्धा भाव का उल्लेख किया था, अन्त में उसके सम्बन्ध में 'निराला' ने लिखा--'आलोचना के समय उनके प्रति मेरे काव्य का स्पर्धा-भाव जग जाता है, संभव है, उनका यह विचार सत्य हो, पर मैं उन्हें आलोचना के योग्य समझता हूं, स्पर्धा के योग्य नहीं ।'[1] डा० रामविलास शर्मा ने पन्त और 'निराला' के इस अन्तर्विरोध को 'छायावाद का अपना आन्तरिक विरोध' कहा है । 'निराला' और पंत की टक्कर को वे बैसवाड़े के 'किसान' और इलाहाबाद के 'इण्टेलेक्चुअल' की टक्कर कहते हैं[2]।

'निराला' का यह कथन कदाचित् अनुचित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनका साहित्य स्वयं इसका प्रमाण उपस्थित करता है । 'परिवर्तन' को निरन्तर 'निराला' ने उनका श्रेष्ठ कहकर उसकी प्रशंसा की है, संभवतः उसके ओज के कारण, जिसकी हिन्दी को आवश्यकता थी[3] । पंत की इस कविता के सदृश 'निराला' ने कोई कविता नहीं लिखा, क्योंकि काव्य क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा के योग्य वे केवल रवीन्द्र को ही समझते थे । यद्यपि यहां भी उनका कलाकार का अहंकार प्रमुख था, क्योंकि रवीन्द्रनाथ की नकल करने की उनकी इच्छा नहीं थी । पंत के प्रति 'निराला' में जो विरोध, आलोचना अथवा स्पर्धा के भाव मिलते हैं, उसके मूल में 'पल्लव' के प्रवेश में की गई उनकी और उनके मुक्त छंद की आलोचना निस्संदेह थी और सम्भव है कि यदि पंत जी ने 'प्रवेश' में मुक्त काव्य और निराला की चर्चा न की होती तो 'निराला' की आलोचना का यह स्वरूप सामने न आता अथवा उनके आलोचनात्मक साहित्य का दूसरा ही रूप होता ।

पंत की आलोचना का एक दूसरा प्रमुख कारण यह भी था कि 'निराला' यह देख रहे थे कि साहित्य क्षेत्र में उनका और प्रसाद का तो निरन्तर विरोध होता था, जब कि पंत के प्रति साहित्य के सुधारपंथी नेताओं का दृष्टिकोण कुछ अधिक कोमल था[3] । इस अन्याय के प्रतिकार का ही एक रूप पंत की कटु आलोचना था । पंत के 'परिवर्तन' के साथ उन्होंने पद्मसिंह शर्मा के साथ प्रसाद की 'चढ़कर मेरे जीवन रथ पर' आदि पंक्तियां प्रस्तुत की थीं[4]

१- निराला की साहित्य साधना, पृ०१४३
२- प्रबन्ध पद्म, पृ०१६५, १६६
३- चयन, पृ०६७
४- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०१६०-१६८

आभा 'काव्य साहित्य' के 'पल्लव की परी' के साथ प्रेमचन्द और प्रसाद का उल्लेख किया गया था[1]। छायावादी कवियों की अभिव्यक्ति नवीनता के उल्लेख के सहित उन्होंने पंत के चित्रों के साथ प्रसाद जी की भावनाओं को भी याद रखा है[2], इतना ही नहीं, प्रसाद को वे 'खड़ी बोली के मौलिक साहित्य-निर्माण के चतुरंग प्रथम श्रेष्ठ साहित्यिकों[3]' कहते हैं।

पन्त विषयक इन प्रेरणाओं का प्रस्फुटन हम 'निराला' के गद्य,आलोचनात्मक साहित्य में ही पाते हैं, काव्य में स्वीकारात्मक अथवा नकारात्मक रूप से उनका प्रभाव नगण्य ही प्रतीत होता है, इस विषय में संदेह का स्थान नहीं रहता। पन्त पर लिखी यह आलोचना स्वतः ही इस बात का प्रमाण है कि पन्त के प्रति 'निराला' के दृष्टिकोण में ममत्व और विरोध का समान स्थान था। पंत उन्हें हाण्ट (haunt) करते थे, भले ही उनकी सम्बद्ध प्रेरणाएं आलोचनात्मक साहित्य तक ही सीमित हों।

नवम्बर ३६ में 'निराला' पर श्री भुवनेश्वर का एक लेख[4] प्रकाशित हुआ, जो उनकी विरोधी आलोचना के विकास के अन्तर्गत ही आता है। लेखक ने प्रारम्भ में सूचित किया था कि 'निराला' हिन्दी में इस युग की कण्ठोपरली हैं, समालोचना के प्रशंसा का सम-अर्थी समझने की भूल उन्होंने की है। स्वतः वे अपनी प्रशंसा करते हैं, पर वस्तुतः हिन्दी और 'निराला' दोनों इसके अनुपयुक्त हैं। 'निराला' से अपनी पहली दो मुलाकातों का विवरण देकर लेखक ने कविता को समझाना 'दुरूह विडम्बना' बताया है। हिन्दी जनता के उनको उचित सम्मान न देने की 'निराला' की शिकायत और उनके लिए इसके दो कारणों का-- जिसमें पन्त के क्षोभ में उनका होना मुख्य और हिन्दी जनता [illegible] का उनकी कविता को समझने में असमर्थ होना गौण था -- उल्लेख कर भुवनेश्वर ने उनके कलम लेकर सोचने, चमत्कार के लिए उनके भाषा का सहारा खोजने और व्यक्तित्व से अलग

१- चयन,पृ०५०

२- प्रबन्ध पद्म,पृ०८३

३- प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०४८

४- माधुरी,नवम्बर ३६,पृ०५०४-५०७

होते ही विफलता प्रतीत होने वाली जटिल कटुता की सूचना दी है । उनका निष्कर्ष था : "पन्द्रह वर्ष से यह अद्भुत सहनशील मनुष्य, कविता, उपन्यास, कहानी, जीवन-चरित्र, समालोचना, विचारपूर्ण निबन्ध सब कुछ लिख रहा है, पर प्रथम श्रेणी तक वह कवि, कथाकार, विचारक या समालोचक किसी भी हैसियत से नहीं पहुंचता ।" भुवनेश्वर उन्हें टैगोर के उस *mannerism* से पैदा हुई, जिसके अति विश्लेषण में कबीर और ब्लेक भी आते हैं-- बंगाली संस्कृति का कवि कहते हैं *mannerism* का उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का कवि कहते हैं, जो "कवि सर्वोत्तम रूप में भी एक चतुर शिल्पी है । शायद महान भी, पर महान कवि नहीं ।" उन्हें "निराला" में टैगोर की शक्ति का अभाव और उनकी " तुम और मैं " और "जुही की कली " सभी में अर्थ की स्थूलता दृष्टिगत हुई ।

"निराला" को मुख्यत: कवि, और पंत के उन्हें "केवल उद्योगवान समालोचक" कहने का उल्लेख कर भुवनेश्वर ने उन्हें एक साहित्यिक, मेहनती, आत्माभिमानी, विशाल-हृदय कहा है । उनकी कविता में साधना, अध्यवसाय, कारीगरी, कोमलता और पौरुष देखकर कहा कि वह बना सकते हैं, पर निर्माण नहीं कर सकते, जीवन को पचा नहीं सकते । भुवनेश्वर ने उन्हें "हिन्दी का अकेला विचारक कवि" कहा है, जिनकी "कविता में एक वृद्धता है, जो दुर्भाग्य से उनके गद्य में नहीं है" और इसीलिए वे "निराला" को कथाकार की हैसियत से गम्भीर विवेचन का पात्र नहीं मानते । लेख के अन्त में माधुरी-संपादक का लेखक की कई बातों से सहमत न होने का नोट था ।

वाचस्पति पाठक और पं० बलभद्रप्रसाद मिश्र से भुवनेश्वर का परिचय कराकर "निराला" ने अपना लेख माधुरी[१] में छपने भेजा, जिसमें भुवनेश्वर को उत्तर दिया गया था । भुवनेश्वर के लेख की सूचना उन्हें रूपनारायण पाण्डेय से मिली थी और लेख की रूपरेखा भेजते समय उन्होंने उनपर लिखने की योग्यता का भुवनेश्वर में अभाव पाण्डेय जी को भी बताया था, परन्तु पाण्डेय जी ने संपादकीय जिम्मेदारी निभाई-- यह "निराला" ने बताया और भुवनेश्वर से बातचीत को भी

१-

गलत सिद्ध किया । पाठक जी ने भी भुवनेश्वर के फरेबी स्वभाव और हिन्दी के भीतर से 'निराला' को अपमानित करने वाले उनके स्वर का उल्लेख कर संपादक की योग्यता का संकेत किया था । मिश्र जी ने भी भुवनेश्वर के संस्मरण 'निराला' की व्यंग्यातुरता लिखे थे ।

अपने प्रत्युत्तर में भुवनेश्वर ने 'निराला' के *vindication* को करुणापूर्ण अथवा बचाव को सस्ता कहा । 'निराला' के अहं भाव का उल्लेख कर उन्होंने अपनी मुलाकात की सत्यता दोहराई । पाठक जी द्वारा पन्त जी के सम्बन्ध में *टीन* चमकाने वाले आरोप के सम्बन्ध में भुवनेश्वर ने लिखा कि सिर्फ भाषा की दृष्टि से 'निराला' के यहाँ पिघला सोना होने और पन्त के *टीन* झलझलाने की बात उन्होंने कही थी । 'निराला' के उत्तर के लिए उन्हीं से सूचना पाकर वे तैयार थे, इसका उल्लेख कर भुवनेश्वर ने अपनी ओर से विवाद के समापन की घोषणा की ।

नवम्बर ३६ में प्रारम्भ इस विवाद के साथ ही 'निराला' की 'प्रभावती' पर एक प्रशंसामूलक टिप्पणी भी 'सरस्वती' में निकली थी । श्री राजनाथ पाण्डेय ने वातावरण और ऐतिहासिक प्रसंगों के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से उपन्यास की प्रशंसा कर लेखक की प्रतिभा को स्वीकार किया था[१] । 'सरस्वती' के ही जनवरी ३७ के अंक में प्रकाशित 'निराला' की सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति कविता के सम्बन्ध में श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'सरस्वती' के अगले अंक[२] में लिखा : "सार्थक तथा सत्य स्वरूप कल्पनाओं, सम्राट के महात्याग में अपने व्यक्तित्व की प्रतिफलित उदात्त अभिव्यक्ति तथा काव्य-कला के विभिन्न अवयवों का एकत्र सामंजस्य देखकर चकित हो गया । बहुत कम इतनी प्रौढ़ सुगठित कविता हिन्दी में देखने को आती — है ।" इसी पत्र के नीचे श्री शिवनारायण भारद्वाज नरेन्द्र का शंका-समाधान का आग्रह करने वाला पत्र भी प्रकाशित हुआ । इसमें रचना के छंद, उससे सर्वसाधारण के ज्ञान-वर्धन की सम्भावना उसके समझने के लिए कोष की आवश्यकता के साथ इसमें.

१-'सरस्वती', नवम्बर ३६,पृ० ४६८ : नई पुस्तकें ।

२- ,, फरवरी ,३७ : 'चिट्ठी पत्री',पृ० १९२

काव्य-दृष्टि से प्रसाद और माधुर्य के तथा कविता में साधारण जनता के सहज सुलभ ज्ञान-प्रदान करने के सिद्धान्त के अभाव का भी उल्लेख था । 'श्री निराला जी के संस्मरण' लिखते हुए ठाकुर श्रीनाथ सिंह ने 'निराला' से 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ अपनी कविता मांगने और उत्तर में 'निराला' के हिन्दी वालों को अपने खिलाफ बताने और नौकरी करनी हो तो कविता न मांगने का उल्लेख किया है । यहां उन्होंने यह भी लिखा कि 'निराला' के 'तुलसीदास' की प्रशंसा करने वाले व्यक्ति उसे सरस्वती में प्रकाशित देख उसका विरोध करने लगे थे । निराला की कविताएं 'सरस्वती' में छपती तो थीं, परन्तु मालिक अन्यमनस्क रहते थे । बंगला के क्षितीन्द्र सेन ने जब 'निराला' की 'सरस्वती' में छपी कविता की तारीफ की, तब उनकी राय बदली[1] ।

सन् ३७ में डॉ० अज्ञेय ने 'माडर्न (पोस्टवार) हिन्दी पोएट्री'[2] पर लिखते हुए सौन्दर्यवादियों और उनके आत्मकेन्द्रित व्यक्तित्व की आलोचना करते हुए लिखा कि अहंकार की अतिशयता 'निराला' की कलात्मक साधना को पथभ्रष्ट करने का कारण है । उनकी प्रारम्भिक कविताओं की प्रशंसा करके उन्होंने 'निराला' को रूढ़ियां तोड़ने का श्रेय दिया, परन्तु उनको 'आलरेडी डेड' कहा । सन् ५० में अपनी इस मान्यता में संशोधन कर उन्होंने 'निराला' को सदा से प्रयोगशील, अन्वेषक और आविष्कारक कहा, जब तक उनके दीर्घ और निर्बोध एकाकीपन ने उनके व्यक्तित्व को विघटित करना प्रारम्भ न कर दिया[3] । 'समकालीन हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां और उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि' लेख में भी अज्ञेय ने अपनी इसी मान्यता की पुनरावृत्ति की है । आर्थिक क्लेशों ने 'निराला' को तोड़ दिया और उन्होंने 'मिथ्या प्रचार' और उनके विशाल व्यक्तित्व पर लांछन कहा । प्रतिभा के अपनी व्याधियों के आर्थिक क्लेशों से प्रभावित होने की संभावना से स्वीकार करते

१- 'रसवन्ती', फरवरी-मार्च, १९६२

२-

३- संगम, २३ जनवरी ५०, पृ० ६३७

हैं,परन्तु उसे उद्गम का मूल स्थान नहीं मानते। 'निराला' को समझने के लिए उन्होंने विस्तृततम सामाजिक पृष्ठभूमि और मानसिक प्रतिक्रियाओं के गहरे और विस्तृत अन्वेषण की अपेक्षा का उल्लेख किया है[१]।

'निर्मल' ने इसी समय 'सरस्वती' में निराला की 'सखी,' 'निरुपमा' और 'गीतिका' कृतियों की प्रशंसात्मक समीक्षा की। उन्होंने 'निराला' को हिन्दी का श्रेष्ठ कवि और लेखक कहा, 'निरुपमा' में समाजवाद देखा, 'गीतिका' के गीतों में कल्पना की ऊंची उड़ान देखकर उसके गीतों को आकर्षक और श्रोतव्य कहा[२]। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्रीकृत गीतिका की एक आलोचना 'माधुरी'[३] में भी निकली, जिसमें उसके अधिकांश स्थलों को कृत्रिम सौन्दर्य से आहत और भाषा को सौन्दर्य का पिपासी रहने वाली कहा गया था। 'निराला' को मधुरतम गीतिकाव्य के गौरव के अयोग्य बताकर आपने रवीन्द्र उसे उनकी तुलना को अनुपयुक्त कहा था।

सन् ३७ की 'माधुरी' में 'निराला' की काव्य[४]कला' पर आ० शास्त्री की जो लम्बी लेख-माला प्रकाशित हुई थी, उसमें उन्होंने 'निराला' की वर्ण-विन्यास कला,उनके भावों के तारतम्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी, परन्तु लेख के अन्तिम अंश में आपने उन बातों की भी विस्तार से चर्चा की है, जिन्होंने उन्हें बिल्कुल प्रभावित नहीं किया। 'संध्या सुन्दरी' की 'और क्या है ? कुछ नहीं' पंक्ति तथा 'जागो फिर एक बार' में प्राप्त रोहे,कलम की जैसे कि फुलाकर पंक्तियां उगलवाने,उसकी वीं कीड़ा की पारसमाप्ति का उल्लेख उन्होंने किया है। इसी कविता के अन्तिम अंश की पंक्ति 'पर क्या है, सब माया है - माया है' को उन्होंने एकदम की साहित्यिक,नीरस,बल्कि 'राम नाम सत्य है' की तरह असत्य प्रतीत होने वाली बात कहा है। 'कविताओं की ऐसी दार्शनिक

१- कल्पना,फरवरी ५१,पृ०५१

२- सरस्वती

३- माधुरी,अगस्त,सितम्बर,नवम्बर के अंक

४-

रूपरेखा' उन्हें क्याई पसन्द नहीं , यह भी बताता है । 'निराला' की चित्रकला अंश में उनके 'कौन तुम शुभ्र किरण वसना' गीत को रवीन्द्र के 'अचल अलोके रेहेछे दाँड़ाए' के *parallel* तैयार किया बताकर, रवीन्द्र के 'उड़िछे आकुल कुन्तल भार' कहकर भाव पर पर्दा डालने, पर 'निराला' के 'श्यामल अलकावलि' कहकर छिपाइने का उल्लेख किया है । 'निराला' की दृढ़ता और निष्ठा के साथ शास्त्री जी ने उनके हास्य विनोद और मस्ती की भी प्रशंसा की है । कवित्व के भीतर से प्रदर्शित 'निराला' की दार्शनिकता को उन्होंने उनकी 'प्रौढ़ि का प्रत्यायक' कहा, जहां 'थ्योरियाँ' के शब्द नहीं, आत्म-परिचय की ज्योतिर्मय ध्वनि है । 'निराला' की सामाजिक और राष्ट्रीय भावनाओं, उनके काव्य में प्रकाश और ज्योति का उल्लेख कर उपसंहार में उन्होंने 'निराला की कविता को मात्र कवि सम्मेलन या मनोरंजन की वस्तु न कहकर उसके लिए सुचिर अध्ययन और *vast knowledge* की आवश्यकता बताई है । उनकी उपयोगिता और सफलता बताते हुए आचार्य जानकीवल्लभ ने छायावाद को प्रकाशवाद कहा , "भावों को प्रकटित करने की एक अभिनव सुन्दर सरणि ।" 'निराला' की शब्दप्रियता को वे उत्कृष्टता नहीं, क्लिष्टता और उनकी पूर्ण सफलता न होने का कारण मानते हैं । यहां आचार्य जानकी वल्लभ ने अपना यह दृढ़ विचार भी प्रकट किया है 'निराला' ने कड़ी कविताओं की सिद्धि के लिए यदि कड़ी आलोचनाएं न लिखी होतीं तो उनकी एकान्त सर्वश्रेष्ठता स्वतः प्रमाणित होती । स्वयं 'निराला' ने भी यह स्वीकार किया है कि अपने सम्बन्ध में दिए लोगों के विविध मन्तव्यों और अपने लिखकर, पढ़कर और आलोचना कर पुष्ट सफाई देने एवं अधिकांशतः उसका फल उल्टा होने का उल्लेख किया है । यहीं उन्होंने अपने मर जाने का प्रचार करने वाले 'अघोगण्ड' को भी याद किया है[1]।

'निराला' ने 'हिन्दी सुमनों के प्रति पत्र'[2] में अपने विरोध को ध्यान में रखकर ही अपने को 'जीर्ण साज बहु-छिद्र आज' और पढ़ा जा चुका, न्यस्त पत्र कहा है, पर साथ ही वे ब्राह्मण समाज में अछूत की तरह अपने पार्श्वच्छवि रहने और अपने को 'वसन्त का अग्रदूत' कहते हैं । 'राम की शक्तिपूजा' में वे पहले ही

१- माधुरी, फरवरी, ३८, पृ० ६८

२- अनामिका, पृ० ११८-११६

निरन्तर विरोध पाने और साधन के लिए शोध का उल्लेख कर चुके थे और उससे भी पहले `सरोजस्मृति` में दु:ख को जीवन की कथा `उन्होंने कहा था`[1]। प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन फैजाबाद के श्री नरोत्तम को बताते हुए `निराला` ने हिन्दी के परम्परागत भावों से बद्धमूल होने और उसके कुछ असाहित्यिकों के हाथों की पुतली होने का उल्लेख किया है। सन् ३० के कलकत्ता सम्मेलन के बाद सात-आठ वर्षों तक पुन: तटस्थ रहने का उपर्युक्त के अतिरिक्त एक दूसरा कारण `निराला` ने यह बताया है, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कर्णधारों का साहित्य के युग के ज्ञान से रहित होना। तात्पर्य यह कि सम्मेलन में आधुनिक साहित्य से --`निराला` के साहित्य से, जिसे वे स्वयं `बिना गर्व के` `आधुनिक साहित्य का सबसे तगड़ा हिस्सा समझते हैं -- विद्यार्थियों को परिचित नहीं कराया, फलत: प्राचीन विरोधियों से लड़कर `निराला` ने छुट्टी पाई तो सम्मेलन ने अनायास उनके नये विरोधी तैयार किए। यहीं `निराला` ने `कवि विरोध नहीं करता` लिखकर किसी से उनका व्यक्तिगत विरोध नहीं है, यह भी बताया है[2]। सम्मेलन उन्हें अव्यवहारिक कहकर ठुकराता है, इसका उल्लेख महादेवी जी ने किया है[3]।

गंगाप्रसाद पाण्डेय ने अपनी पुस्तक[4] में `निराला` की जोरदार खिलाफत करने में बनारसीदास जी के बहुत बड़े श्रेय का उल्लेख कर बताया है कि जब कद चतुर्वेदी जी ओरछा में थे, संवत् १९९४ में `देव पुरस्कार `प्रतियोगिता में आए ग्रन्थों में उन्हें कोई पुरस्कार योग्य नहीं जंचा और पुरस्कार राशि में से १००० रुपये सम्मेलन को `देव पुरस्कार ग्रन्थावली ` के प्रकाशन के लिए दिया गया। सम्मेलन ने उस राशि से आधुनिक-काल के प्रतिनिधि कवियों के काव्य-संग्रह निकालने का निश्चय किया, जिसमें ~~कवियों के काव्य-संग्रह निकालने का निश्चय किया~~, जिसमें कवियों के सुद- कविताओं का चयन करने और अपनी कविता एवं कला विषयक दृष्टिकोण की भूमिका

१- अनामिका, पृ० १३७, १४७
२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १८२, १८३, १८५, १८६
३- महाप्राण निराला, पृ० १६६, १६७
४- मैं इनसे मिला (पहली किस्त) पद्मसिंह शर्मा `कमलेश`, पृ० ११५

रूप में प्रस्तुत करने की शर्त रखी गयी थी । पहला संग्रह, महादेवी का निकलने के बाद 'निराला' के काव्य संग्रह का प्रश्न उठा, तब भी कठिनाइयाँ सामने आयीं-- कृतियों के कापीराइट में कैद होने और सम्मेलन के अनुरूप उनकी भूमिका लिख सकने की । सम्मेलन ने इन कापीराइट को छुड़ाने का प्रयत्न किया और न २०० रुपये एडवांस दिए, उनके नवीन कविताएं देने की राजी होने पर भी 'निराला' का काव्य संग्रह नहीं निकला, अगले संग्रह पन्त जी और डा० रामकुमार वर्मा के निकले । इस सम्बन्ध में श्रीनारायण चतुर्वेदी जी के प्रश्न करने पर निराला ने उनसे कहा था कि जब पंत और महादेवी खुद कन्नी काट गए तब वे और किससे और क्या कहें ? उन्होंने यह भी कहा कि उनके बिना 'आधुनिक कवि' पुस्तक माला उनके बिना अधूरी रहेगी, उनकी जगह भरी नहीं जा सकती ।

सन् ३६ में रूपाभ[1] में 'निराला' के 'चमेली' उपन्यास का कुछ अंश प्रकाशित हुआ । इसके सम्बन्ध में 'विशाल भारत' में किन्हीं महालक्ष्मी का पत्र प्रकाशित हुआ, जिसका उत्तर 'रूपक रूपाभ' में श्री विष्णु स्वामी ने दिया । महालक्ष्मी ने रूपाभ संपादक से किसी उपन्यास के अपूर्ण अंश को छापने के औचित्य पर प्रश्न किया था । रूपाभ के सम्पादकीय नोट में साहित्य की गतिविधि और साहित्यकारों की प्रगति से ज्ञान अथवा कभी-कभी शैली की दृष्टि ~~साहित्यकारों की~~ ~~प्रगति के ज्ञान अथवा कभी-कभी~~ से अपूर्ण अंश छापने का उल्लेख किया गया है । सम्पादक ने सत्य को अपनाने का आग्रह कर युग का तकाजा सामने रखा है, जो साहित्य में यथार्थता को अधिक स्थान देने का है ।

श्री विष्णुस्वरूप के पत्र के ऊपर 'विशाल भारत' द्वारा 'घासलेट का प्रचार' शीर्षक दिया है । समाज के दुराचार की स्वीकृति के साथ यथार्थवाद को नग्नवाद का पर्याय मानने का जो प्रश्न महालक्ष्मी ने उठाया था, उसके सम्बन्ध में उन्होंने दुराचार पर प्रकाश डालने से घबराने अथवा समाज की यथार्थता देखने से मुंह मोड़ने के प्रश्न उठाए हैं और उनकी उपादेयता बताई है । महालक्ष्मी ने

१- रूपाभ, मार्च ३६, पृ०५५

प्रगतिवाद को `नया कम्प्लैक्स` कहा, परन्तु विष्णु स्वरूप उस पुराने कम्प्लैक्स को भयानक कहते हैं, जो यथार्थ का नग्नरूप देखने में असमर्थ है। रचना की ठेठ भाषा की विशेषता पर महालक्ष्मी की आपत्ति का उल्लेख कर आप बताते हैं कि `निराला` की भाषा ठेठ है या नहीं, इस विषय में लेखिका मौन है। भाषा की प्यासलेटी कहना वे साहित्य और साहित्यकार के प्रति अन्याय मानते हैं, उनका विचार है कि समाज का सही चित्र सीधी और व्यंजनापूर्ण हिन्दुस्तानी में उपस्थित कर `निराला` ने साहित्य और समाज की सेवा ही की है[1]।

अन्त में रूपाभ-संपादक ने `विशाल भारत` में प्रकाशित महालक्ष्मी का पत्र और उसपर चतुर्वेदी जी का सम्पादकीय नोट भी उद्धृत कर दिया है। संपादकीय नोट में चतुर्वेदी जी ने उद्धरणों को प्रस्तुत करने की असमर्थता के साथ प्रगति के इस तकाजे का उल्लेख किया है कि `महाजनों के चलने से जिस लीक के पथ बन जाने की आशंका है, उसकी सदा पूरी जांच होनी चाहिए, वही पत्र को प्रकाशित करने का एकमात्र औचित्य भी है।

सन् ३४ में ही `विशाल भारत`[2] ने प्रगतिशील बनने वाले कवियों और लेखकों की भाषा के नमूनों के लिए रूपाभ संपादक पन्त और क्रान्तिकारी कवि `निराला` की कविताओं को लिया है। पन्त द्वारा प्रयुक्त `अणि`` और `मसृण` शब्दों के लिए श्यामसुन्दर दास का पचास रुपये का कोष तलाशने का उल्लेख उन्होंने किया है। `निराला` की `राम की शक्तिपूजा` उद्धृत कर उन्होंने लिखा :" यदि प्रगतिशीलता के मानी यही हैं, तो खुदा बचाए इससे हमें और हमारी ज़ुबान को। "

रूपाभ के इसी के साथ वाले अंक में[3] डा० रामविलास शर्मा का एक पत्र प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने हिन्दी के दो श्रेष्ठ क्रान्तिकारी लेखकों-- उग्र -

---

१- रूपाभ, मार्च ३६,पृ० ५६-५८

२- विशाल भारत, अप्रैल ३६,पृ०४१२-४१५।

३- रूपाभ,अप्रैल, ३६,पृ०६४

और `निराला` के चतुर्वेदी जी द्वारा हुए अकारण विरोध का उल्लेख कर लिखा : जिन साहित्यिकों के कारण हम थोड़ा-बहुत सर उठाने के लायक हुए हैं, उन्हीं के सर को दबाने की चतुर्वेदी जी ने हमेशा कोशिश की है। उनकी कीर्ति हिन्दी में इसलिए अवश्य रहेगी कि उन्होंने उग्र और `निराला` की मुखालफत की है। `श्याम मैं ही अनामिका के कवि श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी के प्रति प्रशस्ति लिखकर पन्त जी ने `निराला` की उनकी साधना और जीवन की सार्थकता का सबसे बड़ा प्रमाण दिया[1]।

इण्डियन प्रेस के लिए जब `निराला` बंकिम के उपन्यासों का अनुवाद कर रहे थे, उसी समय उन्होंने हिन्दी के लिए अपनेको खपाने पर भी लोगों के चैन न लेने देने और मौका पड़ने पर लोगों के उन्हें न छोड़ने की बात गंगाप्रसाद पाण्डेय से कही थी[2]। डा० रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक में `निराला` के बंगला में अपनी रचनाओं के अनुवाद के विचार और चतुर्वेदी जी के इस सम्बन्ध में हुए पत्र व्यवहार का विवरण दिया है। `निराला` के पद्मकान्त मालवीय के प्रचार कार्य के लिए चतुर्वेदी जी की योग्यता और अपने अनुवादों के लिए प्रवासी वालों से परिचय की अपेक्षा की थी। चतुर्वेदी जी ने `निराला` को सीधे पत्रव्यवहार करने और समिति बनाने की सलाह दी और अपनी साहित्यिक-साधना को समाप्त प्राय: कहकर, मिलकर काम करने की प्रवृत्ति न होने के कारण साहित्य-सेवा के कार्य के अपूर्ण रह जाने का और `निराला` की साहित्य-साधना और सेवा, उससे मिले कष्टों का उल्लेख किया।

सन् ४० में जब `निराला` का लेख संग्रह `प्रबन्ध प्रतिमा` प्रकाशित हुआ, काशी के `छायावाद` पत्र में श्री दुर्गेय ने `मधूलिका` और `ग्राम्या` के साथउसकी[4] समीक्षा की। प्रबन्ध प्रतिमा को बाउट आफ डेट कहने में हिचकने की प्रारम्भिक स्थापना के साथ लेखक ने `निराला` को संक्रान्ति युग का ऐसा दीपस्तम्भ कहा है, जिसे अब तैल की ज़रूरत महसूस नहीं होती। `निराला` की दृष्टि तुलसीदास की

१- `निराला` की साहित्य साधना, पृ० ३९१-- डा० रामविलास शर्मा

२- महाप्राण `निराला`, पृ० १५८-६०

३- निराला की साहित्य साधना, पृ० ३७५-३७६

४- छायावाद वर्ष १, संख्या ८७, पृ० १३१। माउण्ट एवरेस्ट रेडियो स्टेशन के सौजन्य से यह लेखक के नाम के साथ कोष्ठकों में लिखा था।

विद्रोह भावना नहीं, परन्तु उनकी सजग चेतना ने ओज का स्वरूप कितना पहचाना है, उसे देखने लायक चीज़ कहकर लेखक ने बाहरी परिस्थितियों के दबाव और "निराला" की द्वन्द्वात्मक प्रकृति के अनुसार अन्तर्चेतना के बोझ का अनुभव करने की बात लिखी है। बाहरी आकारों के प्रति "निराला" की लापरवाही परन्तु उनसे उनके परिचित रहने का इसी "लापरवाई" के "प्रबन्ध प्रतिमा" के प्राणों में प्रतिष्ठित होने का उल्लेख कर श्री दुबे लिखते हैं --" पर ऐसी हालत में *matter of fact* के लिए कितनी जगह बचती है -- इसको सोचने के से शायद हम अपनी सहानुभूति खो बैठे।"

श्री भगवतीचरण वर्मा द्वारा सन् ४१ के "विचार" पत्र में "निराला" की "बापू" तुम मुर्गी खाते यदि" कविता का प्रकाशन उनके विरोध को गतिमान करने वाला था। कविता के साथ दिये गए भगवती बाबू के सम्पादकीय नोट में "निराला" की ख्याति की तह में कला की श्रेष्ठता की अपेक्षा उनकी किंचित प्रतिभा की स्थिति बताई गई थी, हाल में जो सीमा तोड़ने पर आमदा हो गई थी। उनका विचार था कि "निराला" का मस्तिष्क उनके "प्रकांड पाण्डित्य तथा विशद कला के गुरुतर भार" को सहन करने में असमर्थ था, इसीलिए उनकी भारती भयंकर रूप में अंयत होकर संसार की निर्धारित रूढ़ियाँ तोड़ने को कटिबद्ध हुई। भगवती बाबू ने कविता के प्रकाशन के पहले "निराला" को नोट द्वारा सूचित किया था कि वे नोट के साथ ही कविता प्रकाशित करने को तैयार हैं। उत्तर के लिए तैयार रहने को कहकर "निराला" ने अपनी सहमति भेजी, इसका उल्लेख डा० रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक में किया है[1]। भगवती बाबू ने डा० शर्मा के कविता मंगाने और रिमाण्डर भेजने के इस "स्टेटमेण्ट" को गलत कहकर बताया कि इलाहाबाद में वाचस्पति पाठक के यहाँ "निराला" ने यह कविता सुनायी और इसे छापने को कहा, उनके सकुचाने पर दो बार चुनौती दी, तब वे छापने को तैयार हुए थे। इस कथन की सत्यता की संभावना को श्री अमृतलाल नागर ने भी स्वीकार किया है[2]।

१- निराला की साहित्य साधना, पृ० ३८०

२- आलोचना, वर्ष १८, पूर्णांक ६, अप्रैल जून १९६९, पृ०८८

इन्हीं दिनों "निराला" के चरित्र के सम्बन्ध में साहित्यकारों में शंका फैली, इसका उल्लेख उग्र जी ने अपने 'निराला सम्बन्धी संस्मरण' में किया है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इसके बाद आक्षेपों का केन्द्र प्रमुखत: निराला स्वयं बने, उनकी कृतियों का माध्यम क्रमश: छोड़ा जा रहा था।

जनवरी ४७ में निराला की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर काशी में उनके अभिनन्दन का जो आयोजन किया गया था, उसके सम्बन्ध में उन्होंने वाजपेयी जी से कहा था कि सम्मान की बात होने पर तो उन्हें किसी ने दो कौड़ी नहीं पूछा था, अब यह तमाशा हास्यास्पद लगता है। आयोजन में अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने की योजना के कार्यान्वित न होने की स्वाभाविकता के कारण भी गंगाप्रसाद पाण्डेय ने यह बताया है कि सम्पादकों में अंचल जी भी थे, जिन्होंने बीस दिन पहले "पारिजात" में "निराला" की कविता के विषय में लिखा था : "अंग अर्धन में संकलित उनकी कविता अनमेल, अनर्गल बेमानी, सिलपट और भावशून्य है।" पाण्डेय जी ने यह भी बताया कि भेंट की रकम भी "निराला" को नहीं मिली, जिसे उन्होंने संस्थाओं और व्यक्तियों को दान करने की घोषणा भी कर दी थी। साहित्यिक साथियों द्वारा अपना सिर नीचा होने और संकल्पित दान को पूरा न कर सकने का प्रायश्चित आत्महत्या को बताने का उल्लेख निराला ने इस सन्दर्भ में किया था।[2]

निराला की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर "हंस"[3] ने "निराला" के कृतित्व की विरोधियों की आलोचना की थी, उनके विरोधियों द्वारा उनकी हत्या के प्रयत्नों का स्मरण कर उनके सबल व्यक्तित्व का उल्लेख किया। निराला की आर्थिक स्थिति सुधारने की सहायता के प्रयत्नों में सरकार के योगदान का इतिहास भी हंस में ही छपा था। उसके दमन, विरोधी अंक[4] में उग्र जी का "निराला और

१-

२- महाप्राण निराला, पृ० १५७-१५८, २६२-६३, ३३२।

३- हंस, जनवरी, फरवरी ४७

४- ,, जून ४८, पृ० ६४७- ६४८

हमारी सरकार' लेख इसका साक्ष्य है। भारत की स्वतन्त्र सरकार, गुलाम साहित्यकारों की आवश्यकता का उल्लेख कर उग्र ने काशी में निराला की उपस्थिति के प्रति साहित्यकारों की उपेक्षा नीति की आलोचना की, जिसके सबसे बड़े दोषी उनकी दृष्टि में शिक्षामन्त्री सम्पूर्णानन्द थे। उग्र जी ने मन्त्रिमण्डल के दूसरे सुसम्बद्ध साहित्यिक पण्डित श्री कृष्णदत्त पालीवाल के काशी के दौरे पर आने और 'निराला' को 'कम्युनिस्ट' कहकर उन्हें सहायता सहानुभूति के अयोग्य ठहराने की अफवाह की चर्चा की। 'निराला' के समर्थन में श्री पालीवाल को लिखते हुए उग्र ने उनका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि 'निराला' ने कम्युनिस्ट समर्थक साहित्य उतना नहीं लिखा, जितना आर्य साहित्य। पालीवाल जी ने अपने उत्तर में उग्र को सूचित किया कि उन्होंने 'निराला' को कम्युनिस्ट नहीं, बल्कि यह कहा था कि 'निराला' की सेवा-सहायता पर किसी को आपत्ति नहीं होगी, यदि वे कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य नहीं होंगे। अपने पत्र में उन्होंने 'निराला' के बारे में क्या किया गया, यह पता लगवाने का आश्वासन भी दिया था। उग्र ने अपने पत्र में कथाकार जैनेन्द्र को भी याद किया, जिन्होंने लिखा था कि 'निराला' को पुरस्कार देकर क्या होगा, जो एक क्षण में सब लुटा देंगे।

'निराला' की स्थिति का परिचायक स्वयं उनका कथन ही है, जहाँ उन्होंने पूरे कृतित्व की बाजी, बनारसीदास के सम्पूर्ण देशी दासों को पक्ष में करने अथवा कुछ और प्रमाण देने के लिए गीत व भजन लिखने का उल्लेख किया है।[1]

जुलाई ४६ के हंस में डा० रामविलास शर्मा का 'निराला के प्रारम्भिक जीवन संघर्ष' लेख प्रकाशित हुआ। इससे पहले अमृतराय की टिप्पणी 'पूंजीवाद का शिकार : 'निराला' निराला' भी थी। इलाचन्द्र जोशी और संगम का उल्लेख कर अमृतराय ने सब बात जनता के सामने लाने की आवश्यकता का निर्देश किया, जिससे जनता स्वयं देख सके कि 'निराला' की वर्तमान दुरवस्था के लिए जिम्मेदार है बिड़ला और उन्हीं के समुदाय (सम्प्रदाय) के समाज द्रोही व्यापारी, लेखक का खून -

---

१- महाप्राण निराला', पृ० ३५० , : गंगाप्रसाद पाण्डेय·

चूसना ही जिनका धर्म है, जिनका व्यापार ही है लेखक का खून निचोड़कर बाजार में बेचना और उससे अपना रुपैला खड़ा करना-- और लेखक को शान्तिपूर्वक मरने देना। डा० शर्मा ने भी पूंजी के मालिकों और हिन्दी प्रकाशकों के क्रूर शोषण का उल्लेख कर 'निराला' के प्रति न्याय की मांग की, जो उस समाज-व्यवस्था के खत्म करने से ही हो सकता है, जिसने निराला को तबाह किया है।"[2]

मार्च ३१ के नया साहित्य में श्री 'अनामिका' ने जीवन में निराला के सतत संघर्ष और साधना, पूंजीवाद, सामन्तवाद की सरकारी सहायता से उनके असहयोग की स्वीकृति पर उसका तात्पर्य जो कुछ के लिये उसका यथार्थ विवेकपूर्ण विश्लेषण करने से चूकना ह नहीं है, के साथ उनकी कविता के नए सिरे से मूल्यांकन और उनकी सहायता (आर्थिक और अन्य प्रकार की) करने का निर्देश दिया है।[2]

सन् ५२ के अन्त में नईधारा में 'रांची के पागलखाने में दो महान कवि'[3] शीर्षक के अन्तर्गत निराला के पागल न होने, वरन् आरम्भ से ही उनके विचित्र पुरुष होने और उस विचित्रता के बढ़ने पर कुछ भी आश्चर्यजनक न होने का उल्लेख है। 'निराला' की अवस्था के सम्बन्ध में लिखते हुए कमलाशंकर जी ने महादेवी से हुए अपने पत्रव्यवहार को क्षोभजनक कहा था। यह सूचना भारत में निकले श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय के मिथ्या और भ्रमात्मक पत्र का उत्तर देते हुए उन्होंने दी थी।[4] लालचन्द्र ओझा ने 'निराला के स्वयंसिद्ध संरक्षकगणों' द्वारा उनके पागलपन के भ्रामक प्रचार की बात प्रत्युत्तर देते हुए लिखी।[5]

पटना से निकलने वाली पत्रिका 'अवन्तिका'[6] सम्पादकीय में उस समय 'साहित्यकार संसद की गतिविधि और 'निराला' पर प्रकाश डाला गया।

१- पृ० ६०६

२- पृ० ७३

०३-

०३- नई धारा, दिसम्बर ५२, पृ०६६ स्तम्भ 'हमें यह कहनी है'।

४- ,, अप्रैल, ५४, पृ० ६३-६४। आपकी चिट्ठी. स्तम्भ ५-४-५४ का कलापंथिर, दारागंज से प्रकाशित।

५- नई धारा जून, ५४, पृ०८०, १४-५-५४।

६- अवन्तिका, जून ५४, पृ०१-४।

'साहित्यिक ग्वालियर' शीर्षक से प्रकाशित श्री किशोरीदास के वक्तव्य के कुछ अंश उद्धृत कर, जिसमें 'निराला' को लेकर बखेड़ा खड़ा करने और उनकी सेवा-सुश्रुषा की समुचित व्यवस्था के साथ अन्य साहित्य-साधकों की उपेक्षा न करने का आग्रह था --संपादक ने उसमें 'निराला' और महादेवी के प्रति सज्जनोचित व्यवहार का अभाव कहा। 'निराला' का स्वास्थ्य -सुधारने और आर्थिक सहायता के लिए सरकार और हिन्दी संसार से की गयी अपील को व्यर्थ बताकर सम्पादक ने 'निराला' के लिए आर्थिक सहायता को अनावश्यक कहा, महादेवी जी का वह वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें उनकी चिकित्सा और मानसिक शान्ति के लिए दोहरे साधन -- अर्थ और स्नेह-सेवा का उल्लेख किया गया था। इसके बाद 'निराला जी की वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कमलाशंकर जी ने एक लम्बा पत्र 'नई धारा' को भेजा। उस पत्र के विवादग्रस्त अंशों को लेकर निकालकर, उसके लिए क्षमा याचना करते हुए सम्पादक ने उसे छापा।[1]

मार्च ५५ में 'निराला' से अपनी भेंट की चर्चा करते हुए श्री रमण ने लिखा है कि महादेवी जी के सम्बन्ध में बोलते हुए 'निराला' जी ने कई बार कहा : "मैं तो हिन्दी के काम से अलग हो गया। सब देवी जी को सौंप आया। वे भी वैसी ही निकलीं।" श्री रमण ने यहाँ उनके स्वगत कथनों द्वारा उनके मन में चलने वाली प्रतिक्रियाओं की धारा का उल्लेख किया है। उनमें उनके साहित्य का उचित मूल्यांकन न होने, राज-शासन की उदासीनता, अर्थ-सम्बन्धी --जिसमें प्रकाशकों का प्रमुख हाथ है, पारिवारिक सुख के अभाव सम्बन्धी और अन्तत: प्रयाग के साहित्यकारों के दुर्व्यवहार से प्राप्त प्रतिक्रियाएं आती हैं।[2]

'निराला सत्यान्वेषण' टिप्पणी[3] में श्रीराम वर्मा ने मूलमालिक क्रियाओं का प्रयोग करते हुए उन्हें प्रयोगों का पुरस्कर्ता कहकर उनके दोहरे जीवन और विरोधाभास का उल्लेख कर उन्हें अति व्याप्ति दोष से युक्त कहा है। उनका विचार है कि आर्थिक व्यवस्था सृष्टा को क्षीण नहीं बनाती, कटु और तिक्त भले ही बना दे

१- नई धारा, मार्च ५५, पृ० ८९- ९०

२- कल्पना, जून ५५, पृ० ६३२-६३३

३- कल्पना, सितम्बर ६१, पृ० १४-१५

`निराला की भावुकता` और वैज्ञानिक दृष्टि के अभाव का उल्लेख भी लेखक ने किया। दिसम्बर ६१ के अंक में उपर्युक्त लेख का हवाला देते हुए श्री अमृतलाल नागर ने अपने पत्र में लिखा : `यह कैसी मजेदार ट्रेजेडी है कि लोग-बाग अनजाने में ही `निराला` जी के साथ अब `था`, `थे` क्रियाएं जोड़ने लगे हैं।` स्थिति के प्रति अपनी विवशता व्यक्त करते हुए उन्होंने यह भी लिखा कि ` मेरे लिए `निराला जी अभी हैं। हृदय से चाहता हूं कि शीघ्र से शीघ्र वे `था` होकर अमरों में जी उठें[1]।`

वर्मा जी के आक्षेपों का उत्तर देते हुए श्री प्रेमशंकर[2] जी ने अहं को स्वयं अपने आप में निन्दनीय वस्तु नहीं माना। `निराला` में आत्मरति` को उन्होंने शत-प्रति-शत मौलिक समीक्षा और उसे सरासर ज्यादती कहा। वे लिखते हैं--` वैज्ञानिक दृष्टि के अभाव में उसकी इच्छाएं उसी पर हावी होने लगती हैं, यह निष्कर्ष वर्मा जी ने पता नहीं कैसे निकाल लिया।` वर्मा जी यश: प्राप्ति का जो प्रश्न उठाया था उसके सम्बन्ध में आपने इस वृत्ति को स्वस्थ स्वाभाविक कहा और बताया कि `निराला` के लोकप्रिय न होने से उनकी महत्ता घटती नहीं, अपितु `उनकी महानता (मानव और कवि दोनों ही रूपों में) में सन्देह कब और किसने किया है।`

श्री देवीशंकर अवस्थी की भी एक टिप्पणी `कवियों का कवि और वजीरे आजम`[3] प्रकाशित हुई। अवस्थी जी ने निराला के भीतर की पारिभिक दृढ़ता संघर्ष-क्षमता और अजनबी विद्रोही व्यक्तित्व के कारण सामान्य जनता और गुजनरत कलाकारों के मन में उनके घर करने की बात लिखी है। उनके काव्य में मिलने वाले प्रयोग और परिपूर्णता के अद्भुत समन्वय ने ही उन्हें यह पद `कवियों के कवि` दिला दिया है, यह लेखक का विचार था। अवस्थी जी ने `निराला` के व्यक्तित्व को `राष्ट्रीय व्यक्तित्व` कहा और उनके साहित्य के मूल्यांकन की ओर हिन्दी में कम ध्यान देने तथा उनके कृतित्व के आकलन में संभवत: व्यक्तित्व के बाधक रहने-- इन तथ्यों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। `निराला` को नई कविता का प्रेरणा-स्रोत मानते हुए उन्होंने इस सत्य को आकस्मिक नहीं माना है कि छायावादियों में सर्वप्रथम पन्त को फिर प्रसाद को और `निराला` को स्वीकृति मिली, इसे वे प्रबुद्धता के बढ़ते स्तर का सूचक मानते हैं[4]।

१- कल्पना, दिसम्बर ६१, पृ०८, २६सितम्बर ६१ को लखनऊ से लिखा पत्र

२- कल्पना, जनवरी ६२, पृ०४-५, अक्टूबर ६, ६१। ,३-कल्पना जनवरी ६२, पृ०१६-१७
४-साहित्य सन्देश, फरवरी, मार्च६२पृ०४२८

'निराला' का 'स्वार्थ समर' विषय पर टिप्पणी लिखते हुए डा। मुक्तेश्वर[1] उनके अर्थ सम्बन्धी प्रश्न के औचित्य को लिया है। श्री अमृतलाल नागर के वक्तव्य का उदाहरण देकर उन्होंने पारिश्रमिक की समाप्ति पर रवीन्द्र के सम्बन्ध में आने वाले 'निराला' के मानसिक परिवर्तन की ओर ध्यान आकृष्ट किया और उनकी आध्यात्मिकता को सन्यासी की नहीं, वरन् गृहस्थ की आध्यात्मिकता की संज्ञा दी, क्योंकि उसमें आकर्षण-विकर्षण दोनों का योग था। उन्होंने लिखा कि पैसे को 'निराला' अस्पृश्य नहीं, उपयोग की वस्तु समझते थे।

अमृत और विष का विश्लेषण करते हुए बच्चन जी ने 'निराला' की कुंठा का जो विवरण अथवा उनके काव्य का जो विवेचन उनकी मृत्यु के लगभग एक वर्ष बाद प्रस्तुत किया, उसमें भी 'निराला' के विरोध में लिखी आलोचनाओं का ही स्वर अधिक स्पष्ट था। बंगला काव्य-परम्परा को उनके लिए स्वाभाविक बताना, उनके अहंकार और यश: प्राप्ति की लिप्सा आदि का जो उल्लेख बच्चन ने किया, वह[2] उनकी ही पूर्व मान्यताओं का विरोध करने वाला था।[3]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि इस विरोधी आलोचना की सीमा 'निराला' का आलोचनात्मक गद्य ही है, तथापि महत्वपूर्ण यह इसलिए है कि क्योंकि एक तो 'निराला' के काव्य और उनकी कला को समझने में 'निराला' के लिए वक्तव्य सहायक होते हैं, और दूसरे अन्तत: इस आलोचना का सूत्र उनके व्यक्तित्व से जुड़ जाता है, जो उनके साहित्य की मूल आन्तरिक प्रेरणा है। इसमें सन्देह नहीं कि इन प्रेरणाओं का प्रस्फुटन हम काव्य में नहीं देखते, परन्तु आलोचना और गद्य-क्षेत्र की सीमा स्वीकार करते हुए भी यह प्रेरणा उनके विद्रोही व्यक्तित्व में पर्यवसित होती है और वहीं महत्ता का प्रमाण भी देती है।

-0-

१- कल्पना, फरवरी-मार्च-अप्रैल ६२, पृ० १८-२१

२- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ११, १८ और २५ फरवरी, १९६२

३- संगम, २३ जनवरी, ५०

सप्तम अध्याय

-o-

'निराला' का व्यक्तित्व : मूल आन्तरिक प्रेरणा

सप्तम अध्याय

-0-

'निराला' का व्यक्तित्व : मूल आन्तरिक प्रेरणा

'निराला' का व्यक्तित्व, उनके काव्य की मूल आन्तरिक प्रेरणा कहा जा सकता है और व्यक्तित्व का सहज सम्बन्ध व्यक्ति तथा उसके पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश से होने के कारण इसका समावेश सांस्कृतिक अथवा सामाजिक प्रभावों से इतर जीवन की प्रेरणाओं के अन्तर्गत किया जा सकता है। साहित्य-सृष्टि जो समाज की सबसे अधिक वैयक्तिक और व्यक्ति की सबसे अधिक सामाजिक क्रिया है, उसके दो स्पष्ट अंग वाह्य (objectivity) और व्यक्तित्व में प्रमुख व्यक्तित्व ही है, जिसका वैशिष्ट वाह्य के साथ अनवरत होने वाले घात-प्रतिघात से ही निर्मित होता है।[1] व्यक्तित्व और उसके निर्माण की प्रक्रिया का ज्ञान इसी दृष्टि से उपादेय है।

व्यक्ति की वह विशेषता जो उसे अन्य व्यक्तियों से भिन्न करती हुई उसके निजत्व का स्वरूप धारण करती है और जिसका निर्माण व्यक्ति के संस्कार, समाज, वातावरण और उसकी शिक्षा के माध्यम से होता है, व्यक्तित्व कहलाती है। इस निर्माण में स्वयं व्यक्ति का बहुत अधिक हाथ रहने के कारण व्यक्तित्व, व्यक्ति का स्वयं उपार्जित तत्व है, उसके अस्तित्व के समस्त सम्बन्धों और प्रभावों की समष्टि है।[2] बुडवर्थ और मार्क्विस के शब्दों में,

---

1- विश्वबन्धु, दीपावली विशेषांक, ४३ 'व्यक्ति, समाज और साहित्य' श्री नेमिचन्द्र जैन का लेख, पृ० ११।

2- महाप्राण निराला पृ०२८३ : गंगाप्रसाद पाण्डेय।

'व्यक्तित्व' व्यक्ति के व्यवहार की वह व्यापक विशेषता है, जो उसके विचारों और उनको प्रकट करने के ढंग, उसकी अभिवृत्ति और रुचि, कार्य करने के उसके ढंग और जीवन के प्रति उसके व्यक्तिगत दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रकट होती है[1]। 'मन' के अनुसार व्यक्तित्व एक संयोजन 'सम्मिलन' विलयन और संगठित पूर्णता है, जिसमें विशिष्ट क्रियाएं अपनी अन्विति भी एक सम्पूर्ण प्रतिमा में मुक्त करती है[2]। ग्योरहेड ने व्यक्तित्व को एक व्यक्ति के गुण, रुचि प्रकार, प्रवृत्तियाँ, व्यवहार क्षमताओं और योग्यताओं का सबसे निराला संगठन कहा है। तात्पर्य यह कि व्यक्तित्व गुणों और प्रवृत्तियों की संगठित एकता है, व्यक्ति की सामाजिक परिवेश में प्रतिक्रिया करने की अपनी निजी शैली है[3]।

व्यक्तित्व के निर्माण में शारीरिक और सामाजिक तत्वों का योगदान प्रमुख रहता है। इसके अन्तर्गत 'आकार प्रकार' जिसका प्रभाव दूसरों के प्रति उसके रुख और उसके प्रति दूसरों के रुख पर पड़े बिना नहीं रहता--के तत्व के साथ जैविक तत्वों अर्थात् स्वभाव (*temperament*) का समावेश होता है। व्यक्तित्व के निर्माण की दृष्टि से वंशानुक्रम और परिवेश भी उल्लेखनीय है। परिवेश से उत्तेजना मिलने पर ही वंशानुक्रम की प्रवृत्तियाँ विकसित होती हैं, अन्यथा वे निरर्थक हो जाती हैं। व्यक्ति की आवश्यकता अथवा रुचि के अनुकूल होने और उसे किसी न किसी प्रकार प्रतिक्रिया के लिए उत्तेजित करने पर ही परिवेश प्रभावप्रद सिद्ध होता है। प्रभावित करने वाली यह वस्तु व्यक्ति और उसके वंशानुक्रम पिछले अनुभवों, वास्तविक (*chronological*) और मानसिक आयु पर निर्भर करती है[4]। तात्पर्य यह कि वंशानुक्रम और परिवेश की उपज व्यक्ति द्वारा परिवेश के प्रति की गई प्रतिक्रिया ही उसका व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व का निर्माण, स्पष्ट है, जन्म से ही नहीं हो जाता, यद्यपि उसका प्रारम्भ जन्म से ही होता है[4]।

१- *Psychology* द्वि० संस्करण, पृ०५३
२- *Psychology, N. Munn* पृ० ५६६
३- निराला: काव्य और व्यक्तित्व, पृ०५० : धनञ्जय वर्मा
४- वुडवर्थ और मार्क्विस की पुस्तक के पांचवें और छठे अध्याय के आधार पर।
५- *Personality, Gordon Allport, p. 129-30*

व्यक्तित्व के दो विशिष्ट लक्षणों में युग ने बहिर्मुखता-- जिसका तात्पर्य व्यक्ति की बाह्य जगत में केन्द्रित रुचि से है-- और अन्तर्मुखता-- जिसका तात्पर्य व्यक्ति की उस आन्तरिक वृत्ति से है, जिसके कारण वह अपनी ही अनुभूतियों, विचारों और आदर्शों में प्रधानतया रुचि लेता है -- का उल्लेख किया है[1]। साधारणतया व्यक्तित्व दो प्रकार का होता है --सहज जिसका उन्मेष वातावरण की अनुरूपता और स्वाभाविकता के प्रभाव के भीतर से होता है-- और विशेष, जिसका निर्माण वातावरण से मुक्त प्राय: आन्तरिक आकांक्षाओं के सामंजस्य और आग्रह से होता है। श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने इस विभाजन के उपरान्त "सर्जनात्मक प्रतिमा" को "व्यक्तित्व के विकास की अन्तिम सीढ़ी" कहा है[2] और इस क्षेत्र में भी संघर्ष और समन्वय के अस्तित्व को स्वीकार किया है। साहित्य के सन्दर्भ में व्यक्तित्व के सामान्यत: दो अर्थ होते हैं, लेखक की आत्माभिव्यक्ति और कृति में आए पात्रों के माध्यम से कृतिकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति[3]। स्पष्ट है कि सामाजिक, आर्थिक और नैतिक शक्तियों के साथ जन्मजात संचालक शक्ति, भावात्मक शक्ति, प्रज्ञा, मानस, विश्वास एवं शिक्षा की शक्ति द्वारा स्वानुकूल निर्मित[4] व्यक्तित्व सृजन की दृष्टि से प्रतिभा अथवा प्रेरणा से सर्वथा अभिन्न है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने उच्च प्रशस्त कल्पनाओं, परिश्रमलब्ध विद्या और काव्य योग्यता के साथ देशकाल की निश्चित शक्तियों के परिचय को आवश्यक बताकर इन सब की सहायता से मूर्तिमती होने वाली जीवन-सौन्दर्य प्रतिमा को कवि की अपनी देन कहा है, जिससे उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता और शताब्दियों तक स्थिर रहता है तथा उसकी वास्तविक सत्ता भी प्रकट होती है[5]। टेन ने कवि-व्यक्तित्व के विश्लेषण-अध्ययन में इसी दृष्टि से वंश-परिवार, पारिवारिक परिस्थितियों और

---

१ स्बुकवर्थ और मार्क्विस की पुस्तक, हिन्दी संस्करण, पृ०५५।

२- महाप्राण निराला, पृ०२८६, २६४।

३- Dictionary of World Literary Terms, J. T. Shipley पृ०३०४

४- महाप्राण निराला, पृ०२८८-२८६

५- कवि निराला, पृ०३४

युग की विचारधारा और विश्वास की आवश्यकता स्वीकार की है।[1]

वास्तव में साहित्य में कवि के विकासमान और शाश्वत अर्थात् मूलभूत व्यक्तित्व का इतिहास अन्तर्निहित रहता है, यह डा० रामरतन भटनागर का मत है। उनका यह भी विचार है कि "निराला" के निर्माण में उनकी मूल प्रेरणा खोजी जा सकती है। निर्माण का अर्थ वे व्यक्तित्व मानते हैं, और व्यक्तित्व चेतन अचेतन मन, संस्कार, वंशानुक्रम, जातीय अचेतन, युग परिवेश आदि की संहिति उनके शब्दों में है।[2]

"जिसे जैसा बनना होता है, उसके संस्कार उसी रूप से चलकर और दृढ़ होते हैं।[3] पूर्ण मौलिकता नहीं हो सकती। केवल कमी और बेशी का तारतम्य रहता है।" यह "मेरे गीत और कला" में निराला ने लिखा है। संस्कार का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए अन्यत्र वे लिखते हैं:

"मनुष्य ने जिस तरह अनुसरण किया है, वह जिस राह से
का वह बार बार अनुशीलन करता है। उसके मस्तिष्क में उस उस विषय
चला है, उसने जिस जिस विषय का अनुशीलन किया है, उसी उसी विषय की रेखायें तैयार हो चुकी हैं--बुद्धि तत्काल उनसे गुजर जाती है, उसे दिक्कत नहीं पड़ती, यही पीछे से संस्कार या प्रकृति में परिणत होता है।"[4]

अपनी कृतियों में "निराला" ने प्रसंगानुकूल अपने विषय में जो सूचनाएं दी हैं, उनसे उनके व्यक्तित्व की रूपरेखा का ज्ञान होता है।[5] "कुल्लीभाट" में उन्होंने स्वीकार किया है कि वे बचपन से आज़ादी पसन्द थे, वह दबाव नहीं सहन कर सकते थे, जिसकी वजह न मालूम हो और शुरू से विरोध से सीधे चले थे। सोलह-सत्रह वर्ष की उम्र से ही भाग्य के विपर्यय और जीव नहीं, जीवन के पीछे भागने अतः उसके रहस्य से अनभिज्ञ न रहने का उल्लेख भी उन्होंने किया है। इसी

१- धनञ्जय वर्मा की पुस्तक "निराला: काव्य और व्यक्तित्व के पृष्ठ४३ पर उद्धृत
२- २७-२-६७ तथा २३-६-६७ के पत्रों में व्यक्त विचार।
३- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०२०३
४- ,, पृ०२४१
५- कुल्ली भाट, पृ०२८, ३३, ७०-७१, १००।

कृति में आगे चलकर उन्होंने अपने को ईश्वर सौन्दर्य ,वैभव और विलास का कवि कहा है, फिर क्रान्तिकारी । `मुकुल की बीवी` में भी `निराला` ने अपने प्रकृति की शोभा देखते रहने, कवि हो जाने और सभी परीक्षा में असफल हो जाने के कारण निरन्तर प्रश्नों की माला सामने रहने का उल्लेख किया है[1]। `गीतिका` की भूमिका में भी बचपन में निष्काम-भाव से सौन्दर्य दर्शन की प्रेरणा,जो क्रमश: संस्कार रूप से दृढ़ हुई, के साथ घर के अपनी कर्मोजिया और बाहर संसार द्वारा निर्मित विरोधमूलक संस्कारों का उल्लेख आपने किया है । गीत और कला के विवेचन में भी `निराला` ने यह स्वीकार किया है कि उनके जीवन में सभी रसों के स्रोत माता-पिता की दी वाग्विभूति वैसवाड़ी से फूटकर निकले हैं,यहीं उन्होंने भाव ,भाषा और छंद की उल्टी गंगा बहाने की बात लिखकर इसे प्राणों के अनुकूल कहा है[2]। `परिमल` में मुक्त छंद को वन्य प्रकृति और अलाप की तरह कहने में भी उनकी प्राकृत स्वच्छंदता का परिचय मिलता है[3]। स्वामी सारदानन्द पर लिखते हुए `निराला` ने संतों और ईश्वर के प्रति श्रद्धा और भक्ति के बचपन के आस्तिक संस्कारों,अपनी दार्शनिक प्रवृत्ति और उसके साथ बढ़ने वाली विरोधी शक्ति का उल्लेख किया है[4]। `भक्त और भगवान` भी उनकी इन्हीं प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालने वाली कथा है, जिससे `निराला` की महावीर और तुलसी के प्रति श्रद्धा और भक्ति का, श्रीरामकृष्ण मिशन के सन्यासियों के प्रति विनीत भाव का परिचय प्राप्त होता है ।

`निराला` के सम्बन्ध में स्वर्गीया पत्नी से प्राप्त प्रेरणा स्मरणीय है । गीतिका इसी `सुदक्षिणा स्वर्गीया प्रिया प्रकृति` को समर्पित है । पत्नी के हिन्दी ज्ञान और स्वर से अपने लज्जित होकर हिन्दी की शिक्षा के संकल्प का उल्लेख कर समर्पण में उन्होंने लिखा : `जिसकी मैत्री की दृष्टि क्षणमात्र में मेरी स्वच्छता को देखकर मुस्कुरा देती थी, जिसने अन्त में अदृश्य होकर मुझसे मेरी पूर्ण परिणीता की तरह मिलकर मेरे जड़ हाथ को अपने चेतन हाथ से

१- मुकुल की बीवी,पृ०
२- प्रबन्ध प्रतिमा,पृ० १६८-१९९
३- परिमल की भूमिका,पृ० १२
४- चतुरी चमार,पृ०५३-५५
५- ,, कुंपुंच की अन्तिम कहानी ।

उठाकर दिव्य श्रृंगार की मूर्ति की[1]। `काव्य-साहित्य` लेख में भी `निराला` ने पत्नी की दिव्यता और उनके असमय दिव्यधाम-वास के कारण अपने जीवन के सुखमय न होने का उल्लेख किया है[2]।

स्वर्गीया प्रिया की मूर्ति एवं उसके दिव्य-भाव-रूप को कवि आजीवन विस्मृत नहीं कर सके हैं, यह उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है[3]। अपने विगत जीवन का सुखद स्मरण करते हुए गोरी वनिता और संगीत कौशल का उल्लेख उन्होंने १२ जनवरी ५८ को लिखी `रही तुम`[4]-- `रचना में किया है--

"गृह की छाया में, अहो! पक्ष्मल आंखों वाली
गोरी वनिता के साथ विषाद- विनोद में
सारी रात काट दी
संगीत कौशल से ।"

आज भी, जब जरा सम्मुख है, उसकी एकमात्र कामना है--

"यदि सर्व स्वप्न शेष
जीवन निर्माण हो,
रही तुम एकमात्र
सर्वगात्र अहोरात्र ।"

इसके बहुत पहले भी `निराला` लिख चुके थे : "मुझे विश्व का सुख, श्री, यदि केवल पास तुम रहो[5]।" बेला की एक रचना[6] में भी इस सत्य का प्रमाण हमें प्राप्त होता है ।

सन् ४१ की लिखी कहानी `जानकी`[7] में भी `निराला` ने प्रिया की स्मृति को अभिव्यक्ति दी है । कहीं में, वहां की हेडमिस्ट्रेस को देखकर रूप-साम्य को लक्ष्य कर वे लिखते हैं : "और रूप ? मेरे रोएं खड़े हो गए,

---

१- गीतिका, पृ० ५
२- चाबुक, पृ० ५८
३- कुल्ली भाट, पृ० ६१
४- अन्तर्लेख, २६ जनवरी ५८, पृ० ३, ज्योत्सना, जून ६०
५- अनामिका, पृ० १२०
६- बेला, पृ० ७५, गीत ६७
७- देवी संग्रह की अन्तिम कहानी

उसी वक्त मेरे मन में आया, यह मेरे मन की मूर्ति है, कभी मेरे मन से बाहर नहीं निकली। संभलकर भी मैं न संभल सका। + + उसने भूलकर भी मुझे नहीं देखा, फिर भी जैसे मेरा सब कुछ देख लिया हो। मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे मेरा कुल रहस्य उसने खींच लिया। अब यह जवान नहीं, अधेड़ है, आधे बाल पक चुके हैं, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ रही हैं, पर कितनी दृढ़ता? उसमें ऐसी दृढ़ता नहीं थी, सिर्फ चेहरा मिलता है। बीस साल हो गए। तब उसकी मुश्किल से बीस साल की उम्र थी, क्योंकि वह मर चुकी है और यह जिन्दा है[1]।"

डा०रामविलास शर्मा ने इस अध्यापिका से स्मरण आने वाली मूर्ति का सम्बन्ध कलकत्ते की किसी स्त्री से जोड़ा है, जिसकी ओर "निराला" का मन कभी खिंचा था, और जो संसार में नहीं थी। कहानी का प्रारम्भ कलकत्ते के प्रारम्भिक जीवन से होता है, जहाँ "मिस रोज़" की अवतारणा लेखक ने की है, यह भी डा० शर्मा ने बताया है[2]। इस कहानी के सम्बन्ध में आपके विचार से सहमत होना कठिन है। "देवी" में संकलित कहानी में प्रारम्भ में अवतरित महिला का नाम "मिस मेरी" दिया गया है, और "निराला" के मन की मूर्ति को पत्नी मानना अधिक समीचीन है। कारण कवि के मित्र शंकर की पत्नी और मनोहरा देवी के एक गाँव के होने, अत: परस्पर सौहार्द्र भावना होने का संकेत भी कहानी में मिलता है।

१९३६ में गंगा ग्रंथागार से श्रीकृष्णाचार्य ने "निराला" की कृति सूची प्रस्तुत करते हुए प्रकाशित "प्रभावती" की "१-३-१९३६ को लिखी भूमिका" में लेखक द्वारा "अपनी स्वर्गगता पत्नी को श्रद्धा समर्पित" बताया है। प्रमाण-स्वरूप उन्होंने यह समर्पण भी उद्धृत किया था[3]:

"प्रिय श्रीमती,

बहुत दिन हुए -अठारह वर्ष-- पन्द्रह वर्ष की तुम नववधू होकर घर आई हुई थीं, जहाँ बिना माँ के दो शिशुओं की सेवा में तुम्हें श्रृंगार की साधन

१- देवी, पृ० १३१
२- निराला की साहित्यसाधना, पृ० ५०१-५०२
३- निराला: जीवन और साहित्य, पृ० २२७ ।

का समय नहीं मिला, तुम्हारे ऐसे इस संसार के किसी भी चमत्कार से पुरस्कृत नहीं कि जा सकते, मैं केवल अपनी प्रीति के लिए यहाँ यह पुस्तक न्यस्त करता हूँ, जानता हूँ, शाब्दिक भी तुम्हें 'वाणी-पुस्तक-रंजित-हस्ते' नहीं कह सकते, क्योंकि तुम तब से आज तक 'शिशु-कर-कृत-कपोल-कज्जला' हो ।

सस्नेह - 'निराला'

लखनऊ ९-३-१९३६ ।[1]

वस्तुतः वर्णित यह कृति 'प्रभावती' पत्नी को नहीं, सरोज बालिका को समर्पित है, जिसका उल्लेख 'मौन कवि' शीर्षक लेख में भी 'निराला' ने किया है ।[2] 'समर्पण' में उल्लिखित तिथि को ध्यान में रखकर विचार करने पर भी इसी मन्तव्य की पुष्टि होती है, क्योंकि १८ वर्ष से और पहले 'निराला' की पत्नी का पदार्पण घर में हो चुका था और १८ वर्ष पहले वे जीवित भी नहीं थीं ।

'निराला' के जीवन-काल में उनके एक कविता-संकलन की भूमिका-रूप में लिखे गए निबन्ध 'उदात्त-अनुदात्त' में डा० रामविलास शर्मा ने 'निराला' के मृत्यु की विभीषिका से युक्त वातावरण में साहित्यिक जीवन प्रारम्भ करने का उल्लेख कर यह विचार व्यक्त किया है, कि अपने भौतिक जीवन के प्रारम्भ में ही वे मातृ-स्नेह से वंचित हो गए थे ।" मानो उसी अभाव की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने गीतों में इष्ट देवी के रूप में बराबर अपनी विवशता जननी को पुकारा है । प्रकृति के सौन्दर्य का प्रतीक बनकर यदि प्रिया आती है तो मृत्युंजयी शक्ति के रूप में जिनकी अर्चना 'राम की शक्ति पूजा' में स्वयं राम ने की है-- उनकी स्वर्गीया जननी अवतरित होती है ।" आपके इस विचार से असहमति दुष्कर है कि 'अप्रत्यक्ष रूप से इन दो स्वर्गीया देवियों की स्मृति ने 'निराला' को शक्ति और सौन्दर्य के अद्भुत समन्वय का कवि बना दिया ।'

काव्य में उदात्त तत्त्व के विवेचन में लौंजाइनस ने मन की ऊर्जा को उदात्त की अनुभूति का प्रधान अन्तर्तत्त्व मानकर औदात्त्य को महान आत्मा की प्रतिध्वनि कहा है, और महान शब्दों का उद्गम गंभीर और गहन विचारों से संभव

१- चाबुक, पृ०११
२- निराला, पृ०१७७

माना है । औदात्य का जन्मजात दूसरा अवयव प्रेरणा प्रसूत आवेग भी इसी से सम्बद्ध है[2] । लॉन्जाइनस की उदात्त के आध्यात्मिक पक्ष की चर्चा के सदृश इलाचन्द्र जोशी भी महान् लेखकों के व्यक्तित्व में मूल स्रोत के आधार के लिए उसका आध्यात्मिक स्तर स्मरणीय मानते हैं । होरेस ने भी 'काव्य-कला' की विवेचना में असाधारण कोटि की मेधा, मानस की असामान्य सहज शक्ति प्रतिभा को काव्य-हेतु स्वीकार किया है । अभ्यास के बिना प्रतिभा को और प्रतिभा के बिना अध्ययन को वे उपयोगी नहीं मानते । इसके साथ ही समस्त उत्कृष्ट साहित्य का रहस्य वे सजग विवेक शक्ति को मानते हैं[2] ।

डा० रामविलास शर्मा ने 'निराला' के असाधारण व्यक्तित्व, जिसे रूप देने में उनके पारिवारिक परिवेश का बहुत बड़ा हाथ था, की जो मूल विशेषता बताई है, उसमें काव्य के इन गुणों को समाहित हम पाते हैं । आप लिखते हैं : 'वह जितने कल्पनाशील थे, उतने ही मेधावी और इन दोनों स्तरों पर उनकी कल्पना और मेधा को प्रेरित करने वाली थी, उनकी अपूर्व ऊर्जा । कल्पना, मेधा और ऊर्जा उनमें सहज, जन्मजात, उनके व्यक्तित्व का मूलाधार थी[3] ।'

'निराला' के पारिवारिक जीवन, एवं सामाजिक स्थिति को देखने से यह प्रारम्भ में ही स्पष्ट हो जाता है कि जीने के लिए उन्हें निरन्तर संघर्ष करना पड़ा है, जिसे स्वामी विवेकानन्द ने 'जीवन का चिन्ह' कहा है[4] । विकास प्रदान करने वाले इस संघर्ष ने 'निराला' के व्यक्तित्व का अभूतपूर्व विकास किया । 'कवि की प्रेरणा के पीछे उसकी सामाजिक अनुभूति और सामाजिक परिस्थिति भी रहती है[5]' यह सच है । 'निराला' की व्यक्तिगत सामाजिक स्थिति बंगाल में हिन्दी की सांस्कृतिक स्थिति से मेल खा गई, इसका उल्लेख करते हुए डा० शर्मा लिखते हैं : " 'निराला' और हिन्दी दोनों महान् हैं, दोनों उपेक्षित हैं, 'निराला'

१- काव्य में उदात्त तत्व, पृ० ५३, ५५
२- काव्यकला, पृ० ९९, ९६
३- निराला की साहित्य साधना, पृ० ७९
४- विवेकानन्द चिन्तन, पृ० ७३३
५- आज का हिन्दी साहित्य, पृ०५५ : प्रकाशचन्द्र गुप्त

को अपना महत्ता सिद्ध करना है, हिन्दी को समृद्ध बनाकर, अपनी साधना से उसे बंगला के समकक्ष, संभव हो तो उससे श्रेष्ठ बनाकर। हिन्दी जातीयता की भावना 'निराला' के जीवन में शक्तिशाली प्रेरणा बनकर आई।[1] इस प्रकार महानता के साथ हीनता की भावना की स्थिति निरन्तर हम 'निराला' में पाते हैं।

'निराला' के व्यक्तित्व, परिवेश एवं साहित्य का अध्ययन हमें बताता है कि उनमें प्रायः दो भावनायें सामान्यरूप से प्राप्त होती हैं-- एक तो यह कि भाग्य ने उनके साथ अन्याय किया है, और दूसरी, इसी से सम्बद्ध भाग्य को लंघित करने की उनकी उत्कट अभिलाषा। 'निराला' की यह युयुत्सु भावना जीवन की संघर्षमय परिस्थितियों से सीधी उत्पन्न हुई है, जिसका श्रेष्ठतम निदर्शन उनकी 'राम की शक्ति पूजा' है। यहाँ राम के अशान्त और युद्ध में दुरकान्त रहने वाले मनु के अपने को असमर्थ मानकर हारने और पराजय की पीड़ामहावीर की शक्ति द्वारा पराजय के भाव का विनाश एवं नयी शक्ति के प्रादुर्भाव भाग्यवश अधर्मरत रावण की महाशक्ति का सहयोग से उत्पन्न असामर्थ्य और पुनः शक्ति-पूजा में रत राम की सिद्धि के क्षण विघ्न के कारण साधना के अभाव से पुरित विरोध पाने वाले जीवन को भी धिक्कारने और अन्ततः अभीष्ट प्राप्ति में 'निराला' ने अपने ही जीवन-सत्य को अभिव्यक्त किया है। रामकी शक्ति पूजा कविता आरम्भ होती है। रवि हुआ अस्त, से, पर ज्योति के अमर पत्र पर राम-रावण का अपराजेय समर लिखा रह गया। आकाश महोल्लास से खिंचा हुआ है- राम दुर्गम नैशान्धकार से आविष्ट है। अमानिशा है, गगन अन्धकार उगलता है, पवन- चार स्तब्ध है, अम्बुधि अप्रतिहत गरज रहा है- भूधर ध्यानमग्न है- केवल मशाल जलता है। राम शंकाकुल हैं- रावण जय -भय से उनका एकान्त दुराक्रान्त मन अपने को असमर्थ मानकर हार गया है। पृथ्वी तनया की कुमारिका छवि उनके हृदय में विश्व विजय भावना भरती है, परन्तु मंत्रपूत अगणित दिव्य शर स्मरण आते ही राम को रण में देखी भीमाकार मूर्ति की याद आती है, जो समग्र नभ को आच्छादित किए थी। उसी में राम के सारे ज्योतिर्मय अस्त्र बुझ जाते थे। सीता के राममय नयनों की स्मृति और रावण के अट्टहास का स्मरण साथ होता है और राम के 'भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्तादल।' भाल का स्वप्न में देखा महावीर मूर्ति और प्रभावती के न्यासी रूप महावीर धारण कि के

१- निराला की साहित्य साधना, पृ० ५७५।

भाल पर यहाँ साक्षात् महावार है । राम के अश्रु देखते ही उनकी शक्ति का सागर उद्वेलित हो उठता है और 'दिग्विजय अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष ।' तुलसी के ऊर्ध्व गमन के सदृश यहाँ भी वेश भाव जलद में डूब जाता है, महाकाश में महावार का अट्टहास गूँज जाता है । व्योम ग्रस्त करने को अग्रसर कद्रनाथ का रूप देखकर शिव भी विचलित हो उठते हैं, क्योंकि महावार राम की अर्चना का मूर्तिमान रूप है, चिर ब्रह्मचर्य की शक्ति से समन्वित है । शक्ति ने अंजना रूप में प्रबोध देकर उन्हें नम्र किया ।

महाशक्ति के अन्याय का पक्ष लेने से समर में राम राज-कर-विजय की आशा से हत हैं । राम इस दैवी विधान को समझने में असमर्थ हैं कि अपराजेय महाशक्ति की अपनी और अपने राम अमर हो गये हैं। रावण, 'प्रभावती' में विद्या का विष्णुलाल और मृत्यु के सदृश यहाँ भी सृष्टि रक्षा के विचार से सम्पूर्ण संस्कृति को जीतने वाले विवेकपूर्ण शर रण में आहत खण्डित हो जाते हैं । रावण की अन्त के लिए महाशक्ति को राम ने देखा है । और अपनी असमर्थता जिसमें 'निराला' के जीवन का सत्य भी निहित है - के लिए राम का कथन है :

> पश्चात, देखने लगीं मुझे, बँध गए हस्त,
> फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बँधा मैं हुआ त्रस्त ।'

आत्मध्यान की शक्ति धारण कर 'आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर' प्रस्ताव राम को प्रिय लगता है । 'निराला' का अपराजेय व्यक्तित्व इन पंक्तियों में बोल उठता है जो हार कर भी संघर्ष-पथ पर सतत् अविरल बढ़ते जाते हैं । शक्ति की मौलिक कल्पना कर सिंह भाव से उनका अभिनन्दन करने का निश्चय राम करते हैं । उनके समाराधन की सिद्धि के अन्तिम समय नील कमल की अनुपस्थिति पुनः(की) ध्यान भंग करती है । असिद्धि की कल्पना से 'भर गए नयन द्वय ।' 'निराला' के जीवन का एक दूसरी विवशता अथवा सत्य यह भी था --

> धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
> धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध ।'

परन्तु राम का एक मन और था, जो न श्रान्त था, न दैन्य और विनय जानता था । जय प्राप्त कर वह मायावरण को भेद कर जाता है, बुद्धि के दुर्ग पहुँचता है । स्मृति आने पर भाव था राम सजग होते हैं । माता की उक्ति 'राजीव नयन' का स्मरण कर वह अपना एक नेत्र देकर शक्तिपूजा पूर्ण करेंगे । यह दृढ़ निश्चय

संघर्ष की शक्ति स्वयं उदित हो एवं जय का आश्वासन दे राम के बदन में लीन हो जाती है ।

अपनी साहित्यिक महानता के प्रति तो 'निराला' पूर्णत: आश्वस्त थे और अपनी सृजन शक्ति पर उन्हें अगाध आस्था थी, इसीलिए अपनी साहित्यिक प्रतिष्ठा का आख्यान उन्होंने स्पष्ट शब्दों में किया है । दूसरी ओर 'निराला' इस सत्य से भी अपरिचित नहीं थे कि समाज में उनकी प्रतिष्ठा के अभाव के मूल में धनाभाव की ही स्थिति है । 'निराला' को यह भी ज्ञात था कि समाज में प्रतिष्ठा तो उन्हें नहीं मिली, परन्तु साहित्य की तरह समाज में भी उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली थी, जिसका आधार समाज में उनका विद्रोही आचरण था । उनकी 'सरोज स्मृति', 'वनबेला', 'देवी' और 'कुल्ली भाट' रचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि आर्थिक अभाव 'निराला' को अपनी नहीं, परिवार की वजह से खलते थे, और परिवार और समाज की स्थिति ही उनकी मौलिक विद्रोहात्मकता के मूल में अवस्थित है ।

'सरोज स्मृति'[1] में 'निराला' ने 'धन्ये मैं पिता निरर्थक था, कुछ भी तेरे हित कर न सका' आदि पंक्तियाँ अपनी आर्थिक विपन्नता के सम्बन्ध में 'निराला' की विचारधारा का स्पष्टीकरण है । 'सरोज स्मृति' के प्रारम्भ में 'निराला' ने अपने कवित्व ज्योति के प्रकाश का गर्व से स्मरण किया है । उनका यह गर्व ही उनके विद्रोह का सम्बल था । अपनी अक्षमता का उनको ज्ञान समाज के पूंजीवादी संस्कारों की विजय का ज्ञान था । उनके नैतिक मूल्यों की बर्बरता के अभिशाप में बदले जाने का ज्ञान था । परन्तु यह ज्ञान 'निराला' के लिए नया नहीं था । आर्थिक पक्ष का अनर्थ देखकर उन्होंने स्वार्थ समर में स्वीकार किया था । सामाजिक कुसंस्कारों के प्रति अपने मन के विद्रोह को व्यक्त करते हुए सामाजिक योग के नियम को तोड़ उन्होंने कन्या 'सरोज का' 'आमूल नवल' विवाह किया था । सरोज के प्रयाण से 'निराला' का यह सम्बल भी टूट रहा था, क्योंकि 'दुख ही जीवन की कथा रही क्या कहूँ आज जो नहीं कही ।' पूंजीवादी संस्कृति के शिकार के रूप में यहाँ 'निराला' 'कुल्ली' चतुरी अथवा पगली को नहीं, स्वयं अपने को देखते हैं

१- अनामिका, पृ०१२१, सुधा जनवरी ३५

'वनबेला' में भी 'निराला' ने जीवन के व्यर्थ होने और रण में हारने का उल्लेख कर यशागुत्र अपने राजपुत्र अथवा लब्धप्रतिष्ठ कुमार होने की सम्भावना पर विचार जहाँ किया है, वहाँ भी आर्थिक पक्ष का अर्थ लेकर स्वार्थ-समर हारने की ही भावना का परिचय मिलता है। अन्ततः कवि वेदान्त दर्शन के आधार पर अपनी इस पराजय की परिणति विजय की महत् उपलब्धि में करता है। वास्तव में यह रचना इस तथ्य का स्पष्ट आख्यान है कि अर्थ का अभाव कैसे उनके साहित्य का मूल प्रेरक शक्ति बनता है और कैसे वह परिवार के साथ जुड़ा हुआ है। गद्य रचनाओं में अर्थाभाव की चर्चा की दृष्टि से 'देवी' और 'कुल्ली भाट' रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'देवी' के प्रारम्भ में ही 'निराला' ने लिखा "बारह साल तक मकड़े की तरह शब्दों का जाल बुनता हुआ मैं मक्खियाँ मारता रहा।" साहित्य की रक्षा के प्रयत्न में, फाकेमस्ती में जब पारियों के ख्वाब उन्होंने देखे, दूसरे मित्रों ने सांसारिक उन्नति कर उनकी सनक पर हँसते रहे। लोगों के कविता को कुराफात कहने पर भी 'निराला' अपनी राह पर चलते रहे। यहाँ उन्होंने बड़प्पन के बिना तारीफ न मिलने का उल्लेख किया है : "बात यह कि बड़प्पन चाहिए। + + इसलिए कि छोटे समझें कि वे कितने छोटे हैं।"[१] 'सरोजस्मृति' में तो 'निराला' ने अपनी कवित्व शक्ति को परिवार की दशा बदलने में असमर्थ पाया था, इस रचना में उन्होंने बताया है कि साहित्यकार का बड़प्पन देखने-दिखाने की आदत वाले लोगों से युक्त समाज के इन उपेक्षितों और दीनों का भाग्य नहीं बदल सकता। कथा के लगभग अन्त में जहाँ 'निराला' ने संसार का ज्ञान रहने पर पगली को छोड़ देने वाला नवों से कराहते चित्रित किया है, वहाँ उन्हें अपनी विवशता का ध्यान भी आता है : "ईश्वर ने मुझे देखने के लिए पैदा किया है। मेरे पास जो ओढ़ना है, वह मेरे लिए भी ऐसा नहीं, कि खुली जगह सो सकूँ। 'गीतिका' में भी इसी प्रकार 'निराला' ने दामोनियम के अभाव में गीतों को स्वरबद्ध न कर पाने का उल्लेख किया है।

'कुल्ली भाट' जिसमें लेखक ने अपने प्रारम्भिक जीवन का इतिहास

१- चतुरी चमार, पृ० ३८-५०

शब्दबद्ध किया है, में भी 'निराला' ने इस तथ्य का संकेत किया है कि आर्थिक अभाव उनके साहित्य का प्रेरक शक्ति कैसे बनते हैं । भाग्य-विपर्यय, जीव की अपेक्षा जीवन को अपनाने और उसके रहस्य से परिचित होने का उल्लेख जहाँ आया है, वहाँ इसका स्पष्ट आभास हमें मिलता है । साधु जी के पिता की तनख्वाह पूछने अथवा रियासत की मामूली नौकरी छोड़कर साहित्य सेवा में प्रवृत्त होने और ऐसे वापस आने पर कोरियों के यहाँ दुनाई तोड़ने तथा पुनः महिषादल जाने के प्रसंग में भी अर्थ-कष्ट और जीवन-संघर्ष का ही परिचय मिलता है । इन्हीं घटनाओं का उल्लेख उन्होंने स्वामी सारदानन्द पर लिखे अपने एक लेख[1] में भी किया है

व्यक्तित्व का विवेचन करते हुए श्री धनञ्जय वर्मा ने उसकी इस मूलभूत प्रतिपत्ति का उल्लेख किया है कि 'व्यक्तित्व का मूल उसका अहं है ।' अपने विवेचन में उन्होंने यह भी बताया है कि फ्रायड ने व्यक्तित्व के तीन क्रमों--इड़, इगो और सुपर इगो की चर्चा की है । इड़ वंशानुक्रम से मिली प्रवृत्तियों का संचयन है, इगो का तात्पर्य अहं से है । यह व्यक्तित्व का वह संयोजित अंश है, जो इड़ की प्रवृत्तियों में सुधार, चयन, नियमन और उचित सम्बन्ध-स्थापना करता है और 'सुपर इगो' मन का वह अभिनव विकास है जो सामाजिक संहिता का समावेश करता है, जिसका लक्ष्य पूर्णता की ओर होता है । सामान्यरूप से एक व्यवस्थित व्यक्तित्व में प्रेरक शक्ति इगो अथवा अहं ही होती है, जो 'इड़' और 'सुपर इगो' को शासित और नियमित करती है।[2] जिसको 'निराला' की अन्तःप्रेरणा से जोड़ा जा सकता है । 'परिमल' में 'परिमल-मधु लुब्ध मधुप करता गुंजार' और 'पुलकाकुल अलि-मुकुल विपुल'[3] भाव का आधिक्य हमें मिलता है । इसी साथ ही 'भार मलय परिमल की झालड़', 'ही सौरभ पुष्प की ग्रंथि, खुल गए उर के तार', 'मृदु सुगंध-सी कोमल वह फूलों की' 'सधा सौरभ से पूरित दिगन्त'[4] के उल्लेख भी 'परिमल' में निरन्तर मिलते हैं । 'गीतिका' में भी इसी प्रकार 'परिमल-मन के बहने', सौरभ-कन

१-चतुरी चमार ' स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं ।'

२-निराला : काव्य और व्यक्तित्व, पृ०४२

३-परिमल, पृ०६६, १५१

४- ,, पृ०६७, ८७, १५५-१५६ ।

'निराला' के व्यक्तित्व के विश्लेषण अथवा अध्ययन के क्रम में हम देखते हैं कि 'निराला' में एक मिला-जुला प्रेरणा अथवा लालसा आत्मप्रतिष्ठा के आग्रह अथवा अहमन्यता का मिलता है, जिसपर पन्त जी ने सर्वाधिक बल दिया है। समाज से क्योंकि उनको निरन्तर विरोध और ही उपेक्षा ही मिली, आर्थिक विपन्नता के कारण उचित प्रतिष्ठा नहीं, इसलिए उनमें अहंकार के भाव की प्रधानता हम पाते हैं। सम्मान-कामना से युक्त 'निराला' का यह अहं भाव उनके अन्तर्व्यक्तित्व का मूल प्रेरक शक्ति कहा जा सकता है, जिसका अनेक रूपों में प्रस्फुटन हम उनके जीवन और साहित्य में देखते हैं। 'परिमल' में ही कवि-कंठ की यह आत्मविश्वासपूर्ण ध्वनि हमें सुनाई देती है कि अभी उनका अन्त नहीं होगा, उसके ही अविकसित राग से दिगन्त विकसित होगा[1]। 'अनामिका' में कवि ने यह सूचना स्पष्ट शब्दों में दी है कि वह कवि है और उसने ज्योतिस्तरणा के चरणों पर निर्भर रहकर कुछ प्रकाश पाया है[2]। 'हिन्दी के सुमनों के प्रति' उनकी विज्ञप्ति मात्र इतनी ही है : "मैं ही वसन्त का अग्रदूत ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत मैं रहा आज यदि पार्श्वच्छवि।"[3] 'निराला' के इस वक्तव्य में उनके अहं भाव के विविध रूपों प्रतिध्वनित विद्रोह, पौरुष और दुःख सभी का समन्वित आभास हमें मिल जाता है। वस्तुतः प्रतिभा की स्थिति परन्तु प्रतिष्ठा की अनुपस्थिति का अन्तर्विरोध 'निराला' के व्यक्तित्व को अहंता और उग्रता की गति प्रदान करने वाला प्रमुख तत्व है।

'काव्य साहित्य' लेख में 'निराला ने काव्य को मनुष्य-मन की उच्च कृति कहकर प्रारम्भ में ही यह स्थापना की है कि : "..... काव्य में यदि कोई कवि अपने व्यक्तित्व पर खास तौर से जोर देता हो तो उसे उसका अनन्य अहंकार न समझ, मेरे विचार से, उसकी विशाल व्याप्ति का साधन समझना निरुपद्रव होगा। कारण, अहंकार को घटाकर मिटा देना जिस तरह पूर्ण व्याप्ति है-- जैसा भक्त कवियों ने किया, उसी तरह बढ़ाकर भूमा में परिणत कर देना भी पूर्ण व्याप्ति है-- जैसा ज्ञानियों ने किया।...."[4]

१-परिमल, पृ०११३-११४
२-अनामिका, पृ०१२१, सरोज स्मृति
३- ,, पृ०११८
४- चाबुक, पृ० ४५

अहं और अहं भाव का यह स्थिति अथवा समापता सम्भवत: इसी दृष्टि से डा०रामरतन भटनागर ने 'निराला' में देखा है[१]। श्री धनन्जय वर्मा ने भी 'निराला' के अहं को भौतिक अथवा मनोविज्ञान की शब्दावली का न मानकर उसकी आध्यात्मिकता का उल्लेख किया है[२]। इन उल्लेखों के विपरीत डा० शर्मा ने रचनात्मक और ध्वंसात्मक पक्षों से युक्त 'निराला' के विद्रोही व्यक्तित्व में प्राप्त अहं भाव को उनका कथन व्यंग्य और विद्रूप का कथन कहा है[३]।

बंगाल में रहते हुए जो परिचय 'निराला' ने बंगालियों की प्रान्तीयता और श्रेष्ठता की भावना का प्राप्त किया था, उसने भी 'निराला' की अहं भावना को प्रेरणा प्रदान की। रवीन्द्र के प्रति उनके अन्दर जो प्रतिस्पर्धा अथवा प्रतिद्वन्द्विता का भाव मिलता है, उसके मूल में यही भावना क्रियाशील है। प्रतिद्वन्द्विता की इस भावना का एक सूत्र 'निराला' की उस सन्यास की अवधारणा में भी मिलता है, जो उन्हें श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द के दर्शन ने दी थी, और जिसकी अनुरूपता 'निराला' की सामाजिक स्थिति से भी थी। तुलसी की श्रेष्ठता के प्रतिपादन और रवीन्द्र की आलोचना का मुख्य आधार यही है। रवीन्द्र के प्रति 'निराला' की प्रतिद्वन्द्विता की भावना का यह आधार उनके व्यक्तित्व में उपलब्ध होने वाले उस अन्तर्विरोध को जन्म देता है, जो राज-वैभव और सन्यास, शृंगार और वैराग्य को लेकर उनके अन्दर था। जीवन और साहित्य में हमें उनकी इस भावना का परिचय इसरूप में मिलता है कि हम उन्हें एक ओर यदि अपने बड़प्पन की घोषणा अथवा उसकी कामना करते पाते हैं तो दूसरी ओर उन्हें सन्यासियों के प्रति सतत् अवनत और छोटे, साधारण और उपेक्षितों को देखकर 'अपनपो' खोते देखते हैं। 'देवी' कहानी में कवि ने अपने व्यक्तित्व के इन युगल सूत्रों का विशद विवेचन स्वत: ही प्रस्तुत किया है। 'कुल्लीभाट' में भी अपना आत्मविश्लेषण करते हुए 'निराला' ने अपने बड़प्पन के भावों की आलोचना की है और अपनी कृतिकारिता को दोष कहा है

१- निराला, पृ०२

२- निराला: काव्य और व्यक्तित्व, पृ०५४-५५

३- धर्मयुग, वसंतपंचमी रविवार '१२ फरवरी, १९६७ पृ० १८

सत्य से उनका यह प्रेम , कटु सत्य कहने का उनका यह साहस ही उनको महान बनाता है[१]। इसी सत्य को कवि ने अपना पूर्ण यौवन अर्पित किया है, यह उन्होंने 'नवीन कवि 'प्रताप'' लेख में स्वयं स्वीकार किया है ।

'निराला' के अहं भाव के प्रस्फुटन का ही एक रूप उनका विद्रोह अथवा पौरुष भी है, जो उनके काव्य-व्यक्तित्व की सर्वथा प्रत्यक्ष विशेषता है । 'निराला' का यह विद्रोह अथवा पौरुष का भाव एक ओर तो उनके अहं से संचालित बरैव -परिचालित होता है, दूसरी ओर इसे उनका जीवन संघर्ष और आत्मविश्वास भी शक्ति प्रदान करता है । 'निराला' के विद्रोह का विश्लेषण करते हुए श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने सर्जनात्मक विद्रोह को सर्वथा भिन्न स्थिति,जीवन की कसौटी पर कसे जाकर 'निराला' के विद्रोह की कृतकृत्यता का उल्लेख कर लिखा है : "वास्तविकता जो है, उससे विद्रोह करके जो होना चाहिए के प्रति आकर्षण और उसके आकलन की निरन्तर साधना ही उनके विद्रोह का मूल प्रेरणा था । यही कारण है कि उनके विद्रोह में सहज सामूहिक कल्याण के संकल्प से प्रस्फुटित शक्ति, ओज और उद्दाम पौरुष की अबाध आवेग पाया जाता है[२]।" साहित्य,समाज और जीवन सभी क्षेत्रों में बद्ध संस्कारों एवं रूढ़ियों का प्रतिरोध 'निराला' ने किया है । उनकी यह विद्रोही दृष्टि भी उनकी सत्यनिष्ठा की ही व्याख्या है,जहाँ उनकी अस्मिता भी जागृत अवस्था में रहती है । अपने सामाजिक और पारिवारिक परिवेश में अहं की तुष्टि न होना,यही तत्व 'निराला' के विद्रोही व्यक्तित्व को विकास प्रदान करता है । श्री धनन्जय वर्मा ने भी 'निराला' के व्यक्तित्व की मौलिक विद्रोहात्मकता का मूल उनकी पारिवारिक और सामाजिक स्थिति को माना है[३]। अपने सहज उन्मेष और साहस के साथ 'निराला' में शक्ति और पौरुष का जैसा विद्रोहात्मक रूप मिलता है, वास्तव में वह उनकी अपनी विशेषता है[४]।

१- निराला,पृ०१४८

२- महाप्राण निराला,पृ०४३८-४३२

३- निराला: काव्य और व्यक्तित्व,पृ०४।

४- अनामिका,पृ०६५

'निराला' के अहंभाव का ही एक रूप उनमें पाई जाने वाली अपने ही प्रति दया और करुणा की भावना में मिलता है । व्यक्तित्व की विशालता के सर्वथा विपरीत उनकी यह भावना है, जहाँ उनका व्यक्ति इतना विनीत और नम्र हो जाता है, मानों उनका अस्तित्व ही नहीं है । वेदान्त के व्यावहारिक पक्ष का चरम परिणति 'निराला' के इस रूप में हमें मिलता है । मर कर अमर होने की प्रायः व्यक्त उनकी अभिलाषा पीड़ा की घनीभूत रूप में अन्तरित किए मिलता है, तभी उन्होंने 'मृत्यु-निर्वाण प्राण नश्वर' लिखकर मृत्यु की आधार बहु तन्त्र पार कर अंग जालने का उल्लेख किया है[1]। 'हताश' होकर ही उन्होंने जीवन की चिरकालिक क्रन्दन कहा, अपने वज्र कठोर अन्तर में जी भरसक फकझोरने, दुःख की गहन अंध तम निशि के कभी भोर न होने, और उच्छलता, स्पन्दन-अभिनन्दन की प्रयोजनहीनता के सम्बन्ध में लिखा[2] । व्यक्तिगत विषाद की भावना की स्पष्ट अभिव्यक्ति 'गीतिका' की 'भुमि स्नेह क्या मिल न सकेगा ?' रचना में मिलती है, जहाँ कवि ने दुःख का भार झुकने और प्रतिक्षण के रोकने का उल्लेख भी किया है । इसके साथ ही उन्होंने समर्थ होकर व्यर्थ ही अकर्मण्यता ही तरंग से गिनकर यह घोषणा की है : "धार में-ज्यों समारण करूंगा वरण[3] ।"

अपने प्रति दया और करुणा की भावना की श्रेष्ठतम निदर्शन 'अणिमा' के गीतों में मिलता है । इस कृति की 'मैं अकेला, देखता हूं, आ रही मेरे दिवस की सांध्य वेला' इस दृष्टि से विशिष्ट है । आधे पके बाल और निष्प्रभ गाल मंद ही होती चाल उन्हें चिन्तित करते हैं, फिर भी कवि 'हंस रहा यह देख कोई नहीं भेला[4] ।' 'गीतिका' में 'निराला' के सम्मुख जो प्रश्न और उसका समाधान था, उसका निष्कर्ष 'अणिमा' के 'स्नेह निर्झर बह गया है । रेत ज्यों तन ढह गया है ।' गीत में हम पाते हैं । पुलिन पर अनागता प्रियतमा, हृदय में बहता

१- अनामिका, पृ०६५

२- ,, पृ०६६

३- गीतिका, पृ०४५, ५७, ६७ ।

४- अणिमा, पृ० २० ।

ंना का उल्लेख करने के उपरान्त ' मैं अकाम हूं, यहीं कवि कह गया है[1]।' अणिमा में तन ढहने के बाद 'अर्चना' में हमें कवि के 'प्राणों' का जीर्ण परछाईं मिलती है, जहां वह 'मृत्यु का प्रथम आभा को प्रत्यक्ष करता है।' 'आराधना' में उन्होंने जीवन के दुःख को पतझड़ जैसे वन-उपवन के सदृश कहा है और 'गीतगुंज' में वह स्पष्ट रूप से भग्नतन, रुग्ण मन, विषण्ण जीवन और प्रलय के प्रवर्षण का अपनी अक्षमता और एकाकीपन का उल्लेख कर लिखते हैं--'उन्मत्त, विनत माथ, दीरण वीभरण[2]।' अपनी तथाकथित अन्तिम रचना 'पत्रोत्कंटित जीवन का विष बुझा हुआ है' में भी अपने प्रति करुणा और ममता का भाव 'निराला' ने व्यक्त किया है। दुःखों के आवर्त में आबद्ध इस रचना में 'निराला' अपने जीवन का पुनः अवलोकन करते हैं और अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं :'निशाने चूक गए हैं कुछ चुका है हाल-- ढाल की तरह तना थी। पुनः सकेरा एक और फेरा है जी-का[3]।'

अपने प्रति पीड़ा और करुणा की भावना से इतर भी 'निराला' के व्यक्तित्व में दुःख अथवा अवसाद की भावना है, जो उनकी अपनी विशेषता है। दुःख की यह भावना 'निराला' के व्यक्तित्व की संवेदनशीलता अथवा उनकी सहृदयता की परिचायक है। डा० जगदीश गुप्त के शब्दों में उनका व्यक्तित्व असाधारण और अदम्य था, परन्तु उसके भीतर संवेदनशीलता मुख्य थी। अनुस्यूत करुणा का आत्मीय स्वर 'निराला' के असाधारणत्व को संवेदना की भूमि पर ग्राह्य बनाता है। ज्योतिष गुप्त जी का यह भी विचार है कि विद्रोही होते हुए भी 'निराला' के आदर्श समन्वयवादी तुलसीदास थे, इसके मूल में 'निराला' की शक्तिप्रियता की स्थिति है, वस्तुतः विरुद्ध धर्मप्रियता उनके व्यक्तित्व की एक उल्लेखनीय विशेषता रही है[4]। महादेवी जी ने भी शरीर, जीवन और साहित्य सभी

१- अणिमा, पृ० ५५ ॥

२- आराधना, पृ० ६२ ॥

~~३- गीतगुंज, प्रथम संस्करण~~

३- सरस्वती में प्रकाशित नवम्बर ६१ सांध्यकाकली पृष्ठ ८६ । पृष्ठ २१८

४- धर्मयुग १२ फरवरी '६६ पृष्ठ १८ ।

में 'निराला' को असाधारण बताकर उनमें विरोधी तत्वों की सामंजस्यपूर्ण संधि की दृष्टि में दर्प और विश्वास की धूपछांही आभा तथा अविराम संघर्ष और निरन्तर विरोध का सामना करने से उत्पन्न आत्मनिष्ठा का, जिसका परिचय उनकी दृष्टि में हम पाते हैं--उल्लेख किया है[1]। 'राम की शक्ति पूजा', 'भक्त और भगवान' और 'कुल्लीभाट' में 'निराला' ने राम के सेवक महावीर के भाव का जिस रूप में उल्लेख किया है, उससे दीनता और शक्ति के उन विरोधी भावों की सहस्थिति का स्पष्टीकरण होता है, जिसके मूल में हमें 'निराला' के बैसवाड़ी धार्मिक संस्कारों के साथ उसके विरोधी, बंगाल की धर्म साधना के तांत्रिक विश्वास भी मिलते हैं।

'निराला' के काव्य और व्यक्तित्व में मिलने वाले आन्तरिक द्वन्द्व की स्थिति द्वारा उनके काव्य के अधिक विशद् और सन्तुलित विवेचन की सम्भावना और उसकी उपेक्षा का उल्लेख डा० इन्द्रनाथ मदान ने किया है। आन्तरिक द्वन्द्व की स्थिति उनके काव्य और व्यक्तित्व में विसंगतियों को जन्म देती है, जो काव्य के विविधता और व्यापकता, वस्तु एवं शिल्प के प्रयोगों के रूप में व्यक्त होता है। यह उनका विचार था[2]। व्यक्तित्व-विश्लेषण के स्तर पर दुःख की इस प्रेरक शक्ति के सन्दर्भ में यह स्मरणीय है कि 'निराला' की संवेदनशीलता और कल्पना के साथ इस भाव का जन्म उनके जीवन-संघर्ष से भी होता है और यह संघर्ष उसे तीव्रता भी प्रदान करता है। अवसाद की यह भावना उनके साहित्य में प्रारम्भ से ही मिलती है। 'परिमल' की अध्यात्मफल[3] रचना इस दृष्टि से उल्लेखनीय है, जहां कहीं मारे पड़ने पर दिल के छिलने का उल्लेख है[4]। 'पतनोन्मुख' कविता में इसी प्रकार दिनमान के डूबने और विकल डालियों से पल्लव प्राण झरने की चर्चा उन्होंने की है[5]। 'स्मृति' में उन्होंने इसी प्रकार के दिनमणि के अगणित

१- पथ के साथी, पृ० ६३
२- 'निराला', पृ० १५४, संपादक 'कमलेश': डा० इन्द्रनाथ मदान का लेख
३- परिमल, पृ०६४
४- ,, पृ०४१
५- ,, पृ०१०२-१०७ ।

क शाणात सकल बलपत साज नियति -संध्या में मुंदे चित्रित किए हैं,: फिर परिमल और कुसुम के अभाव तथा तिमिर ही तिमिर का उल्लेख किया है। `विफल वासना` और `विरमृत-भोर`[1] भी इसी श्रेणी की रचनाएं हैं। उनकी श्रृंगार-भावना भी इस अवसाद से आच्छन्न थी, इसका प्रमाण उनकी शेफालिका और `जागो फिर एक बार` में प्रस्तुत चित्रों में मिलता है। `गीतिका` में भी इन्होंने जीवन के भारहीन,उसकी व्यर्थता और संसार की असारता का उल्लेख किया है।

`निराला` के व्यक्तित्व में अवसाद की जो भावना मिलती है, उसकी सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति उनकी `सरोज स्मृति`[2] है, जिसमें पुत्री के आलोक वरण की कथा होने के कारण कवि की अपने ही प्रति व्यथा और करुणा की भावना का परिचय भी प्राप्त होता है। दु:ख `निराला` के अन्तर्व्यक्तित्व की और उनके साहित्य की मूल प्रेरणा कैसे बनता है, उसका रहस्योद्घाटन इस शोक-गीति में हुआ है। जहां `निराला` अपने पितृत्व को धिक्कारते हैं और स्वार्थ-समर में अपनी पराजय अथवा सरोज के विवाह के समय रिक्त हस्त रहने का उल्लेख करते हैं, वहां उनकी व्यक्तिगत करुणा प्रस्फुटित हुई है और जहां वे इसके कारण की विवेचना करते हैं,वहां उनके संवेदनशीलता अथवा सहृदयता का प्रमाण प्राप्त होता है। कविता के अन्त में दु:ख को जीवन की कथा कहने और `क्या कहूं आज जो नहीं कहीं` पंक्ति में `निराला` का अवसाद घनीभूत हो गया है। डा० रामरतन भटनागर ने इस रचना को इस बात का प्रमाण माना है कि `निराला` ने दु:ख को भरपूर जाना है,परन्तु अपनी अपराजिता जीवन-शक्ति से उसे अमृत बना लिया है[3]। वास्तव में केवल अवसाद ही नहीं, समग्र रूप से `निराला` के अन्तर्व्यक्तित्व के अध्ययन एवं विश्लेषण में यह रचना मूलाधार बन सकती है, इस दृष्टि से यह अप्रतिम है। `निराला` के व्यक्तित्व एवं साहित्य में मिलने वाले

१- परिमल,पृ० १४६, १५१
२- अनामिका,पृ० १२१-१३८
३- निराला, पृ० ३६

अहंभाव, विद्रोह और शक्ति, अवसाद और करुणा, गति और संघर्ष तथा आनन्द और उल्लास इन सभी की समाहित अभिव्यक्ति इस रचना में हुई है ।

"निराला" के व्यक्तित्व के अध्ययन की दृष्टि से उनकी व दूसरी उल्लेखनीय सृष्टि बादल पर लिखी उनकी रचनाएं हैं । "निराला" के संघर्षशील जीवन में उनकी अजेयता, उनकी काव्य-प्रतिभा और व्यक्तित्व के घनिष्ठ सम्बन्ध का उल्लेख करते हुए भी इलाचन्द्र जोशी ने उनकी विविधता और गहनता की मूल कुंजी बादल राग को माना है । उनके व्यक्तित्व की एक विशेषता यह है कि वह आषाढ़ की सघन घटा की तरह सर्वांच्छादनशील, सर्वाभिषेकी और वैशाख की आंधी की तरह आकस्मिक और आश्चर्यजनक अर्थात् "बाधा रहित और विराट" है । उनके व्यक्तित्व का दूसरा पहलू बादल के उस रूप में है, जहां वह गृहत्यागी और वैरागी के रूप में चित्रित है । "निराला" के व्यक्तित्व का तीसरा पहलू उसके दान में है, जिसे बरसने में ही सुख है । कवि के "पागल बादल" को निरन्तर प्रवासी पागल "निराला" का भी प्रतीक जोशी जी मानते हैं[1]। इसी आधार पर "निराला" के व्यक्तित्व का विवेचन श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने भी "निराला का विराट बादल राग"[2] लेख में किया है । बादल के सर्वस्व दान और भैरव घोष भी विप्लवी रूप(जिसकी मूल प्रेरणा सामूहिक उक्ति है) । उसकी विराटता और रस वर्षण की परमार्थी प्रवृत्ति का उल्लेख कर आपने "बादल राग" शीर्षक की साभिप्रायता और सार्थकता का उल्लेख भी किया है । पाण्डेय जी का यह विवेचन [illegible] अथवा इतर के सम्बन्ध में "निराला" की मान्यता के अनुकूल है, जिसकी सार्थकता बताकर वे "निराला" को प्रकृति पुरुष कहते हैं ।

१- "साहित्य चिन्तन" पुस्तक में संकलित निराला पर लिखा लेख ।

२- महाप्राण निराला में संकलित ।

उपर्युक्त विवेचन में 'निराला' के व्यक्तित्व में प्राप्त होने वाली एक प्रधान चेतना की उपेक्षा की गयी है । उसका परिहार आचार्य वाजपेयी द्वारा प्रस्तुत 'निराला' के व्यक्तित्व के अध्ययन में होता है । उनके अनुसार व्यापक जीवन-धारा के सौन्दर्य को सन्निविष्ट करने वाला उनका व्यक्तित्व, जिसमें इस युग की मौलिक सृष्टि के परिचायक ओज और सहानुभूति के परिचायक सुकोमल सौहार्द का समाहार है, उनके काव्य में स्पष्ट है । आपने 'निराला' की पूर्ण मानवोचित सहृदयता और सम्यता के साथ उच्चकोटि के दार्शनिक अनुबन्ध का उल्लेख भी किया है।[1] 'निराला' के व्यक्तित्व को आप बहिरंग में विश्वस्त और संघर्षों के लिए तत्पर तथा अन्तरंग में कला-चेतना से सम्पन्न तथा प्रकृति से एकान्त जीवी और अन्तर्मुख कहते हैं।[2]

'निराला' के व्यक्तित्व के इस पक्ष का उल्लेख डाक्टर रामविलास शर्मा ने मुख्यरूप से किया है, जिन्होंने 'निराला' की दार्शनिकता की अपेक्षा लौकिक जगत के प्रति उनके मोह, मानव के प्रति उनकी कल्याण-कामना और इसी से निर्मित उनके साहित्य की युगान्तरकारी भूमिका पर विशेष बल दिया है । वे 'निराला' की भौतिक जगत के पार्थिव सौन्दर्य से अभिभूति का, उनमें दर्शित वैभव और विलास की प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हैं और योगी के साथ उनके भोगी मन की प्रबलता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं । 'निराला' के व्यक्तित्व की एक अन्तर्प्रेरणा हमें उनके इस भोगी स्वरूप में भी निहित मिलती है ।

'निराला' ने स्वयं अपने को सौन्दर्य का कवि भी कहा है । यही कारण है कि उनके व्यक्तित्व की मूल प्रेरणा का प्रस्फुटन आनन्द की कामना के रूप में भी होता है । सौन्दर्य और उल्लास की जो भावधारा

१- कवि निराला, पृ० ३५
२- ,, पृ० २०३

`निराला` में मिलती है, उससे इस सम्बन्ध में संशय नहीं रह जाता कि इन भावों का सम्बन्ध इसी भौतिक अथवा पार्थिव जगत से है । जीवन में यही प्रेरणा हरेक चीज को `ग्रेण्ड स्टाइल` में करने की कामना के रूप में अभिव्यक्त होती है । अपने रूप अथवा आकृति पर `निराला` की मुग्धता भी व्यक्तित्व की इसी आनन्द चेतना का एक रूप है । तुलसीदास के प्रथम संस्करण में दिया `निराला` का चित्र उन्हीं[1] के शब्दों में उनकी `फेमिनीन ग्रेस` का द्योतक है । इस दृष्टि से उनकी `नर्गिस` कविता विशिष्ट है, जहाँ कवि ने स्पष्टतः पृथ्वी के सौन्दर्य को स्वर्ग की कल्पना से सुन्दर और श्रेयस्कर कहा है । धरती के सौन्दर्य-गगन में `निराला` ने अपनी `स्वर्गिया प्रिया-प्रकृति` को ही मूर्तिमान किया है, इसका प्रमाण उसकी `रंग गई पग-पग`, धन्य धरा, हुई जग जगमग मनोहरा` गीत में मिलता है । `गीतिका`-के तो प्रारम्भ में ही कवि ने `जाने दो प्रिय, मुझे भूलकर अपनापन-अपार जग सुंदरे` घोषणा की है ।

अपनी पहली कविता पुस्तक `परिमल` में ही, जिसे कवि ने स्वयं आधुनिक प्रिय कहा है और यहीं से क्रान्ति के स्वर बांधने का उल्लेख भी किया है ।[3] `निराला`[4] ने श्रृंगार एवं सौन्दर्यमूलक रचनाओं द्वारा अपने `प्रसन्न और उच्छलित व्यक्तित्व` की विशिष्टता को स्पष्ट किया है । इस दृष्टि से उनकी `जुही की कली`, `शेफालिका` और `जागो फिर एक बार` रचनाएं उल्लेखनीय हैं । `परिमल` अपने नाम से ही गंध और सुरभि के भाव को व्यंजित करने वाला है, जिसको निराला की अन्तःप्रेरणा से जोड़ा जा सकता है। परिमल में 'परिमल-मधु-लुब्ध मधुप करता गुंजार' और 'पुलकाकुल अलि-मुकुल विपुल' भाव की अभिव्यक्ति हुई

---

*--- डा० रामविलास शर्मा द्वारा व्यवहृत शब्द

१- अनामिका, पृ० १६०-६२

२- गीतिका, पृ० १३, ५१

३- सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला` : डा० चन्द्रकला, पृ० १४

४- हिन्दी साहित्य, बीसवीं शताब्दी, पृ० १३६ : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ।

मिलता है। इसके साथ ही 'भार पुलक परिमल की शीतल', 'दो स्नेह हृदय की ग्रंथि, खुल गया उर के द्वार', 'मृदु सुगंध-सी कोमल-दल फूलों की' तथा 'सौरभ से पूरित दिगन्त' के उल्लेख भी 'परिमल' में निरन्तर मिलते हैं। 'गीतिका' में भी इसी प्रकार परिमल मन के बहने, सौरभ[१] का संचार करने, कलि के सकल बंध टूटने और दिशा ज्ञान-गत हो गन्ध के बहने के भाव अनवरत रूप से अभिव्यक्त मिलते हैं। गंधभाव का परिचायक मंद मंद बहता पवन, खुल गया जुही[२] अथवा खुलती शेफाली के 'खुले दल, मान-मान आई सुगंध मतवाली'[३] पंक्तियों के साथ यहाँ कवि ने 'बहे सुप्त परिमल का मृदुल तरंग' अथवा 'मंद ० पवन बहता! तुमि रह रह परिमल की कह कथा पुरातन' का स्मरण भी किया है। 'परिमल' और 'गीतिका' के ये स्थल अनामिका की कनबेला और नर्गिस रचनाओं की भाँति ही 'निराला के अन्तर्व्यक्तित्व के मूल में अवस्थित गंध के भाव के परिचायक हैं।'

'अनामिका' के बाद भी 'निराला' की 'अणिमा', 'नए पत्ते' और 'बेला' कृतियाँ भी उनकी अन्तःप्रेरणा अथवा आनंद की कामना गंध और सुरभि के भावों का आख्यान करती अवश्य है, परन्तु प्रारम्भिक अथवा शैशवकालीन गीतों की देखते हुए ये कृतियाँ इस दृष्टि से उतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं। 'अणिमा' में कवि ने जहाँ शृंगार भावों की अभिव्यक्ति की है, उन स्थलों में ही उसके व्यक्तित्व की आनन्द की कामना प्रकट हुई है और विषाद की प्रगाढ़ता के कारण यहाँ 'तुला प्राप्ति' का चित्रण अल्प ही है।[४] 'नए पत्ते' पुस्तक में भी 'देवी सरस्वती' ही अकेली ऐसी विशिष्ट रचना है, जो 'निराला' के आत्मोल्लास की परिचायक है। ग्रामीण जीवन की उसकी पूर्णता में अंकित करने वाली यह रचना 'निराला'[६] के व्यक्तित्व में विद्यमान 'ग्रामीण जीवन से एकरस हो जाने की मूलभूत विशेषता' का आख्यान भी है। 'बेला' के प्रकृति-चित्रों की तो आनन्द तक की कली खिलने और गली के गुंज उठने के भाव मिलते हैं। गगन-रात्रि में फूलों की गंध से भरे वन कुन्तल[७] का उल्लेख भी कवि ने किया है।

'अर्चना', 'आराधना'[८] और 'गीतगुंज' की रचनाएँ भी व्यक्ति की अन्तःस्वतंत्र[६] के भाव विगलित स्वर के साथ 'निराला' के 'स्वस्थ शृंगार दर्शन' का

१- गीतिका, पृ०५३, ६५, ७५ ।
२- ,, पृ०१०४, १०६ ।
३- ,, पृ०२६, ६८ ।
४- अणिमा, पृ०
५- नए पत्ते, पृ० ५८ ।
६- 'निराला: काव्य और व्यक्तित्व', पृ०१८५
७- बेला गीत ६५ और ३ ।
८- नई धारा, जून ५१ : जानकी वल्लभ शास्त्री का लेख
६- निराला : काव्य और व्यक्तित्व, पृ० १३० ।

की उपलब्धि भी है, अपने प्रकृति चित्रों की स्वतन्त्र सत्ता में ही कवि की आनन्द-कामना के साथ जीवन में उसकी आशा को भी व्यक्त करते हैं। पुष्पों की सुगंधि और 'महकी फुलवाड़ी'[1] के साथ ही इन रचनाओं में आमों के बौर फूटने अथवा रसाल बौराने के उल्लेख भी मिलते हैं।

फूलों पर लिखी 'निराला' की अनेक रचनाएं, जिनका अनवरत-क्रम परिमल से सांध्यकाकली तक हमें मिलता है, इस बात का प्रमाण है कि 'निराला' रूप रस, गंध, स्पर्श और शब्द का कवि' है[2]। डा० रामरतन भटनागर भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि 'रंग, रूप, गंध और नाद सौन्दर्य के प्रति 'निराला' का आग्रह विशेष रहा है। वे उदात्त इन्द्रिय बोध के कवि हैं, विशेषतः इन क्षेत्रों में[3]।' परन्तु उन्होंने यह भी लिखा है कि 'निराला रूप, नाद और स्पर्श के प्रति अधिक संवेदनशील थे, रंग और गंध के प्रति कम। रंग की वह वर्ण छटा उनमें नहीं है, जो पन्त में है। फूल उन्हें कुछ प्रिय हैं, परन्तु वे उनके विचारों के वाहक हैं या प्रतीक हैं। स्पर्श-सुख का उन्होंने अवश्य सुन्दर वर्णन किया है। शब्दों के नाद और भावों के रूप की ओर उनका मन अधिक दौड़ता है। उनका मन देखता है और परिपूर्णतः देखता है, आंखें नहीं। कदाचित् इसीलिए पूरा चित्र उरेहना उन्हें अच्छा लगता है[4]।'

रंग के प्रति 'निराला' की कम संवेदनशीलता को तो स्वीकार किया जा सकता है, परन्तु गंध के प्रति उनकी सान्द्र संवेदनशीलता का प्रमाण उनकी शैशवकाल की रचनाएं प्रस्तुत करती हैं। लखनऊ में चमेली और बेले के भाड़ के प्रति 'निराला' के मोहाभिभूत नेह का उल्लेख करते हुए डा० रामविलास शर्मा ने 'फूलों के रंग से ज्यादा उनकी गंध उन्हें पसंद' होने की बात लिखी है[5]। फूलों के प्रति

१- अर्चना-३३, गीतगुंज-२
२- निराला, पृ०१८७
३- २७-२-६७ के पत्र में प्रकट विचार.
४- २३-८-६७ को लिखा पत्र।
५- निराला की साहित्य-साधना, पृ०२५५, ५८, ३२७

निराला के स्नेह का परिचय 'वनबेला' को कान्यकुब्ज कालेज,लखनऊ के छात्रों को पुरस्कृत करने में भी मिलता है, जिन्होंने दोने में बेले की कलियाँ उन्हें दी थीं।[1] इसी प्रकार कुल्टी के छात्रों ने भी 'निराला' को दोनों में फूल देकर सम्मानित किया था। श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त ने भी प्रयाग में उनके घर वर्षा के मौसम में रात की रानी की सुगंध से 'निराला' के विभोर होने और 'निराला' के उसे 'रजनी गंधा' नहीं 'सु नै-हिना' कहने का उल्लेख किया है।[2] डा० शिवगोपाल मिश्र ने भी 'निराला' के फूलों से प्रेम की चर्चा करते हुए लिखा है :

'निराला जी सदैव से प्रकृति के कवि रहे हैं किन्तु उनके वर्णन मौलिक न होकर यथार्थ के चित्रण प्रस्तुत करने वाले होते हैं। ... जुही के समान प्रिय पुष्प निराला जी को कोई दूसरा पुष्प नहीं। जुही के बाद चमेली का पुष्प 'निराला' जी को प्रिय है। वसन्त,शरद एवं पावस ऋतुओं से 'निराला' जी सदा प्रभावित हुए हैं ..... ।'[3]

'गीत गुंज' के दूसरे संस्करण और 'सांध्य काकली' में संकलित रचनाएं भी गंध के प्रति 'निराला' की आसक्ति अथवा संवेदनशीलता की साक्षी हैं। इन रचनाओं में 'निराला' ने जुही,चमेली और बेले का विशेष रूप से उल्लेख किया है। चमेली की माला ,जुही की गंध से भरा पवन,बेले की कलियों का आना,इन सबके माध्यम से उन्होंने प्रकृति में व्याप्त उल्लास को वाणी दी है। पहले की रचनाओं को देखते हुए शेषकाल की रचनाओं में पुष्पों और उनकी सुगंधि का जो आधिक्य हमें मिलता है, उससे द्वारा गंध और सुरभि के प्रति 'निराला' की अधिक जागृत संवेदना ही स्पष्ट है। 'निराला' के व्यक्तित्व में जिस आनन्द की कामना की स्थिति हम पाते हैं,उसकी अभिव्यक्ति की दृष्टि से शेषकाल की ये रचनाएं अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

१- अगस्त ३७ की सुधा में कविता के अन्त में दिया नोट।

२- आज का हिन्दी साहित्य,पृ०२२४-२२५।

३- गीत गुंज परिवर्द्धित संस्करण की भूमिका,पृ०१५.

'निराला' के व्यक्तित्व में मिलने वाली आनन्द की कामना का जो अभिव्यक्त रूप हमें काव्य में प्राप्त होता है, वहां इन श्रृंगार और सौन्दर्यपरक रचनाओं को यद्यपि 'निराला' ने वेदान्त का स्पर्श दे दिया है, तथापि वह उनके आत्मोल्लास का ही प्रतीक मूलत: है । इसका स्पष्टीकरण इस तथ्य से भी होता है कि 'निराला' ने ब्रह्म और माया के लिए क्रमश: 'सुरापान-घन अंधकार अथवा 'मदन पंचशर हस्त' तथा 'मतवाली भ्रांति' और 'मुग्धा अनजान उपमानों का प्रयोग किया है । ये प्रयोग 'निराला' की विद्रोही भावना की विशिष्टता के भी अनेक परिचायक हैं । सुरभि अथवा गंध भाव का परिचय ब्रह्म को 'गंध-कुसुम-कोमल-पराग' अथवा 'कुंद-इंदु-अरविन्द-शुभ्र' कहने में मिलता है । माया के लिए यहां के विरही भाव, उच्छ्वास-कान्त-स्फुल्ता अथवा कौशिक मोह की मेनका लिखना[2] तथा प्रिया के मौन अधरों में उदगार के ही जाने[3] का उल्लेख उनकी श्रृंगार-भावना का परिचायक है । 'गीतिका' की होली 'नयनों के डोरे लाल गुलाल - भरे, खेली होली ।' की परम्परा ही हमें 'अर्चना' और 'आराधना' की 'खेलूंगी कभी होली, उससे जो नहीं हमजोली' अथवा 'केशर की कली की पिचकारी' और ब्रज के लोकगीत पर आधारित चौमासी धम्मार की रचना में मिलती है, जहां स्वस्थ श्रृंगार-भावना के दर्शन हम लोक-जीवन की संवेदना -भूमि पर करते हैं ।

'निराला' के कवि-व्यक्तित्व की एक विशेषता श्री धनञ्जय वर्मा के मतानुसार यह भी रही है कि उद्दाम श्रृंगार की प्रवाहिनी भी तरंग संकुल होकर रह गयी है[4]। श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने भी 'निराला' के

१- परिमल,पृ०८०-८२

२- ,, पृ०८१

३- ,, पृ०१७३

४- निराला : काव्य और व्यक्तित्व,पृ०१६०

व्यक्तित्व की उस विशेषता को लक्ष्य किया है, कि नारी आसक्ति से उनका व्यक्तित्व स्खलित नहीं होता, श्रृंगार और सौन्दर्य के स्थूल या से स्थूल चित्रण में भी वे सदा निर्लिप्त रहे हैं[१]। इसी प्रकार आचार्य वाजपेयी ने भी 'निराला' की श्रृंगारिक भावना की मूल विशेषता यह मानी है कि उन्होंने नारी के सीमित सौन्दर्य को असीम सौन्दर्य से एकाकार करके देखा है[२]।"

'निराला' के व्यक्तित्व पर विचार करते समय उनकी अन्तर्प्रेरणा के अध्ययन के साथ उनके मानसिक विक्षेप का विश्लेषण भी आवश्यक है, क्योंकि जीवन के शेषकाल तक उनकी कवि-प्रतिभा सशक्त और सक्रिय रही है। व्यक्तित्व के अध्ययन की पूर्णता की दृष्टि से भी इसकी उपादेयता सिद्ध होती है।

मानसिक असन्तुलन की चर्चा करते समय सर्वप्रथम तो यह स्मरणीय है कि 'निराला' में प्रारम्भ से ही हमें स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति मिलती है, जिसे उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। उनकी दार्शनिक प्रवृत्ति, चिन्तन में लीन रहने की आदत का उल्लेख श्री शिवपूजनसहाय ने अपने कलकत्ता के संस्मरणों में किया है। उग्र ने अपनी आत्मकथा की भूमिका में 'निराला' की उत्तेजना का उल्लेख किया है। दार्शनिक भावों की प्रबलता और विरोधी शक्ति द्वारा उनको दबाने की चेष्टा का उल्लेख 'निराला' ने स्वयं किया है, और उनके सन्यास लेने की इच्छा की चर्चा उनके पुत्र ने उनके जीवन-तथ्य सम्बन्धी एक लेख में की है। रवीन्द्र से अपनी तुलना करने की प्रवृत्ति भी उनमें उसी समय से मिलती है और मिशन के सन्यासियों को उन्होंने अपनी मेधा, दर्शन व ज्ञान से प्रभावित कर रखा था, इसका उल्लेख भी शिवपूजन जी ने किया है।

अनायास 'निराला' विक्षिप्तावस्था में स्वगत भाषण करते थे, अट्टहास करते थे, भावावेश की स्थिति में रहते थे, बड़े लोगों से अपना

१- महाप्राण निराला, पृ०४६

२- कवि निराला, पृ०६५

सम्बन्ध जोड़ते थे और लाखों के हिसाब-किताब की बातें किया करते थे, इसके एकाधिक उल्लेख मिलते हैं। अधिकांशतः तो उनकी बातों को असंगत और प्रलाप कहा है, परन्तु श्री रमण और श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने उनकी बातों के मूल में उनके अन्तर की प्रतिक्रियाओं को देखा है और स्वगतोक्तियों को संगतिपूर्ण स्वीकार किया है। डा० शर्मा ने भी यह स्वीकार किया है कि 'निराला' का विक्षेप उस कोटि का नहीं था, जिसमें यथार्थ से पूरी तरह नाता टूट जाता है। उन्होंने उनके असन्तुलन की यह विशेषता बताई कि यथार्थ के प्रति वे अन्त तक असाधारण रूप से जागरूक रहे। 'निराला' के व्यवहार के सम्बन्ध में भी आचार्य वाजपेयी और श्रीनारायण चतुर्वेदी जी ने यह सूचित किया कि स्त्रियों के प्रति और अपने बड़ों के प्रति, जिनके लिए 'निराला' के हृदय में सम्मान और स्नेह की भावना थी, कभी भी अमर्यादित व्यवहार उन्होंने नहीं किया। श्री शिवपूजन-सहाय ने भी अन्तिम दिनों में की गई अपनी भेंट के विवरण में इसी मन्तव्य की पुष्टि की है और इस सम्भावना का संकेत भी किया है कि यदि सेठ महादेवप्रसाद जीवित होते, तो 'निराला' को पागल न कहने देते। आचार्य वाजपेयी का अपना अनुभव यह था कि 'निराला' अन्तिम वर्षों में अपना मानसिक सन्तुलन खो चुके थे और पूर्व दृढ़मूल संस्कारों के कारण उनकी कृतियों में शील, सौजन्य और उदारता बनी हुई थी। उनके अन्तिम वर्षों की दैन्य स्थिति के सम्बन्ध में उनका विचार था कि व्यक्तिगत रूप से 'निराला' शारीरिक और मानसिक रुग्णताओं और व्याधियों से पीड़ित थे, दूसरों और इनका तिरस्कार कर काव्य-रचना में भी वे प्रवृत्त थे। वाजपेयी जी का आग्रह अतिवादी दृष्टि का त्याग कर वस्तुस्थिति के सही विश्लेषण का है।

डा० रामविलास शर्मा ने भी जीवन के अभावों की पूर्ति 'निराला' के कल्पना से करने का उल्लेख कर सम्पत्ति, ख्याति, विद्या, प्रतिष्ठित परिवार में जन्म न लेने और सन्यासी न बन पाने के पांच अभाव बताए हैं। इसके साथ त्रास की भावना भी जुड़ी बताकर उन्होंने इसका विस्तृत

विवेचन किया है। डा० शर्मा ने इस मानसिक असन्तुलन के मूल में 'निराला' के योगी और भोगी मन के अन्तर्विरोध को देखा है, रामकृष्ण और तुलसी के साथ वे सम्पत्ति की बात भी करते हैं। 'निराला' का मानसिक असन्तुलन बिगड़ने में डा० शर्मा उनके साहित्यिक विरोधियों की गणना भी करते हैं। प्रकाशकों के अन्याय का उल्लेख भी उन्होंने इसी सन्दर्भ में किया है।

'निराला' के विक्षेप को आचार्य वाजपेयी ने आत्मवैशिष्ट्य से उत्प- [illegible] कहा है। डा० शर्मा इसे 'साइकोसिस' नहीं, हल्के अंश का न्यूरोसिस मानते हैं, जिसमें यथार्थ से सम्बन्ध शिथिल तो होता है, पर टूटता नहीं। उन्होंने कलाकार के अहं का विवेचन करते हुए उसकी सहृदयता और अपमान की प्रतिक्रिया की तीव्रता का उल्लेख किया है। माइकेल ऐंजेलो हैमलेट और किंगलियर, और दोस्तोयवस्की का उल्लेख विघटन और अंतस्सिम्र विक्षेप के चित्रण की दृष्टि से कर, 'निराला' से उनकी तुलना की है। उनका निष्कर्ष है : 'निराला' का मानसिक असन्तुलन उनके व्यक्तित्व का एक पक्ष है। वह संघर्ष से विमुख न हुए, जूझते रहे और अन्त में जीत उनके विरोधियों की नहीं हुई, जीत हुई 'निराला' की। यह उनके अपराजेय व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष है।

श्री अमृतलाल नागर ने भी पंत जी के 'निराला' को शक्ति पुंज कहने के सदृश उनके व्यक्तित्व में शक्तिपूर्ण चमकता है, इसे स्वीकार कर मानसिक असन्तुलन के प्रश्न पर रूसी कहानी-लेखक 'गार्शिन' की उदासी और एकाकीपन मोपासा के आक्रामक भाव का और हेमिंग्वे की आत्महत्या का उल्लेख किया है। 'निराला' को वे गार्शिन की तरह अकेला और उदास तो मानते हैं, परन्तु कमजोर और बेसहारा नहीं। यहाँ 'निराला' मोपासाँ के अधिक निकट हैं, क्योंकि दोनों ही जुझारू थे, अन्तर इतना था कि 'निराला' का पागलपन मोपासाँ की अपेक्षा कम उग्र था। और आध्यात्मिक रूप से 'निराला' की आस्था अन्त तक नहीं टूट सकी थी, यहीं वे अपराजेय रहे। उनकी रुग्णावस्था की रचनाएँ भी इसका प्रमाण हैं। हेमिंग्वे की आत्महत्या और 'निराला' की पागलपन की मनोस्थिति को भी उन्होंने एक ही रूप में इस दृष्टि से देखा है कि

हैमिंग्वे ने अहं की रक्षा अपना अन्त करके की थी और "निराला" पागलपन की ढाल से अपनी रक्षा करते रहे। इन चारों लेखकों के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि ये चारों ही यथार्थवाद के पोषक रहे। " वे इसी यथार्थ के लिए आजीवन कठोर संघर्ष रत रहे और उस संघर्ष में हो कुंठा या कुंठाओं से लड़ते हुए जहां थके, अहं खोखला हुआ, वहीं पागलपन की अंधेरी भयानक गुफा में पैठ गए।"[1]

"निराला" के पागलपन अथवा मानसिक असन्तुलन को डा० रामरतन भटनागर उनकी आत्मलीनता कहते हैं, जहां वे प्रार्थना परक हो गये हैं। पागलपन की दृष्टि से वह डा० शर्मा की भांति श्री रामकृष्ण परमहंसदेव और उनकी धरातलों पर चलने की क्रीड़ा का उल्लेख "निराला" के सन्दर्भ में करते हैं। पागलपन और सयानेपन के अन्तर को उन्होंने "निराला" और पन्त के माध्यम से स्पष्ट किया है। "निराला" ने भूलवश इतनी की कि वे गहरे पानी में उतरे, इसीलिए अर्थों की प्रथित मर्यादा तोड़कर उनकी वाणी अटपटी बनी और वे पागल बने।

"निराला" की रचनाओं के आधार पर उनकी इस आत्मलीन मनःस्थिति का विश्लेषण करते हुए डा० भटनागर ने बताया है कि निश्चितरूप से इतर रचनाओं में "निराला" का कवि कर्म सीमित हो गया है, और काव्येतर लक्ष्य प्रधान हो गए हैं। सन् ४२ से ५० तक "निराला" का मन पूर्णतः जागरूक है, उसकी दिशा अवश्य बदली है और वे एक प्रकार से "स्वप्न भंग" की मनःस्थिति में हैं। सन् ५० के बाद वे आत्मलीन हैं, जहां भाषा-शैली और शब्द-प्रयोग की दिशा में उनका मन जागरूक अतः प्रयोगी है। कवि "अपरा" से "परा" की ओर बढ़ा है, परन्तु परा काव्य का विषय नहीं, भाव का विषय है। इसे सन्यासी कवि का काव्य डा० रामरतन भटनागर कहते हैं, जिसके देह और मन की शिथिलता तथा ऊर्ध्वमुखी आध्यात्मिकता घुल-मिलकर एक हो गयी है।[2]

१- २६ जुलाई, ६७ का पत्र

२- २३-६-६७ का पत्र

शेषकाल के "निराला" के जो गीत "सांध्यकाकली" में संकलित हैं, उनसे उनके मानसिक असन्तुलन की पुष्टि नहीं होती, ६५ में से २-३ गीत ही इस कथन का अपवाद होंगे । अपनी रचनाओं में "निराला" ने अपनी स्वाभाविकता को अधिकतर अक्षुण्ण रखा है, और वहां उनके व्यक्तित्व की वे ही मूलभूत विशेषताएं या प्रेरणाएं दृष्टिगत होती हैं, जिनसे उनका अन्तर्व्यक्तित्व निर्मित हुआ है । "नए पत्ते" की कैलाश में शरत अपवाद स्वरूप की जा सकती है, जहां स्वामी विवेकानन्द के साथ घोड़ों पर विदेश-यात्रा, उसके बाद बकरों का उल्लेख और फिर डा० शर्मा के अनुसार "कैला" शब्द का कुछ प्रयोग मिलता है । सन्यास लेने की जो घोषणा साहित्यकार संसद में रहते हुए "निराला" ने की थी, उसका आभास मात्र ही उनकी रचनाओं में मिलता है, उनकी सत् और न्यास की धारणा पर आनन्द और उल्लास की भावनाओं की स्थिति हम पाते हैं । काव्य-रचना के समय "निराला" सामान्यतः अपनी प्रकृत अवस्था में रहते थे, उसके उल्लेख मिलते हैं । यहां यह स्मरणीय है कि काव्य-रचना ही नहीं, काव्य पाठ के समय भी उनकी अवस्था स्वाभाविक ही रहती थी । लोग पढ़कर नहीं सुनकर उनका मुक्त छंद समझ पाते थे, इसकी चर्चा उन्होंने खुद की है । कल्पना के अति जागृत होने पर परवर्ती काल में भी "निराला" को प्राकृत अवस्था में लाने के लिए उनसे कविता पढ़ने का निवेदन और आग्रह करना पड़ता था, उसके साथ उनकी अव्याहत स्मरण-शक्ति भी उनकी प्राकृत अवस्था की द्योतक है ।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि "निराला" का व्यक्तित्व उनके काव्य की मूल आन्तरिक प्रेरणा है । उनके व्यक्तित्व की अन्तर्प्रेरणा के तीन सूत्र हमें उनकी सम्मान की कामना, अवसाद की भावना और आनन्द की कामना के में प्राप्त होते हैं जिनका प्रस्फुटन प्रतिस्पर्धा, विद्रोह और करुणा आत्म वासना, सहृदयता, संवेदनशीलता और संघर्ष तथा आत्मोल्लास, सौन्दर्य और श्रृंगार के गंध सुरभि के भाव में होता है । मानसिक विक्षेप के काल में भी

साहित्य-रचना के स्तर पर व्यक्तित्व के यही मूलभूत तत्व हमें अव्याहत रूप में मिलते हैं, जो उनके अस्खलित और अपराजेय व्यक्तित्व का प्रमाण है। काव्य अथवा साहित्य के मूल्यांकन अथवा अध्ययन की अवधि में इसीलिए जीवन अथवा व्यवहार में उपलब्ध होने वाली ये असंगतियां, जो उनके व्यक्तित्व का प्रमुख अंग निस्संदेह हैं, उपेक्षणीय है। काव्य के क्षेत्र में 'निराला' की विजयिनी प्रतिभा, जिसमें संघर्ष से उत्पन्न आत्मविश्वास, सत्यनिष्ठा, विद्रोह, संवेदना और उल्लास की सहज स्थिति है, वह उनके विक्षेप और उन्माद की स्थिति के ऊपर सर्वत्र जयी है।

-0-

अष्टम अध्याय

-o-

(उपसंहार)

'निराला' का विद्रोही दृष्टिकोण

अष्टम अध्याय

-०-

(उपसंहार)

'निराला' का विद्रोही दृष्टिकोण

'निराला' को विद्रोह और परिवर्तन का जीवन-संघर्ष में कूदने के लिए आह्वान करने वाला संघर्षों का कवि डा० शर्मा ने कहा है,[१] उनका यह भी विचार था कि 'निराला' के सदृश विद्रोही व्यक्तियों का निर्माण प्रभावों से नहीं होता, अपितु जीवन से ऐसे व्यक्तित्व स्वत: उद्भूत होते हैं[२]। 'निराला' के काव्य की विशेषता उनकी दृष्टि में 'विरोधी तत्वों का सन्तुलन उदात्त एवं अउदात्त का समन्वय' था, जिससे कथावस्तु, चरित्र-चित्रण या छन्द प्रवाह में एकरसता नहीं आने पाती। 'राम की शक्ति पूजा' में राम के पराजित मन और हनुमान के शक्ति-प्रदर्शन का तथा 'बादल राग' के गगनस्पर्शी स्पर्द्धा धार पर्वतों अथवा दुर्धर्ष घोर बादल और पृथ्वी के हृदय के 'सजग सुप्त अंकुर' अथवा किसान के करुण चित्र का उल्लेख कर उन्होंने लिखा : 'विरोधी तत्वों की यह विषमता और उनका सन्तुलन, विषयवस्तु,मूर्ति विधान और छन्द प्रवाह सर्वत्र देखा जा सकता है[३]।' -

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय को इसमें सन्देह नहीं है कि 'निराला' का विद्रोह उनकी जीवन-कसौटी पर खरा उतर कर ही कृतकृत्य हुआ है। पाण्डेय जी इस विद्रोह की मूल प्रेरणा के सम्बन्ध में लिखते हैं : 'वास्तविकता जो है उससे विद्रोह करके जो होना चाहिए, के प्रति आकर्षण और उसके आकलन की निरन्तर साधना ही उनके विद्रोह की मूल प्रेरणा थी। यही कारण है कि उनके विद्रोह में सहज सामूहिक कल्याण के संकल्प से प्रस्फुटित शक्ति, ओज और उद्दाम पौरुष का अबाध वेग पाया जाता है[४]।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेई भी 'निराला' के विद्रोह को, जिसकी आंशिक प्रेरणा वे परिवार से 'निराला' को मिली मानते थे, उनके साहित्य का यदि समग्र नहीं तो प्रमुख प्रेरणा स्वीकार करते हैं। शोधप्रबन्ध के विषय पर प्रश्न करने पर उन्होंने यही कहा था, कि जो दृष्टिकोण है, वही मूल प्रेरणा भी है[५]।

१- 'निराला',पृ०१७३,२०४
२- हिन्दी काव्य और आंग्ल प्रभाव,पृ०२७६ परिशिष्ट'क'
३- 'निराला',पृ० १८६
४- महाप्राण निराला,पृ०४३१-४३२
५-

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी यह लिखा था कि 'निराला' हर क्षेत्र में 'चैलेंज' देता है। साहित्य और समाज दोनों ही क्षेत्रों में शुरू से अन्त तक निरर्थक रूढ़ियों और उद्देश्यहीन बन्धनों के विरुद्ध विद्रोह उन्होंने किया था, जो संयत था। डा० द्विवेदी लिखते हैं : "'निराला' के काव्य में इतना विद्रोह और ललकार होने पर भी उच्छृंखल और निर्मर्याद वाचालता नहीं आने पाई है। इसका कारण यह है कि 'निराला' जी को अपना लक्ष्य ठीक मालूम है।"[1]

दर्शन के क्षेत्र में 'निराला' ने श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानंद के वैदान्तिक विचार-दर्शन को स्वीकार अवश्य किया है, परन्तु उनकी इस स्वीकृति में उनकी विद्रोही दृष्टि का अभाव नहीं है। स्वामी विवेकानन्द ने धर्म को भारतीय जीवन का मूल मंत्र और उसके दार्शनिक अंश को उसका मूल तत्व कहा है जो उसके पौराणिक भाग में प्रस्तुत स्थूल उदाहरणों द्वारा स्पष्ट एवं समर्थित है।[2] श्री रामकृष्ण ने भी संसार को स्वप्नवत् बताने वाले वेदान्त मत और २४ तत्वों के रूप में विद्यमान ईश्वर को मानने वाले भक्तिशास्त्र अथवा पुराण मत का उल्लेख कर शुद्ध ज्ञान और शुद्धा भक्ति को एक माना है। कलियुग में भक्ति-पथ को सरल और आवश्यक वे कहते हैं।[3] 'समन्वय' में प्रकाशित अपने पहले लेख में पूर्णता अथवा मुक्ति को धर्म का सच्चा स्वरूप और उसका अधिकारी होने के कारण मनुष्य को जिसका धर्म इस पूर्ण पद पर प्रतिष्ठित होना है-- सृष्टि भर में श्रेष्ठ स्वीकार करने के साथ यह घोषणा भी की थी कि 'धर्म को मानते हुए हमें अधर्म को भी मान लेना चाहिए। क्योंकि सृष्टि भर में ऐसी कोई वस्तु नहीं, ऐसा कोई शब्द नहीं, जिसका विरोधी गुण न हो।' प्रगति के लिए भले-बुरे के संघर्ष की अनिवार्यता बताकर 'निराला' ने आगे लिखा--' सृष्टि की गतिशीलता के साथ-साथ स्वाभाविक संघर्ष द्वारा धर्म और अधर्म भी अनन्त काल तक गतिशील बने रहेंगे।'[4]

१- महाकवि 'निराला' संपादक शास्त्री, पृ० ३५-३६

२- भारत में विवेकानन्द, पृ०६, २३-२४, ७८

३- रामकृष्ण वचनामृत, पृ०३३२, ३६६, १८२

४- संग्रह, पृ० ७१-७२।

'एक दार्शनिक' के छद्म नाम से 'समन्वय' के लिए जो दो निबंध 'निराला' ने लिखे थे, उनमें भी ब्रह्म और उसकी शक्ति की अभिन्नता, महाशक्ति की कल्पना से संसार के दृष्टिगोचर होने, अतएव संसार की प्रवाह -- जिसे गति परिवर्तन द्वारा मिलती है -- कहने के औचित्य का उल्लेख कर उसमें उत्थान और पतन दोनों की स्थिति को स्वीकार करते हुए 'निराला' ने संसार में ही प्रगति संभव मानी है। 'जातीय जीवन और श्री रामकृष्ण' लेख में भी भारत की जातीयता का आधार समाधिलब्ध पूर्ण ज्ञान और जातीयता विशिष्टता को मोक्षाभिमुख स्वीकार कर वे लिखते हैं --' जीवन मात्र की यही विशेषता है कि उसका जनन और उन्नयन जिस प्रकार उसके आवश्यक परिणाम हैं, उसी प्रकार क्षय या क्षीणता भी उसका एक मुख्य अंग है। + + अवस्थाओं का परिवर्तन या वैषम्य ही जीव प्रधान अवलम्ब है[1]।'

इसी प्रकार शक्ति-तत्त्व की समालोचना करने पर, उसके एक ही आधार में 'निराला' को प्रसव और प्रलयकारी विरोधी गुणों का समावेश मिलता है[2]। शून्य सृष्टि का आदि और अन्त है, जन्म और मृत्यु, उठना और गिरना, भला और बुरा सब जगह है और विकास के देखने या करने के अस्तित्व में ही शक्ति का भी अस्तित्व है[3] यह शून्य और शक्ति पर विचार करते हुए भी 'निराला' ने लिखा है। विकास के वैषम्य की अनिवार्य स्थिति 'निराला' स्वीकार करते हैं, अतः निबन्ध में उन्होंने मिथ्या को सत्य का और सत्य को मिथ्या का आश्रय कहा है[4]।

वेदान्त दर्शन सृष्टि के चक्र को, जिसका अर्थ नष्ट साम्यावस्था को पुन: प्राप्त करने की चेष्टा है, मानता है। वेदान्त का सृष्टि तत्त्व बताता है कि समस्त विश्व जड़ पदार्थ आकाश नामक मूल सत्ता से और सारी शक्तियाँ प्राण नामक आदि शक्ति से उद्भूत है। आकाश पर प्राण का प्रभाव पड़ने से विश्व का सर्जन

१- समन्वय, वर्ष २, अंक ३, पृ० १२२

२- चयन, पृ० १५२

३- प्रबन्ध पद्म, पृ० १८

४- संग्रह, पृ० ६५, ६७

अथवा प्रेषापण होता है । आकाश और प्राण से परे भी एक सत्ता है महत् । यही आकाश और प्राण का रूप धारण करती है । सांख्य दर्शन के मतानुसार मन की प्रतिक्रियात्मक शक्ति बुद्धि भी महत् की ही अभिव्यक्ति है, जिसका एक अंश इन्द्रियों में और दूसरा तन्मात्राओं में परिवर्तित होता है, जिनके संयोग से विश्व का निर्माण होता है । महत् के परे एक सत् की अवस्था होती है, जिसे सांख्य में प्रकृति अथवा अव्यक्त कहा गया है । इस सत् अवस्था में मन का अस्तित्व नहीं रहता वरन् उसके कारण विद्यमान रहते हैं । विश्व यहां से उद्भूत है । 'सांख्य दर्शन' में आत्मा और पुरुष की सत्ता को प्रकृति से सतत् भिन्न मानकर उनके बीच के पार्थक्य को दूर करने का असफल प्रयत्न होता है ।[1]

अद्वैतवादी वेदान्ती इसके विपरीत, उपनिषदों के आधार पर अपने दर्शन की व्याख्या करते हैं । मौलिक स्तर पर प्रकृति-पुरुष की अभिन्नता का, उनके एकत्व का प्रतिपादन करते हुए वे समस्त विश्व को एक सामान्य रूप देते हैं । वेदों की यही शिक्षा है कि सृष्टि का न आदि है और न अन्त । जगत स्वयं सृष्ट है, अभिव्यक्त और प्रलयित है, मूल रूप से केवल एक ही सत्ता विराजमान है । जगत और जीवात्मा के अस्तित्व का कारण है माया अथवा अज्ञान, जो न सत् है और न असत् अपितु अनिर्वचनीय है । मायावाद को इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने अद्वैतवाद की वास्तविक एवं एकमात्र संभव व्याख्या कहा है ।

सृष्टि तत्त्व के सम्बन्ध में 'निराला' की प्रारम्भिक मान्यताएं वेदान्तसम्मत हैं । जोशीबंधुओं की आलोचना करते हुए 'निराला' ने उन्हें भारतीय सृष्टि तत्त्व के ककहरे से अनभिज्ञ, विकासवाद में डार्विन पंथी कहकर सृष्टि को अनादि और ज्ञान से उद्भूत कहा है । 'निराला' का विचार था कि 'सृष्टि की सम्पूर्ण अभिव्यक्तियों में सत् और असत् दैव और आसुर भावों का मिश्रण है, चाहे वह मनुष्यकृत हो या प्रकृति संजात ।'[2] वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति पर विचार

१- भारत में विवेकानन्द, पृ० ३७६-४३३ 'वेदान्त'

२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १३८-१४०

करते हुए भी 'निराला' ने सृष्टि के दार्शनिक सिद्धान्त, कि देव और असुर भावों की सृष्टि एक साथ हुई थी, का उल्लेख कर सृष्टि को पवित्र नहीं, सदोष कहा है। उत्थान और पतन के विवर्तन को 'निराला' एक चिरन्तन सत्य कहते हैं[१]। वर्तमान धर्म की व्याख्या करते हुए भी 'निराला' ने सृष्टि तत्त्व में विरोध, अर्थात् ज्ञान और अज्ञान, भले और बुरे दोनों का आवश्यकता को 'सृष्टि' शब्द से ही सूचित कहा है। डार्विन के विकासवाद का खण्डन करते हुए उन्होंने मन, बुद्धि और अहंकार से हुई त्रिगुणात्मिका सृष्टि अपर जीवों की तरह मनुष्य की भी मानी है। सृष्टि अमैथुनी इसीलिए है, क्योंकि 'बाह्य जड़ -प्रमाण' का योग, अपने ही मन, बुद्धि और अहंकार में आ जाने से छूट जाता है। सृष्टि-तत्त्व सम्बन्धी अपने विचारों के लिए यहाँ 'निराला' ने लिखा : "मैं स्वयं भी पुराणों के सृष्टि तत्त्व से यहाँ नीचे नहीं उतरा, कहीं-कहीं आधुनिक ढंग से प्रसंग में मुक्त होकर केवल सत्य के सूत्र को लेकर विचार करता गया हूँ[२]।"

'निराला' जी ने अद्वैत मत को अपने चिन्तन का आधार बनाया है, परन्तु शंकराचार्य और उनके समर्थकों के साथ प्रतिक्रिया का जो भी अंश रहा है, 'निराला' भी उसकी ओर सतर्क रहे हैं[३]।" डा० रामविलास शर्मा के इस विचार से असहमति कदाचित् संभव नहीं। सदोष सृष्टि की वेदान्त सम्मत आस्था को स्वीकार करने के साथ ही 'निराला' ने नया संस्कृति का तिरस्कार न कर भौतिकवाद का अभिनन्दन भी परिवर्तन और विस्तार की दृष्टि से किया है। शक्ति के विकास का एक रूप युग-धर्म मानते हुए जहाँ 'निराला' लिखते हैं :"अनेक पुरानी बातें, पुरानी आदतें पुरानी राहें, पुराने विचार युग-धर्म के तकाजे पर अपना रूप परिवर्तित करना चाहते हैं।" साहित्य में परिवर्तन का इसी शक्ति को उन्होंने उसकी शक्ति का साध्य कहा है[४]। साहित्य के प्रति 'निराला' के इस प्रगतिशील

१-चाबुक, पृ०७३-७४

२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०६४, ६६-६७

३- संस्कृति और साहित्य, पृ० ३२-३३

४- प्रबन्ध पद्म, पृ० १६

दृष्टिकोण का, जिसका विज्ञान और इतिहास से विरोध नहीं है -- विवेकानन्द दर्शन में अभाव है । जहाँ 'निराला' ने विश्व की भौतिक सभ्यता को वैयक्तिक और जातिगत संकीर्णता के नाश का माध्यम स्वीकार कर उसे जीवन और कला के लिए शुभ स्वीकार किया है,[१] वहाँ वे ज्ञान-जन्य सृष्टि का विरोध करते हुए अभिनव-संस्कृति का ही अभिषेक करते हैं ।

अद्वैतवाद के व्यवहार -पक्ष में प्रत्येक मनुष्य में दिव्यता का दर्शन करने और मनुष्य का कर्मभूमि पृथ्वी को सर्वश्रेष्ठ मानने की जो मान्यता है, वहाँ नास्ति-तत्त्व के समावेश के कारण 'निराला' का उससे प्रत्यक्ष विरोध नहीं है । विवेकानन्द और 'निराला' के दृष्टिकोणों में अन्तर मात्र इतना है कि स्वामी जी जहाँ मनुष्य-मात्र में ज्ञानजन्य साम्य देखते हैं, वहाँ 'निराला' ने प्रत्येक मनुष्य में भावजन्य साम्य देखा है । यही कारण है कि 'निराला' के लिए वेदान्त ज्ञानयोग मात्र न रहकर भाव योग बन जाता है । 'निराला' का यही दृष्टिकोण उनको वेदान्तिक परिकल्पना को क्रान्तिकारी बनाने वाला है, जिसे स्वामी जी के व्यावहारिक वेदान्त का अग्रिम चरण कहा जा सकता है ।

राजनीतिक क्षेत्र में भी 'निराला' का दृष्टिकोण विद्रोही हो रहा है । यह अवश्य है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में 'निराला' के विचारों का मूलाधार वेदान्त-दर्शन ही रहा है, परन्तु अपनी स्वच्छन्द और मौलिक प्रवृत्ति के कारण 'निराला' की दृष्टि सर्वत्र विरोधी रही है । भारत की राष्ट्रीय मुक्ति के लिए भी 'निराला' ने मीमांसा के रूप में श्री रामकृष्ण और उनकी साधना का उल्लेख किया है । भारत में उसी राजनीति को मान्य 'निराला' कहते हैं, जिसका धर्म से सम्बन्ध हो । पराधीनता के कारण जिस राजनीति को जनता स्वीकार करती है, उसे प्राणों के प्रतिकूल बताकर 'निराला' लिखते हैं : "इस राष्ट्रीय मैत्री के लिए स्वार्थहीन प्रेम ही एकमात्र सूत्र है" जिसके सूत्रधार हैं आजीवन तपस्वी

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ८०,८२

श्रीरामकृष्ण है[१]। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि साहित्यके व्यापक अंगों में ही राजनीति की गणना भी 'निराला' ने की है, अतएव साहित्य राजनीति को भी पुष्टि चाहता है। राजनीति में अधिकार के उपरान्त सुधार की जो धारणा है, व्यक्ति सुख की उस उक्ति से 'निराला' सहमत नहीं हैं। राजनीति का नहीं, वरन् साहित्य का सम्बन्ध जीवन से बताकर वे लिखते हैं -- "राजनीति में जाति-पाँति रहित एक व्यापक विचार का ही फल है कि एक ही वक्त तमाम देश के भिन्न-भिन्न वर्गों के लोग समस्वर से बोलने और एक राह से गुजरने लगते हैं। उनमें जितने अंशों में व्यक्तिगत रूप में सीमित विचार रहते हैं, उतने ही अंशों में वे एक दूसरे से अलग हैं, इसलिए कमजोर।"[२]

'निराला' की राजनीति चेतना गांधीवाद से समझौता न कर उसे अस्वीकार करती है। गांधीवाद के अहिंसा के सिद्धान्त के विपरीत 'निराला' का दृष्टिकोण उग्र और आतंकवादी था। प्रेमचन्द ने आतंकवाद और क्रान्ति की जहाँ निन्दा की है, वहाँ ~~समक्षतिक~~- समाजवाद के लिए 'निराला' ने क्रान्ति का आह्वान किया है। प्रेमचन्द ने आतंकवाद का मूल कारण बेकारी बताते हुए उसे नष्ट करने के लिए जनता की राय का संगठन आवश्यक बताया है, अपने को कांग्रेस मैन बता वे देश के उद्धार के लिए शान्तिमय उपायों के अवलम्बन का निर्देश करते हैं[३]। 'निराला' ने पहले से ही इसके विपरीत 'विप्लवी', 'बादल राग' अथवा 'दुर्जय संग्राम राग' आलाप कर क्रान्ति का आह्वान किया है।

राष्ट्रवादी नेताओं की सुधारपंथी प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए 'निराला' ने उनके पश्चिमी विचारानुरूप सुधार करने के प्रयत्नों का उपहास करते हुए उसके मूल में 'स्वार्थ' की सत्ता देखी है, जो 'अभाव की आग' भड़काने वाली है। नेतृत्व के संस्कार को 'निराला' कर चेतन की जड़ और समझदार को मूर्ख मानने वाले

१- संग्रह, पृ०५०

२- प्रबन्ध पद्म, पृ० ७७-७८

३- विविध प्रसंग-२, पृ०२७०, ५४०

करते हैं[१]। 'अधिकार समस्या' लेख में भी 'निराला' ने दरिद्र भारत के धनी नेताओं की दुर्बलतापूर्ण त्याग करने में उनकी अक्षमता बताई है। महलों में रहकर देहात-दर्शन करने को 'शिक्षा का एक शिक्षाप्रद हास्य' कहते हैं[२]। 'निराला' का यह विचार प्रेमचन्द के 'कायाकल्प' के चक्रधर के समान है, जो जेल से यह धारणा लेकर आता है कि 'हमारे नेताओं में यही तो बड़ा ऐब है कि वे स्वयं देहातों में न जाकर शहरों में पड़े रहते हैं, जिससे देहातों की सच्ची दशा उन्हें नहीं मालूम होती।' वस्तुत: प्रेमचन्द और 'निराला' दोनों ने ही भारत के स्वाधीनता संग्राम में किसानों की युगान्तरकारी भूमिका को पहले ही समझकर उसे नेताओं की तुलना में अधिक स्पष्टता से जनता के सामने रखा था।

सन् ३४ के एक और लेख में 'निराला' ने आदर्श रूप में उपस्थित सुधारों की दुर्बलता पर प्रहार करते हुए बड़े बाप के बेटे, अथवा जनता के पैसे से मालामाल होने वाले वकील, बैरिस्टरों, प्रोफेसरों, राजकर्मचारी और डाक्टर आदि नवीन शिक्षा और सभ्यता के आदर्श कहलाने वालों और उनकी देवियों की पोल खोली है, जो दु:ख सहन और त्याग के बिना भी जीवन-आदर्श प्रस्तुत करते हैं[३]। प्रेमचन्द जब बीसवीं सदी को सोशलिस्टों की सदी कहकर भारत जैसे गरीब देश के लिए यही एक आदर्श सम्भव मानते हैं अथवा जब वे कहते हैं कि सोशलिस्ट जायदाद वालों का दोस्त नहीं होता, भले ही दुश्मन न हो, तब वे 'निराला' का समर्थन करने के साथ ही गांधी जी की समझौते वाली नीति का भी समर्थन करते हैं। नेहरू की साम्यवादी नीति का समर्थन करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है कि कांग्रेस पूंजीपतियों का समर्थन करके राष्ट्रीय संस्था नहीं हो सकती[४]। 'निराला' इसके विपरीत गांधी और नेहरू को राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रधार स्वीकार करते हुए भी इनकी सीमाओं से परिचित होने के कारण असन्तुष्ट थे। उनका यह असन्तोष ही उनके विद्रोह अथवा विरोध का प्रमुख कारण राजनीति क्षेत्र में रहा है।

१- प्रबन्ध पद्म, पृ०२६, ३२
२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०५४
३- चाँद, नवम्बर ३४, पृ०३४
४- विविध प्रसंग, --२, पृ०२१६, २२०

समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध "निराला" ने राजनीति से माना है। राजनीति की उखाड़-पछाड़ के लिए समाज की तैयारी की आवश्यकता बताकर उन्होंने "राजनीति और समाज" में लिखा है : "नेता समष्टि को साथ लेकर दौड़ने से पहले यदि सोच लें कि उसके साथ दौड़ने की कितनी शक्ति है, तो ठोकर खाकर लौटने की नौबत न आए[1]।"

"राजनीति के लिए सामाजिक योग्यता[2]" का "निराला" ने एकाधिक बार उल्लेख किया है। वर्ण-व्यवस्था को लक्ष्य कर वे लिखते हैं --" जो ब्राह्मण और क्षत्रिय अपनी वर्णोच्चता का ढोंग भी नहीं छोड़ सकते, अपने ही घर के अन्त्यजों को अधिकार नहीं दे सकते, भारतीयता के अंधेरे में प्रकाश देखने के आदी हैं, वे बिना कुछ दिए कुछ पाने का विचार कैसे रखते हैं ? उनकी सामाजिक नीचता समाज-शरीर की, उन्नतिशीलता के अर्थ को कैसे पुष्ट कर सकती है ? हमारी राजनीतिक दुर्बलता यहीं पर है। यहीं से हमें समाज-- जातीय समाज -- भारतीय समाज की नींव डालनी है। उसी की मजबूती हमारे राष्ट्र की दृढ़ता है। "निराला" ने बताया है कि पहले नेताओं के केवल आर्थिक और राजनीतिक लक्ष्य थे, जिनका सहयोग समाज के साथ नहीं था। छोटों को अपने बराबर कर लेना, "निराला" की दृष्टि में सबसे बड़ा धर्म है, भारत का सबसे बड़ा अस्त्र है, इसी व्यावहारिक वेदान्त में "निराला" के अनुसार "भारत की विशाल राष्ट्रीयता" भी है।

समाज का सर्वोत्तम बाह्य निष्कर्ष "निराला" ने राजनीतिक संगठन कहा है, "जहाँ मनुष्य मनुष्य के ही वेश से उतरता, समय और मनुष्यता के साथ पूर्ण अर्पण मिल जाता है।" राजनीतिक और सामाजिक प्रवर्तनों से निकले सच्चे मनुष्य ही यथार्थ नेता होंगे, जो गुण और कर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था की पुष्टि करेंगे, जिसके द्वारा स्वतन्त्र भारत में "केवल परिचय ही प्राप्त होगा, उच्च नीच का निर्णय नहीं। समाज की यही रीतियाँ बाह्य स्वातन्त्र्य देकर अन्तर्जाति संघटन करेंगी[3]।"

१- "सुधा" १ अगस्त ३३, पृ०८५-८६

२- ,, १६ अगस्त, ३२, पृ०१४८-१४६

३- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०२५४-२५५

सामाजिक विकास के लिए अपने लेखों में `निराला` ने पश्चिम के विकासवादी सिद्धान्त को अस्वीकार कर भारतीय वर्ण व्यवस्था और शंकर के अधिकार-भेद की प्रशंसा की है, परन्तु भारतीय इस व्यवस्था के वर्तमान औचित्य के प्रति उनका संशय अथवा विरोध भी यहां अप्रकाशित नहीं है । `निराला` ने समाज की सम्यक् गतिशील रहने वाली `अज` धातु को समाज की गतिशीलता का प्रमाण मानकर भारत की समाज-श्रृंखला को वेदान्तिक धातु से मजबूत बताया है ।[1] `निराला` यद्यपि वर्णाश्रम धर्म को मानने पर ज़ोर नहीं देते, तथापि प्रगति की व्यवस्था में वेदान्त की अस्वीकृति को वे अभारतीयता कहते हैं[2]। समय की मर्यादा से केवल शंकर के अधिकार-भेद का गूढ़ सम्बन्ध बताकर उन्होंने शंकराचार्य का समर्थन किया है और उनके `महान मस्तिष्क` धर्म की `दार्शनिकता` का कारण उनका ऊंचा आदर्श बताया है[3]। अपना विरोध अथवा यथार्थ भाव प्रकट करते हुए `निराला` ने लिखा है --" शूद्रों के प्रति केवल सहानुभूति प्रदर्शन कर देने से ब्राह्मण धर्म की कर्तव्यपरता समाप्त नहीं हो जाती । `वर्ण व्यवस्था की रक्षा के लिए उद्धृत अनेकानेक प्रभावों की सार्थकता भी उन्हें इस समय कुछ नहीं देख पड़ती[4] । हिन्दुओं की सनातन-प्रथा, प्राचीन वर्ण-व्यवस्था की निरर्थकता को लक्ष्य कर `निराला` का स्पष्ट उद्घोष था : " सर पर बावन भूत सवार हों और यह कहा जाय कि संस्कृति की रक्षा हो रही है, तो प्रलाप के सिवा कुछ नहीं । प्रकृति ने समस्त भारतीयों का एक धर्म बना दिया है । वे केवल शूद्र हैं और कुछ नहीं । इसी जगह से उन्हें तरक्की करनी है । यही बात स्त्रियों के लिए है[5]।

उच्चवर्ण वालों का उन्माद `निराला` ने प्रायः महाभारत काल से ही बढ़ता बताया है । भारत की अशिक्षा के काल का प्रारम्भ वे एक प्रकार से महाराज विक्रमादित्य के समय से ही मानते हैं[6]। यों `दूसरे मनुष्य को मनुष्य न

१- चयन,पृ०७१

२- चाबुक, पृ०७६

३- चाबुक,पृ०७६-७८ , प्रबन्ध प्रतिमा;पृ०१७५

४- ,, पृ०७५

५- चाँद,नवम्बर३४,पृ०३३-३४ .

६- प्रबन्ध प्रतिमा,पृ०१७४,५२,१७६

समझने की यह प्रवृत्ति मुसलमानों के शासन-काल से ही मिलती है, और 'निराला' के विचार से 'दूसरी जातियों के प्रति यह नफरत ही भारत के पतन की धात्री है।' भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापित और सुदृढ़ होने के साथ अखिल जातियों को समान अधिकार मिले। भारत की तमाम सामाजिक शक्तियों का यह एकीकरण-काल -- जो भारत के लिए अंग्रेजी राज्य के महत्व का सूचक है -- 'शूद्रों और अन्त्यजों के उठने का प्रभात काल है', इन्हीं की अजेय शक्तियों से यथार्थ भारतीयता की किरणें फूटेंगी[1]। 'अधिकार-समस्या' पर लिखते हुए भी 'निराला' ने इसी साम्य-स्थिति अथवा यथार्थ स्वतन्त्रता का उल्लेख कर वर्णाश्रम धर्म को चिरन्तर सामाजिक स्थिति स्वीकार किया है। 'स्वाधीन समाज की इससे अच्छी वर्णना इसलिए नहीं हो सकती, क्योंकि इस धर्म को न मानने पर भी समाज संगठित इसी रूप में होगा।' पर यह निश्चय है कि यह अधिकार सार्वभौमिक है, एकदेशिक, जातिगत या व्यक्तिगत नहीं।' असवर्ण विवाह का स्वागत भी उन्होंने इसी दृष्टि से किया है[2]। मनुष्य की जांच का आधार उसकी मनुष्यता और उसके उत्कर्ष को बताकर मनुष्य की शिक्षा के अभाव को 'निराला' भारत की सबसे बड़ी दुर्बलता कहते हैं। हिन्दू और मुसलमानों के सुधार और विरोधी भावों को दूर करने के लिए इसी शिक्षा की आवश्यकता सबसे पहले जरूरी उन्होंने बताई। यौरप के स्वार्थमूलक संगठन से हिन्दू मुसलमानों का फगड़ा तय नहीं हो सकता, यह उनका निश्चित विचार था[3]। विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त और राष्ट्रीयता की भावना के अनुरूप 'निराला' ने साहित्य और ज्ञान की भूमि पर भी हिन्दू-मुसलमानों की सहायता विचारी है और 'साहित्य के भीतर से मैत्री की स्थापना' को 'प्रशंसनीय' कहा[4]।

एक तो 'निराला' ने प्रत्येक बात में यौरप के अनुकरण की निन्दा कर उसे अपनी दुर्बलता और अमौलिकता का सबसे बड़ा प्रमाण कहा है,

---

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १७७-१७६, ६५, ५३, चाबुक, पृ०८०

२- ,, पृ० ५३, १८०

३- चाबुक, पृ० ८५-८६

४- चयन, पृ० ६४ लेख 'साहित्य की समतल भूमि'

क्योंकि युद्ध की हार से बड़ी बुद्धि और संस्कृति की हार है,[1] दूसरे सामाजिक प्रथाओं
के समर्थन के लिए 'बात-बात में शास्त्रों की राय लेने की आदत' की आलोचना कर
उन्होंने यह सत्य हमारे सामने रखा है कि हमें 'सविरोध शास्त्रों से यही शिक्षा मिलती
है कि मनुष्य को अपनी मेधा के अनुसार ही काम करना चाहिए। यह बात समाज में
नहीं देख पड़ती।'[2] पुराणों के उपाख्यानों के भीतरी रहस्यों को भूल जाने और इतिहास
के रूप से उन्हें पढ़ने का उल्लेख उन्होंने पहले ही किया था[3]। धर्म और आदर्श की
सराहना करने वालों को लक्ष्य कर 'निराला' ने लिखा है कि यदि उन्होंने राम-
रावण और युधिष्ठिर-दुर्योधन का मतलब समझा होता, तो समाज के पैर आगे उठ
गए होते। उन्हीं की धोखेबाजी और कमजोरी के कारण 'अधिकांश जन तीन सौ
वर्ष पहले जहां थे, वहीं अब भी हैं।' आगे वे लिखते हैं -- 'जो अंग्रेजी पढ़कर विलायत
से लौटकर सरकारी नौकरियां प्राप्त कर आगे बढ़ने का क्रम रखते हैं, वे और बड़े ढोंगी
और स्वार्थपर हैं। + + योरप अवश्य जाना चाहिए, यदि जाने की आर्थिक
सुगमता हो। पर उसका उद्देश्य जब शिक्षा के अतिरिक्त कुछ और होता है, तब वह
मरणीय भले हो, वरणीय कदापि नहीं।'[4]

शिक्षा की प्राथमिक आवश्यकता का उल्लेख करते हुए
'निराला' ने पराधीनता का कारण 'धार्मिक संस्कारों के चक्र की प्रदक्षिणा' बताया।
उन्होंने यहां स्पष्ट लिखा है : 'रूढ़ियां कभी धर्म नहीं होतीं, वे एक-एक समय की
बनी हुई सामाजिक शृंखलाएं हैं। वे पहले की शृंखलाएं, जिनसे समाज में सुथरापन था,
मर्यादा थी-- अब जंजीरें हो गयी हैं। अब उनकी बिल्कुल आवश्यकता नहीं। अब
उन्हें तोड़कर फेंक देना चाहिए।'[5] श्राद्ध में पेट-भरे ब्राह्मणों को भोजन कराना अथवा
जनेऊ के अवसर पर शामियाने के नीचे तृण का मण्डप बनाना आदि प्रथाओं या

१- चाबुक, पृ० ६८

२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ६५

३- " " पृ० १७६

४- माधुरी, अगस्त ३५, पृ० ११४

५- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ६२

कार्यों का उल्लेख कर वे लिखते हैं : "इसी तरह की और और बातें हैं, जहाँ स्वभावत: मन विद्रोह कर बैठता है, जिनके निराकरण की ज़रूरत है। सुधार तो बहुत दूर की बात है। पहले आदमी बनाइए सुधार तब होगा[1]।" धर्म के आडम्बर और खोखलेपन पर प्रहार करते हुए 'निराला' ने लिखा : " हमारे ठाकुर जी न तो मंदिर के अहाते से बाहर भी नहीं निकल पाते, न हमारे ज्ञान से और न कर्मों द्वारा। फिर हमारे पास वह कौन सी सूरत है, जिसे देखकर हम उससे सहयोग या प्रतियोग करें? चौके के अन्दर बन्द रहकर प्रतिरोध तो काफी कर चुके[2]।" "काव्य साहित्य" में भी 'निराला' ने भारतीयता के नाम पर प्रचारित और रक्षित कट्टरता, सीमित भावों और कार्यों द्वारा अस्तित्व के विनाश तथा व्याप्ति से अस्तित्व रखने का उल्लेख कर सनातन धर्म की व्याप्ति को अभीष्ट कहा है[3]। साहित्य के सुधारपंथी नेतागणों को लक्ष्य कर उन्होंने व्यंग्य किया है," नस नस में शरारत भरी हज़ार. कभी से सलाम ठोंकते-ठोंकते नाक में दम हो गया और अभी तक संस्कृति लिए फिरते हैं।[4]"

प्राचीन शिक्षा और कुसंस्कारों को लक्ष्य कर अन्यत्र भी 'निराला' पूछते हैं : " दुनिया भर के पौराणिक खुराफात लोग मानते हैं, पर जीवन के सत्य को नहीं मानेंगे। उसकी क्या दवा है ? --" और फिर बताते हैं "समाज यथार्थ तत्व चाहता है। तभी उसका सुधार होना सम्भव है[5]।" "निराला" ने अपनी समस्या और उसके समाधान के साथ यह भी स्वीकार किया है कि "आदर्श की पराकाष्ठा पर काष्ठ की तरह बैठे हिन्दू समाज को हिला देना" उनका उद्देश्य नहीं। कारण बताते हुए वे लिखते हैं : " मैं किसी का घोंसला नहीं छीनता, इतना ही कहूँगा, घोंसलेवाले घोंसले वाले ही हैं और उनके चित्र, चित्रण, चरित्र वर्तमान उन्नत

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ८४, १००-१०१

२- प्रबन्ध पद्म, पृ० २१

३- चाबुक, पृ० ५४

४- ,, पृ० ७ ६१

५- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ६८-६६

समाजों के मुकाबले में वैसे ही अधमह `[1]।

सामाजिक रूढ़ियों एवं धार्मिक कुसंस्कारों के परित्याग के साथ ही प्रगति के लिए `निराला` ने अर्थ पक्ष पर भी विशेष बल दिया है। अर्थ के दो भेदों-- ऊर्ध्व गति वाले परमार्थ और अध: गति वाले स्वार्थ का उल्लेख और सामाजिक पराधीनता पर विचार करते हुए उन्होंने सूचित किया कि सब प्रकार के अर्थों का हमारे समाज में अनर्थ है।`[2] अर्थ पर अलग से जो निबन्ध `निराला` ने लिखा है, वहां उनकी पहली स्थापना यह है कि पूंजीवाद और दैन्य का वैषम्य हमेशा रहेगा, क्योंकि गरीबी से लड़ना ही अमीरी को प्रश्रय देना है। यही स्थापना उन्होंने अधिकारवाद के सम्बन्ध में भी की थी[3]। `निराला` के अनुसार केवल अर्थ पर लक्ष्य रखना दीनों के लिए मृग की मृगतृष्णा का उदाहरण तथा दीनों के सामर्थ्य के बल पर अर्थ प्राप्त करने वाले ऐश्वर्यशाली के लिए जल का दृष्टान्त है। यही अर्थ में अनर्थ का प्रादुर्भाव है, जहां मनुष्य अपनी मनुष्यता से च्युत होता है।|देश की इसी प्रकार की वर्तमान अवस्था का उल्लेख कर `निराला` ने सन्यासी -- जो सब कुछ छोड़ देता है-- का आदर्श रखा है। सब जातियों को अपने बराबर देखने और सब जातियों के उन्हें स्नेह से देखने की बात कहकर और अर्थ प्राप्ति की अंध भावना की आलोचना करते हुए वे लिखते हैं:`धन रखने का उपदेश इसीलिए है कि वह दरिद्रों की सेवा का कारण हो। यदि ऐसा न हुआ, तो उसका दुरुपयोग अवश्य होगा[4]।` जगी हुई जाति का ज्ञात रूप से विश्व के साथ अर्थ का जड़ और ज्ञान चेतन दोनों रूपों में सहयोग, मनुष्य धर्म के निर्वाह के लिए `निराला` ने आवश्यक बताया है। अर्थ-गत समस्या के समाधान के लिए भी, हम देखते हैं, `निराला` ने वेदान्त का ही आधार लिया है। मनुष्य अनन्त शक्ति का भण्डार है, उसके भीतर ब्रह्म विराजमान है, इस तथ्य की पुष्टि अर्थ शास्त्र से भी होती है, रवीन्द्र कविता-कानन लिखते समय बहुत पहले ही वे बता चुके थे[5]।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि राजनीति, समाज और अर्थ, सभी क्षेत्रों में `निराला` ने विवेकानन्द के वेदान्त दर्शन का आधार ग्रहण

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १५८

२- संग्रह, पृ० ६५

३- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ५१

४- संग्रह, पृ० ६८-६६

५- रवीन्द्र कविता-कानन, पृ०५६-५७

कर इनसे सम्बन्धित नानाविध समस्याओं का समाधान स्वामी जी के व्यावहारिक वेदान्त के अनुकूल किया है, जिसे 'निराला' ने ज्ञानयोग से भावयोग में परिणत कर लिया था। प्रेमचन्द से यहाँ 'निराला' अलग पड़ते हैं। प्रेमचन्द ने राष्ट्रीयता की पहली शर्त साम्य भाव की दृढ़ता मानी है और वर्ण-व्यवस्था, ऊँच-नीच, धार्मिक परम्परा की जड़ खोदने की आवश्यकता का निर्देश भी किया है[1]। आधिभौतिकवाद, धर्महीन तत्वों से उद्धार असम्भव बता उन्होंने सामाजिक स्वार्थोपासना और विषमता के नाश के लिए गीता के निष्काम कर्म का आदर्श प्रस्तुत किया[2]। राष्ट्रीयता को वर्तमान युग का कोढ़ कहकर प्रेमचन्द ने समाज के मनोभावों को बदलने के लिए वेदान्त के एकात्मवाद के प्रचार के मार्ग का उल्लेख किया है। परन्तु उनका विचार था कि इसकी असफलता प्रत्यक्ष थी, क्योंकि कारण का निश्चय किए बिना कार्य किया। वेदान्त सच्चा रास्ता हो सकता था, यह स्वीकार करते हुए प्रेमचन्द ने उससे अपनी असहमति प्रकट की है[3]।

साहित्य के क्षेत्र में भी उसकी सभी विधाओं--काव्य, कथा-साहित्य, आलोचना इत्यादि में 'निराला' के विरोधी भावों का परिचय हमें मिलता है। काव्य-क्षेत्र में उनके विद्रोह का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण उनका मुक्तछंद है, जो उनकी निर्माण-शक्ति का भी परिचायक है। हिन्दी साहित्य में उपन्यास में 'निराला' ने लिखा है कि समाज की धारा में बहते हुए समाज की अवस्था का अधूरे प्रयत्नों और अधूरी भाषा से चित्रण उपन्यास साहित्य में हुआ है। उपन्यासकार यहाँ असफल है, क्योंकि पूर्ण आदर्श की महत्ता तक न वर्तमान समाज ही पहुँचा है, ~~क्योंकि पूर्ण आदर्श की महत्ता तक न वर्तमान समाज ही पहुँचा है,~~ और न उसके चित्रकार। प्रेमचन्द ने भी युग के अनुकूल रचनाएं दी हैं, और प्रायः आदर्श को नहीं छोड़ा है, इसी सन्दर्भ में उनकी आलोचना करते हुए 'निराला' ने बताया है[4]। हमारा 'कथानक साहित्य' 'सुधा' के इस सम्पादकीय में उपन्यास-लेखकों के प्राचीन संस्कारों

१- विविध प्रसंग--२, पृ०४७६

२- ,, --३, पृ०१४२

३- ,, --२, पृ० ३३३-३३

४- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०१५५-१५६

के सम्बन्ध में 'निराला' ने लिखा था : " आदर्शवादी होने पर भी युवती-विधवा के प्रेमी को मार देना कोई आदर्शवाद न हुआ, क्योंकि सभी जगह विधवाओं के प्रेमी पंचतत्व को प्राप्त होंगे, ऐसा कोई प्राकृतिक नियम नहीं, अवश्य उनके पात्रों में जहां कहीं विजाति प्रेम पैदा हुआ, वहां एक के सिर काल नाचता रहा । केवल प्रेम दिखाकर, अन्त में एक लम्बी निराशा की सांस छोड़वाकर छोड़ देना न तो कोई आदर्शवाद है, न किसी समस्या का ही विवेचनपूर्ण समाधान ।[१]" अपने कथा-साहित्य में 'निराला' ने अपनी इस आलोचना के अनुसार चित्रण किया है और विविध समस्याओं का, तथाकथित आदर्शवाद से रहित, समाधान प्रस्तुत किया है।[२]

'निरुपमा' की बड़ी सीधी भाषा के भीतर से है' के निवेदन में 'निराला' ने स्पष्ट किया है कि उसमें चित्रित समाज किस प्रकार का है । उनका विचार था कि दूसरे उन्नत समाज की सहायता उपन्यास-लेखक को करते हैं, उसका हिन्दी में अभाव होने के कारण काल्पनिक सृष्टि करनी पड़ती है, जैसे समाज की लेखक आशा करता है और जिसका होना सम्भव वह भी है । 'निराला' ने आगे बताया है 'अनभ्यस्त और स्वभाव-संचालितों को वहां अस्वाभाविकता मिलती है । पर वह है स्वाभाविक[३] ।'

'नाटक-समस्या' में 'निराला' ने साहित्यिक क्रान्ति का आह्वान करते लिखा था कि समाज संस्कारों के वश होता है और अपनी रुचि के अनुसार चलता है, परन्तु साहित्य का सच्चा स्थान वहां है, जहां रुचि बदलती है[४] । साहित्य में समाज की इस अनुरूपता को 'निराला' साहित्यिकों की अदूरदर्शिता का परिचय मानते हैं और मानवीय भावों पर बल देते हुए औचित्य के विचार से उसकी विपक्षता करने में भी उन्होंने सम्मति दी है[५] । साहित्य में भी समाज का तरह ही खड़ी बोली उठ नहीं पाई है, सब जगह 'निराला' को अभाव ही अभाव

१- 'सुधा', १६ नवम्बर, ३३, पृ०४६०-६१
२- नई धारा, जुलाई ५२, पृ०८०--'निराला' का शास्त्री जी को लिखा पत्र ।
३- निरुपमा का निवेदन, पृ०३-४
४- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ०४६
५- ,, पृ० ८४

वैभाव को तड़ातड़ विसाई देता है । साहित्य में भी आदर्श को छोड़कर उस नवीन को अपनाने का आग्रह 'निराला' का है 'जिससे आधुनिक से आधुनिक आदमी बन जाता है, और अपनी समस्त प्राचीनता तथा विदेशी नवीनता को ठीक-ठीक समझकर समाज-साहित्य, देश तथा विश्व को ब उठाने का प्रयत्न करता है'[1] ।

आलोचना के क्षेत्र में भी 'निराला' का विद्रोह स्पष्ट है । यद्यपि 'निराला' ने छायावाद के समर्थन में लिखते हुए अपने आलोचनात्मक साहित्य का सूत्रपात किया, तथापि वस्तुत: उनका प्रथम आलोचनात्मक प्रबन्ध पंत और पल्लव' था, जिसकी मूल प्रेरणा 'प्रवेश' में पंतद्वारा की गई 'निराला' और उनके मुक्तछंद की आलोचना ही था । अपनी समालोचना का आधार सत्य और अन्याय का प्रतिकार 'निराला' ने बताया है, साहित्य में कमजोरियों के स्पष्ट उल्लेख के अनौचित्य का भी वे उल्लेख करते हैं । आलोचकों की संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण ही 'निराला' ने विवश होकर उनकी योग्यता की परीक्षा की । मेरे गीत और कला' के सम्बन्ध में श्री जानकीवल्लभ जी को उन्होंने लिखा था : 'मैंने देखा, हिन्दी के आलोचक पहले दर्जे के उजबक हैं । जब तक मैं कला का आधुनिक रूप खोलकर न रखूंगा वे 'कला-कला' करके ही कला की क्षति करते रहेंगे'[2] । कला के 'विरह में जोशी बंधु' तथा 'देवी' कहानी में भी इसी आशय के वक्तव्य 'निराला' ने दिए हैं ।

'निराला' के आलोचनात्मक साहित्य के सम्बन्ध में यह भी स्मरणीय है कि अपने विरोध को लक्ष्य कर रचा जाने के कारण उनके कृतित्व का यह अंश ध्वंसात्मक है, यद्यपि उनकी निर्माण शक्ति का परिचय यहाँ भी अनुपस्थित नहीं है । अपनी विरोधी आलोचना का उत्तर होने के कारण यहाँ 'निराला' का विद्रोही दृष्टिकोण निरन्तर प्रकट है । इस क्षेत्र में भी 'निराला' ने प्राचीन परम्परा के विद्वानों के लिए प्राचीन और नवीन की, परम्परा और प्रगति की अटूट शृंखला अथवा एकसूत्रता के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, 'दुलारे दोहावली' पर लिखे

१- माधुरी, अगस्त ३५, पृ०१९४

२- 'साधना', वर्ष १, अंक७-८, पृ०३६

'अर्थ अर्थान्तर' में उनके द्वारा प्रस्तुत वक्तव्य से यह स्पष्ट है । साहित्य क्षेत्र में 'निराला' के विरोध को लक्ष्य कर डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह बात विशेष रूप से लक्ष्य योग्य कहा था ' विरोध उनके विकास की दिशा बदलने में कभी समर्थ नहीं हुए[1]।

काव्य और कला के क्षेत्र में 'निराला' का विद्रोही दृष्टिकोण स्पष्टत: मुखर है, काव्य उनके सृजन की प्रमुख दिशा होने के कारण यह नितान्त स्वाभाविक था । काव्य के क्षेत्र में उनकी विद्रोह भावना का परिचय इस तथ्य से प्राप्त होता है कि मुक्त छंद लिखते हुए भी उन्होंने तुकान्त रचनाएं जीवन के और साहित्य के प्रत्येक चरण में लिखीं । डा० रामविलास और आचार्य वाजपेयी ने इसीलिए यह स्वीकार किया है कि 'निराला' की वास्तविक महत्ता छन्दों के बन्धन तोड़ने तक ही सीमित नहीं थी । काव्य की विषय-वस्तु, रूप, भाषा अथवा कला की दृष्टि से जब हम 'निराला' के साहित्य परिमल से सान्ध्य काकली तक की कृतियों का विश्लेषण करते हैं, यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य-रचना के प्रति सत्यनिष्ठ 'निराला' का विरोध ही उनके युग प्रवर्तन अथवा काव्य की युगान्तरकारी विशेषता का मूलाधार है ।'निराला' का यही विद्रोह -- जिसमें उनकी गहरी रचनात्मक प्रतिभा अन्तस्थ था -- उन्हें 'छेद छंद विधान से लेकर संवेदनात्मक ज्ञान तक' साहित्य का प्रमुखतम स्रोत बना देता है[2]।

'निराला' अपने कवि--वर्ग के प्रति सचेष्ट कलाकार थे, तथा काव्य के साथ कवि की जीवन-साधना का भारी महत्त्व वे मानते थे, इसका उल्लेख श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने किया है[3]। श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त ने 'टैकनीक' के सामने में काव्य-परम्परा से 'निराला' के घोर विरोध का उल्लेख कर सर्वप्रथम उन्हें 'शिल्पी' कहा है ।'उनकी कविता से हमें अखण्ड किन्तु संयत और शासित शक्ति का भान होता है ।' वे लिखते हैं[4]। 'बेला' की रचनाएं 'निराला' को प्रयोगवादी कवि सिद्ध

१- महाकवि 'निराला', पृ०३५

२- भारत, २६ अक्टूबर, ६१, साप्ताहिक परिशिष्ट, पृ०५, 'निराला और नए साहित्य की भावभूमि, श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी ।

३- महाप्राण निराला, पृ०२६६, १२६

४- नया हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि, पृ०१६, १३२

करता है , गुप्त जी की इस मान्यता में भी 'निराला' कृत टेकनीक के क्रांतिकारी परिवर्तन का संकेत है । उनकी विज्ञप्ति है : " जब तक उनका पाठक उनकी एक काव्य-शैली ग्रहण कर पाता है, वह दो-तीन नयी शैलियां गढ़कर उसको चकित कर देते हैं । ऐसा कवि अपने जीवन-दर्शन में कभी रूढ़िवादी नहीं हो सकता[१] ।"

अपनी कला की विवेचना करते हुए 'निराला' ने जो लेख लिखे हैं उनमें कवि के संस्कार, काव्य की मुक्ति , काव्य की विशेषता सीधे ढंग से चित्रण करने और आवेश को कवि की कमज़ोरी कहने के साथ कला की परिणति का उल्लेख किया है । रचनाओं को जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध और उनकी कला की सरलता का उल्लेख भी 'निराला' ने किया है । 'सखी' कहानी संग्रह के 'निवेदन' में उन्होंने जीवन के गुण-दोष से बरी न होने के कारण अपनी शंका के उल्लेख के साथ कहानियों में स्थित जीवन के साहस पर विश्वास प्रकट किया था । 'निराला' ने यह भी लिखा कि इन कहानियों का सम्बन्ध उनके जीवन की घटना से है, यदि कथा-साहित्य में उनको स्थान मिला तो वे अपने श्रम को सार्थक समझेंगे । 'चतुरी चमार' के आवेदन में भी छायावादी साहित्य-सृजन के विचार से कहानियां लिखने का उल्लेख आया है । इसी प्रकार 'वह तोड़ती पत्थर' की कला को सरल नहीं कहकर उसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया है कि वर्णन सीधा होने पर भी हथौड़े की चोट पत्थर पर पड़ने के साथ अट्टालिका पर भी पड़ती है लेखक के वर्णन प्रकार और निर्देश से ।" मजदूरिन के बैठने के स्थान पर छायादार वृक्ष नहीं है, बताकर वे आगे लिखते हैं : "अट्टालिका तरुमालिका है,-- अट्टालिका भी तरुमालिका है, फिर आदमी कितनी छांह में है । पवित्रता की व्यंजना के लिए यौवन बंधा है, छलकता नहीं । और 'मैं तोड़ती पत्थर' अन्त का स्वभावतः सुबोध है-- मैं तोड़ती पत्थर हृदय[२] ।" कला के प्रति भाव और भाषा के सम्बन्ध में 'निराला' का दृष्टिकोण क्या था, इसकी सर्वोत्तम आख्यान 'गीतिका' की भूमिका है, जिसका विवेचन ब्रजभाषा काव्य पर विचार करते समय चतुर्थ अध्याय में विस्तार से हुआ है ।

१- आधुनिक हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि, पृ० १०४

२- साधना , वर्ष २ अंक ७८, पृ०६६

अपने काव्य-साहित्य में दर्शन, शृंगार, संगीत और काव्य का जो समन्वय 'निराला' ने किया है, उसके लिए अभिनय कला का निर्माण भी कला पक्ष का एकान्त साधना द्वारा 'निराला ने किया है। 'निराला' की काव्य-रचना मुख्यतः गीत सृष्टियों में शब्द-चयन और उनकी योजना इस प्रकार की है कि उनके द्वारा शब्दों का स्वर सौन्दर्य भी पूर्ण प्रसार पाता है। काव्य रचना में 'निराला' की निर्माण शक्ति और कौशल का परिचय भी हमें मिलता है। गीतों में शब्दों की सघनता उनके अर्थ-गौरव को बढ़ाने वाली है। इस दृष्टि से 'निराला' की शब्द-चयन और शब्द-योजना दोनों विशिष्ट हैं, जो उनकी साधना, मेधा और कल्पना का भी आख्यान करते हैं। शब्दों की ध्वनि और स्वरों के उत्थान-पतन द्वारा अर्थ के सौन्दर्य को प्रस्फुटित करने वाली काव्य-पाठ की उनकी विशेषता भी इसी के अन्तर्गत गणीय है। रचनाओं का सुन्दर गठन 'निराला' के काव्य-शिल्प का भी परिचायक है। इसी काव्य-शिल्प को लक्ष्य कर डा० रामविलास शर्मा ने उनके गीतों में संगीत को स्थापत्य का रूप धारण करता हुआ कहा है। विषयवस्तु पर और शब्दों पर 'निराला' का असाधारण अधिकार इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। भाषा की दृष्टि से 'निराला' की शब्दों के धातुगत अर्थ ग्रहण करने और उनका अन्वय करें उनसे नए अर्थों की सिद्धि करने की प्रकृति भी उनकी एक अन्य विशेषता है। भाषा के विषय में 'निराला' का दृष्टिकोण शुद्धतावादी नहीं था, तुलसीदास की भाँति उनकी भाषा भी आचार्य वाजपेयी के शब्दों में 'सांस्कृतिक' थी। इसका प्रमाण उनकी काव्य-भाषा का प्रयोग बहुलता है।

'निराला' का काव्य-चित्रण प्रधान होने के कारण जहाँ वर्ण्य-वस्तु अथवा अभिधा शक्ति की केन्द्रीयता स्वीकार करता है, वहाँ बिम्बों के निर्माण में उनकी असाधारण शक्ति का परिचय भी देता है। कलाकार भी 'निराला' के चित्रण प्रधान ही हैं। 'निराला' की यह प्रवृत्ति उनकी स्वतन्त्र चिन्तना की घोषणा करती है। काव्य में विराट और उदात्त चित्रों की संयोजना द्वारा भी 'निराला' की कल्पना और मेधा की ऊर्जा का बोध हमें होता है। उनके काव्य की एक उदात्त भूमि उनके विद्रोही और स्वच्छन्द व्यक्तित्व के अनुरूप थी।

कला के क्षेत्र में 'निराला' के विद्रोही दृष्टिकोण का विवेचन करते हुए मुक्त छंद के सम्बन्ध में कवि की मान्यताओं का परिचय आवश्यक है, अतः उस पर विचार करना अप्रासंगिक न होगा ।

'निराला' के पौरुष और शक्ति का नितान्त सहज और सर्वथा मर्मगत उन्मेष उनका मुक्तछंद है, जो उनके विद्रोही परन्तु स्वच्छन्द मुक्त दृष्टि का ही आख्यान करता है । आलाप और वन्य प्रकृति के समान ही वे मुक्त काव्य को भी स्वभाव के अधिक अनुकूल मानते हैं । इसीलिए मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की मुक्ति की घोषणा उन्होंने की है।जहाँ मुक्ति रहती है,वहाँ-- न मनुष्यों और न कविता में ही बंधन नहीं रहते कि मुक्ति का अर्थ ही बंधनों से छुटकारा पाना है । मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाने में है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाने में[1] । साहित्य की मुक्ति वास्तव में काव्य में ही देख पड़ता है, जिसके द्वारा जाति के मुक्ति-प्रयास का भी ज्ञान होता है । चित्र-सृष्टि का अज्ञान सौन्दर्य में पर्यवसान जाति के मस्तिष्क में विराट दृश्यों के साथ उनकी स्वातन्त्र्य-कामना का भी परिचायक है[2] ।'निराला' का निश्चित विचार है कि 'मुक्त काव्य कभी भी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता,प्रत्युत उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है[3] ।

साहित्य क्षेत्र में मुक्त छंद की अवतारणा 'निराला' ने रंगमंच की आवश्यकता के अनुकूल की है । चिरकाल से बंगाल में रहने के कारण हिन्दी और बंगला की नाट्यशालाओं में अभिनय देखते रहने का विशेष अवसर कवि को मिला । हिन्दी के रंगमंच पर अल्फ्रेड और कोरिंथियन नाटक और नटों के अस्वाभाविक उच्चारण से उन्हें मुक्त छंद की प्रेरणा मिली । उन्होंने लिखा है 'उस समय मैं १६-१७ से अधिक न था । कल्पना की सुदूर भूमि में हिन्दी के अभिनय की सफलता

१- परिमल की भूमिका,पृ०१२,१६ .

२- ,, पृ० १५-१६

३- ,, पृ० १२

पर विचार करते हुए, बोलते हुए, पाठ करते हुए जिस छंद की सृष्टि हुई, वह यही है, और पीछे से विचार करके भी देखा तो इसे स्वभाववश निश्छल हृदय की सत्य ज्योति की तरह निकला हुआ पाया। मेरी आत्मा में तो इसकी सफलता का इतना दृढ़ विश्वास है, जो किसी तरह भी नहीं दूर हो सकता[1]।'

मुक्त छंद की मूलभूत उपादेयता पौराणिक नाटकों के लिए ही है और इसी दृष्टि से उसकी उद्भावना भी हुई, काव्य में उसका प्रवेश बाद में हुआ। 'नाटक-समस्या' पर विचार करते हुए 'निराला' कहते हैं -- मेरा लिखा हुआ स्वच्छंद छंद ऐसे ही (पौराणिक) नाटकों के लिए उपयोगी है। इसी विचार से मैंने लिखा भी था। अवश्य काव्य लिखने के विचार से पहले मैंने उसे मिल्टन की तरह क्लिष्ट भाषा पूर्ण कर दिया था, पर मेरा असली मतलब उसे पौराणिक नाटकों में लाना ही था। 'पंचवटी- प्रसंग' की अवतारणा का यही कारण है। इसका उदाहरण पेश करने के लिए मैंने तो अपने लिखे एक सामाजिक नाटक के एक पार्ट में इसका समावेश कर दिया था और वह पार्ट कलकत्ता स्टेज पर खूब खेला था[2]।' उनका दृढ़ विचार था कि 'इसकी उपयोगिता रंगमंच पर सिद्ध होती है'' स्वच्छंद छंद नाटक पात्रों की भाषा के लिए ही है, यों जिसमें चाहे जो कुछ लिखा जाय।' शेक्सपियर
का उपयोग तथा माइकेल मधुसूदन द्वारा बंगला के अतुकान्त
और मिल्टन द्वारा काव्य के अतुकान्त कविता की सृष्टि के बाद नाटकाचार्य गिरीशचन्द्र द्वारा नाटकों में स्वच्छंद छंद का प्रयोग भी रंगमंच पर इसकी उपयोगिता का सुनिश्चित प्रमाण है[3]।

'निराला' के मुक्तछंद का प्रेरणास्रोत रवीन्द्र न होकर गिरीशचन्द्र घोष थे, इसका संकेत 'परिमल' की भूमिका में उन्होंने स्वयं दिया है। गिरीश घोष के सम्बन्ध में लिखते हुए श्री बसु ने बताया है कि अभिनेता होने के कारण गिरीश घोष ने सर्वप्रथम यह अनुभव किया कि यदि अभिव्यक्ति के माध्यम की दृष्टि से छंद को रंगमंच पर अपनी उपयोगिता प्रमाणित करनी है तो इसके लिए पहली आवश्यकता है यह है कि ग्राम्य दोष से रहित हो सामान्य भाषा से उसका संयोग हो और दूसरे वह कतिपय नाटकीय चेष्टाओं या गतिविधियों को तीव्र करने में समर्थ हो,

---

१- प्रबन्ध पद्म, पृ० १३१-१३२
२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ४६, परिमल की भूमिका, पृ० २०
३- परिमल भूमिका, पृ० २०-२१

जिसमें गद्य असमर्थ है । ऐतिहासिक दृष्टि से रंगमंच पर तो गिरीशचन्द्र घोष को यथोचित सफलता मिली, परन्तु जनता में वे भुला दिए गए हैं । इसके विपरीत द्विजेन्द्रलाल राय ने नाटकीय अभिव्यक्ति के लिए काव्य के माध्यम को अस्वीकार कर अतुकान्त, निर्जीव शैली का व्यवहार किया, परन्तु फिर भी दर्शकों को प्रभावित करने में ने समर्थ थे। गिरीश घोष की इस भ्रान्त धारणा का कि नाटक में कविता का काम सुन्दर शब्दों द्वारा भाषा का शृंगार करना और दर्शकों को उसकी ध्वनि से प्रसन्न करना था, उल्लेख करते हुए श्री बसु ने अपने इस लेख में बताया है कि इसके द्वारा पात्रों की स्वाभाविकता को आघात पहुँचता है[१]।

शास्त्र सम्मत, स्वतन्त्रता और अपनी मौलिकता को सिद्ध करती हुई उक्ति के द्वारा पिंगलाचार्य और व्याकरणाचार्य के अनुसार 'कवि' शब्द की सिद्धि करने के उपरान्त मुक्त छंद का रहस्योद्घाटन करते हुए उन्होंने लिखा है--

"हिन्दी संसार में उन कविताओं की आलोचना करते हुए प्रथम आक्षेप उनके छन्द पर किया है । उसे उन कवियों के छंद पिंगल पोथी में नहीं मिले"। [illegible] दोष का प्रमुख कारण इतना ही है । अच्छा पिंगलाचार्य और हिन्दी के विरोधी संसार से हमारा विनयपूर्वक यह प्रश्न है-- क्या आप प्रमाण दे सकते हैं कि आज का परमसिद्ध घनाक्षरी छंद २०० वर्ष पहले भी भारत में प्रचलित था ? चार वेद, छः शास्त्र और अठारह पुराणों की सीमा में क्या कहीं भी उसका उल्लेख आप दिखा सकते हैं ? सवैया, दोहा आदि कितने अधिकांश वर्णवृत्त और मात्रिक छंद जो आज साहित्य में इस समय प्रचलित हैं, इसके लिए भी हमारा यही प्रश्न है । सारा संस्कृत छन्द-शास्त्र आप देख जाइये । यदि आप असफल हों तो आपको जिस तरह यह मान लेने में कोई हानि नहीं होती कि संस्कृत के पश्चात् 'चंद' कवि के हो जाने पर जब हिन्दी का युग आया तब तत्कालीन भाषा प्रवाह की सुविधा के विचार से हिन्दी के कवियों ने उन नवीन छंदों की सृष्टि की थी, उसी तरह अपनी विचारधारा के अनुसार यदि आप यह भी मान लें कि वर्तमान युग के नवीन कवि वर्तमान शैली की सुविधा के विचार से नवीन नवीन छंदों (सम और विषम) की सृष्टि कर रहे हैं, तो इससे आपकी क्या हानि होती है ? क्या आप सृष्टि का क्रम रोकना चाहते हैं ? या छंदों के पुराने आदर्श में ही कवियों को घेर कर उनके

१- Contemporary Indian Literature, April '65-
Verse in Bengali Theatre, by D. Bose. P122-12

कवित्व रूपी तेल निकालना चाहते हैं[1]।

भाव और छंद की उल्टी गंगा कवि 'निराला' ने इसलिए बहाई क्योंकि छंदों के इतिहास में इससे सीधा और प्राणों के पास तक पहुंचता रास्ता दूसरा नहीं है[2]। हिन्दी काव्य की मुक्ति के दो ही उपाय मालूम दिए जिनसे हटकर मुक्तरूप में छंद नहीं आ सकता, एक वर्णवृत्त में जिसका आधार कवित्त छंद है और दूसरा मात्रा वृत्त में जिसका आधार विविध भाषा के छंद हैं अतएव पढ़ने और गाने दोनों के मुक्त रूप कवि ने निर्मित किए। पहला रूप वर्णवृत्त में है, जिसे मुक्त छंद कहा। इस ज़मीन पर उनकी 'जुही की कली' है। अन्त्यानुप्रास हीन वह रचना पढ़ने की कला को व्यक्त करती है, गाई नहीं जाती। दूसरा रूप मात्रावृत्त में है जिसे उन्होंने मुक्त गीत कहा। इस ज़मीन पर 'बादल राग' का सृजन हुआ। अन्त्यानुप्रासयुक्त इस रचना का आधार मात्रिक होने के कारण उसकी लड़ियाँ असमान होने पर भी यह गेय है, परन्तु इनका संगीत अंग्रेजी ढंग का है। हिन्दी का पुराना राग न होने पर भी 'निराला' का गाना कविता का गाना है, गीत तो उन्होंने अलग लिखे हैं[3]।

भावों की मुक्ति छंद की भी मुक्ति चाहती है, इसलिए भाषा, भाव और छंद तीनों की स्वतन्त्रता मुक्तछंद में है[4]। छंद की भूमि पर रहकर भी यह मुक्त है, जिसमें कोई नियम नहीं है। केवल प्रवाह कवित्त छंद का-सा जान पड़ता है। कहीं-कहीं अक्षर आप-ही आप आ जाते हैं। यही प्रवाह उसका समर्थक है और वही उसे छंद सिद्ध करता है, और नियम राहित्य उसकी मुक्ति[5]। कवित्त छंद को 'निराला' हिन्दी का जातीय छंद मानते हैं, अतएव उसका आधार लेकर प्रवाहित होने वाला मुक्तछंद भी जातीय है[6]। मुक्त काव्य कवित्त छंद की

१- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ११ फरवरी १९६२ के अंक में सनेही द्वारा उद्धृत 'निराला' के लेख 'कवि और कविता' का अंश, पृ० ३३,५३।
२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १९८-१९९
३- ,, पृ० २००,२११
४- ,, पृ० २००
५- परिमल की भूमिका, पृ० १६
६- प्रबन्ध पद्म, पृ० १३३

बुनियाद पर ही हिन्दी में सफल हो सकता है, क्योंकि यह चौताल आदि बड़ी तालों में और ठुमरी की तीन तालों में सफलतापूर्वक गाया जा सकता है और नाटक आदि के समय इसे काफी प्रवाह के साथ पढ़ा जा सकता है[१]।

मुक्त छंद की रचना में 'निराला' ने भाव के साथ रूप-सौन्दर्य पर भी ध्यान रखा है, ऐसा स्वभावत: हुआ है। अन्यथा मुक्त छंद नहीं लिखा जा सकता, क्योंकि यहाँ कृत्रिमता नहीं चल सकती[२]। स्वर को आनन्द की बुनियाद मानते हैं और आनन्द स्वभावत: मुक्त है। मुक्त छंद इसी को लेकर बढ़ा[३]। 'सम्मल' की वर्ण मैत्री से हिन्दी का कंठ स्वर अधिक मिलता है, वही प्राणों के अधिक निकट है और यहीं के भाव, रस, अलंकार और ध्वनि की उज्ज्वलता और अकृत्रिमता भी है[४]। वस्तुत: अपनी विषम गति में एक ही साम्य का अपार सौन्दर्य मुक्त छंद देता है[५]। भावानुरूप लय की विविधता ही उसका सौन्दर्य है।

स्वच्छंद छंद में 'आर्ट आफ म्यूजिक' नहीं, आर्ट आफ रीडिंग का आनन्द मिलता है, क्योंकि वह स्वर प्रधान न होकर व्यंजन प्रधान है, उसका सौन्दर्य गाने में नहीं, वार्तालाप करने में है और उसमें कवित्व का पुरुष गर्व है, कविता की स्त्री सुकुमारता नहीं[६]। इसमें स्वर का संयम स्वर की बराबर लड़ी नहीं मिलती है, कविता की केवल मूर्ति ही सामने आती है[७]। मुक्त काव्य में बाह्य समता दृष्टिगोचर नहीं होती, बाहर इसका प्रमाण केवल पाठ से उसके प्रवाह में मिलने वाले सुर और उच्चारण से प्राणों को सुख-प्रवाह सिक्त निर्मल करने वाली मुक्ति की अबाध धारा है[८]। यही कारण है कि 'निराला' की कृति पर ही कविता की

१- परिमल की भूमिका, पृ० २०
२- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० २०४
३- माधुरी, अगस्त ३५, पृ० ११२
४- ~~परिमल की भूमिका, पृ० २६~~ माधुरी, फरवरी ३८, पृ० ६७
५- परिमल की भूमिका, पृ० १६
६- प्रबन्ध पद्म, पृ० १२६
७- ,, पृ० १३२
८- ,, पृ० १२७

छोड़ना पड़ा, क्योंकि सब जगह लोग सुनकर ही उनकी कविता यथेष्ट समझ पढ़कर नहीं[1]। प्रवाह की सम्बद्धता और शब्दावली के आन्तरिक गठन के लिए ही उन्होंने विशिष्ट कौशल ध्वनि के आदर्श का आधार ग्रहण किया था[2]।

मुक्त छंद सम्बन्धी 'निराला' का यह विवेचन काव्य और कला के सम्बन्ध में उनके विद्रोही दृष्टिकोण का आख्यान है। अनुभूति और अभिव्यंजना शिल्प और कला सभी दिशाओं में 'निराला' का साहित्य उनके विद्रोह की अभिव्यक्ति करता है। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में 'निराला' की काव्य परिकल्पना और अनुभूति के क्षेत्र में व्यावहारिक वेदान्त की क्रांतिकारी भूमिका, कवि की संवेदन शीलता उनके विद्रोह का ही आख्यान करने वाली है। 'निराला' का विद्रोही दृष्टिकोण जो प्रत्येक क्षेत्र में उनका मूल आन्तरिक प्रेरणा-व्यक्तित्व से जुड़ा हुआ है, इस अर्थ में विशिष्ट है कि उन्होंने परम्परा की रूढ़ि कहकर केवल उसका ही विरोध नहीं किया है, अपितु उन नए विचारों की भी आलोचना की है, जो जीवन की स्वस्थ-परम्परा अथवा प्रगतिशील तत्वों का विरोध करते हैं। यही कारण है कि प्रगति और परम्परा को जोड़ने वाला उनका विद्रोह ध्वंसक ही नहीं करता, निर्माण की प्रतिमा भी उसमें विद्यमान है। 'निराला' का विद्रोह वस्तुतः उनकी चेतना का प्रतिफलन है, जो 'परिमल से 'सांध्यकाकली' तक उनके समग्र साहित्य में व्याप्त है।

-0-

१- प्रबन्ध पद्म, पृ०१३१

२- 'निराला', पृ० १६०--डा० शर्मा

परिशिष्ट

(क) 'निराला' का साहित्य

(ख) 'निराला' की असंगृहीत रचनाएं

(ग) 'निराला' सम्बन्धी आलोचनात्मक साहित्य

(घ) आलोचनात्मक ग्रन्थ

(ङ) अन्य अभिनन्दन ग्रन्थ

(च) पत्र-पत्रिकायें

(छ) अंग्रेजी पुस्तकें

परिशिष्ट (क)

'निराला' का साहित्य[1]

१- अनामिका (प्रथम) - १९२३ (जुलाई-भारत सम्भवत:)

२- जीवनियाँ -- ध्रुव, प्रह्लाद, महाराणा प्रताप, भीष्म -- १९२६

हिन्दी बंगला-शिक्षा एवं रस अलंकार पुस्तकें

३- रवीन्द्र-कविता-कानन	-- १९२८
४- परिमल	-- १९२९
५- अप्सरा	-- १९३१
६- अलका	-- १९३३ (जून)
७- लिली	-- १९३३ (सितम्बर)
८- प्रबन्ध पद्म	-- १९३४
९- सखी	-- १९३५
१०- प्रभावती	-- १९३६ (मार्च)
११- निरुपमा	-- १९३६ (मार्च)
१२- गीतिका	-- १९३६ (जुलाई)
१३- अनामिका	-- १९३७ (दिसम्बर)
१४- तुलसीदास	-- १९३८ (दिसम्बर)
१५- कुल्लीभाट	-- १९३९ (मई)
१६- महाभारत	-- १९३९ (जुलाई)
१७- प्रबन्ध प्रतिमा	-- १९४०
१८- सुकुल की बीवी	-- १९४१ (फरवरी)

[1] 'निराला' की कृतियों की यह सूची काल-क्रमानुसार दी गयी है। प्रकाशन की तिथियों के सम्बन्ध में लेखक के वक्तव्य को आधार लिया गया है।

१६- बिल्लेसुर बकरिहा -- १६४१ (दिसम्बर)
२०- कुकुरमुत्ता -- १६४२ (जून)
२१- चाबुक -- १६४२
२२- अणिमा -- १६४३ (अगस्त)
२३- बेला -- १६४६ (जनवरी ४३ आवेदन में दी तिथि।)
२४- नए पत्ते -- १६४६ (मार्च)
२५- चोटी की पकड़ -- १६४६
२६- विषय संग्रह -- १६४८
२७- अर्चना -- १६५० (अगस्त)
२८- अपरा -- १६५२
२६- आराधना -- १६५३
३०- गीतगुंज -- १६५४
३१- काव्य-श्री -- १६५५
३२- काले कारनामे -- १६६०
३३- चयन
३४- संग्रह -- १६६३
३५- रामायण की अन्तर्कथाएँ -- १६६८
३६- सांध्यकाकली -- १६६६ (जनवरी)
३७- छोटा मरी कहानियाँ

श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द का अनूदित साहित्य :(रामकृष्ण सेवाश्रम,धन्तोली,नागपुर)

१- श्री रामकृष्ण वचनामृत --(समन्वयकाल)
२- भारत में विवेकानन्द -- १६४८ (अगस्त)
३- राजयोग (पातंजलयोगसूत्र के पहले तक)
४- परिव्राजक
५- कवितावली -- १६४६(अगस्त) (सॉंग आफ सन्यासी के अतिरिक्त शेष सभी रचनाएं

बंकिम के उपन्यासों का अनुवाद (इण्डियन प्रेस)

१- आनन्द मठ

२- कपाल कुण्डला

३- चन्द्रशेखर

४- दुर्गेशनन्दिनी

५- कृष्णकान्त का विल

६- युगांगुलीय

७- रजनी

८- देवी चौधरानी

९- राज-रानी

१०- विष-वृक्ष

११- राजसिंह

परिशिष्ट (ख)

निराला की असंगृहीत रचनाएं

समन्वय

१- तुम हमारे हो (कविता,वर्ष २,अंक२)
२- जातीय जीवन और श्री रामकृष्ण (निबन्ध,वर्ष २ अंक३)
३- श्रीमत्स्वामी सारदानन्द महाराज से बातचीत(निबन्ध,वर्ष ६,अंक ८-१०)

मतवाला

१- रहस्यान्वय (कविता,वर्ष १ अंक१)
२- कृष्ण महाराज (कविता,वर्ष १ अंक२)
३- गह रूप पहचान(कविता,वर्ष १अंक ३)
४- कवि प्रिया (विजया की भेंट) (कविता,वर्ष १,संख्या ६)
५- देखि कौन वह? (कविता,वर्ष १,अंक११ शीर्षक नाम से)
६- ईश्वर (कविता, वर्ष १, संख्या २५)
७- कविवर श्री सुमित्रानन्दन पन्त (लेख,वर्ष १,संख्या ३६)
८- स्वाधीनता पर (कविता, वर्ष १,संख्या ५२)
९- स्वाधीनता पर (कविता,वर्ष १ संख्या ५३)
१०- कुल में गरल (कविता,वर्ष १, १० अक्टूबर ३४ का अंक)

'चाबुक और चोटी' शीर्षक से लिखी समीक्षाएं भी सभी संकलित नहीं हैं।

माधुरी

१- तुलसीकृत रामायण का आदर्श (लेख, १८ अगस्त २३)
२- श्रृंगारमयी (कविता, १३ जनवरी २४)
३- रेखा (कविता,अगस्त २७)
४- प्रतिध्वनि (कविता,फरवरी२८)
५- गोविन्ददास पदावली (४ पद,सितम्बर २८)
६- गोविन्ददास पदावली (८ पद,मार्च२६)

७- स्वकीया (लेख, अगस्त ३५)

८- श्रीरामकृष्ण मिश्र(लखनऊ) (लेख, अक्टूबर३५)

९- नवीन कवि प्रदीप (लेख, फरवरी ३८)

१०- बलभद्रप्रसाद दीक्षित(लेख, फरवरी ४३)

माधुरी में "पुस्तक-परिचय" स्तम्भ के अन्तर्गत भी "निराला" ने पुस्तकों की परिचयात्मक समीक्षा की है।

सुधा

१- रेखा (कविता, अप्रैल२८)

२- जेनरल प्राइमोंडी रिवेरा (लेख, कुसुम कुंज के अन्तर्गत, जून ३०)

३- शरद् के प्रति (कविता, अक्टूबर ३४)

४- गीत- किसके तन पिय मन पार्यों ? - री कहु (गीत, नवम्बर ३५)

५- रचना रूप (लेख (संपादकीय) १९सितम्बर३३)

६- चण्डीदास लेख में उनके ३ पद दिए हैं (अप्रैल२८)

सुधा में "पुस्तक परीक्षा" के अन्तर्गत प्राय: प्रत्येक अंक में पुस्तकों की समीक्षा की है। "माधुरी" की अपेक्षा "सुधा" में यह सामग्री अत्यन्त अधिक अनुपात में उपलब्ध होती है।

आदर्श

१- विराग्नि पर व्यंग्य (कविता, वर्ष-१, अंक३-४, १९२२)

प्रभा

१- जन्मभूमि (डी०एल०राय का स्वर) (कविता, १जून, १९२०)

उज्ज्वल

१- रेखा (कविता, अप्रैल२७)

सरस्वती

१- हिन्दी और बंगला का अन्तर (लेख, फरवरी१९२१)

२- विधवा (कहानी, सितम्बर ५८)

चकल्लस

१- साल का गीत(लास स्पशाम के लिए प्रस्तुत, अंक २६, जुलाई ३६)

२- वैभर का इन्द्रजाल (संस्करण भावी अंक)

प्रदीप

१- मदनोत्सव-नाचगीत(कविता, फरवरी ५१)

नई धारा

१- चौली, फैली सुहाई जुन्हाई (अप्रैल, मई ५१)

कवि

१- कवि के प्रति (गीत) (वर्ष ३, अंक १०)

२- कवि और कविता(लेख वर्ष ३, अंक ११-१२)

देशदूत

१- कथा, मेरे परिचय का संसार (११ अप्रैल ४३)

२- जवाहरलाल (कविता, २१ नवम्बर ४३)

३- महालक्ष्मी के प्रति (कविता, २६ अक्टूबर ४४)

४- तुलसीकृत रामायण (खड़ी बोली में) (लेख १४ अप्रैल ४६

संगम

१- बिजली का जीवन (कविता, २१ अगस्त ४६)

२- वन्दना (कविता, १८ सितम्बर ४६)

३- हरत पंकज छदागा (कविता, २ अक्टूबर ४६)

४- गीत (रचना की मृदु बीन बनी तुम) (३१ जुलाई ५०)

५- गीत (मुस्कुरा दी रात रानी (२८ अक्टूबर १९५१)

सरोज

१-सरोज के प्रति (पुष्प १ दल १ संवत १९८५)

२- एक अन्य कविता नारी सौन्दर्य सम्बन्धी (पुष्प १ दल २)

३- सौन्दर्य दर्शन और कवि-की [illegible] (लेख)

रंगीला की सामग्री का विवरण कृपया डा० शर्मा की पुस्तक -- 'निराला' की साहित्य साधना 'पृ०१६८-१६६ पर देखें ।

भारत

१- मेरे गीत (लेख)

२- प्रेमचन्द पर लेख (१अक्टूबर ३६)

मारवाड़ी अग्रवाल

१- भारत का नवीन प्रगति में सामाजिक लक्ष्य(लेख,वर्ष ६,खण्ड१,संख्या४संवत्१६८६)

चांद

१- भारत की वेविधाँ (नवम्बर ३४ लेख)

इसके अतिरिक्त 'साहित्य समालोचक' में 'पद्माकर' पर और 'काव्य कुञ्ज' पत्र में भी एक लेख 'निराला' ने लिखा था । 'रूपाभ' फरवरी ३८ में उनके 'चमेली' और 'अप्रा'फरवरी ४७ में'इन्दु लेखा' उपन्यासों के कुछ अंश भी प्रकाशित हुए थे ।

परिशिष्ट (क)

निराला सम्बन्धी आलोचनात्मक साहित्य

१- अवधप्रसाद -- टैगोर और निराला

२- इन्द्रनाथ चौधरी -- निराला काव्य पर बंगला प्रभाव

३- उमाशंकर सिंह -- निराला का निरालापन
महाकवि निराला

४- कमल कुमारी जौहरी -- निराला के कथा साहित्य में उनका व्यक्तित्व

५- कुसुम वार्ष्णेय -- निराला का कथा साहित्य

६- कृष्णदेव झारी -- निराला

७- गंगाधर मिश्र -- युगाराध्य निराला

८- गंगाप्रसाद पाण्डेय -- महाप्राण निराला

९- गिरीशचन्द्र तिवारी -- निराला और उनका काव्य-साहित्य

१०-डा० चन्द्रकला -- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"

११-जगन्नाथ "नलिन" -- काव्य पुरुष "निराला"
-- निराला काव्य कोष

१२-जगदीशचन्द्र जोशी -- महाकवि निरालाकृत "तुलसीदास"

१३-जानकीवल्लभशास्त्री -- महाकवि निराला (संपादित)

१४-तिलक -- "निराला" महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी

१५-देवेन्द्रनाथ शर्मा -- राम की शक्ति पूजा और निराला

१६- देवेन्द्रकुमार जैन -- निराला की काव्य-साधना

१७- देशराजसिंह भाटी -- निराला और राम की शक्ति पूजा
निराला और उनकी अपरा

१८- धनञ्जय वर्मा -- निराला: काव्य और व्यक्तित्व

१९-नन्ददुलारे वाजपेयी -- कवि निराला

२०-नागार्जुन -- एक व्यक्ति : एक युग

२१-पद्मसिंह शर्मा "कमलेश" -- निराला (संपादित)
निराला (सर्वेक्षण माला)

२२- पी० आरामन -- महाकवि सुब्रह्मण्य 'भारती' एवं महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन ।

२३- प्रमिला मिल्ला -- निराला का गद्य साहित्य

२४- प्रेमनारायण टण्डन -- महाकवि निराला: व्यक्तित्व और कृतित्व (संपादित)

निराला: एक झलक

२५-बच्चन सिंह -- क्रांतिकारी कवि निराला

२६-कलकत्ता -- महाकवि श्री निराला अभिनन्दन ग्रन्थ कलकत्ता में श्री निराला जी

२७- बाँकेबिहारी भटनागर -- निराला स्मृति ग्रन्थ (संपादित)

२८-भगीरथ मिश्र -- निराला काव्य का अध्ययन

२९- मोहन अवस्थी -- निराला और तुलसीदास

३०- रघुवरदयाल वार्ष्णेय -- महाकवि निराला और उनका काव्य

३१-रमेशचन्द्र मेहरा -- निराला का परवर्ती काव्य

३२-राजकुमार शर्मा -- महाकवि निराला:संस्मरण एवं श्रद्धांजलि

३३-राजनाथ शर्मा -- निराला

निराला और उनकी अपरा

३४-रामरतन भटनागर -- निराला

कवि निराला: एक अध्ययन

निराला और नवजागरण

३५-रामविलास शर्मा -- निराला

निराला की साहित्य-साधना

३६- विश्वम्भर उपाध्याय -- महाकवि निराला;काव्य,कला और कृतित्व

३७- विश्वम्भर मानव -- काव्य का देवता : निराला

निराला काव्य-दिशाएं

३८-वीणा शर्मा -- निराला की काव्य-साधना

३६- शंकर सुल्तानपुरी -- संस्मरणों के बीच निराला

४०- शान्तिकुमारी श्रीवास्तव -- छायावादी काव्य और निराला

४१- शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' --अंतरदर्शी निराला

४२- शैलेन्द्रनाथ श्रीवास्तव --निराला : जीवन और साहित्य(संपादित)

४३- सत्यनारायण दुबे 'शरतेन्दु' --महामानव निराला : कृतित्व और व्यक्तित्व

४४- सूर्यप्रसाद दीक्षित --निराला का गद्य

४५- श्रीहरि -- कविवर निराला

४६- हरिस्वरूप शर्मा -- निराला और राम की शक्तिपूजा

४७-हनुमानदास 'चकोर' -- छायावाद और निराला

४८-राय,शर्मा और अन्य -- निराला और उनकी कविता.

-- विविधा (संपादित)

निराला विशेषांक

१- कल्पवृक्ष

२- आज

३- तरुण भारत

४- त्रिपथगा

५- धर्मयुग

६- नई धारा

७- नया साहित्य

८- निराला

९- जन भारती

१०-भाषा (श्रद्धांजलि अंक)

११- मध्यप्रदेश संदेश

१२-रसवन्ती

१३-संगम

१४- सम्मेलन पत्रिका(श्रद्धांजलि अंक)

१५-साहित्य संदेश

१६- हिन्दुस्तान

-- शोधग्रन्थ

१- सुरेश पुरंग - निराला: दर्शन और कला का अनुशीलन.

२- निर्मला गुप्ता-- निराला का गद्य

३. शुद्धसेन शर्मा - महाकवि निराला के काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन.

४.- श्रीमती एस० आर० कुशवाहा - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - व्यक्तित्व और कृतित्व.

५.- संतोष कुमारी जैन - निराला का काव्य.

६ - सत्यदेव प्रसाद - निराला में साहित्यिक प्रभाव तथा: उनके काव्य की व्यावहारिक आलोचना. (अपूर्ण).

७. .... निराला साहित्य : सांगोपांग अध्ययन.

८. नंदकिशोर नवल - निराला का काव्य -विकास. -

परिशिष्ट (ख)

१- अमृतराय -- १- कलम का सिपाही
२- चिट्ठी पत्री (दो भाग)
३- विविध प्रसंग (तीन भाग)

२- अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' -- १- प्रिय प्रवास (भूमिका)
२- रस, साहित्य और समीक्षाएं

३- क्षयप्रसाद १- रवीन्द्र साहित्य और समीक्षा
२- रवीन्द्र साहित्य की प्रवन्चिणा

४- आशा गुप्ता खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना

५- ओमप्रकाश आर्य -- मार्क्सवाद और मूल दार्शनिक प्रश्न

६- इन्द्रनाथ मदान -- १- हिन्दी कलाकार (शैल, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला')
२- प्रेमचन्द : एक विवेचन
३- माडर्न हिन्दी लिट्रेचर

७- इन्द्र विद्यावाचस्पति — भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास

८- इलाचन्द्र जोशी १- विवेचना
२- विश्लेषण
३- विजनवती (भूमिका)
४- साहित्य चिन्तन
५- विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर

९- उपेन्द्रनाथ 'अश्क' १- परतों के आर-पार
२- रेखाएं और चित्र
३- संकेत (संपादित)

१०- उमा मिश्रा काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध

११- कमलकुमारी जौहरी हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास

१२- गंगाप्रसाद पाण्डेय १- निबन्धिनी
२- छायावाद और रहस्यवाद

१३- गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' -- साहित्य-वार्ता (ठैस-आधुनिक हिन्दी काव्य का-विद्रोही स्वर और सुलभीवाद पर एक ठैस)

१०- गुलाबराय -- सिद्धान्त और अध्ययन

१४- चन्द्रबली सिंह -- लोकदृष्टि और हिन्दी साहित्य

१५- जयशंकर प्रसाद -- काव्यकला और अन्य निबन्ध

१७- जानकीवल्लभ शास्त्री -- १- प्राच्य साहित्य
२- साहित्य दर्शन
३- त्रयी

१८- ज्वालाप्रसाद त्रिपाठी -- आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार विधान

१९- दिनकर -- १- संस्कृति के चार अध्याय
२- मिट्टी की ओर
३- काव्य की भूमिका
४- प्रसाद और मैथिलीशरण

२०- डा० देवराज -- १- साहित्य चिन्ता
२- छायावाद का पतन
३- रोमांटिक साहित्य शास्त्र

२१- धर्मवीर भारती -- प्रगतिवाद एक समीक्षा

२२- धीरेन्द्र वर्मा -- हिन्दी साहित्य कोश (संपादित)

२३- डा० नगेन्द्र -- १- अनुसंधान और आलोचना
२- आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ
३- आलोचक की आस्था
४- कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ
५- काव्य-बिम्ब
६- काव्य चिन्तन
७- रीतिकाव्य की भूमिका
८- विचार और विवेचन
९- विचार और अनुभूति
१०- विचार और विश्लेषण (विश्लेषण बकरिहा पर

-- ११- काव्य-कला

१२- काव्य में उदात्त तत्व(अनु०)

१३- आधुनिक हिन्दी साहित्य

१४- इण्डियन लिट्रेचर(संपादित).

२४- नन्ददुलारे वाजपेयी -- १- आधुनिक हिन्दी साहित्य

२- आधुनिक काव्य,रचना और विचार

३- नया साहित्य नए प्रश्न

४- हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी

५- जयशंकर प्रसाद

२५- नामवर सिंह -- १- आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ

२- इतिहास और आलोचना

३- छायावाद(ऐतिहासिक सामाजिक विश्लेषण)

४- कविता के नए प्रतिमान

५- हिन्दी के आलोचक

२६- नलिन विलोचन शर्मा -- दृष्टिकोण

२७- निर्मला गुप्ता -- हिन्दी-साहित्य में रूप-विधान

२८- पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' -- अपनी खबर

२९- पुत्तूलाल -- आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना

३०- प्रभाकर माचवे(सम्पादक) -- हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ

३१- प्रकाशचन्द्र गुप्त -- १- आधुनिक हिन्दी-साहित्य :एक दृष्टि

२- आज का हिन्दी-साहित्य

३- नया हिन्दी साहित्य: एक दृष्टि

४- साहित्य-धारा

५- हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा

३२- बच्चन -- १- कवियों में सौम्य संत

२- नए पुराने झरोखे

३३- बच्चन सिंह रत्न -- हिन्दी की छायावादी कविता की कलाशिल्प

३४- ब्रजरत्नदास -- हिन्दी उपन्यास साहित्य

३५- भगवतशरण उपाध्याय -- कालिदास के सुभाषित

३६- भगवत स्वरूप मिश्र -- हिन्दी आलोचना: उद्भव और विकास

३७- भगीरथ मिश्र -- कला साहित्य और समीक्षा (लेख-स्वाभिमान दृढ़ता और उदारता का प्रतीक, महाप्राण निराला)

३८- मधुर मालती सिंह -- आधुनिक हिन्दी काव्य में विरह भावना

३९- महादेवी वर्मा -- १- यामा (भूमिका)
  २- दीपशिखा (भूमिका) आधुनिक कवि-१ (भूमिका)
  ३- पथ के साथी
  ४- साहित्यकार की आस्था और अन्य निबन्ध
  ५- संकल्पिता

४०- महावीरप्रसाद द्विवेदी -- १- कविता-कलाप
  २- संचयन

४१- महेन्द्र भटनागर -- आधुनिक साहित्य और कला (लेख-हिन्दी कविता में निराला का युगान्तरकारी देन)

४२- मोहन अवस्थी -- आधुनिक हिन्दी काव्य-शिल्प

४३- रवीन्द्र सहाय वर्मा -- हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव

४४- रांगेय राघव -- १- आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और शृंगार।
  २- आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली।
  ३- काव्य, यथार्थ और प्रगति
  ४- प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास

४५- राजेन्द्र प्रताप सिंह -- सौन्दर्य शास्त्र की पाश्चात्य परम्परा

४६- रामअवध द्विवेदी -- १- साहित्य- सिद्धान्त
  २- साहित्य-रूप

४७- रामकुमार वर्मा -- साहित्य चिन्तन

४८- रामखेलावन पाण्डेय -- काव्य और कल्पना

४९- रामचन्द्र शुक्ल -- १- हिन्दी साहित्य का इतिहास
  २- चिन्तामणि (दो भाग)

५०- रामदरश मिश्र -- साहित्य सन्दर्भ और मूल्य

५१- रामदास गुप्त -- प्रेमचन्द और गांधीवाद

५२- रामनरेश त्रिपाठी -- कविता कौमुदी

५३- रामरतन भटनागर -- १- अध्ययन और आलोचना
२- छायावाद और रहस्यवाद
३- हिन्दी कविता

५४- रामविलास शर्मा -- १- आस्था और सौन्दर्य
२- प्रेमचन्द और उनका युग
३- प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं
४- भाषा और समाज
५- १८५७ की राज्यक्रांति
६- स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य
७- संस्कृति और साहित्य
८- विराम चिन्ह

५५- रामस्वरूप शर्मा -- हिन्दी में गद्यकाव्य का विकास

५६- रामेश्वरलाल खण्डेलवाल -- जयशंकर प्रसाद वस्तु और कला

५७- राहुल सांकृत्यायन -- १- नए भारत के नए नेता
२- दर्शन दिग्दर्शन
३- हिन्दी काव्य धारा

५८- लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय -- १- हिन्दी साहित्य का इतिहास
२- आधुनिक हिन्दी साहित्य
३-बीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य,नए संदर्भ

५९- लक्ष्मीनारायण लाल -- हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास

६०- लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' -- गद्यकाव्य का विकास

६१- विष्णुकान्त शास्त्री -- कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबन्ध

६२- विष्णुचन्द्र शर्मा -- इन लोगों के मध्य

६३- वासुदेव शरण अग्रवाल -- कला और संस्कृति

६४- विनयमोहन शर्मा -- १- दृष्टिकोण (गीतिका और अप्सरा पर लेख)
२- साहित्य,शोध और समीक्षा

३-साहित्यावलोकन
४-कवि प्रसाद, आंसू तथा अन्य कृतियाँ(सम सामयिक कवियों में निराला विवेचित)

६५- विमलकुमार जैन -- हिन्दी के अर्वाचीन रत्न(ले०-सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला')

६६- श्यामसुन्दरदास -- १- गद्य कुसुमावली
२- साहित्यालोचन
३- हिन्दी साहित्य

६७- शम्भुनाथ सिंह --छायावाद युग

६८- शचीरानी गुर्टू(संपादिका) --१- साहित्य दर्शन
२- हिन्दी के आलोचक
३- प्रेमचन्द और गोर्की
४- महादेवी वर्मा

६९- शान्तिप्रिय द्विवेदी --१- कवि और काव्य
२- ज्योति विहग
३- संचारिणी
४- स्मृतियाँ और कृतियाँ
५- युग और साहित्य

७०- शिवकरण सिंह --स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन।

७१- शिवकुमार मिश्र --आधुनिक कविता और युगदृष्टि(निराला पर एक खण्ड में अलग विवेचन)

७२- शिवचन्द्र -- प्रगतिवाद की परीक्षा

७३- शिवचन्द्र नागर -- महादेवी, विचार और व्यक्तित्व

७४- शिवनारायण श्रीवास्तव -- हिन्दी उपन्यास

७५- शिवपूजनसहाय -- वे दिन वे लोग

७६- शिवदानसिंह चौहान -- १- साहित्य की परख
२- प्रगतिवाद
३- हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष
४- काव्य धारा(संपादित)

७७- श्रीकृष्णलाल -- आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास

७८- सत्येन्द्र -- समालोचनात्मक निबन्ध

७८- सत्येन्द्रनाथ मजुमदार -- विवेकानन्द चरित

८०- सच्चिदानन्द तिवारी -- आधुनिक गीति काव्य

८१- स्वामी सारदानन्द -- भारत में शक्तिपूजा

८२- सुधीन्द्र -- हिन्दी कविता में युगान्तर
हिन्दी कविता का क्रान्ति युग

८३- सुमित्रानन्दन पन्त -- १- चिदम्बरा, पल्लव, वाणी और
आधुनिक कवि-२(भूमिका)
२- गद्य-पथ
३- शिल्प और दर्शन
४- कला और संस्कृति
५- छायावादः पुनर्मूल्यांकन
६- साठ वर्ष एक रेखांकन

८४- सुरेन्द्र माथुर -- आधुनिक हिन्दी काव्य-कृति और विधा.
(लेख-महाकवि निराला: निष्ठा और
व्यक्तित्व)

८५- सुरेशचन्द्र गुप्त --आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त

८६- हजारीप्रसाद द्विवेदी --१- हिन्दी साहित्य
२- हिन्दी साहित्य की भूमिका
३- मध्यकालीन धर्म-साधना
४- विचार और वितर्क
५- महाकवि रवीन्द्रनाथ

८७- हरदेव बाहरी -- हिन्दी की काव्य शैलियों का विकास

८८- हंसकुमार तिवारी -- बंगला और उसका साहित्य

परिशिष्ट (ड०)

अन्य अभिनन्दन ग्रन्थ

सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ

महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ

महादेवी स्मृति ग्रन्थ

हीरक जयन्ती ग्रन्थ (नागरी प्रचारिणी सभा)

स्मृति-चित्र (पंत जी)

श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द का समग्र साहित्य, कालिदास और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की लगभग सभी कृतियाँ, जयदेव का गीत गोविन्द ।

परिशिष्ट (च)

पत्र-पत्रिकाएं

अवन्तिका, अभ्युदय, अपरा, अन्तर्वेद, अवन्तिका, आज, आजकल, आदर्श, आलोचना, इन्दु, कला, कल्पना, कादम्बिनी, चांद, ज्योत्सना, जन-भारती, जागरण, पाटल, पारिजात, प्रभा, प्रतिभा, प्रतीक, प्रदीप, भारत, मध्यप्रदेश सन्देश, मतवाला, माधुरी, मारवाड़ी अग्रवाल, तरुण भारत, त्रिपथगा, नई धारा, नया पथ, नई कहानियाँ, निराला, देशदूत, धर्मयुग, युग चेतना, रूपाभ, लहर, लोकमान्य, विचार, वीणा, विशालभारत, विश्वामित्र, संगम, सरस्वती, साहित्य, साहित्य-समालोचक, साहित्य-संदेश, साहित्यकार, साधना, सुधा, समन्वय, सम्मेलन पत्रिका, सोवियत भूमि, हंस, हिन्दुस्तानी, हिन्दी अनुशीलन, हिन्दुस्तान ।